विश्व हिंदी साहित्य

2023

विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

विश्व हिंदी साहित्य
2023

प्रधान संपादक
डॉ. माधुरी रामधारी

संपादक
डॉ. शुभंकर मिश्र

विश्व हिंदी साहित्य
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Independence Street, Phoenix 73423,
Mauritius

info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
फ़ोन / Phone : 00-230-6600800

ISSN - 1694-3465

वरिष्ठ सहायक संपादक
श्री प्रकाश वीर

टंकण टीम
**श्रीमती विजया सरजू, श्रीमती त्रिशिला आपेगाडु,
श्रीमती जयश्री सिबालक-रामशरण, श्री अजय कुमार एवं श्री नीरज कुमार**

निवेदन

विश्व हिंदी साहित्य में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार रचनाकारों के हैं।
विश्व हिंदी सचिवालय और संपादक मंडल का उनके विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पृष्ठ सज्जा
आर. एस. प्रिंट्स

कवर डिज़ाइन
डॉ. प्रकाश झगारू

**स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि., 4/5 बी, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली–110002 (भारत) द्वारा प्रकाशित**

प्रधान संपादकीय

हिंदी पद्य साहित्य में प्रेम-भाव

प्रेम वह भावना है, जिससे किसी प्राणी या वस्तु को बार-बार देखने, उसे पाने, भोगने तथा उसे अपने पास रखने की इच्छा होती है। मानव-जीवन का केन्द्रीय भाव होने के कारण प्रेम हिंदी साहित्य में और विशेषकर हिंदी पद्य में एक प्रमुख और प्रासंगिक विषय के रूप में विस्तारपूर्वक चित्रित है। हिंदी पद्य साहित्य के सुधी पाठक प्रेम की वास्तविकता से और प्रेमी-प्रेमिका या पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम, ईश्वर के प्रति प्रेम, मनुष्य, प्रकृति या देश के प्रति प्रेम आदि प्रेम के विविध रूपों से परिचित होते हैं।

हिंदी कवियों ने प्रेम का महत्त्व पहचाना । सूरदास का कथन है – *'सबसे ऊँची प्रेम सगाई*, तो कबीर के अनुसार *'ढाई आखर प्रेम का पढ़े, सो पंडित होई।'* जायसी ने *'मानेस प्रेम भएउ बैकुण्ठी'* कहकर प्रेम को स्वर्ग का द्वार बताया और गोपालदास नीरज ने कहा – *'प्यार न होता धरती पर, तो सारा जग बंजारा होता'*। घनानन्द ने प्रेम-मार्ग पर चलना जीवन की विशेष उपलब्धि मानी – *'प्रेम ही जीवन का सार तत्व है, जिसके हृदय में प्रेम नहीं, उसका जीवन व्यर्थ है।'* दिनकर कहते हैं – *'नहीं मिला यदि स्नेह बंधु, जीवन में तुमने क्या पाया?'* अज्ञेय का कथन है – *'प्रेम का कोई भी स्तर मूल्यवान है'* और अशोक वाजपेयी की दृष्टि में प्रेम अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, इसीलिए तारों को अलग करके, सूर्य-चंद्रमा को एक तरफ़ करके, वन लताओं को हटाकर, पृथ्वी को झाड़-पोंछकर और आकाश की तहें ठीक करके वे *'अपने प्रेम के लिए जगह'* बनाते हैं।

हिंदी काव्य में प्रेमी-प्रेमिका के प्रेम का अनुपम वर्णन किया गया है। जायसी बताते हैं कि पद्मावती के अलौकिक सौन्दर्य के बारे में सुनकर राजा रत्नसेन के हृदय में प्रेम-व्यथा उत्पन्न होती है – *'सुनि कै धानि जारी अस काया, तन भा मयन, हिए भई माया।'* रत्नसेन के प्रति प्रेम का अनुभव करने वाली पद्मावती अपनी सखियों से कहती है – *'आज मरम मैं जानिऊँ सोई, जस पियार पिउ और न कोई।'* स्पष्ट है कि प्रेम जब जीवन में प्रवेश करता है तब हृदय में उमंग की हिलारें उठती हैं और जीवन का रुख बदल जाता है।

प्रेमी और प्रेमिका एक-दूसरे को देखकर आनंद की अनुभूति करते हैं। तुलसी कहते हैं कि सीता हर्ष और उन्माद से अपने दूल्हे राम का सुंदर रूप निहारती है – *'राम को रूप निहारती, कंकन के नाग की परछाही।'* सूरदास का कथन है कि राधा की सुंदर छवि कृष्ण के नेत्रों में समाहित हो जाती है – *'सूर श्याम देखत ही रीझे, नैन नैन मिलि परी ठगोरी।'* बिहारी बताते हैं कि नायक और नायिका प्रेम में तरह-तरह की चेष्टाएँ करते हुए आँखों से बात करते हैं –

"कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात
भरे मौन में करत हैं, नैननु हीं सो बात।"

धर्मवीर भारती दहकते पलाश और आग की महक की उपमा देते हुए प्रेम की विह्वलता और मिलने की आग का चित्रण

करते हैं –

"अधखुले थे, व्याकुल थे दो कँपते ओठ
रह-रह दहकें जैसे फूल दो पलाश के
कटावदार
टेसू कैसे फूले चंदन की डार?
बन-बन में उड़ी महक आग की
ओ मेरे प्यार?"

भारतेंदु ने *'प्रेम में मीन मेष कछु नाहिं'* कहकर सच्चे प्रेम की परिभाषा दी, दिनकर ने प्रेम की पवित्रता का वर्णन किया – *'रो न दो तुम, इसलिए मैं हँस पड़ी थी, प्रिय न इसमें कोई बात थी'*, अज्ञेय ने प्रेम को अमर करने की अभिलाषा व्यक्त की – *'तेरा, अपना और प्यार का नाम अमर कर जाऊँ'* और कवि बोधा ने प्रेम के समक्ष विभिन्न प्रकार के मतों को अर्थहीन बताया – *'नाना मत उपासना मतमत न्यारे ठौर, इस्क ब्रह्म जाने नहीं आसिक मानत और'*। घनानंद के अनुसार प्रेम का मार्ग सरल भी है और कठिन भी है । इस मार्ग पर चतुराई को भूलकर कष्ट सहन करना पड़ता है और निश्छलता एवं एकनिष्ठता का प्रमाण देना होता है –

"अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु
सयानक बाँक, नहीं तहाँ साँचे चलै तजि
आपुनपौं, झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।"

अर्थात् कवियों ने कलात्मक विधि से प्रेम की सुन्दर विशेषताओं का ज्ञान प्रदान किया है।

हिंदी काव्य में प्रेम में विरह-वेदना का भी सूक्ष्म चित्रण किया गया है। कृष्ण के वियोग में राधा प्रलाप करती है – *'कह तु कह सखि, बोल तु बोल रे, हमर पिया कौन देस रे।'* महादेवी वर्मा विरह की व्यथा से पीड़ित होकर आँखों से आँसू बहाती है और प्रेमी के आने की राह देखती है –

"जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग
गाता प्राणों का तार-तार
अनुराग-भरा उन्माद-राग
आँसू लेते वे पद पखार
जो तुम आ जाते एक बार!"

ऐसा प्रतीत होता है कि शुद्ध प्रेम का वास्तविक रूप पीड़ा है और पीड़ा के असह्य हो जाने पर अश्रु की धाराएँ बहती हैं।

प्रेम की पराकाष्ठा भक्ति है। मीरा ने *'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोय'* गाते हुए कृष्ण के प्रति अपना पवित्र प्रेम व्यक्त किया है। महादेवी वर्मा ने ईश्वर को प्रियतम मानकर दीपक से प्रार्थना की –

"मधुर-मधुर मेरे दीपक जल, प्रियतम का पथ आलोकित कर"

सूफ़ी कवियों ने प्रचलित प्रेम-कथाओं को अपने काव्य का आधार बनाकर लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम में परिवर्तित

किया। उदाहरणार्थ, जायसी ने पद्मावती को ईश्वर का प्रतीक बताया और रत्नसेन को भक्त के रूप में प्रस्तुत किया। रसखान के अनुसार जिस हरि के अधीन सारा संसार है, वही हरि प्रेम के अधीन है और यही प्रेम हरि से मिलाने वाला है –

"हरि के सब अधीन पै, हरि प्रेम अधीन
पाहि तैं हरि आपु ही, याहि बड़प्पन दीन।"

ईश्वर के प्रति प्रेम की काव्यात्मक अभिव्यक्ति के कारण भक्तिकाल की चार काव्य-धाराओं में से एक का नाम 'प्रेममार्गी' पड़ा।

हिंदी पद्य साहित्य ने संसार के सभी मनुष्यों से प्रेम करने का संदेश दिया है। मैथिलीशरण गुप्त ने 'मनुष्य' शब्द को परिभाषित करते हुए कहा – *'वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे'*। 'कामायनी' की श्रद्धा मनु को स्वार्थ का त्याग करके दूसरों को सुख देने के लिए प्रेरित करती है – *'औरों को हँसते देखो मनु, हँसो और सुख पाओ'*। गोस्वामी तुलसीदास *'पर पीड़ा सम नहिं अधमाई'* कहकर दूसरों को कष्ट न पहुँचाने का आग्रह करते हैं' और महादेवी वर्मा प्रश्न करती है कि वे अपने प्रियतम की यौवन सुषमा को निहारे या दीन-दुखी मनुष्यों की जर्जरावस्था को देखे – *'तेरी चिर यौवन सुषमा या जर्जर जीवन देखूँ'*। गोपालदास नीरज का वाक्य *'आदमी हूँ, आदमी से प्यार करता हूँ'* और शैलेन्द्र के वाक्य *'किसी के वास्ते हो तेरे दिल में प्यार'* युगों तक समाज को प्रेरित करते रहेंगे।

साहित्यकारों ने जाति, धर्म और संप्रदाय के नाम पर मनुष्य को बाँटने की वृत्ति त्यागकर प्रेम का विस्तार करने की माँग की। सहजोबाई ने *'मुसलमान सों दोस्ती, हिंदुअन सों कर प्रीत'* का संदेश दिया। प्रसाद ने मानव-प्रेम से विश्व प्रेम की ओर बढ़ने की प्रेरणा दी –

"सब भेदभाव भुलवाकर
सुख-दुख को दृश्य बनाता
मानव कह रह? यह मैं हूँ
यह विश्व नीड़ बन जाता।"

यहाँ कवि की मानवतावादी विचारधारा स्पष्टत: परिलक्षित होती है।

हिंदी पद्य साहित्य में प्रकृति-प्रेम की छटा अनोखी है। प्रकृति सुंदरता की प्रतीक है। सुंदरता से प्रेम करने वाले कवि प्रकृति-प्रेमी सिद्ध हुए हैं। केदारनाथ अग्रवाल को समस्त प्रकृति अत्यंत मनोरम प्रतीत होती है – *'उषा देखूँ, लाल गुलाबी घन का जीवन देखूँ'*। जीवन के कृत्यों से छूटकर प्रकृति का आश्रय लेने वाले कवि पंत प्रकृति की सुकुमारता से इतना अभिभूत होते हैं कि वे प्रकृति की रम्य क्रीड़ा स्थली को छोड़कर प्रेमिका के प्रेम में भी पड़ना स्वीकार नहीं करते हैं –

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।"

बिहारी ने रति-भाव को उद्दीप्त करने हेतु प्रकृति-चित्रण किया – *'सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर'*, तो सेनापति ने प्रकृति का आलंबनात्मक चित्रण किया – *'वृक्ष तौ तरनि तेज सहसौ किरन करि'*। कबीर ने प्रकृति को प्रतीक के रूप में दर्शाया – *'काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी, तेरे ताल सरोवर पानी'* और महादेवी वर्मा ने प्रकृति में रहस्यात्मकता का आभास कराया – *'तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस पार क्या है'*। नागार्जुन ने प्रकृति में मानवीय संवेदनाएँ अनुभूत कीं – *'सागर की*

उपाम तरंगें, मुझसे कानाफूसी करती'। प्रसाद ने प्रकृति का मानवीकरण किया – *'अंतरिक्ष में अभी सो रही है उषा मधुबाला।'* हिंदी कवियों ने उषा, दिवस, संध्या, रात्रि, सूर्य, चंद्र, तारे, नक्षत्र, आकाश, बादल, बिजली, धरती आदि प्रकृति के सभी उपकरणों के प्रति अपने प्रेम को प्रकाशित किया।

हिंदी पद्य साहित्य में देश-प्रेम भी समाहित है। प्रकाश जोशी बेचैन के अनुसार *'देश-प्रेम से बढ़कर मन में रसिक भाव न है कोई दूजा।'* देश की दुर्दशा को देखकर भारतेंदु ने भावोद्गार किया – *'हा, हा भारत दुर्दशा न देखी जाई'*, मैथिलीशरण गुप्त ने भारत के स्वर्णिम अतीत का स्मरण दिलाया – *'हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी*, रामनरेश त्रिपाठी ने भारत की महिमा का गान किया – *'शोभित है सर्वोच्च मुकुट से, जिनके दिव्य देश का मस्तक'*, 'सुभद्रा कुमारी चौहान ने रानी लक्ष्मीबाई की वीरता का गान किया – *'खूब लड़ी मर्दानी, वो तो झांसी वाली रानी थी'*, प्रसाद ने जागरण का संदेश दिया – *'बीती विभावरी जाग री'* और निराला ने देश की स्तुति की – *'भारती जय विजय करे, कनक शस्य कमल धरे*'। इन कविताओं में मातृभूमि के प्रति प्रेम, कृतज्ञता, समर्पण और कर्तव्य की भावनाओं का सुन्दर सम्मिश्रण है।

डॉ. मुहम्मद इकबाल का *'सारे जहाँ से अच्छा हिंदुस्तान हमारा'*, कवि प्रदीप का *'ए मेरे वतन लोगो, ज़रा आँख में भर लो पानी'*, शैलेन्द्र का *'होठों पे सच्चाई रहती है'*, प्रेम धवन का *'ऐ मेरे प्यारे वतन, ऐ मेरे बिछड़े चमन'*, इंदीवर का *'मेरे देश की धरती सोना उगले'* जैसे सदाबहार गीत देश-प्रेम से अनुप्राणित हैं। इन गीतों ने हिंदी साहित्य को अनोखे रूप से समृद्ध किया।

हिंदी कवियों ने प्रेम-भाव को जाना, परखा, समझा और उसे यथोचित महत्त्व दिया। इसीलिए हिंदी पद्य साहित्य में प्रेम का स्थान सर्वोपरि है। वास्तव में, हिंदी पद्य प्रेम का पर्याय है और प्रेम की कविताएँ, क्षणिकाएँ, गीत, गज़ल, दोहे, छंद आदि हिंदी साहित्य की थाती है। प्रेम के विविध रूप दर्शाते हुए हिंदी पद्य साहित्य ने पाठकों के मन में प्रेम-भाव का विस्तार किया है और भारतीय आत्मा के साथ विश्व आत्मा को भी आंदोलित किया है।

डॉ. माधुरी रामधारी
महासचिव

संपादकीय

हिंदी साहित्य का वैश्विक परिपार्श्व

साहित्य का अर्थ है – सहभाव अर्थात अर्थसहित भाव। "हितेन सह इति सष्टिमूह तस्याभावः साहित्यम्।" आशय यह कि साहित्य का मूल तत्व हम सभी का हित साधन है। साहित्य समाज की उन्नति का आरंभिक सोपान है। जब हम अपने हार्दिक भावों को अनुभूतिपरकता के साथ अभिव्यक्त करते हैं तो यह रचनात्मक अभिव्यक्ति साहित्य कहलाता है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि समाज और साहित्य एक-दूसरे के पूरक हैं, जो समाज में व्याप्त समस्याओं के समाधान के लिए साहित्य से यथार्थपरकता, संवेदनशीलता और पारदर्शिता की अपेक्षा रखते हैं, ताकि सामाजिक अभिप्राय की स्पष्ट और सटीक पहचान हो सके। 'अज्ञेय' ने रचना सृजन के समय की लेखकीय मनोस्थिति को अपनी रचना 'नया कवि' - आत्मस्वीकार में सुंदर तरीके से अभिव्यक्त करते हुए कहा है –

"किसी का सत्य था,
मैंने संदर्भ में जोड़ दिया,
कोई मधुकोष काट लाया था,
मैंने निचोड़ लिया।
यों मैं कवि हूँ, आधुनिक हूँ, नया हूँ
काव्य-तत्त्व की खोज में कहाँ नहीं गया हूँ?
चाहता हूँ आप मुझे ,
एक-एक शब्द पर सराहते हुए पढ़ें।
पर प्रतिमा-अरे, वह तो
जैसी आपको रुचे, आप स्वयं गढ़ें।"

यदि देखा जाए तो साहित्य समाज को संस्कारित करता है और साथ-ही-साथ, यह हमारे जीवन के विभिन्न कालखंडों की विसंगतियों, विद्रूपताओं एवं विरोधाभासों को रेखांकित करते हुए पूरे समाज को जागृत करता है। कहना नहीं होगा कि साहित्य, अतीत के संचित ज्ञान की यथार्थपरक पृष्ठभूमि में हमें वर्तमान और भविष्य के प्रति सतत विमर्शशील रहने के लिए उत्प्रेरित करता है ताकि इस बुनियाद पर निर्मित देश और समाज अपने वांछित लक्ष्यों को हासिल कर सके। प्राचीन काल से ही साहित्य, संगीत और कला को सामाजिक विकास के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण माना गया है। कहा भी गया है कि *"साहित्य-संगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।"* मोटे तौर पर विमर्शमूलक साहित्य हमें समाज के अनछुए पहलुओं

से जोड़ता है और एक समावेशी समाज की परिकल्पना को अभिकल्पित करने में मदद करता है।

विदित ही है कि भाषिक एवं साहित्यिक परंपरा को समृद्ध करने में हिंदी का प्रवासी साहित्य एक महत्त्वपूर्ण भूमिका में है। प्रवासी साहित्य के अंतर्गत लोक-अनुभव का एक विस्तृत संसार सहज देखा जा सकता है, जिसकी पहुँच एवं उपलब्धता वैश्विक स्तर पर है।

यह सुखद है कि हिंदी साहित्य, विशेषकर प्रवासी साहित्य में खूब बढ़-चढ़कर लिखा जा रहा है और सामाजिक सरोकारों को पूरी संजीदगी से उकेरा जा रहा है। इन रचनाओं में हमें करुणा, संवेदना, हास्य, व्यंग्य आदि-आदि के विविधवर्णी संसार का एक स्पष्ट दर्शन होता है, जो इन रचनाओं को पठनीय, संग्रहणीय और सर्वोपरि कालजयी बनाते हैं।

हिंदी साहित्य के वैश्विक परिपार्श्व के रूप में 'विश्व हिंदी साहित्य' का यह नवीनतम अंक आप सबके समक्ष उपस्थित है। इसके माध्यम से 'विश्व हिंदी सचिवालय' का यह प्रयास रहा है कि समग्र समाज को हिंदी साहित्य के वैश्विक फलक से अवगत कराया जाए, ताकि वैश्विक स्तर पर प्रवासी समाज को जानने-समझने का एक अवसर प्राप्त हो सके।

इस अंक में समावेशित रचनाएँ, बिना किसी लाग-लपेट के, शब्दों के प्रपंच में बिना उलझे-भटके, विमर्शात्मक शैली में अपने अनुभवों को समेटे हुई हैं, जो हम पाठकों को एक क्षण रुककर सोचने के लिए मज़बूर करती हैं। इस अंक के साहित्य-संसार में लेखकीय अनुभवों का इंद्रधनुषी रंग आपको सहज देखने को मिलेगा।

इसमें कोई दो राय नहीं कि इन सृजनधर्मी रचनाकारों के महनीय प्रयासों से वैश्विक स्तर पर हिंदी के प्रचार-प्रसार को अपेक्षित बल मिलेगा और प्रगतिशील पाठक वर्ग को मानवीय मूल्यों और समाज के विभिन्न सरोकारों से जुड़ने का एक व्यापक अवसर प्रदान करेगा। आशा करते हैं कि आगे भी, साहित्य से समाज निर्माण का यह क्रम इसी प्रकार अबाध-गति से चलता रहेगा। इन असाधारण सृजनधर्मी प्रयासों को साधुवाद। पुनः 'विश्व हिंदी साहित्य' पत्रिका के माध्यम से हमसे जुड़ने के लिए आप सबका आभार। अस्तु! चरैवेति, चरैवेति।

उम्मीद है कि 'विश्व हिंदी सचिवालय' के इस प्रयास से संपूर्ण हिंदी समाज लाभान्वित होगा और विभिन्न सामाजिक सरोकारों पर विमर्श हेतु पाठकों को यह एतावत उत्प्रेरित करता रहेगा।

मंगल कामनाओं के साथ,

भवदीय

डॉ. शुभंकर मिश्र
उप महासचिव

अनुक्रम

लघुकथा

1.	भारत	अंगद	विवेक श्रीवास्तव	1
2.	भारत	भाषा-गर्व	डॉ सुनीता श्रीवास्तव	2
3.	भारत	अब नहीं जाऊँगी माँ	प्रदीप कुमार शर्मा	3
4.	भारत	भेद-भाव	मोनिका राज	4
5.	भारत	धीमी गति का विकास	विरेंदर 'वीर' मेहता	4
6.	भारत	हकीकत	भगवान वैद्य 'प्रखर'	5
7.	भारत	प्रतिकार	श्री सीताराम गुप्ता	6
8.	भारत	विरासत	हेमा चंदानी	7
9.	भारत	क्रमिक विकास	यशोधरा भटनागर	8
10.	भारत	भूख के आगोश में	डॉ. कुंवर प्रेमिल	9
11.	भारत	संस्कार	मीरा जैन	9
12.	भारत	भाई का हिस्सा	डॉ. विजयानंद	10
13.	भारत	प्यार का आलोक	श्रीमती देवीश्री गोयल	10
14.	भारत	नशा	सरिता सुराणा	11
15.	भारत	आनंद का जन्मदिन	सुभद्रा प्रसाद	11
16.	मॉरीशस	महिला दिवस	कल्पना लाल जी	12
17.	मॉरीशस	रिस्क	अलका धनपत	13
18.	यू.ए.ई	खूबसूरत	मीरा ठाकुर	14
19.	ऑस्ट्रेलिया	आदर्श नाती	रीता कौशल	14

कहानी

20.	भारत	जाति प्रमाण-पत्र	नफे सिंह कादयान	15
21.	भारत	विदाई समारोह	अजय कुमार पाण्डेय	26
22.	भारत	एक साहित्यकार के आँसु	रंगनाथ द्विवेदी	34
23.	भारत	विदाई	प्रो. खेमसिंह डहेरिया	38
24.	मॉरीशस	गुलाबी कबूतर	डॉ. राज शेखर	40
25.	ऑस्ट्रेलिया	अधूरी	रेखा राजवंशी	43

26.	यू.ए.ई.	प्रवासी लेखिका का फ़ेंग शुई	आरती लोकेश	49
27.	यू.एस.ए.	पंखों वाली औरत	शुभ्रा ओझा	56

कविता

28.	भारत	चीरहरण	अश्वनी कुमार	59
29.	भारत	मॉरीशस का आप्रवासी घाट	दीप्ति अग्रवाल	60
30.	भारत	भाषा, बोली और आदमी	श्री प्रदीप कुमार ठाकुर	61
31.	भारत	इसीलिए उठ वीर पुरुष	मिति भाद्वाज	61
32.	भारत	तुम कैसे भगवान हुए	श्री अनंत देव	62
33.	भारत	सूर्य वंदना	डॉ. कुसुम कुंज मालाकार	63
34.	भारत	बेटियाँ	श्री लक्ष्मीकांत मुकुल	64
35.	भारत	एक बेटी, बन के बहु ससुराल आ रही	डॉ. आशा रानी	64
36.	भारत	युद्ध अभी-अभी जारी है	डॉ. विवेक बादल बाज़पुरी	65
37.	भारत	विश्व शांति आराधन	श्री पुरुषोत्तम तिवारी	65
38.	मॉरीशस	बाँटकर मृदु मुस्कान	डॉ. इन्द्रदेव भोला इन्द्रनाथ	66
39.	मॉरीशस	गीत : अकेले चले गए	श्री गोवर्धन सिंह फ़ौजदार	67
40.	थाईलैंड	कवियों का स्वर्ग	कित्तिपोंग बुनकर्ड	68
41.	ऑस्ट्रेलिया	सूरज को करना था राज़ी	श्री हरिहर झा	68
42.	ऑस्ट्रेलिया	विचारें आज़ाद हैं	डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव	69
43.	लिस्बन	जीवन	श्री शिव कुमार सिंह	70
44.	सिंगापुर	खोज ईश्वर की	अदिति अरोरा	70
45.	सिंगापुर	वीकेंड	श्री विनोद कुमार दूबे	72
46.	केलिफ़ोर्निया	नियति	प्रतिभा सक्सेना	72
47.	स्पेन	कहाँ गया अन्न	पूजा अनिल	73

दोहा/ क्षणिकाएँ/ हाइकु

48.	भारत	दोहों के रंग : आईना के संग	हलीम आईना	75
49.	भारत	तृष्णा बावरी	भावना संक्सैना	75
50.	भारत	सात हाइकु	डॉ. जगदीश पन्त	78

गीत

51.	भारत	गीत आओ हम मिलकर	फूलचंद यादव	79
52.	भारत	गीत- यदि तुम कहो तो	पंकज कुमार	80
53.	भारत	दो पल की जिंदगानी	समता कुमारी	81
54.	भारत	वे भी क्या दिन थे	गंगा धर शर्मा	81

ग़ज़ल

55.	भारत	गज़ल	श्री धर्मेन्द्र गुप्ता 'साहिल'	82
56.	भारत	लिखूँगा	रजनीश कुमार	83
57.	भारत	गज़ल	कविता विकास	84
58.	भारत	गज़ल	अभिनव अरुण	85
59.	अमेरिका	गज़ल	विनीता तिवारी	86

निबंध

60.	भारत	तकनीकी गिरफ़्त में संवेदनाएँ	डॉ. कमलेश गोगिया	87
61.	भारत	जंग-ए-आज़ादी के अज्ञात वीर 'ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव	सारिका ठाकुर	88
62.	भारत	दुनिया मेरे आगे : देशांतर अर्न्तदृष्टि	प्रो. कृष्ण कुमार रत्तू	91
63.	भारत	महिमा-मंडल	दीपक दीक्षित	93

संस्मरण

64.	भारत	डगर कॉफ़ी हॉउसी पनघट की	प्रेम जनमेजय	95
65.	भारत	छोड़ आए हम वो गलियाँ	अरविंद कुमार	98
66.	भारत	चाचा जी और चंदामामा	डॉ. अनिता सिंह	101
67.	भारत	घुँघराले बालों वाली लड़की	रोचिका अरुण शर्मा	103

यात्रावृत्तांत

68.	भारत	अनाम शिल्पकारों की सजीव कृति – खजुराहो	डॉ. सुधा शर्मा	106
69.	भारत	लुम्बिनी यात्रा	स्नेह लता	109
70.	भारत	विश्व हिंदी यज्ञ में मेरी पहली आहूति	सुरेश कुमार श्रीचंदानी	114
71.	भारत	नहीं भूलती दक्षिण-द्वार चेन्नै की स्मृतियाँ	मंजुला वाधवा	119
72.	लंदन	एक गायब हुआ द्वीप- सेंटोरिनी	शिखा वार्ष्णेय	123

व्यंग्य

73.	भारत	तारीफ़-पे-तारीफ़	श्री अशोक व्यास	130
74.	भारत	गिद्धों का गुस्सा	डॉ. रवि शर्मा मधुप	131
75.	भारत	कथा बुड्ढी भटियारिन व काग-मंजरी की	श्री यशवंत कोठारी	133
76.	भारत	काके लागूं पाय	शर्मिला चौहान	135
77.	न्यूज़ीलैंड	प्रधान जी	श्री रोहित कुमार 'हैप्पी'	137
78.	कनाडा	अस्सी किलो कविता के आलोचना सिद्धांत	श्री धर्मपाल महेंद्र जैन	139

साक्षात्कार

79.	भारत	श्री अनूप भार्गव से साक्षात्कार	अरुणिमा	141
80.	मॉरीशस	कवयित्री श्रीमती कमला वेदी के साथ साक्षात्कार	डॉ. सोमदत्त काशीनाथ	144
81.	अमेरिका	प्रो. दलपत सिंह राजपुरोहित से अशोक ओझा की बातचीत	श्री अशोक ओझा	148
82.	क़तर	बाल-साहित्यकार और हिंदी कवि श्री दिविक रमेश शर्मा जी का साक्षात्कार	शालिनी वर्मा	153

समीक्षा

83.	भारत	'रखवाला' और 'तिमार श्ज़ोफ़ी का वैधव्य'कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. अनिता शुक्ला	162
84.	भारत	तीन पुस्तके : तीन देश : तीन लेखिकाएँ	डॉ. विजया सती	166
85.	भारत	अन सोशल नेटवर्क	डॉ. विनय कुमार शर्मा	173
86.	भारत	भारतीय लोक संगीत एवं मीरा का काव्य	डॉ. अनुराग शर्मा	176

लेख

87.	भारत	हिंदी भारत की राजभाषा से विश्वभाषा	डॉ. कुसुम कुमारी	182
88.	भारत	हिंदी और भारतीयता	डॉ. साकेत सहाय	186
89.	भारत	एंड्रॉयड फ़ोन पर हिंदी के लोकप्रिय ऐप्स	डॉ. राकेश शर्मा	191
90.	भारत	हिंदी का आधुनिकीकरण : सही या गलत	श्री दीपक कुमार निगम	195

अंगद

विवेक श्रीवास्तव
राजस्थान, भारत

"हाँ, मैं सुबह पहुँच जाऊँगा। बच्चों के कार्यक्रम में भाग लेकर मुझे बहुत खुशी होगी।"

'बाल श्रम निषेध' पर परिचर्चा करने के लिए आकाशवाणी का निमंत्रण स्वीकार करते हुए मैंने मोबाइल रखा और मानस का लंका कांड फिर पढ़ने लगा। अंगद ने तो कमाल कर दिया। शूरवीर, रावण से जा भिड़ा! कल शाम रामचरितमानस के लंका कांड पर मेरा व्याख्यान भी मानस क्लब में होना था और सुबह ही 'बाल श्रम निषेध' पर परिचर्चा में भाग लेना था, दोनों के लिए कुछ नोट्स बना लिए थे।

स्थानांतरित होकर उदयपुर शहर में आने से पहले ही मेरे साहित्यकार होने के बारे में विद्वजनों को पता चल गया। निमंत्रण आने लगे। अभी परिवार नहीं लाया था, क्योंकि बच्चे जयपुर के सेंट ज़ेवियर्स स्कूल में पढ़ रहे थे, जहाँ बच्चों को पढ़ाना हर शहरी का सपना होता है। सरकारी आवास आबंटित होने में कुछ समय लग रहा था, इसलिए होटल में ही रुका हुआ था।

मैं फिर अंगद के चरित्र पर नोट्स बनाने लगा। रिसैप्शनिस्ट का फ़ोन कई बार डिनर के लिए आ चुका था।

ओह ! रात के ग्यारह बज रहे हैं।

"नहीं, रूम में मत भिजवाएँ, मैं रेस्टोरेन्ट में ही खाऊँगा, अभी आता हूँ।" कहकर मैंने फ़ोन रख नोट्स जेब में ही रख लिए, क्या पता खाना खाते समय ही कोई बिंदु दिमाग में आ जाये, बहुत-सी रचनाएँ खाना खाते ही हुई हैं। जाकर रेस्टोरेंट में बैठा। एक छोटा-सा 8-9 साल का प्यारा-सा बच्चा फिर दिखाई दिया, जो सुबह मोबाइल पर खेल रहा था, शायद किसी टूरिस्ट का होगा। इतनी रात तक अकेला जाग रहा है !

"क्या नाम है बेटा आपका ?"

"अंगद"

"बहुत अच्छा नाम है। अंगद तो बहुत बहादुर लोगों का नाम होता है"

"कितने साल के हो?"

"नौ"

"कौन-सी कक्षा में पढ़ते हो?"

वह चुप रहा, शायद शरमा रहा होगा।

"कहाँ से आये हो"....

तभी रिसैप्शनिस्ट की आवाज़ आई

"अंगद,
साहब के लिए
पहले स्टार्टर लगा दो।"

नाम सुनकर मैं चौका

अंगद??

रिसैप्शनिस्ट ने कुछ भाँपते हुए कहा -

"गरीब घर से है सर, खाने के लाले हैं, टूरिस्ट सीज़न है, कुछ कमा लेगा। इस सीज़न में लेबर मिलते भी नहीं हैं।"

मेरा उत्साह फीका पड़ गया। मैं ने आकाशवाणी और ऑफ़िसर्स क्लब फ़ोन किया "मैं कल नहीं आऊँगा" और नोट्स फाड़कर चिंदियाँ जेब में डाल लीं।

shrivastava1966@gmail.com

भाषा-गर्व

डॉ. सुनीता श्रीवास्तव
इंदौर, भारत

आज लंदन के बहुत बड़े स्कूल के वार्षिक उत्सव में राशि को बेस्ट टीचर्स का एवार्ड लेते समय, कुछ समय पहले की बात याद आ गई.... जब राज का लंदन की बहुत बड़ी कम्पनी में चयन होने की खबर से घर में सब खुशी से झूम रहे थे। राज की छोटी बहन नन्ही बोली – पर भैया आप भाभी को भी वहीं ले जा रहे हैं। उनको इंग्लिश तो ज़रा भी नहीं आती है। वहाँ सब मज़ाक बनाएँगे और भाभी को शर्मिंदगी भी महसूस होगी...

राशि उनकी बात सुनकर यहीं अपने देश (भारत) में "शर्मिंदगी" महसूस करने लगी, किन्तु राज ने फट से कहा - "नन्ही तेरी भाभी को इंग्लिश तो नहीं आती, पर हिंदी तो आती है और उसे भी कौन पढ़ाने जाना है। घर में ही मेरे और बिट् के साथ रहना और सँभालना है। निपुण गृहिणी जो है, हिंदी तो आती है?"

यह सब सुनकर घर के सभी सदस्य मुस्कुराकर बात करने लगे।

राज को लंदन आए एक सप्ताह हुआ था। उसने राशि से कहा – "राशि बिट् का एडमिशन फ़ॉर्म लेकर जाओ और फ़ीस जमा कर देना..."

राशि घबराकर बोली – "स्कूल नहीं, बाबा नहीं.... मुझे तो इंग्लिश नहीं आती और फिर वहाँ कोई कुछ पूछेंगे तो क्या जवाब दूँगी.... बिट् की भी इंसल्ट होगी.... न.....मुझे नहीं जाना" ....

राज बोला – "बकबक मत करो, तुमको कोई परेशानी नहीं होगी। फ़ॉर्म में सब जानकारी उपलब्ध है।"

राशि बिट् के साथ फ़ॉर्म लेकर स्कूल पहुँचती है। जब वह काउंटर के सामने खड़ी थी, तब उसने देखा एक बच्ची को सीढ़ी चढ़ने में दिक्कत हो रही थी। राशि तुरंत उस बच्ची को गोद में उठाकर ऊपर ले आई। उस नन्ही बच्ची ने जब उसे धन्यवाद किया, तब राशि ने बरबस उसे चूम लिया। स्कूल इनचार्ज़ यह सब देख रहा था। जब फ़ीस और फ़ॉर्म जमा कर वह जाने लगी, तब इनचार्ज़ ने उससे बात करने की कोशिश की। राशि घबराकर बोली – "a am not talking इंग्लिश...." इनचार्ज़ मुस्करा उठा और उसे ऑफ़िस में ले जाकर प्रिंसिपल से मिलवाया। इनचार्ज़ और प्रिंसिपल ने आपस में बात की, फिर राशि से बोले "मैम आपको इंग्लिश नहीं आती है, तो क्या हिंदी तो आती है और सबसे बढ़कर बच्चों की मनोभावना को समझना। आप आज से हमारे यहाँ हिंदी टीचर का काम करेंगी.... क्या आप तैयार हैं?"

राशि हैरानी से देखने लगी। उसने कभी सपने में नहीं सोचा था कि उसे विदेशी स्कूल में पढ़ाने का अवसर मिलेगा और बेस्ट टीचर का एवार्ड मिलेगा। एवार्ड लेते समय उसे अपने देश और घर-परिवार की बात याद आ गई। अब वही ननद, सास, ससुर तथा घर के सभी सदस्य कहते हैं - "हमारी राशि तो विदेश में पढ़ाती है।" आज एवार्ड लेते हुए उसे इंग्लिश नहीं बोलने की शर्मिंदगी की जगह अपनी हिंदी भाषा पर गर्व महसूस हो रहा था।

sunita.shrivastava0309@gmail.com

अब नहीं जाऊँगी माँ

प्रदीप कुमार शर्मा
झारखंड, भारत

शालिनी ने माँ-बाप की मर्ज़ी के बिना अपनी पसंद के लड़के से शादी कर ली और घर से भागकर वह इतनी दूर चली आई थी, जहाँ उन्हें कोई पहचान न सके। अपनी गृहस्थी को ठोस रूप देने के लिए शालिनी ने नौकरी कर ली। एक दिन जब वह शाम के समय काम से वापस घर लौटी, तब घर में एक अनजान लड़की को देखकर हैरत में पड़ गई। उससे भी ज्यादा हैरत तब हुई, जब उस लड़की ने उसके पति से पूछा- "ये कौन है?"

उसके पति ने तपाक से जवाब दिया- "होगी कोई अगल-बगल में काम करने वाली, गलती से इधर आ गई होगी।"

शालिनी सन्न रह गई, जिसके लिए सब कुछ त्यागा, जिसपर भगवान से भी ज्यादा बढ़कर भरोसा किया, उसी के मुँह से एक बेहया औरत के लिए ऐसी बात सुनकर उसका कलेजा मुँह को आ गया। वह इतना बड़ा धोखा देगा, उसने सपने में भी नहीं सोचा था। अब कुछ बोलने-सुनने को रह नहीं गया था। वह घायल शेरनी की तरह आगे बढ़ी, उस फ़रेबी का कॉलर पकड़ लिया और उसके गाल पर एक भरपूर चाटा जमाया और मारे घृणा के उसके मुँह पर थूक दिया, फिर उलटी दिशा में भागने लगी।

वह सुनसान सड़क पर भागे जा रही थी। अपनी किस्मत पर रो रही थी। एक जगह गिरते-गिरते बची। तभी पीछे से आवाज़ आई "नी संभल के कुड़िये... थल्ले गिर न जावीं।" कुछ लड़के भद्दे कमेंट्स कर रहे थे। उसने महसूस किया कि वे उसका पीछा भी कर रहे हैं। वह डर गई। पीछा छुड़ाने के लिए और तेज़ी से भागने लगी।

वे करीब आते जा रहे थे। लाचार होकर बचने के लिए सामने एक खपरैल के पुराने-से घर में घुस गई और खुद को उनसे छुपाने का प्रयास करने लगी। कुछ देर इंतज़ार करने के बाद उसे लगा वे चले गए, तो धीरे से निकलकर जाने लगी।

उसी समय अंदर से एक धीमी-सी आवाज़ आई "आओ बेटी, आज इतने साल बाद तुम्हें मेरी याद आई। तुम्हारे भाइयों को तो मेरी नहीं, मेरे पैसों की ज़रूरत थी। उन्हें पैसा मिल गया। वे अपने हिस्से की विरासत लेकर चले गये। धन दौलत सब कुछ। अब तो वे मुझे देखने तक नहीं आते कि मर रही हूँ या जी रही हूँ। जब तक शरीर चला, अपने आपको जीती रही। अब तो गठिया रोग ने ऐसा जकड़ लिया है कि खटिया से उठा तक नहीं जाता।"

शालिनी ठिठक गई और आवाज़ की दिशा में पीछे घूमकर उन्होंने देखा सामने खटिया पर पड़ी एक बुढ़िया की आवाज़ थी। शालिनी खामोश निगाहों से एकटक उस बुढ़िया को देखती रही। अचानक उसे उस बूढ़ी औरत में अपनी माँ का चेहरा दिखने लगा। आँखों से टपटप आँसू टपकने लगे। वह धीरे-से उसके पास गई। सामने रखे खाली ग्लास में पानी भरकर लाई, शायद वह बहुत देर से प्यासी थी, पूरा ग्लास खाली कर दिया। शालिनी ने एक ग्लास और पानी लाकर उसे दिया। कहने लगी "मैं आपकी बेटी नहीं हूँ, माँ जी। कुछ बदमाश मेरे पीछे पड़ गए थे, उनसे बचने के लिए मैं यहाँ छुप गई थी।"

"मैं जानती हूँ, तुम झूठ बोल रही हो। तुमने अपनी मर्ज़ी के लड़के से शादी की थी ना। घर में सभी तुम्हारे खिलाफ़ थे। उन्होंने तो तुम्हारा क्रिया-कर्म भी कर दिया था। मैं एक माँ हूँ न, तुम्हें कैसे भूल सकती हूँ।" बुढ़िया ने शालिनी का हाथ पकड़ लिया। उसकी आँखों से झर-झर आँसुओं की बरसात हो रही थी, जिसमें शालिनी पूरी तरह से भीग रही थी।

उसने भी तो वही काम किया था, जो इस बुढ़िया की बेटी ने किया। उसके भी भाइयों ने उसका क्रिया-कर्म कर दिया होगा। उसकी आँखें भर आई थीं। बुढ़िया पानी पी चुकी, तो शालिनी ने उसे फिर से लिटा दिया और जाने के लिए मुड़ी।

बुढ़िया की कराहती हुई आवाज़ आई "सभी तो मुझे छोड़कर चले गए बेटी, अब तुम आ गई हो, मुझे छोड़कर

कहीं मत जाना। बोलो बेटी नहीं जाओगी न? उसने शालिनी का हाथ ऐसे पकड़ लिया, जैसे वह हाथ छुड़ाकर चली न जाए।

शालिनी को इतने बड़े शहर में एक सहारे की ज़रूरत थी। उसने कसकर बुढ़िया को अपने अंकवारी से लगा लिया- "नहीं माँ, मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी।"

pradipsharmajsr@gmail.com

भेद-भाव

मोनिका राज
बिहार, भारत

छोटी बहू की पहली जच्चगी थी। घर के सभी लोग बेसब्री से नन्हे मेहमान का इंतज़ार कर रहे थे। सबसे ज्यादा बैचेन उषा जी दिख रही थी। इधर-उधर चहलकदमी करते हुए भी जब मन शांत न हुआ, तब वह अस्पताल के बाहर बने पूजास्थल की तरफ़ बढ़ चली। ईश्वर के सामने उसके हाथ स्वतः ही जुड़ गए। "इस बार पोते का मुँह ही दिखाना ईश्वर", उन्होंने बुदबुदाते हुए कहा।

तभी देवरानी भागते हुए आयी। "जीजी, कहाँ थी तुम? सब तुम्हें ढूँढ़ रहे हैं। बहुरानी भी तुम्हारी राह देख रही है। चलो, जल्दी करो", उन्होंने लगभग उन्हें खींचते हुए कहा। उषा जी ने हाथ छुड़ाया। "वह तो ठीक है, पर पहले यह तो बताओ, पोता ही हुआ है न?"

देवरानी के हाथ की पकड़ थोड़ी ढीली पड़ गई। "एक बार चलकर बच्चे को देख तो लो। बिल्कुल तुम पर गई है तुम्हारी पोती।"

"फिर से लड़की ही हुई है। अब तो इस जन्म में हमें मोक्ष मिल ही नहीं पायेगा।" यह सुन उषा जी का मन कसैला हो उठा। उसने रिक्शा बुलाया और वह घर की तरफ़ चल दी। आज के दौर में भी बेटे-बेटियों के बीच फ़र्क करते हुए मोक्ष की चाह से लोग निकल ही नहीं पा रहे, जबकि बेटियाँ सभी क्षेत्रों में अपना परचम लहरा रही हैं। जाने कब यह भेद-भाव खत्म होगा।

monikaraj270@gmail.com

धीमी गति का विकास

विरेंदर 'वीर' मेहता
दिल्ली, भारत

अक्सर मुझे ऐसा लगता था, जैसे उसके सिर पर कोई जुनून सवार हो। हाथ में लिए हर प्रोजेक्ट के प्रत्येक बिंदु पर उसकी नज़र रहती थी। प्रोजेक्ट से जुड़े लोगों को जैसी भी ज़रूरत पड़ती; वह तत्काल उसका समाधान करता। लेकिन आश्चर्य यह था कि लोग उससे जुड़ना चाहते थे, पर वह प्रोजेक्ट पूरा होते ही एक अजनबी की तरह किसी नए क्षेत्र की ओर चल पड़ता था। बहरहाल इस बार 'नोडल एजेंसी' के तहत मैं उसे एक खास क्षेत्र में भेजने के इरादे से जब उसके पास गया, तब वह दीवार पर लगे मानचित्र में अपने नए लक्ष्य की तलाश कर रहा था।

"क्यों भाई, इस बार कहाँ का इरादा है? मैंने मुस्कुराकर कहा।

"वही देख रहा हूँ सर।" प्रत्युत्तर में वह भी मुस्कुरा दिया।

"यदि तुम चाहो तो एक जगह के लिए बात चलाऊँ।"

"कहाँ सर?"

"अपने सी. एम. साहब की ससुराल में, मनचाहा फंड 'ग्रांट' करने की हामी भर रहे हैं। मनचाहा यानी बड़ा फंड, यानी बड़े लाभ की उम्मीद...।" कहते हुए मेरे होठों पर एक

अर्थपूर्ण मुस्कान आ गई।

"सर, उस क्षेत्र में ये 'विकास का खेल' कितनी बार खेला जाएगा?" कुछ क्षण की चुप्पी के बाद उसके दिए उत्तर में एक तीक्ष्णता थी।

"इसीलिए तो यह प्रोजेक्ट तुम्हें देना चाहता हूँ। ऐसे प्रोजेक्ट्स करने का तुम्हारा यह जुनून...!"

"जुनून! नो सर, यह जुनून नहीं, यह तो संकल्प है मेरा।" वह मेरी बात काट चुका था। "सर, मुझे लगता है एक ही क्षेत्र को दोबारा सँवारने से बेहतर, उस क्षेत्र का विकास करना ज़रूरी है, जहाँ के लोगों ने कभी बिजली, पानी, शिक्षण संस्थानों जैसी चीज़ों को जन्म से देखा ही नहीं...!"

"हाँ, हो सकता है। लेकिन उनके इस विकास में हमारा विकास होगा क्या?" मेरे चेहरे पर मेरी मंशा स्पष्ट झलक आई थी।

"हमारा विकास!" उसके चेहरे पर एक तीक्ष्ण रेखा उभर आई। "सर, नंगे पैर पिता और भूखी पेट माँ के संघर्ष ने मुझे जिस मुकाम पर पहुँचाया है, वही मेरा विकास है और वही मेरा संकल्प। और हाँ, क्षमा चाहूँगा सर, यदि आप जैसे कुछ विकासशील लोग नहीं होते, तो शायद मेरे जैसे गाँव के लोग दो पीढ़ी पहले विकसित हो चुके होते।" कहते हुए वह मानचित्र की ओर पलट गया; शायद यह निश्चय करने के लिए कि अब उसका अगला पड़ाव कौन-सा होगा?"

v.mehta67@gmail.com

हकीकत

भगवान वैद्य 'प्रखर'
अमरावती, भारत

मनसा आज भी कपड़ा-बर्तन करने सुगंधा मैम के घर नहीं गई, तो सुगंधा मैम ड्यूटी से लौटते समय खुद पहुँच गयीं, मनसा के घर। झोपड़ी में एक बल्ब टिमटिमा रहा था। सुगंधा मैम ज़रा तैश में थीं। उसने एक्टिवा एक ओर खड़ी की और वह सीधे झोपड़ी के द्वार पर पहुँच गयीं। चार बच्चियाँ और एक अधेड़ औरत ने सुगंधा मैम के भीतर प्रवेश के लिए रास्ता बना दिया। लोहे के पलंग पर लेटी मनसा कराहते हुए उठकर बैठ गयी। पास में प्लास्टिक की एक कुर्सी थी। लेकिन उस पर दुनिया भर का सामान पड़ा हुआ था। मनसा ने कुछ भाँप लिया और पलंग पर एक ओर खिसक गयी। सुगंधा मैम पलंग पर बैठ गयीं।

"क्या हुआ ! तीन दिन हो गये...तुम्हारा पता ही नहीं? रोज़ बर्तन रखे-रखे सूख जाते हैं।"

"चक्कर आ रहे थे। उस रोज़ दो बार गिर पड़ी, आँगन में। खून की कमी बतायी है। उल्टियाँ ...!"

"उल्टियाँ...! मतलब...तुम फिर!"

"हाँ मैम ...तीसरा महीना चढ़ गया ...।" नज़र नीची करके, डरते-डरते मनसा ने बतला दिया।

बस, यह सुनना था कि सुगंधा मैम बरस पड़ीं। "तुम्हें शर्म नहीं आती...चार-चार पहले से हैं...फिर पाँचवीं बार ...! पिछली बार ही मरते-मरते बची हो! डॉक्टर ने तुम्हें सरकारी दवाखाने से भगा दिया था। मैंने झूठ बोलकर तुम्हें एडमिट करवाया। भूल गयी...! तुमसे कहा था न कि अबकी ऑपरेशन करवा ही लो...क्यों नहीं कराया, बोलो...कब सुधरोगे तुम लोग?" बोलते-बोलते सुगंधा मैम ने मनसा की बाँह पकड़कर उसे एक झटका-सा दे दिया।

सुगंधा मैम के घर मनसा पिछले सात साल से काम कर रही है। सुगंधा मैम उसकी हर मुसीबत में काम आती हैं। इसी कारण अपना अधिकार समझकर वह मनसा को फटकार लगा रही थीं।

उन्हें क्रोधित हुआ देख, अधेड़ औरत ने चारों बच्चियों को साथ लेकर आँगन का रास्ता पकड़ लिया।

मनसा की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गयी।

सुगंधा मैम फिर शुरू हो गयीं। "ये रोने-धोने का नाटक

बंद करो। मुझे यह बताओ, इतना समझाने के बावजूद तुमने ऑपरेशन क्यों नहीं करवाया? कब समझोगी तुम ...?" सुगंधा मैम ने मनसा को अबकी झिंझोड़ दिया। उन्हें सचमुच बहुत क्रोध आ गया था।

मनसा ने घबराकर लंबी सिसकी ली। आँचल से आँसू पोंछे और सुगंधा मैम की ओर निरीह दृष्टि से देखते हुए बोली, "मैम, क्या अकेले औरत के चाहने से हो जाते हैं सारे फ़ैसले ?... ये देखिए...।" सुगंधा मैम कुछ समझ पातीं, इसके पूर्व मनसा ने अपनी पूरी पीठ अनावृत्त कर दी।

"देख लीजिए, मना करने का परिणाम। कमर, जाँघें, टाँगें... सब काली पड़ चुकी हैं, मार खा-खाकर। दिखाऊँ ...!" मनसा ने ऊपर उठाने के लिए साड़ी थाम ली।

मद्धिम रोशनी में भी मनसा के बदन पर लिखी प्रताड़ना की कहानी देखकर सुगंधा मैम की आँखें फटी-की-फटी रह गयीं।

"मना किया, तो जो चीज़ हाथ लगी, उसी से पीटने लगते हैं। जलती लकड़ी से दाग देते हैं।... बोलिए क्या करूँ? बेटा चाहिए उनको...बेटा। कहते हैं, 'बेटा' नहीं दिया, तो बाहर निकाल दूँगा। दूसरी ले आऊँगा...। बोलिए...क्या करूँ?"

सुगंधा मैम ने अपनी पर्स सँभाली और चुपचाप झोपड़ी से बाहर हो गयीं।

vaidyabhagwan23@gmail.com

प्रतिकार

सीताराम गुप्ता
दिल्ली, भारत

सेवानिवृत्ति के उपरांत, एक दिन विनय प्रकाश जी के मन में आया कि अब बुढ़ापा प्रारंभ हो गया है। मन में यह विचार आते ही वे दुखी हो गए, लेकिन कुछ दिनों के बाद ही उन्होंने अनुभव किया कि वे बूढ़े नहीं, अपितु जवान होते जा रहे हैं। पहले से अधिक चुस्ती-स्फूर्ति व ताज़गी उन्हें महसूस होने लगी थी। परिस्थितियाँ अनुकूल हों, तो सब कुछ संभव है और परिस्थितियाँ अत्यंत अनुकूल थीं। घर में किसी चीज़ की कमी नहीं। दौलत के अंबार नहीं लगे थे, लेकिन एक अच्छे परिवार रूपी दौलत उनके पास थी, इसमें संदेह नहीं। ऊपर से चार पीढ़ियाँ घर में एक साथ होने का सुखद संयोग। आज्ञाकारी व गुणवान पुत्र व उससे भी अधिक आज्ञाकारिणी पुत्रवधू और एक नन्हा-सा प्यारा पौत्र। जितना प्यार उन्हें अपने पौत्र और पुत्रवधू से हो गया था, जीवन में कभी किसी अन्य से नहीं हुआ था। दिन-प्रतिदिन बढ़ता हुआ यह प्यार क्या कुछ करने में सक्षम नहीं था? विनय प्रकाश जी की एक ही इच्छा थी कि वे आजीवन पढ़ते-लिखते रहें। उनकी इस इच्छा को पूरा करने में पूरे परिवार का भरपूर सहयोग उन्हें मिल रहा था। उनका पौत्र इसमें सबसे अधिक सहायक था। दो साल की उम्र से ही पढ़ने-लिखने का इतना शौक कि कितना ही पढ़ा लो वह उसकी सीखने की क्षमता व जिज्ञासा के आगे कम पड़ जाता। विनय प्रकाश जी को भी बिल्कुल ऐसे ही बच्चे की आवश्यकता थी। विनय प्रकाश जी अपने पौत्र को देखकर फूले नहीं समाते थे और उन्होंने एक दिन घोषणा कर दी, "मैं कभी बूढ़ा नहीं होऊँगा। यदि मैं बूढ़ा होना चाहूँ, तो भी मेरा परिवार, मेरी पुत्रवधू और मेरा पौत्र, मुझे बूढ़ा नहीं होने देंगे।"

विनय प्रकाश जी की सेवानिवृत्ति के बाद पाँच साल तक यह सिलसिला जारी रहा। अर्थात् वे निरंतर और अधिक स्वस्थ होते चले गए। तभी कोविड ने अपना तांडव प्रारंभ कर दिया। उनके पुत्र और पुत्रवधू दोनों डॉक्टर थे। वे दोनों निरंतर एक साल तक कोविड के मरीज़ों का उपचार करते रहे। कोविड का डर ज़रूर था, लेकिन विनय प्रकाश जी को इस बात से बेहद खुशी मिलती थी कि विषम परिस्थितियों में उनके बच्चे देश और मानवता की सेवा में लगे हुए हैं। वे

स्वयं को भाग्यशाली मानते थे और ऐसे में बुढ़ापा उन्हें कैसे छू सकता था? बुढ़ापा आता भी तो उनके पास तब आता, जब वे खाली मिलते। या तो वे अपनी किताबों के साथ होते या फिर अपने परिवार व पौत्र के साथ। वे न कभी खाली मिले और न बुढ़ापा उनसे साक्षात्कार की हिम्मत जुटा पाया। कुछ दिन साँस लेने के बाद कोविड के नए वेरिअंट डेल्टा ने पुनः कहर बरपाना शुरू कर दिया। उनके दोनों बच्चे फिर जी-जान से कोविड के रोगियों के उपचार में जुट गए। इस बार कोविड ने विनय प्रकाश जी के पुत्र को भी अपनी चपेट में ले लिया। चार महीनों तक निरंतर संघर्ष करने के बाद उनका युवा पुत्र उन्हें हमेशा के लिए छोड़कर चला गया। पुत्र के वियोग व पुत्रवधू के दुख को देखकर विनय प्रकाश जी पूरी तरह से टूट गए। पुत्रवधू की पीड़ा उनसे देखी नहीं जाती थी। यदि वे अपना जीवन देकर भी उसके दुख को कुछ कम कर सकते, तो उन्हें प्रसन्नता होती। काश! यह असंभव न होता।

जब वे अपने पौत्र से कहते कि बेटा अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ, तब पौत्र कहता कि दद् आप बूढ़े कहाँ हो? आप तो बिल्कुल भी बूढ़े नहीं हो। जब वे अपने पौत्र की ओर देखते व उससे बातें करते, तब उनमें एक नई ऊर्जा का संचार होने लगता। विनय प्रकाश जी अपने पुत्र को भुलाकर अपना सारा ध्यान अपने पौत्र की ओर केंद्रित करने के प्रयास में लग गए और हर समय उसके साथ व्यस्त रहने लगे। उन्होंने अत्यंत दृढ़तापूर्वक अपने मन में कहा, "नहीं मैं बूढ़ा नहीं होऊँगा।" तभी कुछ दिनों के बाद एक दिन पुत्रवधू अपने बच्चे को लेकर मायके गई। बार-बार बुलाने के बावजूद वह घर आने का नाम नहीं ले रही थी। कुछ दिनों के बाद एक दिन उसने वापस आने से साफ़ मना कर दिया। विनय प्रकाश जी अवाक् रह गए, लेकिन वे निरंतर प्रयास करते रहे कि उनके बच्चे लौट आएँ। उनके बिना वे जीने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। एक दिन जब विनय प्रकाश जी उनसे मिलने गए, तब उनके परिवार वालों ने घर में अंदर आने और बच्चे से मिलवाने तक से इंकार कर दिया। विनय प्रकाश जी टूटे कदमों से खाली हाथ वापस घर लौट आए। वैसे घर बचा ही कहाँ था? आठ लोगों के भरे-पूरे परिवार में मात्र तीन लोग बचे थे। फिर भी उन्होंने कहा, "मुझे बूढ़ा नहीं होना है। मैं हार नहीं मानूँगा। मैं अपने बच्चों को हर हाल में वापस लेकर आऊँगा।" अगले दिन उनके पास एक फ़ोन आया। फ़ोन पुलिस स्टेशन से था। कहा गया कि आपकी बहू ने आपके विरुद्ध शिकायत दर्ज करवाई है, अतः फ़ौरन आकर मिलें। विनय प्रकाश जी उसी समय उठकर पुलिस स्टेशन चले गए। जब वे पुलिस स्टेशन से लौटे, तब एकदम बूढ़े हो चुके थे।

srgupta54@yahoo.co.in

विरासत

हेमा चंदानी

राजस्थान, भारत

सुहानी एक मध्यम वर्गीय परिवार में जन्मी बहुत ही साधारण नैन-नक्श वाली लड़की थी, जैसे कि एक सीधी-सादी आम लड़की होती है। घर से कॉलिज और कॉलिज से घर, फिर घर के काम में माँ का हाथ बँटाना... सुहानी अभी फ़र्स्ट ईयर में ही थी। अभी कॉलिज पूरा होने में 2 साल बाकी थे और माँ अभी से उसकी शादी को लेकर चिंतित होने लगी थी, उसके लिए दूल्हा ढूँढने में लगी थी। कई जगह बात भी चलायी थी, पर सुहानी साधारण नैन-नक्श वाली थी, तो बहुत अच्छे लड़के नहीं मिल पा रहे थे। माँ हमेशा भगवान को कोसती कि सुहानी को थोड़ा सुन्दर बनाता, तो उसका क्या बिगड़ जाता? सुहानी नौकरी के सपने देखती, तो माँ टोक देती कि करनी तो शादी ही है न! तो बी.ए. काफ़ी है.... सुहानी की ज़िन्दगी की कहानी भी दूसरी साधारण लड़कियों की ज़िन्दगी जैसी ही थी। उसमें कुछ भी तो नया नहीं था... पर सुहानी की कहानी में मोड़ उस वक्त आया, जब सुहानी के पिता की अचानक एक सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो गयी... तब जिस तरह से सुहानी ने घर को और उसकी अर्थव्यवस्था को नौकरी करके सँभाला, वह काबिले तारीफ़ था... फिर एक

दिन अचानक माँ ने बहुत ही पछतावे के साथ रोते हुए सुहानी से कहा कि "मैंने तुम्हें कभी ठीक से पढ़ने नहीं दिया... हमेशा तुम्हें झिड़कती रही। दिन-रात यह अहसास दिलाती रही कि तुम लड़की हो... जिसका धर्म शादी करके ससुराल जाना है। लड़की पराया धन है, लेकिन आज तुमने जिस तरह से घर को सँभाला, उसने मेरी सोच ही बदल दी..." माँ माफ़ी माँगने लगी, सुहानी से... सुहानी ने कहा, "माँ इसमें आपकी कोई गलती नहीं..आपको जो अपनी माँ से विरासत में मिला, वही तो आपने मुझे दिया...।" सुहानी के इस जवाब ने माँ को सोचने पर मजबूर कर दिया और माँ ने उसी वक्त सुहानी से यह वादा किया कि "सुहानी तुम्हें अपनी बेटी को विरासत में यह सब नहीं देना पड़ेगा, क्योंकि अभी से मैं अपनी उस विरासत का परित्याग करती हूँ, जो किसी स्त्री के व्यक्तित्व और उसके वजूद को कैदी की तरह जकड़कर रखना चाहती हो। अब मैं तुम्हें एक नई विरासत दूँगी, जोकि तुम्हारे वजूद को नए पंख और नई उड़ान देगी। मैं कभी तुम्हारे पंखों को थकने या टूटने नहीं दूँगी। हमेशा हवा की तरह तुम्हारी हर उड़ान का साथ दूँगी।" अपनी माँ की यह बात सुनकर सुहानी का दिल नए हौसलों से भर उठा, आँखों में खुशियों के तारे झिलमिलाने लगे। माँ से यह विरासत पाकर सुहानी आज खुद को दुनिया की सबसे अमीर लड़की महसूस कर रही थी ...

hemachandan@gmail.com

क्रमिक विकास

यशोधरा भटनागर
ग्वालियर, भारत

"आज बंदरों की मीटिंग है।"

ट्वीटी ट्वीट कर उड़ गई।

बरगद की शाखाओं पर बैठे सभी बंदर अपनी-अपनी बात रख रहे थे।

"सरदार मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ।" युवा बंदर ने हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए सरदार से कहा।

"अवश्य! अवश्य पूछो!" सरदार ने रौबदार आवाज़ में कहा।

"सुना है हम आदमी के पूर्वज हैं।"

"हाँ! बिल्कुल ठीक सुना है।"

"सरदार, आदमी हमारा ही विकसित रूप है?"

"हाँ बिल्कुल! इसमें कोई संशय ही नहीं।"

"तो फिर हम बंदर-के-बंदर ही क्यों रह गए?"

दूसरे युवा बंदर ने कुछ गुस्से में कहा। और उसके पीछे कई युवा बंदरों के स्वर गूँज उठे।

"हाँ, हम बंदर क्यों रह गए?"

"हा!हा! हा! हा!" सरदार ज़ोर से हँसा। सभी युवा बंदर एक-दूसरे का मुँह देखने लगे।

"आदमी को देखा है ?"

"हाँ देखा है।"

सभी ने एक स्वर में कहा।

"उसमें तुम्हें कोई फ़र्क दिखाई दिया?"

"आदमी बहुत सुंदर दिखता है। बढ़िया कपड़े पहनता है। मोटर गाड़ी में चलता है, पानी में तैरता है, आसमान में उड़ता है! वह कहाँ-कहाँ नहीं पहुँचा!"

तभी धमाके की ज़ोरदार आवाज़ से पूरा जंगल गूँज उठा।

सरदार ने पेड़ की फुनगी पर पहुँच अपने अनुभवी सतर्क निगाहों से माहौल का जायज़ा लिया। अन्य सारे बंदर भी भय और उत्सुकता के मारे सरदार के आस-पास जमा हो गए।

चारों ओर धुआँ-ही-धुआँ! लपलपाती आग...चीख-पुकार... बच्चों-औरतों का दारुण क्रंदन... कुछ देर पूर्व खिलखिलाता शहर ...ओह! तबाही का दुखद मंज़र!

सरदार की आँखें छलक आईं।

युवा बंदर का चेहरा दर्द से भर गया।

और बरगद पर सन्नाटा पसर गया।

yashu.deep1958@gmail.com

भूख के आगोश में

डॉ. कुंवर प्रेमिल
भारत

भूखी बेटी को स्तनपान कराती माँ स्वयं भूखी थी। बच्ची बुरी तरह रो रही थी और माँ के स्तन में दूध की अंतिम बूँदें खोज रही थी।

माँ अपनी बेटी के भूख से आकुल-व्याकुल चेहरे पर तृप्ति देखने के लिए अपने दूध की अंतिम बूँदें भी कुर्बान कर देना चाहती थी।

'गा--गूं-गा' बच्ची, माँ से दूध की कुछेक बूँदों की मनुहार कर रही थी। उसके चेहरे का वात्सल्य क्रमश: गायब होता जा रहा था।

"खज़ाना खाली है पुत्तर" कहकर न जाने कब की भूखी माँ बेहोश हो गई। भूख के आगोश में माँ-बेटी दोनों ही बेहोश पाई गईं।

बेटी के मुँह में अपनी जीवनदायिनी का स्तन लगा हुआ था और माँ की आँखों से विवशता के आँसू बाहर निकल पड़ने को आतुर दिखाई दे रहे थे।

kunwarpremil1947@gmail.com

संस्कार

मीरा जैन
उज्जैन, भारत

"हेलो, माँ! चरण स्पर्श।"

"खुश रहो बेटे"

लहजे में बेटा बोला-

"यह क्या माँ? आप तीन महीने के लिए मेरे पास रहने आई थीं और अभी तो एक महीना भी नहीं हुआ, मुझसे मिले बिना ही भैया के साथ वापस गाँव चली गईं। मुझसे बोल दिया होता, मैं ही छोड़ आता। भैया को गाँव से बुलाने की क्या ज़रूरत थी। आपका अचानक इस तरह जाना मुझे बहुत परेशान कर रहा है, मुझसे कोई गलती हो गई है क्या? चुप क्यों हो, बोलो न माँ"

तमतमायी आवाज़ में

"बोलने को अब बाकी रहा ही क्या है? मेरे द्वारा दिए गए संस्कारों की तो तूने मिट्टी पलीत कर दी।"

"यह क्या कह रही हैं आप?"

"तू खुद सोचकर देख आज सुबह-सुबह ही ज़रा-सी बात को लेकर तूने मानसी को इतना भला-बुरा कहा कि वह रुआँसी हो गई, पराए घर से आई बेटी को इस तरह झिड़कना, तुझे किसने सिखाया, यह अपने घर के संस्कार नहीं है, समझा।"

"मैं तो समझता हूँ, पर मानसी नहीं समझती। छोटी-सी बात को लेकर उसने आपको पलटकर ऊँचे स्वर में जवाब दिया, यह मेरी बर्दाश्त के बाहर था। बड़ों का अनादर करना भी हमारे घर के संस्कार नहीं हैं। वह अब इस घर की सदस्या है, उसका भी संस्कारित होना बहुत ज़रूरी है माँ!"

इतना सुन प्रवीणा गद्गद् हो गई, भरे गले से कहा -

"बेटा! मुझे तुझ पर गर्व है, मैं शीघ्र ही तेरे घर आऊँगी।"

jainmeera02@gmail.com

भाई का हिस्सा

डॉ. विजयानन्द
उत्तर प्रदेश, भारत

राजेश्वर के दो बेटे थे। उन्होंने अपनी गाढ़ी कमाई से शहर में अच्छा घर बनवाया था। बड़ा बेटा शिक्षक था और छोटा बेटा निजी कंपनी में काम करता था। सेवानिवृत्ति के दूसरे ही वर्ष हृदयगति रुक जाने से उनका देहावसान हो गया। उनकी पत्नी कई वर्ष पूर्व उनका साथ छोड़ गई थी, फिर भी जब तक वे जीवित रहे, तब तक अपने परिवार को सुव्यवस्थित बनाए रखा। पारिवारिक एकता पूरी तरह कायम रही।

उनके न रहने के कुछ ही वर्ष बाद, उनके बेटों में आपसी संबंध बिगड़ने लगा। दिन, सप्ताह, महीनों, वर्षों में तब्दील होते जा रहे थे। राजेश्वर के बड़े बेटे राहुल का लड़का तीसरी कक्षा में पढ़ता था। छोटे बेटे राकेश की एक वर्ष पूर्व ही शादी हुई थी। धीरे-धीरे उस संयुक्त परिवार में तनाव बढ़ता गया। आपसी लड़ाइयाँ होने लगीं, छोटे बेटे राकेश ने अपने बड़े भाई से हिस्से की माँग की। उसका खाना अलग बनने लगा। दोनों भाइयों में बातचीत कम होने लगी और अगर होती भी तो झगड़े का स्वरूप धारण कर लेती।

एक दिन राहुल और राकेश में खूब झगड़ा हुआ। दोनों की पत्नियों ने भी आपस में गाली-गलौज किया। राहुल का बेटा विद्यालय नहीं जा सका। राहुल और राकेश नौकरी पर चले गए। राहुल के बेटे ने अपनी माँ से पूछा – "अम्मा ! चाचा क्यों झगड़ा करते हैं?"

वह बोली – "वे अपना हिस्सा माँगते हैं। वे भी तुम्हारे बाबा के बेटे हैं, इसलिए उनका हिस्सा आधा हुआ। पैसा तो आधा-आधा बँट चुका है, किंतु मकान बिना तोड़े आधा नहीं हो सकता और तोड़कर बनाने में काफ़ी पैसा लगेगा।" बच्चे ने माँ से कहा – "अच्छा है माँ! मैं अकेला हूँ। मेरा छोटा भाई होता, तो वह भी मुझसे ऐसे ही झगड़ा कर हिस्सा माँगता।" बच्चे की माँ यह बात सुनकर अपने पेट पर हाथ फेरने लगी, क्योंकि उसका दूसरा बेटा भी कुछ माह में पैदा होने वाला था।

33vijayanand@gmail.com

प्यार का आलोक

श्रीमती देवश्री गोयल
छत्तीसगढ़, भारत

"माफ़ करो, आलोक मैं तुमसे विवाह नहीं कर सकती। मैं अपनी अमंगल भाग्य की छाया भी तुम पर पड़ने नहीं दे सकती।" यह सुनकर आलोक कुछ क्षणों के लिए अचंभित-सा रह गया।

"क्या कह रही हो तुम?" आलोक ने सुरभि से कहा।

"ठीक कह रही हूँ मैं। मैं अब विवाहित भी हूँ और.... परित्यक्ता भी...! तुमने पहले ही मुझे कहा होता कि तुम मुझसे प्यार करते हो, तो बात अलग होती। अब जब मेरा विवाह हो चुका है, मैं किसी और की बन चुकी हूँ, तब मैं यह कदम कैसे उठा सकती हूँ? तुम्हें शायद पता न हो कि मेरे ससुराल वालों को एक ऐसी वधू चाहिए थी, जो उनके बीमार बेटे से विवाह कर सके, ताकि उनकी दादी उन्हें विवाहित देखकर आँखें मूँद सकें। मेरे पिता को पैसे की ज़रूरत थी, तो उन्होंने तुरंत ही हाँ कर दी थी। असाध्य और संक्रामक रोग होने के कारण मेरा सिर्फ़ जयमाला विवाह ही हुआ...पर यह भी सच है, आलोक कि अब मैं किसी की सधवा हूँ। मैं तो अपने पति की सेवा घर पर रहकर ही करना चाहती थी, पर मेरी सास को यह बिल्कुल मंज़ूर नहीं था। उन्होंने सिर्फ़ जयमाला और सिंदूर दान की रस्म करके उल्टे पाँव ही मुझे लौटा दिया। शायद यही तय हुआ था, मेरी माँ और मेरी सास के बीच। मुझे क्षमा करो... मैं यह विवाह नहीं कर सकती।" कहते हुए सुरभि लगभग भागते हुए अपने घर चली गई।

चुपचाप खड़ा आलोक उसे जाता देखकर मन-ही-मन विचार कर रहा था ...ठीक ही कह रही है सुरभि...वह एक रस्म करके सधवा बनी हुई है और मैंने तो बचपन से उसे चाहा...और कभी कहा ही नहीं... पिता की गरिमा और खुद के शर्मीले स्वभाव के कारण कभी अपनी भावना व्यक्त नहीं कर पाया था। जिस दिन सुरभि विदा होकर चली गई, तब उसे बहुत पछतावा हुआ कि काश वह उसे कह पाता...वह कहता भी शायद, पर उसे कुछ समझ भी नहीं आया था कि सुरभि का विवाह हो रहा है ...न बारात आई, न बाजे बजे। बस कुछ 2-4 लोग आए थे और सुरभि की माँ और मोहल्ले वालों ने उसे सजा-धजाकर भेज दिया था। बाद में, पता चला कि वे सुरभि के ससुराल वाले थे...! हतबुद्धि से आलोक को कुछ समझ नहीं आया था। पर वह खूब रोया था उस दिन, क्योंकि बाद में समझ आया।...

उसका प्यार महज आकर्षण था या कुछ और यह तो नहीं पता, किन्तु आलोक आज बदल ही गया था...आज उसके बचपन के प्यार ने उसे प्यार निभाना सिखाया था, अब उसकी बारी थी। वह भी निभाएगा प्यार खामोशी से... दूर रहकर ही अपनी आँखों के सामने उसे तराशेगा, मूरत की तरह उसके व्यक्तित्व और चरित्र दोनों को ....

उसे बदले में प्यार भले न मिलेगा, किन्तु उसे प्यार करने से कौन रोक सकता है.. किसी के जीवन से .... किसी के सपने से....

और आलोक फैल रहा था, दूर कहीं आसमान में....नीले आसमान में।

goyalsd2@gmail.com

नशा

सरिता सुराणा
हैदराबाद, भारत

मंत्री जी के फ़ार्म हाउस पर न्यू ईयर पार्टी सेलिब्रेशन चल रहा था। उसमें मंत्री जी के कुछ खास आदमी ही भाग ले रहे थे, क्योंकि इस फ़ार्म हाउस की जानकारी उनके परिवार वालों तक को नहीं थी। खाने-पीने से लेकर मनोरंजन के साधनों की पूर्ति का काम भी कुछ अति-विश्वसनीय लोगों को सौंपा गया था। पार्टी अपने पूरे शबाब पर थी। खाने-पीने का दौर बंद हो चुका था। अब मंत्री जी ने अपने सेक्रेटरी को बुलाकर उसके कान में कुछ कहा। उनकी आज्ञा का तुरन्त पालन किया गया और कुछ जवान लड़कियों को उनकी सेवा में पेश किया गया। आधे-अधूरे कपड़ों में अपने तन की नुमाइश करती उन लड़कियों में, अपनी लड़की को देखकर मंत्री जी का 'नशा' हवा हो गया। वे गश खाकर नीचे ज़मीन पर गिर पड़े।

sarritasurana@gmail.com

आनंद का जन्मदिन

सुभद्रा प्रसाद
झारखंड, भारत

"आनंद, बेटा जल्दी तैयार हो जाओ। बाज़ार चलना है। तुम्हारे जन्मदिन के लिए नए कपड़े लेने हैं।" मम्मी ने कहा।

"मम्मी, मुझे कोई नए कपड़े नहीं खरीदने हैं। मेरे पास कई नये कपड़े पड़े हैं। मैं उनमें से ही एक पहन लूँगा।" आनंद बोला।

"पर क्यों?" मम्मी ने पूछा।

"क्योंकि मुझे पैसे चाहिए। मुझे कपड़े के बदले पैसे दे दो।" आनंद धीरे-से बोला।

"तुम्हें पैसे क्यों चाहिए? जो खरीदना है बताओ, हम खरीद देंगे।" पापा ने पास आते हुए कहा।

"मुझे कुछ नहीं खरीदना है, मुझे उन पैसों से अपने

दोस्त हर्ष का जन्मदिन मनाना है।" आनंद झट से बोला।

"क्या मतलब, पूरी बात बताओ।" मम्मी ने पूछा।

"मम्मी, कल मेरे जन्मदिन के साथ ही मेरे दोस्त हर्ष का भी जन्मदिन है। वह भी अपना जन्मदिन मनाना चाहता है, पर उसके घर में पैसे नहीं हैं। चार-पाँच महीने पहले उसके पापा की नौकरी छूट गई थी और दूसरी नौकरी अभी-अभी मिली है। उसकी माँ भी बीमार है। रात में मेरा जन्मदिन मनाया जाएगा, तो दिन में मैं अपने दोस्तों के साथ उसका जन्मदिन मनाना चाहता हूँ। बस, इसीलिए मुझे पैसे चाहिए।" आनंद ने अपनी बात पूरी की।

"ओह मेरे प्यारे बच्चे! अभी तो तुम्हारी उम्र मात्र बारह वर्ष है, पर तुम इतने समझदार हो गये हो। हम तुम्हें पैसे तो दे सकते हैं, पर मेरे मन में एक दूसरा विचार भी आ रहा है।" मम्मी उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोली।

"कैसा विचार, " पापा ने पूछा।

"क्यों न हम हर्ष का जन्मदिन आनंद के जन्मदिन के साथ मनाएँ।" मम्मी ने कहा।

"हाँ, यह ठीक रहेगा। आनंद, तुम्हारे जन्मदिन पर तुम्हारे सारे दोस्त तो आएँगे ही। हम हर्ष के लिए भी नये कपड़े और केक खरीदेंगे। तुम्हारा और हर्ष का जन्मदिन एक साथ मनाएँगे। ठीक है ना?" पापा ने आनंद की ओर देखते हुए कहा।

"मेरे अच्छे पापा, मेरी अच्छी मम्मी।" आनंद मम्मी के गले से लिपटते हुए बोला -"यह तो बहुत अच्छी बात है। एकदम ठीक रहेगा।"

"तो फिर अब बाज़ार चलें। तुम्हारे और हर्ष के जन्मदिन की खरीदारी करने।" पापा ने हँसते हुए कहा। आनंद और मम्मी भी हँसने लगे।

subhadraprasad94@gmail.com

महिला दिवस

कल्पना लालजी
मॉरीशस

महिला दिवस में महिलाओं को महँगे फूलों के हार और भारी धनराशि देकर सम्मानित किया जाता है। आइए, आपको एक महिला से मिलवाते हैं, जो इस पावन दिवस पर सम्मानित हुई।

मैं रसोई में खाना बना रही थी कि घर के पीछे से धुआँ उठता दिखाई दिया, मन में जिज्ञासा उठी कि आखिर हुआ क्या? कहाँ आग लगी? गैस बंद कर फ़ौरन उस ओर भागी, तो देखा धुआँ एक दुकान से बाहर आ रहा था। अचानक किसी के चीखने-चिल्लाने की आवाज़ें भी आने लगीं। वहाँ खड़े लोग हाय-तौबा तो कर रहे थे, पर उस चीखने वाली आवाज़ को बचाने अंदर कोई नहीं जा रहा था। तभी एक महिला बाल्टी में पानी लिए तेज़ी से आगे आई और फटाफट दुकान में घुस गई। चंद मिनटों में वह एक बीमार महिला और उसकी गोद में एक छोटी-सी बच्ची को लिए बाहर आ गई? सब देखते ही रह गये। तब तक अग्निशामक टोली भी आ पहुँची। मुझे बड़ी खुशी हुई कि चलो उनकी जान तो बच गई।

इस घटना के अगले सप्ताह मैं बरामदे में बैठी अखबार पढ़ रही थी, तो देखा कि पहले पन्ने पर उस अग्निकांड की रिपोर्ट और कुछ चित्र भी छपे थे। मैं जिज्ञासावश उसे आगे पढ़ने लगी। पता चला कि मंत्री जी ने जान बचाने वाली उस महिला को सम्मान के साथ एक लाख का इनाम दिया है। मुझे खुशी हुई, पर मेरी नज़र उस चित्र पर पड़ी, तो मैं दंग रह गई। यह तो वह महिला थी ही नहीं, जिसने अपनी जान पर खेलकर उन माँ-बेटी की रक्षा की थी।

इस खेल को समझने में मुझे ज्यादा समय नहीं लगा। सारा चक्कर इस हाथ दे और उस हाथ ले का ही था। क्यों न हम नये तरीके से महिलाओं का सम्मान करें। क्यों न नए सिरे से शुरू करें, नया महिला दिवस।

kalpanal2008@yahoo.com

रिस्क

डॉ. अलका धनपत
मॉरीशस

'मैं एक बार खुद किसी मॉल में जाकर खरीदारी करना चाहता हूँ।' बड़ी ही हसरत भरी नज़रों से उन्होंने कहा।

"पर चचा आप तो बीमार हैं, चलना तो आपके लिए कितना कठिन है?" भतीजे ने अपने मोबाइल पर अँगुलियाँ चलाते हुए और एक मुस्कुराहट बिखेरते हुए कहा।

"अरे बिटवा! ज़रा सहारा मिल जाए तो यह मन भी खुश हो जाएगा। अबकी बार पेंशन के साथ जो बोनस मिला है, उससे अपनी मन-पसंद की चीज़ें खरीदना चाहता हूँ। लगभग एक वर्ष हो गया है, बस ये कमरे और बरामदा।"- चचा बोले।

"आप एक लिस्ट बनाइए ना, माँ जाकर सब ले आएगी। मैं तो अपने दोस्तों के साथ जाकर अपना सामान लाता हूँ। आपको जो भी चाहिए, सब यहीं पर मिल जाएगा।"- मैं बोला।

"मैं कोई शिकायत नहीं कर रहा हूँ , तेरे पिताजी भी अब नहीं रहे, इसलिए तुझे कह रहा हूँ। तेरी माँ के साथ जा सकता हूँ, पर तुम भी हमारे साथ चलो ना। मुझे सहारे की आवश्यकता होगी।" सुझाव के लहज़े में चचा बोले।

"ओह चचा! क्या स्पेशल खरीदना है ? सब तो आपको पता ही है।" मैंने उन्हें टालना चाहा।

"सुन मैं अपनी पसंद के, नए मार्क के बिस्कुट देखकर खरीदना चाहता हूँ। हाँ सुबह ब्रेड में लगाने के लिए भी अपनी पसंद का जैम लेना चाहता हूँ, जिसमें फलों के छिलके भी कटे हुए होते हैं। एक वर्ष हो गया है, बस वहीं घिसे-पिटे स्वाद को चखते हुए! हाँ! और चीज़ भी तो आजकल कई तरह के ब्रांड का आया हुआ है। मैंने कितनी नई-नई वस्तुओं के विज्ञापन भी पढ़े हैं। मन है कुछ नया-नया लाने को। मैं तुझे उतना परेशान नहीं करूँगा।" चचा मुझे मनाने के अंदाज़ में बोल रहे थे।

"मेरे दोस्तों के संदेश लगातार आ रहे थे, आज हमारी पार्टी थी। मेरा पूरा ध्यान उसमें था, ओह ! कैसे समझाऊँ?"

चचा फिर बोले – "बेटा चलो मैं तैयार हो जाता हूँ, सब नए-नए कपड़े भी मानो मेरी हँसी उड़ाते हैं, कितना बेबस हो गया हूँ। बिना सहारे के बोनस भी नहीं खर्च कर सकता! तो चलें? तुम अपनी माँ से भी बात कर लो।"

"चचा, बाज़ार में ऐसा क्या नया आ गया है? आप भी बच्चों की तरह बैचेन हो रहे हैं? आपकी यह उम्र आराम करने की है और फिर आप ऊपर से बीमार भी हैं। कहीं और गिर गए, तो पूरा परिवार हमें ही कोसेगा। यह रिस्क मैं नहीं ले सकता! बेहतर है आप घर पर ही रहकर सामान मँगा लीजिए। वैसे भी मुझे बहुत देर हो रही है।" मैं तेज़ी से अपने कमरे में तैयार होने के लिए निकल गया।

चचा हाथ में इस वर्ष का बोनस लेकर बैठे थे, माँ को देखा तो कहने लगे कि "यह कुछ राशि उनके खर्चे के लिए ले लो, ताकि तुम लोगों का बोझ कुछ कम हो पाए।" माँ ने धन्यवाद करते हुए राशि उनसे खुशी से ले ली थी। माँ ने सूचना देते हुए कहा कि "चचा आज मैं भी बाज़ार जा रही हूँ, बहुत दिनों से घर पर रहते-रहते मानो सब कुछ फीका-सा लग रहा है।"

चचा बस चुपचाप सबको देख रहे थे, अब किसको कहते कि आज वे भी कहीं बाहर जाना चाहते हैं। उन्हें एक अपना सहारा चाहिए था। वे भी सालान्त की खरीदारी करना तथा बाहर जाने का मज़ा लेना चाहते थे। पैर की हड्डी टूटी है, पर मन तो अभी भी वही है।

और हम सब बाहर जा रहे हैं।

drdunputh@gmail.com

खूबसूरत

मीरा ठाकुर
आबू धाबी

सीमा ने सासु माँ से जैसे ही पूछा कि क्या वह पार्लर जा सकती है? सासु माँ ने तुरंत जवाब दिया – 'क्या ज़रूरत है? पार्लर जाकर वक्त और पैसा क्यों बर्बाद करना फालतू में। वैसे भी असली खूबसूरती तो सादगी में उभरकर आती है। फिर क्या तुम्हें फ़िल्म में काम करना है?'

तभी फ़ोन आता है – "अरे कुछ नहीं कर रही। पर सोच रही हूँ काफ़ी दिन हो गए, बाल नहीं कलर कराए। सोच रही हूँ आज वही करा आऊँ। तुम भी वहीं आ जाओ, गप्प मारेंगे।"

शाम के समय सात वर्षीय लाडो ने कमरे में प्रवेश किया और दादी के गले से झूलकर बोली, "अरे! दादी आप तो बड़ी अच्छी लग रही हो, क्या बात है?" दादी ने गर्व से उत्तर दिया – "आज ही बाल रंगवाए हैं, सुंदर लग रही हूँ ना?"

meerasid@yahoo.com

आदर्श नाती

रीता कौशल
पर्थ – वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया

दादाजी के लाड़ले को लेटेस्ट आइफ़ोन के फ़ीचर्स बेहद पसंद आ रहे थे। उसे बार-बार अपने दोस्त का इतराना याद आ रहा था। उसका दोस्त कॉलिज में सबको अपना नया आइफ़ोन दिखाकर अपना बड़प्पन जता रहा था।

दादाजी के लाड़ले ने सोचा कि उसका अपना बाप नकारा है, तो क्या हुआ! दादाजी तो सुसंस्कृत और धनवान हैं। कभी उसे पैसों के लिए मना नहीं करते। इस महीने तो वह दादाजी नाम के इस ए.टी.एम. से पहले ही बहुत पैसा खींच चुका है। उनका लाड़ला बने रहने के लिए अपनी आदर्श नाती की छवि भी तो बरकरार रखनी है। कुछ ऐसा करना होगा कि साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। इस आदर्श नाती के मुखौटे को पहनकर ही, तो बाकी चचेरे-तयेरे भाई-बहनों का पत्ता साफ़ किया है, उसने।

महीने के अंत में दादाजी ने अलमारी में रखे रुपयों का महीने भर के खर्चों के साथ मिलान किया, तो एक लाख रुपया गुम था। दादाजी ने दूसरी और फिर तीसरी बार मिलान किया, पर एक लाख का हिसाब मिला ही नहीं। बाहरी व्यक्ति के नाम पर सिर्फ़ एक कामवाली ही उस कमरे में झाड़-पौंछ करने आती थी। ज्यादा सोच-विचार की आवश्यकता के बिना शक की सुई उसी की तरफ़ घूम गयी। सुसंस्कृत, दयावान दादाजी गरीब कामवाली को पुलिस के लफड़े में नहीं डालना चाहती थी। बस उसे डाँट-डपटकर काम से निकाल दिया।

दादाजी की शंका से परे दूसरे कमरे में पलंग पर पसरा आदर्श नाती अपने लेटेस्ट आइफ़ोन पर अपनी गर्लफ़्रेंड से फ़ेसटाइम करने में व्यस्त था।

rita210711@gmail.com

जाति प्रमाण-पत्र

नफे सिंह कादयान
हरियाणा, भारत

मई का दूसरा पखवाड़ा आते ही गर्मी अपने प्रचंड तेवर दिखाने लगी। विकास से कोसों दूर उत्तर भारत के एक छोटे-से गाँव हरिपुर में कच्चे-पक्के मकान, झोपड़ी, छप्पर, गोबर, भूसे के बटोड़ों के अलावा कुछ नज़र नहीं आता था। कच्ची गलियों वाले इस गाँव में आठ किलोमीटर दूर स्थित शहर जाने के लिए भी कच्चा मार्ग ही था। इसकी कुल आबादी लगभग पाँच सौ थी, जिसमें चंद ज़मींदारों को छोड़ बाकी सभी दलित परिवार थे। गाँव में बच्चों के लिए दो-तीन कमरों वाला जीर्ण-शीर्ण विद्यालय था, जिसमें गरीबों के बच्चे शिक्षा ग्रहण करते थे। अमीर लोग अपने बच्चों को शहर के निजी स्कूलों में पढ़ाते थे।

चिलचिलाती गर्मी के कारण गाँव के सरकारी विद्यालय में छात्र-छात्राओं को कमरों में अब घुटन-सी महसूस होने लगी। बिजली के पंखे नहीं थे। उन्होंने प्राध्यापक से गर्मी की शिकायत की, तो उसने बहुत आसान उपाय बता दिया - "चलो तुम्हारी कक्षाएँ बाहर पेड़ों के नीचे लगा देते हैं।" अब कक्षाएँ विद्यालय के प्रांगण में खड़े पीपल, नीम, आम, बरगद आदि वृक्षों के सायों में लगने लगीं। इससे बच्चों ने कुछ राहत की साँस ली, क्योंकि बाहर उन्हें गर्मी में कभी-कभी हवा के झोंके नसीब हो ही जाते थे।

गाँव के होनहार दलित छात्र जीत राम की कक्षा आज नीम के घने वृक्ष के नीचे लगी थी। वह पढ़ाई में पूरी कक्षा में अव्वल आता था। उसने अपनी तख्ती गज्जी से लेपकर अभी अपने बस्ते के सहारे सुखाने के लिए रखी ही थी कि पेड़ के ऊपर बैठे कौवे ने उसकी सारी मेहनत पर पानी फेर दिया। तख्ती पर बिष्ठा गिरते ही उसके पास बैठे सहपाठी खिलखिलाकर हँस पड़े, मगर वह चुप रहा। वह अपने अनुसूचित जाति प्रमाण-पत्र को लेकर परेशान था। उसने रफ़ कॉपी का एक छोटा टुकड़ा ले बीट साफ़ कर दी। तभी कक्षा में उनका अध्यापक आ गया।

फ़रवरी, मार्च में होने वाली परीक्षाओं में पास होने वाले छात्रों ने नई कक्षाओं में दाखिले ले लिये। जीत को छोड़कर सभी छात्र खुली हवा में आते ही अटखेलियाँ करते हुए खुश हो रहे थे। उसे जिस बात का अंदेशा था वही हुआ। कक्षा में आते ही अध्यापक आज फिर उसे डाँटते हुए बोला- "जीत अपना जाति प्रमाण-पत्र जल्दी बनवाकर दे, नहीं तो सामान्य वर्ग में डाल दूँगा। फिर सरकार की तरफ़ से अनुसूचित जातियों के छात्रों को मिलने वाली कोई मदद तुझे नहीं मिलेगी। ना किताब, कापियाँ मिलेंगी और ना ही फ़ीस माफ़ होगी। तेरे वजीफ़े की राशि भी मजबूर होकर मुझे रोकनी पड़ेगी। पाँचवीं तक तो सभी जातियों के बच्चों को सरकारी सुविधा मिल रही थी, मगर अब छठी क्लास में सरकार की नई नीति के चलते केवल अनुसूचित जाति के बच्चों को ही हर प्रकार की सुविधा मिलेगी, इसलिए जाति प्रमाण-पत्र ज़रूरी है।"

"मास्टर जी मुझे दो-तीन दिन का समय और दे दो, मैं अवश्य बनवाकर दे दूँगा।" जीत रोनी सूरत बनाकर बोला।

"मैंने क्या तेरे प्रमाण-पत्र का आचार डालना है, जो मुझे देकर अहसान करेगा। सरकारी फ़ाइल में लगाना है, जिससे तुम जैसे दलिदरों का कुछ भला हो।" मास्टर जीत से कुछ तल्ख स्वर में बोला, तो वह "जी मास्टर जी, मैं जल्दी बनवा दूँगा", कह चुप हो गया।

जीत करे भी, तो क्या करे? उसका पिता गाँव में सरपंच के पास खेतीहर मज़दूर हुआ करता था। वह दो साल पहले साइकिल पर शहर से उसका कुछ सामान लाने गया, तो वहीं सड़क पर कार की चपेट में आ गया। असमय दुर्घटना में बाप की मौत के बाद उनपर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। घर पर बस अब उसकी माँ है, जो विधवा पेंशन के थोड़े-से पैसों और ज़मींदारों के खेतों में मज़दूरी कर उसका पेट पालती है। वह मेहनत मज़दूरी तक ही सीमित है। भोली इतनी कि उसे गाँव से बाहर की दुनिया के बारे में कुछ मालूम नहीं। ऐसे में वह

उसका जाति प्रमाण-पत्र कैसे बनवाए।

पिता होता, तो शहर में पटवार खाना, तहसील में दो-चार चक्कर लगा बनवा ही देता, पर अब उसे ही जाति प्रमाण-पत्र के लिए धक्के खाने पड़ेंगे। यह सोचकर वह परेशान था कि अगर वह विद्यालय की फ़ीस माफ़ नहीं करवा पाया, तो उसकी माँ गरीबी के चलते फ़ीस का प्रबंध नहीं कर पाएगी। फ़ीस न देने के चलते उसे विद्यालय से निकाल दिया जाएगा और अगर वह विद्यालय से निकाल दिया गया, तो उसके सरकारी नौकरी लगने के सारे सपने चकनाचूर हो जाएँगे। फिर वह बस अपने बाप की तरह ज़मींदारों का ज़रखरीद गुलाम बनकर मरेगा। उसे रोटी के एक-एक टुकड़े के लिए जूझना होगा। ऐसे में उसकी ज़िन्दगी नर्क बन जाएगी।

जीत को यह भी मालूम नहीं था कि उसे जाति प्रमाण-पत्र बनवाने के लिए क्या प्रक्रिया अपनानी होगी। उसका ध्यान कक्षा में अपने पास बैठे सहपाठी पर गया, तो उसे याद आया कि उसने कल ही विद्यालय में अपना जाति प्रमाण-पत्र बनवाकर जमा करवाया था। उसने सोचा क्यों न इसी से कुछ जानकारी ली जाए।

"मुझे जाति प्रमाण-पत्र बनवाने के लिए क्या-क्या करना पड़ेगा दोस्त?" जीत ने उतावलेपन में अपने पास बैठे लड़के की कोहनी पकड़ते हुए पूछा, तो वह खिलखिलाकर हँसते हुए बोला- "पहले अंबाला जाकर एस.डी.एम कार्यालय से जाति प्रमाण-पत्र का फ़ॉर्म लेकर आ। साथ में, स्टांप पेपर भी ले आ। वहाँ अपना राशन कार्ड ज़रूर ले जाना, वरना बगैर शिनाख्त के वे फ़ॉर्म नहीं देंगे। वहाँ से वापिस आ उन फ़ॉर्मों पर अपने गाँव के सरपंच, नंबरदार से मुहर लगवा लेना। अगले दिन पास वाले शहर जाकर पटवारी से तस्दीक करवाना। फिर अपने सारे कागज़ों को नोटरी से टेस्टड करवाने के बाद वापिस एस.डी.एम कार्यालय में जमा करवा आना। हफ़्ते बाद जाति प्रमाण-पत्र बन जाएगा। उसे कार्यालय जा उठा लाना। बस बन जाएगा तेरा काम। सरकारी खर्चा तो केवल पचास रुपए ही है, बाकि नोटरी कागज़ों का कुल मिलाकर पाँच सौ तो लग ही जाएगा। मेरा तो बाप पटवारी को जानता था, इसलिए उसने अधिक चक्कर नहीं लगवाए, वरना तो महीनों लग जाते।"

जीत ने सुना तो उसका सर चकरा गया। "अंबाला के अगर तीन चक्कर लग गए, तो किराये सहित हज़ार रुपए खर्च हो जाएँगे।" वह कुछ मायूस से स्वर में सहपाठी से बोला।

"सरकार फ़ीस भी तो माफ़ कर रही है। साथ में, किताब-कापियाँ भी देती है। ऐसे में हज़ार रुपए तुझे ज्यादा लग रहे हैं। बच्चू प्राइवेट विद्यालय में पढ़कर देख अगर फ़ीस भरते-भरते तेरे घर का टीन-टप्पर न बिक जाए, तो मुझे आकर कहना।" सहपाठी ये कह उसे हिकारत से देखते हुए खी-खी कर हँसने लगा।

जाति प्रमाण-पत्र बनवाने के लिए जीत को सबसे पहले प्रमाण-पत्र फ़ॉर्म लाने के लिए अपने ज़िले के एस.डी.एम. कार्यालय अंबाला शहर जाना था, इसलिए उसने मास्टर जी को आज ही कल के लिए छुट्टी की अर्जी दे दी। अंबाला उसके गाँव से चालीस किलोमीटर दूर था। विद्यालय से पूरी छुट्टी के बाद घर आने पर बस किराये के पैसे माँ से माँगने में ही उसे बहुत मशक्कत करनी पड़ी। घोर गरीबी के चलते उसकी माँ एक-एक पैसा सोच-समझकर खर्च करती थी। काफ़ी झक-झक कर पैसे देने के बाद भी माँ को चिंता हो रही थी कि छठी क्लास में पढ़ रहा उसका नादान बच्चा कैसे शहर जा प्रमाण-पत्र बनवा पाएगा।

अगले रोज़ जीत बस, टैम्पू में धक्के खाता हुआ एस.डी. एम कार्यालय पहुँच तो गया पर यहीं से उसपर प्रशासनिक व्यवस्था की मार पड़नी शुरू हो गई। बीस रुपए दे फ़ॉर्म आसानी से मिल गए पर जब वह अपनी शिनाख्त के तौर पर राशन कार्ड की नकल कॉपी दे शपथ-पत्र बनवाने के लिए स्टाम्प पेपर लेने लगा, तब स्टाम्प विक्रेता उसे ऊपर से नीचे देखते हुए बोला- "अंडे में से निकलते ही सरकारी कार्य करवाने आ गया? जा घर से अपने किसी बड़े को लेकर आ। पहले रजिस्टर में उसके साइन होंगे, तब स्टाम्प पेपर मिलेगा।"

"अंकल जी मेरा बाप अब इस दुनिया में नहीं है। लाइये इधर आप के रजिस्टर में मैं साइन कर देता हूँ।" जीत को स्टाम्प विक्रेता का व्यवहार अच्छा नहीं लग रहा था, पर वह

इन बातों पर ध्यान देने के बजाय जल्दी से अपना काम निपटा घर जाना चाहता था।

"तू अभी बालिग नहीं है चिलगोजे। सरकारी कामों में बच्चों के अभिभावक ही मान्य होते हैं। बाप मर गया है, तो अपनी माँ को ले आ।" वह जीत से हँसते हुए बोला।

"अंकल जी, मैं बसों में धक्के खाता हुआ बहुत दूर गाँव से आया हूँ, प्लीज़ स्टाम्प पेपर दे दो।" जीत स्टाम्प पेपर लेने के लिए विक्रेता के आगे हाथ जोड़ गिड़गिड़ाते हुए बोला।

"तुझे क्या लगता है, पचास रुपए के लिए मैं तुझे स्टाम्प पेपर दे अपना लाइसेंस रद्द करवाऊँगा? तुझे मालूम नहीं यहाँ एस.डी.एम कितना सख्त बैठा है। अपनी माँ को लेकर आने में तुझे क्या परेशानी हो रही है? मेरा टाइम खोटी मत कर और अब यहाँ से चलता-फिरता नज़र आ।" स्टाम्प पेपर विक्रेता अकड़कर बोला तो मासूम जीत डर गया। वह उस नादान उजबक को कैसे समझाता कि वह कितना गरीब है। उसे माँ को लाने में क्या परेशानी है।

अंबाला से थक-हारकर जीत उदास मन से वापिस गाँव आ गया। घर आकर जब उसने माँ को पूरा किस्सा सुनाया, तब उसने भी उसे डाँट पिला दी- "मैं तो पहले ही कह रही थी, तुझ जैसे छोटे बालक का कौन काम करेगा। हाय! अब दोबारा फिर बसों का किराया चुकाना पड़ेगा। अगर मुझे पहले ही अंबाला ले गया होता, तो तुझे कल फिर परेशान न होना पड़ता।"

जीत माँ की डाँट पर चुप रहा, क्योंकि उसने वाकई गलती कर दी थी। वह रात को अपनी खाट पर लेटा हुआ सोचने लगा कि सरकारी कामों में आखिर बालिग, नाबालिग का क्या चक्कर है। जाति प्रमाण-पत्र के फ़ॉर्मों पर लगाने के लिए स्टाम्प ही तो माँग रहा था, कौनसा गुनाह कर रहा था। सोचते-सोचते उसे गहरी नींद ने अपने आगोश में ले लिया।

अगले दिन फिर विद्यालय से छुट्टी ले जीत अपनी माँ के साथ अंबाला स्टाम्प पेपर लेने चल दिया। इस बार स्टाम्प विक्रेता ने उनसे कोई सवाल नहीं किया। उसने राशन कार्ड की नकल ली और उसकी माँ का नाम पता लिख रजिस्टर में अंगूठा लगवा ऊपर की तरफ़ टिकट छपा एक सफ़ेद कागज़ उसके हाथ में पकड़ा दिया। फिर वह दूसरी तरफ़ इशारा करता हुआ जीत से बोला-"वहाँ उस मेज़ के पीछे, जो लड़का बैठा है, उससे टाइप करवा लो।"

"क्या टाइप करवा लें, अंकल जी?" जीत स्टाम्प विक्रेता के मुँह की तरफ़ देखता हुआ हैरानी से बोला।

"अबे! इस खाली स्टाम्प पेपर को खरीदकर क्या चाटेगा? इस पर अपनी जाति, गाँव पते का ब्योरा भरवाएगा, तभी तो जाति प्रमाण-पत्र के लिए तेरी अर्जी मंज़ूर होगी। कागज़ों की पूरी फ़ाइल बनेगी। आया कुछ समझ में? पता नहीं कहाँ-कहाँ से आ जाते हैं, मुँह उठाकर गाँव के घोस्सी।"

जीत का दिल कर रहा था कि वह इस पागल स्टाम्प विक्रेता को सड़क से एक पत्थर उठाकर दे मारे, पर वह चुपचाप उसे बोलता छोड़ अपनी माँ के साथ उस मेज़ पर आ गया, जहाँ एक युवा व्यक्ति टाइप मशीन रखे बैठा था। उस व्यक्ति ने मुस्कराते हुए दूर से ही उसकी माँ को अपने पास आने का इशारा करते हुए नमस्ते माँ जी कहा, तो जीत को बहुत आश्चर्य हुआ।

"क्या ऐसे भले मानुष भी हैं, इस जहान में जो हम जैसे दलिद्दरों को भी नमस्ते करते हैं?" वह सोचने लगा पर भोले-भाले जीत को मालूम नहीं था कि यह उसकी व्यावसायिक मुस्कान है। वह नहीं जानता था ये सरकारी कर्मचारी नहीं, बल्कि अपने ग्राहक पक्का करने वाला आम व्यक्ति है। जीत ने स्टाम्प पेपर पकड़ा, उसे टाइप करने को कहा, तो उसने उनका नाम, गाँव, जाति का पूरा ब्योरा टाइप कर उनसे पचास रुपए ले लिये। उसने स्टाम्प पेपर, राशन कार्ड और वोट कार्ड की नकल, कच्चा प्रमाण-पत्र कार्ड जैसे सभी कागज़ों की एक फ़ाइल बना जीत के हाथ में पकड़ा दी और साथ ही उसे ये भी समझाया की सरपंच, नंबरदार , पटवारी की मुहर हस्ताक्षर कौन-से कागज़ों पर कहाँ होंगे।

"चलो बेटा यहाँ का काम तो निपटा, पर मेरी आज की दिहाड़ी छूट गई। मैं खेतों में दिहाड़ी करती हूँ, तभी हमारी रोटी चलती है, अगर अम्बाले के पाँच-सात चक्कर लग जाएँ, तो हम भूखे मर जाएँगे।" जीत की माँ संतोष की साँस लेते हुए बोली।

"अभी कहाँ निपट गया माँ। अभी तो सरपंच, नंबरदार और पटवारी से हस्ताक्षर करवाकर यह फ़ाइल दोबारा यहाँ अंदर ऑफ़िस में जमा करवानी होगी, तब कहीं सप्ताह बाद जाति प्रमाण-पत्र बनेगा, फिर उसे तीसरी बार यहीं से ले जाना है।

"हाय राम! यानी अभी और भी पैसे खर्चने होंगे?" माँ ने सुना तो वह वहीं सर पकड़कर बैठ गई। जीत बड़ी मुश्किल से उसे वापिस गाँव ले आया।

जीत शाम के समय फ़ाइल ले अपने गाँव के सरपंच की चौपाल में पहुँच गया। वहाँ बरामदे में कई खाट पड़ी थीं, जिनमें से एक पर सरपंच पालथी मारे बैठा, किसी व्यक्ति से बातचीत में मग्न था। जीत अजनबी को नहीं जानता था, मगर सरपंच की वह रग-रग से वाकिफ़ था। इसी सरपंच के पास उसका पिता नौकरी किया करता था।

"अंकल जी नमस्ते! मेरे इस फ़ॉर्म पर मुहर लगाकर हस्ताक्षर कर दो।" जीत ने फ़ाइल खोल एक कागज़ सरपंच के आगे कर दिया।

"अबे साले, ऊपर ही चढ़ा जा रहा है, पीछे हटकर खड़ा हो। कैसे कागज़ लाया है बे तू ये?" सरपंच कागज़ देखने के बजाए उसकी आँखों में देखते हुए ऊँचे स्वर में बोला।

"जी... मुझे जाति प्रमाण-पत्र बनवाना है। सरकारी मदद न मिलने के कारण मेरी पढ़ाई बाधित हो रही है।" जीत सरपंच की रोबदार आवाज़ सुन मिमियाते हुए बोला।

"ओये! कही नहीं पढ़कर तुम जैसे दलिद्दरों को कलेक्टर लगना। सरकारी नौकरियाँ लाखों की रिश्वत देकर मिलती है। साले तेरे जैसे सारे कमीण-कांदू बाबू बन गए, तो हमारे खेतों में काम कौन करेगा। हमारे बर्तन, जूते, चप्पल कौन साफ़ किया करेगा। ये ले पैसे जेब में अच्छे से रख। मेरा खास रिश्तेदार आया है। फ़ाइल खाट पर रख, साइकिल उठाकर शहर से दर्जन भर उबले अंडे, एक रेस्टोकरेट की बोतल लेकर आ। मैं चिपकाता हूँ, तेरे इस फ़ॉर्म पर मुहर। जा जल्दी चला जा, आते ही तुझे मुहर लगी मिलेगी।" ये कहते हुए सरपंच ने जेब से निकालकर पाँच सौ का एक नोट उसके हाथ पर रख दिया। सरपंच मुहर लगाने की एवज में जीत से बैगार करवाने लगा।

जीत ने मन-ही-मन सरपंच को दो-चार गालियाँ दीं, पर वह जानता था, अगर उसकी बैगार नहीं की, तो वह फ़ाइल उसके मुँह पर दे मारेगा और उसे अपनी चौपाल से धक्के दे बाहर निकाल देगा। उसने चुपचाप वहाँ बरामदे में खड़ी साइकिल उठाई और शहर की तरफ़ चल दिया। उसका पिता कहा करता था, घर का बचा-खुचा खाना, खिचड़ी लस्सी हम पर कुत्तों की तरह फैंक ज़मींदार हमसे बहुत बैगार करवाया करते थे। अगर कोई आनाकानी करता, तो उसे लाठियों से पीटते। आज उसे पता चला बैगार क्या होती है। आज भी अगर सरपंच उसकी पिटाई कर दे, तो वह उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। सरपंच के पास ताकत पैसा रसूख सब कुछ है, उनके पास कुछ नहीं।

ठेके पर जा जीत ने शराब की बोतल ली, तो वहाँ बैठा करिंदा ही-ही कर हँसता हुआ बोला- "अभी से शराब पीने लगा बच्चे, जल्दी कीडनी, गूर्दे गँवा बैठेगा।"

"मैं शराब नहीं पीता, ये सरपंच ने मँगाई है।" यह कह जीत ने बोतल थैले में डाल पास के खोखे से उबले अंडे खरीद लिये। गाँव से शहर तक आने-जाने में उसे सोलह किलोमीटर साइकिल चलानी पड़ी। वापिस सरपंच की चौपाल तक आते-आते जीत पसीने से तर हो चुका था। उसे देख सरपंच ठहाका लगाकर हँसते हुए बोला - "लगता है साला थक गया। ले, एक पैग मार ले, फ्रेस हो जाएगा।"

"मैं नहीं पीऊँगा अंकल, मैंने कभी इसे चखा भी नहीं, आप बस मेरे फ़ॉर्म पर मुहर लगा दो, आपकी बड़ी मेहरबानी होगी।" जीत अपनी फ़ाइल की तरफ़ देखता हुआ बोला। वह खाट पर वहीं पड़ी थी, जहाँ उसने उसे रखा था। सरपंच ने उसे देखा भी नहीं था।

"वो सामने अलमारी से मुहर पैड निकालकर लगा ले, जहाँ तुझे लगानी है। एक अपनी माँ के पिछवाड़े पर भी जाकर लगा दे। खसम मर गया तो क्या हुआ, पंचायती साँड मिल जायेगा।" सरपंच अपने रिश्तेदार को पैग भर के देते हुए जीत से हँसते हुए बोला तो उसका खून खौल उठा, पर वह कर भी क्या सकता था। यहाँ अधिकतर ज़मींदार दलितों

की बहू-बेटियों को अपनी जागीर समझकर इस्तेमाल करते थे। उनसे हर प्रकार के अश्लील मज़ाक करते और कई बार तो बलात्कार कर पाँच, सात हज़ार रुपए दे, डराकर फ़ैसला करा लेते थे।

जीत ने चुपचाप मुहर उठाई और पैड पर घिसा अपने फ़ॉर्म पर उस जगह लगा ली, जहाँ सरपंच के हस्ताक्षर थे। "हस्ताक्षर कर दो, मैंने मुहर लगा दी है।" जीत फिर कागज़ों को सरपंच के आगे करता हुआ बोला।

"अबे तुझे लिखना न आता क्या? मुहर के ऊपर लिख दे बाला देवी। साले अभी बोतल लेकर शहर से आया है, हस्ताक्षर करवाने हवेली के अंदर भेज दिया, तो चौधरण तुझे बरतन माँजने पर लगा देगी।" सरपंच शराब पीता हुआ ठहाके लगाकर हँस पड़ा।

इस बार गाँव की महिला आरक्षित सीट होने के कारण सरपंच ने अपनी पत्नी को चुनाव में उतारा था। वह पिछली बार सरपंच था, अबके उसने पत्नी को जिता दिया, पर सरपंची की सारी शक्ति उसी के पास थी। उसकी पत्नी के दर्शन आम लोगों को तो क्या चुनाव करवाने वाले कर्मचारियों को भी नहीं हुए थे। अपने रसूख के चलते सभी जगह सरपंच ने ही हस्ताक्षर किए थे। अब भी वही उसके जाली हस्ताक्षर करता था या आलस की वजह से मुहर लगवाने वाले से ही करवा देता था। जीत ने मुहर के ऊपर बाला देवी लिखा और कागज़ सीने से लगा राहत की साँस ली।

"चलो इस टुच्चे सरपंच का काम तो निपटा अब नंबरदार के हस्ताक्षर करवाने हैं।" सोचता हुआ जीत नंबरदार के घर आ गया। गाँव में दो-तीन नंबरदार थे, मगर वह अपनी जाति वाले नंबरदार के पास आया, ताकि उसे दौबारा बेगार न करनी पड़े। नंबरदार ने उसके कागज़ पर हस्ताक्षर कर उसे दो-तीन हिदायते दीं- "बेटा विद्यालय हर रोज़ जाया कर। अच्छी प्रकार से पढ़ाई-लिखाई कर, कभी अपने बाप की तरह ज़मींदारों के तलवे चाटता फिरे।"

जीत नंबरदार की बात पर सिर हिला, 'हाँ जी' कहता रहा। हस्ताक्षर हो गए तो वह फ़ाइल संभाल अपने घर आ गया। अब उसे अपने पास लगते शहर जा पटवारी से कागज़ों पर तस्दीक करवानी थी। अगले रोज़ फिर अपने एक सहपाठी को विद्यालय से छुट्टी का प्रार्थना-पत्र दे, वह फ़ाइल ले शहर की तरफ़ चल दिया। गाँव से शहर जाने के लिए सरकार की तरफ़ से कोई बस इत्यादि वाहन का प्रबंध नहीं था। अमीरों के पास अपने वाहन थे। गरीब दलित लोग कच्चे रास्ते से पैदल या साइकिल पर जाते थे।

पैदल चलने में जीत को कोई परेशानी नहीं थी। वह सारा दिन पैदल चल सकता था। हाँ तेज़ धूप उसे अवश्य परेशान करती थी। आज चिल्लचिलाती धूप से बचने के लिए सभी पशु-पक्षी पेड़ों के साये में शीतलता तलाश रहे थे, मगर जीत को हर हाल में शहर पहुँचना था। उसे अपने गाँव के रकबे वाले पटवारी से फ़ॉर्मों पर तस्दीक करवानी थी, तभी वह ज़िला एस.डी.एम कार्यालय जा प्रमाण-पत्र बनवा सकता था। तेज़ गर्मी से उसका सिर गर्म हो रहा था। वह एक हाथ से कागज़ों की फ़ाइल सर के ऊपर कर कुछ दूर चला, मगर कोई फ़ायदा नहीं हुआ।

एक घंटा तेज़ी से चलने पर वह पटवारी खाने पहुँच गया। वहाँ बाहर पानी की टोंटी लगी थी। जीत ने टोंटी से पानी पीया और पसीने से तर अपने चेहरे को अच्छी प्रकार धो लिया, ताकि ऑफ़िस में बैठे पटवारी को उससे पसीने की बू न आए। वह अंदर जाने लगा, तो उसे गेट के पास चपरासी आँख बंद किए स्टूल पर बैठा दिखाई दिया। वह बैठा-बैठा नींद में झपकियाँ-सी ले रहा था। अंदर कमरे में पटवारी एक मोटी फ़ाइल पर काले पैन से कुछ लिखने में व्यस्त था। उसकी मेज़ पर कई नई-पुरानी फ़ाइलें रखी हुई थीं। वहाँ उसके पीछे लकड़ी से बने चोखानों में भी बहुत-सी फ़ाइलें बेतरतीबी से ठुँसी थीं। धूल से अटी कुछ के कागज़ तो फटकर चिंदियों में छत के पंखे की हवा में लहरा रहे थे।

जीत पटवारी की मेज़ के पास जाकर खड़ा हो गया, मगर पटवारी उसकी तरफ़ ध्यान न दे लिखता रहा। "सर जी प्रणाम! मेरे जाति प्रमाण-पत्र के आवेदन फ़ॉर्म पर तस्दीक कर दो।" जीत कमरे से ध्यान हटा लिखने में मग्न पटवारी से बोला।

"खेतों की गिरदवारी के काम में व्यस्त हूँ, तीन दिन

बाद आना।" पटवारी अपने नज़र के चश्मे को कुछ नीचे सरकाकर जीत से बोला और दोबारा फ़ाइल पर पैन चलाने लगा।

"सर जी मैं बहुत परेशान हूँ। तेज़ धूप में आठ किलोमीटर पैदल चलकर आया हूँ। उधर विद्यालय से बार-बार छुटियाँ लेनी पड़ रही हैं। प्लीज़ मेरे कागज़ों पर तस्दीक कर दो।" जीत हाथ जोड़कर पटवारी के आगे गिड़गिड़ाया पर पटवारी को उस पर ज़रा भी दया नहीं आयी। उल्टा वह उससे अकड़कर बोला- "पैदल आया है, तो बाप से कह हवाई जहाज़ खरीद, उसमें बैठकर आया कर यहाँ। मैं यहाँ फ़ालतू बैठा हूँ क्या? साली एक मिनट की फ़ुर्सत नहीं। रात को सपने में भी फ़ाइलों के भूत बन मेरा भेजा खाते हैं। अच्छा ऐसा कर तू, अपनी फ़ाइल रख जा। मंगलवार आकर ले जाना, तस्दीक की हुई मिलेगी।" पटवारी ने जीत के हाथ से फ़ाइल ले अपने पीछे बने अलमारी के चोखाने में बेदर्दी से फैंक दी। जीत को ऐसा लगा जैसे पटवारी ने उसका दिल निकाल अलमारी में फैंक दिया हो।

"तस्दीक ज़रूर कर देना साहेब जी, मैं परसों अपने कागज़ ले जाऊँगा।" वह पटवारी से एक बार और हाथ जोड़ निवेदन करता हुआ बोला।

"हाँ हाँ कर दूँगा। अब क्या मुझसे खुदा की कसम दिलवाएगा तू।" पटवारी उसे लताड़ता हुआ बोला।

जीत मायूस हो वापिस अपने घर की तरफ़ चल दिया। रास्ते भर उसके मन में विचार चलते रहे- 'अगर अन्य कागज़ों के ढेर में पड़ी उसकी फ़ाइल गुम हो गई तो क्या होगा? इस कार्यालय में तो कोई एक फ़ाइल खोजना भूसे के डेर में सूई खोजने के बराबर है। इन्हें कौन-सा फ़र्क पड़ता है। ये तो कह देंगे दोबारा कागज़ बनवाकर ले आ। क्या उसे मोहर लगवाने के लिए दोबारा सरपंच की बैगार करनी पड़ेगी? नहीं ऐसा नहीं होगा। पटवारी ज़रूर तस्दीक कर देगा। बस कल की ही बात है। परसों तो मैं कागज़ उठाकर ले ही जाऊँगा।' जीत का मन कभी उसे दिलासा देता, तो कभी किसी अनहोनी आशंका से भर जाता। विचारों में उसे पता ही नहीं चला कि वह भयंकर गर्मी में अपने घर की डगर जा रहा है।

कालचक्र में पल मिनटों में, मिनट घंटों में और घंटे दिन-रात में बदल जाते हैं। आखिर तीसरा दिन भी आ गया। आज भी गर्मी खूब थी, पर जीत अपनी फ़ाइल को लेकर सोच में डूबा था, इसलिए इस गर्मी का उस पर कोई असर नहीं हुआ। उसे डर था, कहीं उसकी फ़ाइल गुम न हो जाए। जीत डरते-डरते पटवारखाने पहुँचा, तो उसने वहाँ पटवारी को नदारद पाया। वहाँ दरवाज़े के पास स्टूल पर बैठा चपरासी बीड़ी के सुट्टे मार रहा था।

"पटवारी साहेब कहाँ गए अंकल जी।" जीत किसी अनहोनी आशंका से डरते हुए चपरासी से बोला।

"कमाल है यार, तुझे नहीं मालूम क्या? तेरे गाँव में अवैध कब्जे छुड़वाने ही तो गया है, आज सारा सरकारी अमला। पटवारी, तहसीलदार, बी.डी.ओ, पुलिस, सभी तेरे गाँव में विराजमान हैं।" चपरासी उसे हैरानी से देखते हुआ बोला।

"जी मैं कच्चे रास्ते से आया हूँ, वह शायद गाँव में पंचायती रकबे की तरफ़ से गए होंगे।" जीत ने विनम्रता से चपरासी के सवालों का जवाब देते हुए उस स्थान पर अपनी फ़ाइल देखी जहाँ पटवारी ने फेंकी थी, मगर उसे वह वहाँ दिखाई नहीं दी। जब फ़ाइल दिखाई नहीं दी, तब वह और अधिक डर गया। फिर मन-ही-मन भगवान से प्रार्थना करते हुए चपरासी से बोला- "अंकल परसों मैं जाति प्रमाण-पत्र के फ़ॉर्म पर तस्दीक करवाने अपनी फ़ाइल पटवारी जी को देकर गया था। देखना पटवारी जी ने तस्दीक कर दी होगी।"

"अरे काहे का पटवारी जी यार। एक नम्बर का बेवड़ा है, साला। अफ़ीम अलग से चाटता रहता है। पिछले चार दिन से तो वह खेतों की गिरदवारी में उलझा था, उसने तस्दीक क्या घंटा करनी थी। मैंने अपने रजिस्टर के अलावा उसे किसी फ़ॉर्म को हाथ लगाते भी नहीं देखा।" चपरासी पटवारी पर अपनी खुन्नस निकालते हुए लापरवाही से बोला।

"मेरी फ़ाइल पटवारी ने वहाँ चोखाने में रखी थी। कहाँ गायब हो गई? जीत ने अपना सर पकड़ते हुए चपरासी से पूछा। उसे अपनी अब तक की मेहनत पर पानी फिरता दिखाई देने लगा, तो उसे चक्कर-सा आ गया।

"मुझे नहीं मालूम यार कहाँ है तेरी फ़ाइल। मैंने कौन-सा

यहाँ ठेका लिया हुआ है, तेरे जैसों की फ़ाइलों की रखवाली का। मैं चपरासी हूँ, चौकीदार नहीं। यहाँ पता नहीं कितनों की फ़ाइल चूहे कुतर जाते हैं, पर जो मेरी अहमियत समझते हैं, उनका काम मिनटों में हो जाता है। परसों एक चौधरी मुझे खेत की फर्द के साथ सौ रुपए पकड़ा गया। पटवारी से मैंने सबसे पहले उसके खेत का इंतकाल चढ़वाया, पर तेरे जैसे बच्चे तो मुझे अपने विद्यालय जैसा चपरासी समझते हैं। ऐसा जो पानी भरने, मेज़ों पर कपड़ा मारने का काम करता है बस।" चपरासी एक साँस में अपनी भड़ास निकालता जीत से बोला।

"अंकल जी, मेरे कागज़ खोज दो प्लीज़। मेरे सामने पटवारी ने यहीं फ़ाइल रखी थी, मगर अब नहीं है।" जीत लगभग रोते हुए बोला।

"ज्यादा मिमयाने की ज़रूरत नहीं। वह सामने स्टोर रूम के कोने में रखे मेज़ पर ध्यान से देख, शायद तेरे ही कागज़ पड़े हैं।" चपरासी एक तरफ़ बने छोटे कमरे की ओर इशारा करता हुआ बोला।

जीत ने उस कमरे में जाकर मेज़ पर पड़े कागज़ देखे, तो उसकी जान में जान आ गई। वहाँ उसकी फ़ाइल बेतरतीबी से खुली पड़ी थी। वह यह देख हैरान रह गया कि कागज़ों में ऊपर की तरफ़ लगी राशन कार्ड की नकल गंदी हो गई थी। उसने पूरी फ़ाइल के कागज़ों को उलटकर देखा। बाकी सब ठीक थे, पर उसमें पटवारी ने कहीं पर एक शब्द भी नहीं लिखा था। उसे पटवारी पर अब बहुत गुस्सा आ रहा था। उसका दिल कर रहा था कि गाँव जाकर, ईंट से उसका सर फोड़ दे।

"यह राशन कार्ड की नकल पीली कैसे हो गई?" जीत फ़ाइल खोल चपरासी के मुँह के आगे करता बोला।

"ओ... अच्छा ये। कल शाम जैसे ही छुट्टी का टाइम हुआ, यहाँ कानूनगो के साथ दो तहसील कर्मचारियों ने पटवारी को घेर लिया। फिर क्या... पटवारी को कम-से-कम दो हज़ार की चेपी लगा दी। सालों ने मुझे रात दस बजे तक परेशान किया। पूरी दो बोतल ढकार गए। मेरे ख्याल से तेरे कागज़ों पर रखकर उन्होंने अंडे और नमकीन खाए हैं। कोई बात नहीं राशन कार्ड की नकल ही खराब हुई है, मेन फ़ॉर्म तो बच गए वरना दोबारा अंबाले जाना पड़ता। राशन कार्ड की नकल दूसरी लगा लेना। ये फ़ाइल घर लेता जा। पटवारी शायद अभी तक तेरे गाँव में ही हो। अगर कहीं ओर चला गया होगा, तो कल आकर अपने सामने ही पटवारी से तस्दीक करवा लेना, वरना तो यहाँ पता नहीं कितनों की इंतकाल, फ़र्द, फ़ॉर्मों से दीमकों के पेट भर जाते हैं।" चपरासी उसे समझाते हुए बोला।

फ़ाइल ले जीत बुझे मन से अपने गाँव की तरफ़ चल दिया। 'पटवारी अगर गाँव में होगा, तो वहीं तस्दीक करा लूँगा।' यह सोच वह तेज़ी से गाँव की तरफ़ दौड़ने लगा। जीत जब गाँव पहुँचा, तब वहाँ पटवारी पुलिस की गाड़ी के पास खड़ा था। बी.डी.ओ ऑफ़िस के कर्मचारियों द्वारा लाए गए मज़दूर उसके जैसे दलित तबके के बाड़ों से बटोड़े तोड़ रहे थे। वहाँ बुलडोजर द्वारा उनके कच्चे मकान गिराए जा रहे थे, कद्, लोकी, लहसून और प्याज की छोटी-छोटी क्यारियों को तहस-नहस किया जा रहा था।

ये कब्जे उन निर्धन लोगों द्वारा किये गए थे, जिनके पास अपने पशुओं को बाँधने, उपले पाथने और घर के लिए साग-सब्ज़ी उगाने के लिए ज़मीन नहीं थी। उसके गाँव में हर दो-तीन वर्ष बाद प्रशासन का अमला आकर बटोड़े और भूस के कूप तोड़ जाता था। गरीब लोग प्रशासन के जाने के कुछ दिन बाद फिर से अवैध कब्ज़े कर लेते। गरीबों के पास झुग्गी-झोपड़ी को छोड़ अपने पशुओं के लिए कोई जगह नहीं थी, जबकि ज़मींदार सौ-सौ एकड़ ज़मीन पर कुंडली मारे बैठे थे। ये कोई नहीं जानता था कि आज़ादी के बाद ज़मीनों का किस प्रकार से आबंटन किया गया। ऐसा कौन-सा तरीका अपनाया गया, जिससे पूरे देश की ज़मीनें दो-तीन स्वर्ण जातियों के नाम हो गईं।

हरिपुर गाँव में गरीब तो पचास सौ गज पर ही कब्ज़ा करते थे, जो प्रशासन को मंज़ूर नहीं था, पर वहाँ कई एकड़ शामलात ज़मीन पर बड़े ज़मींदारों ने भी कब्ज़ा किया हुआ था। वे उस भूमि पर बेखौफ़ खेती करते थे। राजनैतिक रसूख के चलते उनका कोई विरोध नहीं करता था। दलित गरीब

लोगों द्वारा किसी भी मामले में उनके खिलाफ़ आवाज़ उठाने का मतलब था, थाने में अपनी छित्तर परेड करवाना।

आठ किलोमीटर दौड़कर आने के कारण जीत हाँफता हुआ पटवारी के पास आकर खड़ा हो गया। वहाँ पटवारी सिगरेट के सुट्टे लगाता हुआ मज़दूरों को निर्देश दे रहा था। जीत को अपने पास खड़ा देख पटवारी ढीठता से मुस्कराता हुआ बोला- "कल यार थोड़ा लेट हो गया, वरना तेरी तस्दीक कर घर जाता। ला पकड़ा अपनी फ़ाइल, फेरदूं तेरे इन कागज़ों पर काली गुग्गी।"

जीत के हाथ से फ़ाइल ले पटवारी सरपंच की मुहर के नीचे जल्दी-जल्दी काले पैन से तीन-चार लाइन लिख जीत पर अहसान जमाता बोला- "ले भई हो गया तेरा काम बिन कुछ लिए-दिए। आज तो पता नहीं सुबह किस मनहूस का थोबड़ा दिखा, साली अब तक खोटे सिक्के की भी बोहनी नहीं हुई। बी.डी.ओ, तहसीलदार ने यहाँ फोकट के काम में फँसा दिया। अपने आप तो साले सरपंचों से नोटों के गप्फे मार लेते हैं, मेरे जैसे फोकट में काम करते हैं। ये राशन कार्ड की नकल बदल लेना, कहीं अम्बाले से तुझे वापिस न आना पड़े।"

जीत का मन पटवारी को थप्पड़ जमाने को कर रहा था। 'हरामज़ादे शराबी, मेरे फ़ॉर्म पर रखकर नमकीन खाता है। एक मिनट में लिखी गई ये तीन-चार लाइन तू उस समय भी लिख सकता था, जब मैं पहले दिन तेरे पटवार खाने पहुँचा था।' उसने मन-ही-मन पटवारी को दो-तीन गालियाँ दी, मगर प्रत्यक्ष में उसने उससे पूछा- "अंकल जी, वहाँ अम्बाले फ़ाइल जमा करवाते समय मेरी माँ की तो ज़रूरत नहीं पड़ेगी?"

"अबे तेरी माँ की वहाँ कोई ज़रूरत नहीं। फ़ाइल वर्मा जी को दे दिये मेरा नाम लेकर, तेरा काम हो जाएगा।" पटवारी लापरवाही से बोला और अपने काम पर लग गया।

जाति प्रमाण-पत्र बनवाने के चक्कर में जीत की विद्यालय से कई ग़ैर-हाज़रियाँ लग चुकी थीं। वैसे तो वह अपनी कक्षा में बहुत होशियार था, मगर फिर भी उसकी पढ़ाई बाधित हो रही थी। "अगर अधिक ग़ैर-हाज़री हुई, तो तेरे पर जुर्माना लगेगा।" जिस दिन वह स्कूल जाता अध्यापक उसे डाँटते हुए कहता मगर यह कार्य ही ऐसा था, जिसे छुट्टी लेकर ही पूरा किया जा सकता था। सरकारी कार्यालय भी उसी दिन खुलते जिस दिन उसका विद्यालय लगता। वह अध्यापकों को बतलाता कि वह जाति प्रमाण-पत्र के चक्कर में विद्यालय से ग़ैर-हाज़िर हो रहा है, मगर उनको इससे कोई मतलब नहीं था।

'सरपंच, नंबरदार के दस्तख, पटवारी की तस्दीक का काम हो चुका। अब तो बस एस.डी.एम कार्यालय में फ़ाइल जमा करवा उसका जाति प्रमाण-पत्र बन ही जाएगा। कल से दिल लगाकर पढ़ाई करूँगा, जिससे ग़ैर हाज़री की पूर्ति हो सके।' यह सोचता हुआ जीत आज बहुत खुश हो रहा था। वह फ़ाइल जमा करवाने बस में सवार हो अम्बाले एस.डी. एम कार्यालय आ गया। कार्यालय पहुँचते ही उसने वहाँ बाहर केबिन में बैठी वकील साहिबा से अपने कागज़ टेस्टड करवा लिए, कोई परेशानी नहीं हुई। उसने पचास रुपए फ़ीस ली और आँख मूंदकर मोहर मार हस्ताक्षर कर दिए। जीत से कोई पूछताछ भी नहीं की।

'चलो टेस्टड तो हो गए, अब अंदर चलकर शेष कार्य निपटाता हूँ।' जीत बड़बड़ाता हुआ एस.डी.एम कार्यालय के एक बड़े हॉलनुमा कमरे में पहुँचा। वहाँ बैंच पर चपरासी बैठा था। जीत ने उसे कागज़ दिखाए तो वह बोला- "वो सामने कुर्सी पर बैठे वर्मा जी से अपनी फ़ाइल पर साइन करवा ले, फिर एस.डी.एम साहेब की मुहर लगवाकर उस कोने में बैठे गोयल साहेब को दे देना। वही तेरा जाति प्रमाण-पत्र बनाएगा।" चपरासी ने उस तरफ़ इशारा कर दिया, जिधर गोयल नामक कर्मचारी बैठा था।

'यह तो बहुत आसान है, बस मंज़िल अब केवल दो कदम दूर है। ये कितने अच्छे लोग हैं, जो उससे डाँटकर बात नहीं कर रहे।' सोचता हुआ जीत जोश में वर्मा जी की कुर्सी के पास पहुँच गया- "सर जी, मेरे जाति प्रमाण-पत्र के लिए आवेदन फ़ाइल पर साइन कर दो, मैं सब काम निपटाकर लाया हूँ।"

"लो अभी कर देता हूँ बच्चे। हम यहाँ जन-सेवा के लिए ही बैठे हैं। अच्छा... जाति प्रमाण-पत्र आवेदन फ़ाइल है। यह तो आसानी से बन जाता है और फिर हमें सरकार तनखा ही

कागज़ चैक कर साइन करने की देती है।" वर्मा नाम का वह बाबू बोलते हुए जीत की फ़ाइल में लगा एक-एक कागज़ ध्यान से चैक करने, तो जीत भी उत्साह में भर उसकी हर बात पर 'हाँ जी, हाँ जी' कहने लगा।

वर्मा जीत की तरफ़ ध्यान न दे, फिर बोला- "राशन कार्ड की नकल सही है, टेस्टड भी की हुई है। सरपंच, नंबरदार के हस्ताक्षर भी सही हैं। यार ये तस्दीक किस मूर्ख ने की है, कौन-सा पटवारी है तेरे एरीये में?"

"जी साहेब, मैं नाम नहीं जानता उसका।" जीत हकलाते हुए बोला। वर्मा के बोलने का अंदाज़ देख जीत का सारा जोश ठंडा पड़ गया। किसी अनहोनी घटना से उसके पसीने छूटने लगे।

"बाकी सब कागज़ात तो तेरे सौ प्रतिशत सही हैं, बस पटवारी की तस्दीक सही नहीं है। बाहर बूथ से नया फ़ॉर्म ले दोबारा तस्दीक करवा ला। प्रमाण-पत्र बन जाएगा, यहाँ कोई परेशानी नहीं।" वर्मा जीत की तरफ़ फ़ाइल करता बोला।

वर्मा की बात सुन जीत की साँसें अटक गईं। उसका सारा शरीर पसीना उगलने लगा। अब क्या होगा? गरीब आदमी करे भी तो क्या करे। उसे तो बस एक ही काम आता है, रोना-गिड़गिड़ाना। जीत भी झट से वर्मा के पाँव पकड़कर गिड़गिड़ाने और रोने लगा-"बाबू साहेब, पटवारी से कुछ गलती हो गई हो, तो आप ठीक कर दो। मेरी पढ़ाई का नुकसान हो रहा है। प्लीज़ प्रमाण-पत्र बनवा दो। मेरा बाप मर चुका है, बाबू साहेब। मैं विद्यालय की फ़ीस नहीं दे पाऊँगा। मुझे विद्यालय से निकाल दिया जाएगा।"

"यार तू अभी बच्चा है। मैं पटवारी का काम कैसे कर सकता हूँ। मेरा काम तस्दीक करना थोड़े ही है। यह कानूनी मामला है। मेरी नौकरी चली जाएगी। अभी छुट्टी होने में तीन घण्टे बाकी हैं। तेरे शहर का पटवारी पटवारखाने होगा। जल्दी जाकर दोबारा तस्दीक करवा ले। कल आ जाना, तेरा काम मैं सब से पहले करूँगा और बता मैं इससे अधिक क्या कर सकता हूँ तेरे लिए?" वर्मा उसे समझाकर अपने पैरों से उठाते हुआ बोला।

जीत वर्मा के पाँव पकड़ बहुत गिड़गिड़ाया पर उसने एक न सुनी। आखिरकार वह एस.डी.एम कार्यालय से बाहर आ अपना सर पकड़ एक पेड़ के नीचे बैठ गया। उसका भेजा कुंद हो चुका था। उसे पता था पटवारी, सरपंच आसानी से उसके नये कागज़ों पर साइन, तस्दीक नहीं करेंगे। अध्यापक भी अब विद्यालय से छुट्टी नहीं देंगे और माँ यहाँ आने के लिए किराये के पैसे भी नहीं दे पाएगी। उसे समझ नहीं आ रहा था कि करें, तो क्या करें। तभी वहाँ पास ही रेल पटरियों पर उसे रेल चलने की आवाज़ सुनाई दी, तो एक बार उसके मन में विचार आया कि गाड़ी के आगे कूद कर जान दे दूँ, तो उसकी सारी समस्याएँ जड़ से ही खत्म हो जाएँगी, मगर अकेली माँ का ध्यान आते ही उसने आत्महत्या के विचार को दिल में ही दबा दिया।

'आखिर तस्दीक में क्या गलत हो गया।' जीत अपने फ़ॉर्म पर पटवारी की काले पैन से लिखी हुई लाइनें ध्यान से पढ़ने लगा। लिखा था- तस्दीक किया जाता है कि जीत राम सपुत्र राम सिंह, गाँव हरीपुर टपरीयाँ, तहसील जगराव का स्थाई निवासी है। यह कि मैंने सरपंच, नंबरदार की मुहर सत्यापना के आधार पर तस्दीक कर दी है जोकि मेरे विचार से सही है।

'ओह! पटवारी को मेरे पिता का नाम राम सिंह नहीं, बल्कि राम पाल लिखना चाहिए था। राशन कार्ड, विद्यालय सर्टिफ़िकेट की नकल में भी राम पाल ही लिखा है। एक अक्षर की इतनी बड़ी सज़ा। करे कोई, भरे कोई, ये कैसा इन्साफ़ है? प्रशासनिक व्यवस्था में ऐसा नहीं होना चाहिए। एक सरकारी कर्मचारी की गलती सुधारने का हक दूसरे को होना चाहिए। पटवारी ने अगर एक अक्षर गलत कर भी दिया, तो वर्मा उसको सही कर सकता था।' सोचते हुए जीत के मन में विचार शृंखला चल रही थी- 'अगर मैं प्रधानमंत्री होता तो क्या करता। अभी पिछले हफ़्ते ही अध्यापकों ने यह आलेख अपने संज्ञान से लिखने के लिए सभी छात्रों को दिया था। मैंने उस समय जो लिखकर दिया, उसके आज सारे मायने बदल गए। मैंने गरीबों को आर्थिक रूप से सशक्त करने के लिए आलेख लिखा था, मगर अब गरीबों को अनावश्यक कागज़ात के मकड़जाल से कैसे बचाया जाना चाहिए, यह मेरा आलेख

होता।'

जीत अम्बाले से वापिस बस टेम्पुओं में धक्के खाता हुआ अपने शहर के पटवार खाने पहुँच गया, मगर वहाँ आज फिर पटवारी नदारद था। चपरासी ने बताया कि आज पटवारी छुट्टी पर है। उसे डॉक्टर से अपनी बॉडी का मुक्कमल चेकअप करवाना है। अधिक मदिरा पान करने की वजह से शुगर चरम पर और नसें ब्लॉक हैं। कल तो तुझे पता ही है रविवार है, परसों चक्कर लगा लेना। अगर आ गया, तो तस्दीक हो जाएगी।

जीत हताश निराश हो चुका था। अब तो उसे लग रहा था, जाति प्रमाण-पत्र न बनवा पाने के कारण उसका विद्यालय छूट जाएगा। उसे प्रमाणित करना ही होगा कि वह दलित है। 'क्या गड़बड़झाला है यह।' उसकी समझ में नहीं आ रहा था। वह जितना सोचता उतना उलझता जाता। 'गरीबी रेखा वाला गुलाबी राशन कार्ड उनका बना हुआ है। वोटर लिस्ट में उसकी माँ का नाम अनुसूचित जाति वार्ड में है। जन्म प्रमाण-पत्र जब उनके पास है, तब फिर जाति प्रमाण-पत्र की आवश्यकता क्यों? सरकार विद्यालय में गुलाबी राशन की नकल लगवा सकती है। सरपंच, नंबरदार तो सरकार के नुमाइदे होते हैं। जब उन्होंने लिखकर दे दिया कि मैं अनुसूचित जाति से हूँ, तब फिर पटवारी की तस्दीक की क्या आवश्यकता रह गई। पटवारी तो मुझे जानता भी नहीं।'

तेज़ गर्मी में भाग-दौड़ के कारण जीत बुखार की चपेट में आ गया। उसे पटवारी से तस्दीक कराने शहर जाना था, पर उसका शरीर जवाब दे रहा था। उसने पास की डिस्पेंसरी से दवाई ले कर खाई थी, जिससे अब बुखार तो कम था, मगर उसका पूरा बदन दर्द कर रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे शरीर अंतरिक्ष में भारहीन हो गया हो। कमरे से निकलकर वह अपने घर के आगे गली में बैठ गया। खुली हवा में आने से उसे कुछ राहत-सी महसूस हुई। तभी मोटर साइकिल पर उसे अपने गाँव का सरपंच आता दिखाई दिया।

'यह यहीं से होकर गुजरेगा।' सरपंच को अपनी तरफ़ आता देख जीत खड़ा हो गया। 'शायद जाति प्रमाण-पत्र बनवाने में कुछ मदद मिल जाये।' यह सोच सरपंच के पास आते ही जीत हाथ जोड़ ऊँची आवाज़ में बोला - "अंकल जी प्रणाम।" साथ ही, सरपंच के पास आने पर उसने गर्दन झुका उसे रूकने का इशारा किया।

"क्या समस्या है बे, तू विद्यालय क्यों नहीं गया आज? तेरी माँ नहीं दिखाई दे रही, किधर चली गई?" सरपंच उसकी तरफ़ देखने के बजाए घर के दरवाज़े के अंदर ताक-झांक करते हुए बोला।

"माँ तो भैंस के लिए चारा लेने गई है। अंकल जी मेरा जाति प्रमाण-पत्र नहीं बन पा रहा। पटवारी ने गलत तस्दीक कर दी। अम्बाले के भी कई चक्कर लग चुके हैं। मैं बहुत परेशान हूँ। आप की तो बहुत जान-पहचान है। प्लीज़ मेरा काम करा दो।" जीत सरपंच के आगे लगभग रो दिया।

"साले तेरा बाप बीस बरस तक हमारा साझी (वार्षिक तनखा पर बंधुआ मज़दूर) रहा, तो हमने तुम्हारे पूरे टब्बर को दाल-रोटी की कमी नहीं आने दी। उसके एक्सीडेंट का रोड क्लेम भी मैंने ही दिलवाया था, वरना तुम्हें खोटा सिक्का भी नहीं मिलता। उसके मरते ही तुमने आँख बदल ली। तेरी माँ मेरे विरोधियों के खेतों में दिहाड़ी करती है। उनकी मेढ़ों से घास लाती है। मेरे खेतों में क्या उसे काँटे लगते हैं, वह मेरे खेतों में नहीं आ सकती क्या?" सरपंच उसकी तरफ़ हिकारत से देखते हुए गुस्से से बोला।

"जी मैं उसे समझा दूँगा।" जीत ने उसे टालते हुए कहा। औरतों के मामले में सरपंच का चरित्र सही नहीं था। कई गरीब दलित औरतों के साथ वह बलात्कार कर चुका था। जिन्होंने आवाज़ उठाई, उन्हें डरा-धमकाकर कुछ पैसे देकर चुप करा दिया गया। सरपंच का रुतबा इस पूरे क्षेत्र में था। मंत्री, पुलिस, तहसीलदार, पटवारी जब भी गाँव में आते सभी उसकी चौपाल में ही जलपान करते। सरपंच उनके लिए दारू और मुर्गे की पार्टियाँ चलाता। पति के मरने के बाद बदनामी के डर से जीत की माँ ने उसके पास दिहाड़ी करना और उसके खेतों में जाना छोड़ दिया था।

"अच्छा तू ऐसा कर, अपने कागज़ उठा ले। थोड़ी देर में मेरा ड्राइवर शहर की कॉ-आप्रेटिव सोसायटी में ट्रैक्टर लेकर जाएगा। उसके साथ ट्रैक्टर पर बैठ ले। मैं भी वहीं पहुँच कर

देखता हूँ तेरा काम कैसे नहीं होता।" सरपंच उसे हिदायत दे चला गया।

जीत अपनी फ़ाइल उठा सरपंच की बैठक में पहुँच गया। वहाँ उसका ड्राइवर ट्रैक्टर के पीछे ट्रॉली लगा रहा था। "ट्रैक्टर के मरगाड पर बैठ जा बच्चे, आज फँसी है सरपंच साहेब को फ़्री की मुर्गी।" ड्राइवर जीत से हँसते हुए बोला मगर जीत की कुछ समझ में नहीं आया कि किस बारे में कह रहा है।

वे जब को-ऑप्रटिव सोसायटी पहुँचे, तब वहाँ सरपंच पहले ही मोटर साइकिल से पहुँच चुका था। वह वहाँ के मैनेजर के साथ बैठा कोल्ड ड्रिक्स पी रहा था। "तीस बैग यूरिया, दस पोटाश और बीस लीटर दवाई उठा के ट्रॉली में लोड कर लो जल्दी से।" वह उनके ट्रैक्टर से उतरते ही बोला।

"अंकल जी मेरे से काम नहीं होगा, मुझे दो दिन से बुखार आ रहा है।" जीत सरपंच के आगे हाथ जोड़ विनती करता बोला।

"ओये तू हट्टा-कट्टा जवान छोकरा है। आज शादी हो जाये, कल बच्चा पैदा कर देगा। काम से तो तेरी बॉडी बनेगी बॉडी, आई कुछ समझ में? अच्छा तू ऐसा कर खाद ड्राईवर के सर पर रखवाता जा, वह ट्रॉली में डाल देगा।" सरपंच खी-खी कर हँसता हुआ जीत से बोला।

जीत का बदन बुखार से टूट रहा था, पर वह न चाहते हुए भी पचास-पचास किलो के कट्टे एक तरफ़ से उठवाकर इस आस में ड्राइवर के सर पर रखवाने लगा कि सरपंच ने अगर उसका जाति प्रमाण-पत्र बनवा दिया, तो समझो एक बड़ा किला फतह हो जाएगा। जैसे-तैसे कर उसने खाद के कट्टे, दवाई की थैलियों से ट्राली लोड करवा दी। सरपंच ने ड्राइवर को ट्रैक्टर लेकर घर भेज दिया और वह जीत को अपनी मोटर साइकिल पर बैठा पटवार खाने आ गया।

"आओ जी चौधरी साहेब बैठो।" पटवारी सरपंच को देखते ही कुर्सी से खड़ा हो पास रखी एक कुर्सी आगे की तरफ़ सरकाकर आदर से सिर झुकाता हुआ बोला। जीत पटवार खाने में सरपंच का रूतबा देख हैरान रह गया।

"ओये बैठूँगा तो मैं बाद में, पहले तू यह बता कि तुझे इस इलाके में नहीं रहना क्या? साले मंत्री से कह राजस्थान के बॉर्डर पर ऐसी जगह बदली कराऊँगा, जहाँ बैठा रेत फाँकता रहेगा।" सरपंच गुस्से में पटवारी से बोला।

"आप बैठिये तो चौधरी साहेब, बतलाइये मुझसे क्या भूल हो गई?" पटवारी सरपंच को तैश में देख डर गया। उसे पता था राजनीति में उसके बहुत रसूख हैं। वह जो कहता है, करवा भी देता है।

"यह क्या है?" सरपंच जीत के हाथ से फ़ाइल ले पटवारी की मेज़ पर पटकते हुए बोला- "तेरे से एक तस्दीक तो ढंग से होती नहीं, तू हमारे कमीणों के लड़के से अंबाला चक्कर-पे-चक्कर लगवा रहा है, क्या इस गरीब से भी इंतकाल, फर्द जमाबंदी करवाने की तरह रिश्वत चाहिए तुझे?"

"अरे नहीं सरपंच साहेब। उस दिन आप के कहने पर ही गाँव में आप को वोट न देने वाले विरोधियों के पंचायती ज़मीन से कब्ज़े छुड़वाने गया था। वहीं पर आ गया था यह लड़का। गर्मी की वजह से मैं थोड़ा टेंशन में था। बस एक अक्षर की गलती हो गई। मैं आज ऑफ़िस के काम से अम्बाले जा रहा हूँ। आज शाम तक इसका जाति-प्रमाण-पत्र बनकर आप की चौपाल में पहुँच जाएगा। राम सिंह सरपंच साहेब के लिए चाय लेकर आओ और साथ में कुछ बर्फ़ी-सर्फ़ी भी लाना। कोई और सेवा हो, तो बताओ मेरे को।" पटवारी ने सरपंच से निवेदन करते हुए चपरासी को हिदायत दी और जीत की फ़ाइल को संभालकर अपनी मेज़ के ड्रॉयर में रख लिया।

"चाये-वाये ना पीनी यार थोड़ा जल्दी में हूँ। अभी मंत्री साहेब के जलसे में शामिल होने जाना है। अच्छा कल जो नौकर के हाथ तुम्हारे और बिजली वालों के घर चावल, गेहूँ पहुँचाई थी, वो मिली या नही? सरपंच ने कुछ नर्म होते पटवारी से पूछा।

"मिल गई थी चौधरी साहेब, आप ही हमारे तारणहार हो। आप वैसे ही यहाँ तक आने का कष्ट करते हो। किसी भी काम के लिए नौकरों को भेज दिया करो घंटो का काम मिनटों में कर के दूँगा।" पटवारी सरपंच के आगे हाथ जोड़ते हुए बोला।

"जो हमारी छत्रछाया में रहता है, ऐश करता है।" सरपंच

जीत की तरफ़ देख ठहाका लगाकर हँसते हुए पटवार खाने से बाहर आ गया। जीत भी उसके पीछे मोटर साइकिल के पास आकर खड़ा हो गया।

"देखा ऐसे होता है काम बच्चे। हमारे देश का सरकारी अमला विनती और गिड़गिड़ाने की भाषा नहीं समझता। इन्हें अपने ऑफ़िसरों से डाँट खा आदेश लेने की आदत पड़ जाती है। जो इन्हें डाँटता है, उसमें इन्हें अपना ऑफ़िसर नज़र आने लगता है। तू ऐसा कर, कच्चे रास्ते से गाँव पहुँच जा, मुझे अभी यहाँ मंत्री से मिलना है। शाम को अपना जाति प्रमाण-पत्र मेरी चौपाल में आकर ले जाना और विद्यालय से छुट्टी के दिन दिहाड़ी पर आ जाया कर, साथ में अपनी माँ को भी काम पर भेज दिया कर। पूरी दिहाड़ी दूँगा, मैं क्या फ़्री में काम करवाता हूँ।" सरपंच ज़ोर से हँसते हुए जीत के पछवाड़े पर हाथ मारता हुआ बोला और मोटर साइकिल स्टार्ट कर वहाँ से चला गया।

जब तक सरपंच बोला जीत हाँ में सिर हिलाता रहा। उसके जाने के बाद वह भी कच्चे रास्ते से घर की तरफ़ चल दिया। तेज़ गर्मी थी, मगर आज उसे इसका आभास तक नहीं हो रहा था। वह बहुत खुश था। अब उसे यकीन हो गया था कि जाति-प्रमाण-पत्र ज़रूर बन जाएगा। बस उसे चौपाल से उठाने से पहले थोड़ी बैगार करनी पड़ेगी।

'चलो सरकारी कर्मचारियों की डाँट-डपट, ऑफ़िसों के धक्के खाने से तो अच्छा है सरपंच की बैगार करके ही मेरा जाति प्रमाण-पत्र बन जाएगा।' वापिस गाँव की तरफ़ आते हुए जीत के मन में विचार श्रृंखला चल रही थी- 'मैं पढ़ुँगा, जी जान लगा पढ़ाई कर ऐसा मुकाम हासिल करूँगा, जिससे वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था में परिवर्तन ला सकूँ। एक ऐसा परिवर्तन, जिसमें दबंगई शक्तियों का शासन न होकर मझलूम, गरीब वंचितों की पुकार सुनी जाती हो।'

सरपंच का डर पटवारी पर इस कदर हावी था कि उसने एस.डी.एम कार्यालय से जीत का जाति प्रमाण-पत्र बनवा शाम होने से पहले ही उसकी चौपाल में पहुँचा दिया। शाम को जीत जब प्रमाण-पत्र लेने गया तो सरपंच ने पहले उससे वहाँ बाहर दालान में बंधी भैसों का गोबर फावड़े से उठवाया, फिर उन्हें नहलवा कर अंदर तबेले में बंधवा दिया। जीत को जब सरपंच की तरफ़ से अपना जाति प्रमाण-पत्र उठाकर घर ले जाने की इजाज़त मिली, तब वह उसे ले दौड़ता हुआ अपने घर आ उसको चूमते हुए फूट-फूट कर रोने लगा। महीनों तक एस.डी.एम कार्यालय, पटवार खाने के धक्के खाने के बाद आज जीत की आँखों में जाति प्रमाण-पत्र बनने की खुशी में आँसू निकल आए थे।

nkadhian@gmail.com

विदाई-समारोह

अजय कुमार पाण्डेय
मध्य प्रदेश, भारत

सुबह मैंने अपने ऑफ़िस में कदम रखा ही था कि मेरा मोबाइल बज उठा। देखा तो मेरे ही पड़ोसी वर्मा जी का फ़ोन था। मैंने फ़ोन रिसीव किया, तो उधर से वर्मा जी की उतावलापन-भरी आवाज़ सुनाई दी -

"हैलो... ठाकुर सा'ब..."

"हाँ वर्मा जी, बोल रहा हूँ... क्या बात है... आप इतने घबराए हुए क्यों लग रहे हैं... सब ठीक तो है?" मैंने एक साथ कई प्रश्न पूछ डाले। मैं जब घर से निकला था, तब तक तो सब कुछ सामान्य ही लग रहा था, अचानक वर्मा जी के फ़ोन से किसी अनहोनी की आशंका से मन भयभीत हो उठा।

"मैं अस्पताल से बोल रहा हूँ। अपने दिलीप राय जी नहीं रहे..."

"क्या..." मेरे मुँह से मानो चीख निकल गई।

"हाँ ठाकुर सा'ब, आप जल्दी आ जाइए..." वर्मा जी ने कहा और मेरे कुछ और पूछने के पहले ही फ़ोन बंद कर दिया। मैंने फ़ौरन छुट्टी की अर्जी दी और अस्पताल की ओर

निकल पड़ा। सारे रास्ते मेरे ज़ेहन में दिलीप राय की शक्ल घूमती रही। मैं अस्पताल पहुँचा, तो वहाँ भीड़ लगी हुई थी। जिसने भी यह समाचार सुना भागा-भागा चला आया था। मैंने आसपास देखा। मेरी नज़रें वर्मा जी को खोज रही थीं। अस्पताल के एक काउंटर पर वर्मा जी कुछ औपचारिकताएँ पूरी करवा रहे थे। मैं सीधा उनके पास जा पहुँचा। वर्मा जी को व्यस्त देखकर मैं चुपचाप उनके पीछे जाकर खड़ा हो गया। वर्मा जी काउंटर से मुड़े ही थे कि सामने मुझे पाकर उनके चेहरे पर संतोष का भाव उभर आया।

"चलो अच्छा हुआ ठाकुर सा'ब, आप आ गए... बहुत काम है, आपके आने से कुछ मदद मिल जाएगी"

"आखिर हुआ क्या था? कल शाम तक तो दिलीप राय एकदम ठीक थे... यह सब कैसे हो गया?" मैंने उत्सुकतावश पूछ लिया, क्योंकि मुझे अभी तक दिलीप राय की मौत का विश्वास ही नहीं हो पा रहा था। शाम को ही उन्हें विदाई पार्टी दी गई थी।

"उन्हें दिल का दौरा पड़ा था। मुझे भी आज सुबह ही पता चला..." वर्मा जी ने कहना आरंभ किया "...कल रात विदाई-समारोह समाप्त होने के बाद हम सब अपने घर चले गए थे। रात लगभग तीन बजे बेचैनी और सीने में जकड़न होने पर दिलीप राय अपनी पत्नी सुशीला के साथ अस्पताल आये थे। रात्रि पाली में मौजूद डॉक्टरों ने उन्हें फ़ौरन आई. सी. यू. में भर्ती कर इलाज शुरू कर दिया था। मैंने डॉक्टरों से बात की थी, उन्होंने बताया कि उन्हें दिल का सामान्य-सा दौरा पड़ा था और वह उसी अवस्था में पैदल ही इतनी दूर चले आये, जिससे उनकी हालत बिगड़ गई थी। यदि कोई फ़ोन कर देता, तो हम यहाँ से एम्बुलेंस भेज देते... शायद तब कुछ किया जा सकता था।" वर्मा जी थोड़ी देर रुके फिर अफ़सोस जताते हुए बोले।

"दिलीप राय को भी क्या कहें अब, पड़ोस में रहते थे, तबीयत खराब हुई, तो कम-से-कम मुझे, तुम्हें या किसी को भी खबर तो कर देना था... सुशीला का कहना है कि उसने दिलीप राय से कहा भी था किसी को साथ ले लेते हैं, पर उन्हें वक्त की नज़ाकत का ज़रा भी अनुमान नहीं लग सका था, उन्होंने यह बोलकर मना कर दिया कि इतनी रात में किसको परेशान करें, अभी चेकअप करवा कर आ जाते हैं... बाकी सुबह देखेंगे।" वर्मा जी ने एक लम्बी साँस भरी, फिर बोले- "क्या पता था कि दिलीप राय को अब सुबह का सूरज नसीब ही नहीं हो पाएगा।" मैंने सुशीला के विषय में पूछा, तो वर्मा जी ने बताया सारी रात वह अस्पताल में ही थी अब उसे घर भेज दिया है।

वर्मा जी ने मुझे भी कुछ कार्य सौंपा और आगे का इंतज़ाम करने आगे बढ़ गए। मैं वर्मा जी के निर्देशानुसार आगे की तैयारियों में जुट गया। मेरा शरीर जैसे यांत्रिक रूप से कार्य कर रहा था, जबकि मन दिलीप राय के साथ व्यतीत किये हुए समय में पहुँच गया था।

दिलीप राय को मैं काफ़ी समय से जानता था। मृदुभाषी, मिलनसार और सब के सुख-दुख में बराबरी से शामिल होने वाले दिलीप राय अपने परिचितों में बहुत लोकप्रिय थे। परिवार में उनकी धर्मपत्नी सुशीला के सिवा कोई नहीं था। संतान का सुख ईश्वर ने उनके भाग्य में नहीं लिखा था। सुशीला अधिक पढ़ी-लिखी नहीं थी। देखने में भी एकदम साधारण-सी शक्ल वाली साँवले रंग की स्थूलकाय ग्रामीण परिवेश से निकली महिला थी। अपनी जवानी के दिनों में दिलीप राय किसी निजी संस्थान में कार्य करते थे। वहीं एक ठेकेदार का काम चल रहा था। उसी ठेकेदार के पास सुशीला भी मज़दूरी करती थी। उसकी उम्र उस समय करीब बीस-बाईस वर्ष रही होगी। दिलीप राय की भी पहली ही नौकरी थी, उस समय उनकी उम्र उन्नीस वर्ष थी। एक दिन कार्य-स्थल पर दिलीप राय का पैर क्या फिसला, वे तीस फ़ीट गहरी खाई में जा गिरे थे। सुशीला की नज़र उनपर पड़ी, तो उसने ही दिलीप राय को कुछ लोगों की सहायता से बाहर निकालकर उनकी तीमारदारी की थी। दिलीप राय को ठीक होने में कई दिन लग गए थे। उस घटना का दिलीप राय पर गहरा असर पड़ा था। सुशीला की नि:स्वार्थ सेवा से अभिभूत दिलीप राय ने उम्र में बड़ी होने के बावजूद सुशीला से विवाह करने का निश्चय कर लिया था। उन्हीं दिनों दिलीप राय को सरकारी उपक्रम में नौकरी का नियुक्ति-पत्र मिला था, जिसके कारण वे सुशीला

को अपने लिए अति भाग्यशाली समझने लगे थे। अब उनके लिए सुशीला का रूप या उम्र आदि कोई मायने नहीं रखती थी। सुशीला भी बहुत खुश रहती थी। उसके जीवन में एक संतान का सुख छोड़ किसी चीज़ की कमी नहीं थी।

हायर सेकेंडरी पास दिलीप राय भारत सरकार के एक उपक्रम में एक क्लर्क के रूप में भर्ती हुए थे। उस समय उनके उच्च अधिकारियों के प्रोत्साहन के कारण उन्हें अपनी पढ़ाई जारी रखने की प्रेरणा मिली थी, जिसके फलस्वरूप उन्होंने कला विषय में पहले स्नातक, फिर परा स्नातक तक की उपाधि प्राप्त कर ली थी। बाद में, पत्राचार के माध्यम से व्यवसाय प्रबंधन में डिप्लोमा भी कर लिया था। काम के प्रति लगन, मेहनत और कुशलता के साथ समय-समय पर होने वाली विभागीय परीक्षाओं में भी सफल होते हुए दिलीप राय सेक्शन अधिकारी के पद से सेवा-निवृत्ति हुए थे। जब तक वे सेवा में रहे उनके विभाग में उनकी बड़ी इज़्ज़त थी। सभी उन्हें आदर देते थे। लेकिन सरकार के भी कुछ नियम होते हैं, उनमें सेवा-निवृत्ति के पश्चात् तीन माह में सरकारी आवास खाली करना होता है। दिलीप राय अपने सेवा काल में इतने व्यस्त रहे थे कि उन्होंने इस विषय में पहले कभी सोचा ही नहीं था। वे काफ़ी निम्न परिवार से ताल्लुक रखते थे, जहाँ से कोई इतनी उन्नति नहीं कर पाया था। उनके परिवार का कोई सदस्य जब भी उनसे मिलने आता था, तब वह सिर्फ़ पैसों की ही माँग करता था। पहले दिलीप राय सबकी भरपूर सहायता करते थे, परंतु जब उन्हें महसूस हो गया कि ये रिश्तेदार उनके मात्र पैसों के ही साथी हैं, तब उन्होंने धीरे-धीरे उनसे दूरी बनाना आरम्भ कर दिया था। उन्हें लगता था मानो सब उनके पैसों पर नज़रें जमाए बैठे हैं। अपने रिश्तेदारों से उनका मोह भंग हो चुका था। संतानहीनता के कारण उन्हें अपनी और सुशीला के भविष्य की भी चिंता होने लगी थी। वे चाहते थे कि सेवा-निवृत्ति के बाद उनका और सुशीला का भविष्य सुरक्षित रहे। अत: उन्होंने सारा ध्यान धन-संचय पर लगा दिया था। अलग-अलग बैंकों में खाते खुलवा लिए थे। सुशीला की कम शिक्षा और उसके सीधेपन के कारण उन्हें अपने साथ किसी अनहोनी हो जाने पर सुशीला को कोई बेवकूफ़ बनाकर ठग न ले, इसकी भी चिंता सताने लगी थी। सुशीला के प्रति वे अति संवेदनशील थे। वे अपनी शंका और भय हमेशा सुशीला से जताते रहते थे और उसे भी पैसों के मामले में किसी पर भी विश्वास करने से मना किया करते थे। अपनी व्यस्तता के कारण वे सेवा-निवृत्ति के बाद की कोई योजना भी नहीं बना पाये थे। अभी तक उन्होंने न अपना मकान बनवाया था और न ही उसके विषय में सोचा था।

बढ़ती उम्र, भविष्य के प्रति दुश्चिंताएँ और लोगों पर अविश्वास की भावना धीरे-धीरे किसी को भी अकेलेपन और अवसाद की ओर ले जाने का एक ठोस कारण बन जाती हैं, वही सब सुशीला के जीवन में घटित हो रहा था। इनसे बचने के लिए उसका अनेक मंदिरों में आना-जाना बढ़ गया था। धार्मिकता कब अति धार्मिकता में बदल जाती है, व्यक्ति इस विषय में अनभिज्ञ ही रहता है। बनारस से कोई संत भागवत की कथा करवाने हर वर्ष आते थे। यहाँ पर उनके बहुत से अनुयायी थे। इस वर्ष भी वे आए हुए थे। सुशीला प्रतिदिन कथा सुनने जाया करती थी। बीच-बीच में दिलीप राय को भी ज़िद करके ले जाती थी। कुछ तो संत की वाणी के सम्मोहन के फलस्वरूप और कुछ वहाँ के माहौल से प्रभावित होकर सुशीला ने उन संत को आध्यात्मिक गुरु मानकर दिलीप राय के साथ उनसे दीक्षा ले ली थी और दोनों उन्हीं के बताए हुए नियमानुसार आचरण करने लगे थे।

दिलीप राय को सेवा-निवृत्त हुए तीन माह से अधिक हो चुके थे। उनके लिए अब परिदृश्य एकदम बदल गया था। जो सम्मान उन्हें सरकारी सेवा में रहते हुए मिल रहा था वह धीरे-धीरे लुप्त-सा हो गया था। ऑफ़िस के जो लोग उनकी बड़ी इज़्ज़त करते थे, उनकी अब तक मकान न बना पाने की बात पर कहते थे कि आपको मकान बनवाने की क्या ज़रूरत है? वैसे भी आपको हम यहाँ से जाने नहीं देंगे, आप सरकारी आवास में जितने दिन चाहे रहिए... आपको खाली करने की आवश्यकता नहीं है, उनकी भी नज़रें बदल चुकी थीं। दिलीप राय के स्थान पर जो अधिकारी आया था, उसकी नज़र इसी आवास पर थी। उसने भी प्रशासन पर इसे खाली करवाने का दबाव बनाया हुआ था। सेवा-निवृत्ति के तीन महीने पूरे होने

से पंद्रह दिन पहले से ही दिलीप राय को आवास खाली करने के नोटिस आने शुरू हो गए थे।

कभी-कभी इंसान वर्तमान परिस्थितियों को ही अपनी स्थायी नियति मानने की भूल कर बैठता है। वह यह भूल जाता है कि भविष्य ही वर्तमान और वर्तमान ही अतीत में बदलता है। अत: अपने वर्तमान में रहते हुए, अपने भविष्य को योजनाबद्ध करना आवश्यक हो जाता है, ताकि जब भविष्य वर्तमान बनकर सामने आये, तब वह एक सुखद वर्तमान बनकर आये। यही भूल दिलीप राय ने भी अपने जीवन में की थी। वे समय की नब्ज़ पहचान नहीं पाये थे। उन्होंने वर्तमान को ही सब कुछ समझ लिया था। भविष्य की उन्होंने कोई ठोस योजना नहीं बनाई थी। अब उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था। जहाँ उनतालीस वर्षों के सरकारी सेवा-काल में दिलीप राय को कभी कारण बताओ नोटिस तक नहीं मिला था, वहीं अब आवास खाली करने के नोटिस ने उनके स्वाभिमान पर तीखा प्रहार किया था। नाते-रिश्तेदारों से उनके संबंध पहले से ही अच्छे नहीं थे। उनके वे साथी जो इसी विभाग के कर्मचारी-अधिकारी थे, वे भी अब उनसे किनारा करने लगे थे। उनके करीबी मित्र भी बहुत कम रह गए थे, जिनसे वे दिल खोलकर बातें कर सकें। रिश्तेदारों के बीच वे जाना नहीं चाहते थे और कॉलोनी के लोग उन्हें सरकारी आवास में रहने नहीं देना चाहते थे। वाराणसी में रहने का विचार भी उन्हें आया, मगर उनके लिए अनजान जगह होने के कारण वहाँ जाना भी उचित नहीं लग रहा था। पेंशन उनकी थी नहीं, अत: मकान बनवाने में भी बहुत सोच-समझकर निर्णय लेना आवश्यक था। उन्हें लगा कि इतना तनाव तो उन्हें उनके सेवाकाल में भी कभी नहीं हुआ था। उन्होंने नगर प्रशासन कार्यालय जाकर सबसे पहले अपने आवास में रहने की अवधि बढ़ाने के लिए आवेदन दे दिया। नियमानुसार उन्हें एक शपथपत्र भी भर कर देना पड़ा था। काफ़ी हुज़्ज़त के बाद उन्हें तीन माह की मोहलत और मिल गई थी। इन परिस्थितियों में वे स्वयं को बहुत अपमानित अनुभव कर रहे थे। इतना तो वे भी जानते थे कि इतने कम समय में किसी भी तरह वे अपना मकान नहीं बना सकते हैं। यहाँ आस-पास ज़मीन के भाव भी बहुत अधिक थे, जो उनकी पहुँच से बाहर थे और अनजान जगह वे लेना नहीं चाहते थे। समय अच्छे-अच्छों को परिस्थितियों से समझौता करना सिखा देता है। बहुत सोच-विचार के पश्चात् अंत में उन्हें अपने पैतृक गाँव में ही मकान बनाना उचित लगा। वहाँ ज़मीन भी सस्ते दामों में मिल रही थी। जहाँ तक रिश्तेदारों का सवाल था, तो उन्हें विश्वास होने लगा था कि धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा। इसी भाग दौड़ में कब तीन माह निकल गए पता ही नहीं चला। बारिश का मौसम भी आ गया था। सिर्फ़ ज़मीन की रजिस्ट्री भर हुई थी। मकान का नक़्शा आदि बनवाकर दिलीप राय काम जल्दी शुरू करवाना चाहते थे। उन्होंने काम ठेके पर दे दिया था। ठेकेदार के पास और भी महत्त्वपूर्ण कार्य होने के कारण वह दिलीप राय के मकान का काम अभी तक आरम्भ नहीं कर पाया था। इस दौरान नगर प्रशासन की ओर से फिर कई नोटिस आ चुके थे। अब उनसे आवास के लिए दंडात्मक रूप से किराया, जोकि साधारण किराये से बहुत अधिक था, वसूला जाने लगा था। साथ ही, पानी और बिजली का किराया भी व्यावसायिक स्तर पर कर दिया गया था। दिलीप राय ठेकेदार से मकान की शुरुआत करने के लिए बार-बार फ़ोन करते, लेकिन ठेकेदार आजकल, आजकल पर टालता जा रहा था। बिना मरे स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती सोचकर दिलीप राय ने अंतत: स्वयं वहीं किराये का मकान लेकर अपने सामने ही मकान बनवाने का निर्णय ले लिया।

दिलीप राय अपने पैतृक गाँव में एक मकान किराये पर तय कर आये थे। बस दो चार दिनों में यहाँ से जाने का मन उन्होंने बना लिया था। सामान की पैकिंग का काम भी शुरू करवा दिया था। लोगों को यह बात पता चली, तो सबका धीरे-धीरे उनसे मिलने के लिए आने-जाने का दौर आरम्भ हो गया। जहाँ कुछ लोग उनके जाने की खबर सुनकर खुश हो रहे थे, वहीं अनेक ऐसे थे, जिन्हें उनसे दिली हमदर्दी थी। जिन परिस्थितियों में दिलीप राय को सरकारी आवास छोड़कर जाना पड़ रहा था, वह उन्हें मानवीय आधार पर उचित नहीं लग रहा था। बारिश समाप्त होने में अभी लगभग महीने भर का समय और बचा था तब तक तो प्रशासन उन्हें रुकने की

अनुमति दे ही सकता था। दिलीप राय के हितैषी चाहते थे कि दिलीप राय एक बार नगर प्रशासन से कुछ दिनों की मोहलत और ले लें, किंतु दिलीप राय अब अपना मन बना चुके थे। वे स्वयं को और अधिक अपमानित करवाना नहीं चाहते थे। अत: उन्होंने इस प्रस्ताव को मानने से साफ़ मना कर दिया था।

जब दिलीप राय का जाना निश्चित हो ही गया, तब उनके परिचितों ने उनके सम्मान में शाम को एक विदाई-समारोह का आयोजन कर लिया। यह समाचार देने और उन्हें आमंत्रित करने पड़ोस के ही कुछ लोग उनसे मिलने गए थे। दिलीप राय पहले से ही बहुत दुखी थे। जिनके बीच अब तक रहते आये थे, जिन्हें अपने पड़ोसी अथवा दोस्त की अपेक्षा अपने परिवार का ही सदस्य मानने वाले दिलीप राय इसके लिए कदाचित तैयार नहीं थे। वर्मा जी ने जब उन्हें विदाई-समारोह के लिए आमंत्रित किया, तब दिलीप राय की आँखें छलछला उठीं। उन्हें लगा मानो उनका कलेजा मुँह से बाहर आ जाएगा। अभी तक उनका मन यह मानने को तैयार नहीं हो पा रहा था कि इन सबको छोड़कर उन्हें जाना ही पड़ेगा। उन्होंने स्वयं को संयत करते हुए शाम का न्योता स्वीकार कर लिया। सब के जाने के बाद दिलीप राय का मन उद्वेलित हो उठा। वे इतने कमज़ोर तो कभी नहीं थे। पता नहीं ऐसी क्या बात हो गई, जो आज स्वयं को संभालना उन्हें इतना कठिन लग रहा था। पैकिंग का कुछ काम अभी भी बाकी था, लेकिन अब दिलीप राय का मन उसमें नहीं लग रहा था। भीतर से बहुत बेचैनी लग रही थी। जैसे-तैसे उन्होंने स्वयं को संभाला। वे जानते थे कि अगर खुद कमज़ोर पड़े, तो सुशीला भी कमज़ोर हो जाएगी। अत: उन्होंने स्वयं को संभालना आवश्यक समझा। उनका मन पैकिंग करने से उखड़ चुका था। दिलीप राय जब थोड़ा संयत हुए, तब उन्हें लगा शाम की विदाई-समारोह में सबका आभार प्रकट करने के लिए उन्हें भी दो शब्द बोलना चाहिए। अत: वे कागज़-कलम लेकर लिखने बैठ गए। पिछले कई वर्षों के उनके अनुभव, पड़ोसियों का उनके साथ प्रेमवत व्यवहार और हर कदम पर मिले परिवार से भी बढ़कर सहयोग, हर एक घटना चलचित्र की भाँति उनकी आँखों के सामने तैरने लगी थी। कुछ पल वे लिखना भूल कर उन्हीं सुनहरी यादों में डूबते उतराते रहे। उन्होंने अपने सभी पड़ोसियों को व्यक्तिगत रूप से सम्बोधित करते हुए एक बहुत ही भावपूर्ण भाषण तैयार कर लिया। उसे कई बार पढ़ा, उसमें कई बार सुधार किया। फिर जब उन्हें विचार आया कि अब ये सुनहरे दिन उनकी यादों में ही रह जाएँगे, उनका मन बेचैन हो उठा। बड़ी कठिनाई से उनका वह दिन बीता था।

शाम को कॉलोनी के सामुदायिक कक्ष में सभी एकत्रित हुए। समारोह अच्छी तरह चल रहा था। सभी दिलीप राय के साथ अपने-अपने अनुभव साझा कर रहे थे। उनकी सुहृदयता, उनके आचरण और उनकी सदाशयता का बखान हर कोई कर रहा था। सुन-सुनकर दिलीप राय का मन भाव-विभोर हुआ जा रहा था। अपने प्रति लोगों की भावना और स्नेह देखकर उनका मन उनके काबू से बाहर हो रहा था। बार-बार वे अपनी भीगती आँखों को लोगों की नज़रें बचाकर रूमाल से साफ़ करते जा रहे थे। अंत में, जब उन्हें बोलने का अवसर दिया गया, तब पता नहीं क्या हुआ उनके मुख से शब्द ही नहीं निकल पा रहे थे। उन्होंने बड़ी कठिनाई से इतना ही कहा- "आप सभी ने मुझे इतना प्यार, अपनापन और सम्मान दिया है इसे मैं ज़िन्दगी भर नहीं भूल पाऊँगा... कहना तो मुझे बहुत कुछ था, पर मेरे शब्द मेरा साथ नहीं दे रहे हैं। आज मुझे दी गई इस विदाई पार्टी के लिए मैं आप सबको दिल की गहराइयों से धन्यवाद देता हूँ... मुझसे जाने-अनजाने में हुई गलतियों के लिए मैं आप सबसे क्षमा माँगता हूँ।" इतना कहते-कहते दिलीप राय का गला रुंधने लगा। इसके आगे वे कुछ न कह सके। विदाई एक ऐसा शब्द है, जिसके नाम में ही बिछुड़ने का भाव छिपा हुआ है। माहौल थोड़ा गमगीन हो चला था, जिसे हल्का करने के लिए वर्मा जी ने ही समारोह समाप्त कर सबसे खाना आरम्भ करने का आग्रह कर दिया था।

"ठाकुर सा'ब..." वर्मा जी की आवाज़ सुनकर मेरी तंद्रा भंग हो गई "...सब तैयारियाँ हो गई हैं... अब अधिक देर न करते हुए शव-यात्रा आरम्भ कर देनी चाहिए"।

"लेकिन अभी दिलीप राय के रिश्तेदार तो आए ही नहीं हैं, उनकी राह तो देखनी पड़ेगी।" मैंने कहा, तो जवाब में उन्होंने कहा "सुशीला का कहना है कि उनकी राह देखने की ज़रूरत नहीं है। उसे दिलीप राय पहले ही कह चुके थे, किसी रिश्तेदार पर कोई भरोसा नहीं करना। अत: उसका कहना है कि अंतिम संस्कार कर दिया जाए।"

"लेकिन अंतिम संस्कार तो कोई निकट का रिश्तेदार ही करेगा। यहाँ उनका कोई पुरुष रिश्तेदार भी तो नहीं है, किसी के आने तक तो रुकना ही पड़ेगा न।" मैंने कहा तो वर्मा जी बोले।

"जाने कहा से उसके मन में दिलीप राय ने यह बात बैठा दी थी कि जो व्यक्ति चिता को अग्नि देता है, वह मृतक की संपत्ति का उत्तराधिकारी बन जाता है। इसलिए सुशीला स्वयं चिता को अग्नि देने की ज़िद कर रही है... मैंने पंडित जी से पूछा तो उन्होंने कहा आजकल ज़माना बदल रहा है, कई जगह स्त्रियों को मुखाग्नि देते हुए देखा गया है। अत: कोई बात नहीं सुशीला को अग्नि देने दीजिए।"

दिलीप राय की तेरहवीं का कार्यक्रम पड़ोसियों ने मिल-जुलकर निपटाया। उसके बाद एक प्रश्न सुशीला को लेकर उठा। अब वह क्या करेगी? लोगों ने उससे भी जानना चाहा, कहा भी कि यदि वह कहे तो जहाँ दिलीप राय मकान बनवाना चाहता था, वहीं उसके लिए छोटा-सा घर बनवा दें, किंतु सुशीला उस स्थान पर जाना नहीं चाहती थी। दिलीप राय की मौत पर उसने किसी भी रिश्तेदार को खबर तक नहीं की थी, अत: वे भी उससे वास्ता रखना नहीं चाहते थे और सुशीला भी उनके बीच रहना नहीं चाहती थी। उसे दिलीप राय के रिटायरमेंट के पैसों को लेकर रिश्तेदारों के प्रति आशंका-सी रहती थी। इस विषय में उसने लोगों से बात करना छोड़ दिया था। लोगों को भी समझने में देर नहीं लगी कि सुशीला पैसों के मामले में किसी पर भी विश्वास नहीं करने वाली है। अत: लोगों ने भी उससे इस विषय में बोलना छोड़ दिया।

एक दिन बनारस से गुरु जी के कुछ शिष्य एक बड़ी-सी गाड़ी लेकर सुशीला के घर के सामने आकर रुके। पड़ोसियों ने देखा पर समझ नहीं पाए, आखिर माज़रा क्या है? दूसरे दिन देखते-देखते सुशीला का सारा सामान उन्होंने गाड़ी में लादा और सुशीला को साथ लेकर जाने लगे। जाने से पहले सुशीला सबसे मिलने आई। लोगों ने पूछा, तो उसने बताया कि एक दिन उसने बनारस अपने गुरु को फ़ोन लगाया था और उनसे सारी बातें सविस्तार बताकर गुरुजी का मार्गदर्शन माँगा था। गुरु जी ने कुछ देर सोचकर सुशीला को आश्वस्त करते हुए अपने शिष्यों को उसके पास भेजने की बात कही थी। उन्होंने कहा था कि वह अपने पैसों की बिल्कुल फ़िक्र न करे, उसे बनारस लाकर गुरुजी के ट्रस्ट में जमा कर दे, बदले में आश्रम में आजीवन उसके रहने और खाने की व्यवस्था हो जाएगी। उसका मन करे, तो आश्रम के कुछ छोटे-मोटे काम कर दिया करे। इस तरह उसका जीवन सुधर जाएगा और आराम से ईश्वर की सेवा करते हुए बनारस में गंगा के तट पर मोक्ष की प्राप्ति भी हो जाएगी। इसे शिक्षा का अभाव कहें अथवा धार्मिक आतंक, जो सुशीला रुपये-पैसों के मामले में अपने सगे रिश्तों पर विश्वास नहीं करती थी, वह गुरुजी के एक संकेत मात्र से अपनी सारी जमा पूँजी बिना आगा-पीछा सोचे उनके आश्रम में दान करने पर सहर्ष तैयार हो गई थी। उसने गुरुजी के शिष्यों के कहने पर दिलीप राय द्वारा खरीदी गई ज़मीन बेचने के लिए दस्तावेज़ों पर अपने अंगूठे की छाप भी दे दी थी। वर्मा जी ने उससे बस इतना ही कहा था।

"देखो सुशीला, दुनियादारी के विषय में अभी तुम कच्ची हो। कोई भी निर्णय लेने के पहले किसी जानकार से मशविरा अवश्य कर लेना चाहिए। तुमने इतना बड़ा फैसला ले लिया... एक बार हम लोगों से पूछने की तुमने आवश्यकता नहीं समझी? हम लोगों से न सही अपने रिश्तेदारों से तो सलाह ले सकती थी..." एक पल रुककर कुछ सोचते हुए वर्मा जी ने फिर कहा "... यह पैसा थोड़ा-थोड़ा कर तुम किसी रिश्तेदार को देती, तो वह भी तुम्हारा एहसानमंद होकर तुम्हारी अच्छी सेवा करता। तुम किसी को गोद ले सकती थी। अपनों के बीच भरे-पूरे परिवार में रहने का सुख तुम्हें मिलता। यह तुमने अच्छा नहीं किया..." सुशीला अपनी गर्दन झुकाए वर्मा जी की बातें चुपचाप सुनती रही। उसे समझ नहीं आया, वह क्या जवाब दे। उसे शांत देखकर वर्मा जी ने फिर कहना आरम्भ

किया "...जब तुम्हें ईश्वर पर इतनी श्रद्धा है, तब तुम दिलीप राय वाली ज़मीन पर अपने लिए एक छोटे-से घर के साथ एक मंदिर भी बनवा लेतीं। वहीं तुम्हारा पूजा-पाठ भी चलता और तुम वहीं भजन-कीर्तन भी करवा सकती थीं।"

एक पल को तो ऐसा लगा मानो सुशीला पिघल रही है, वह शायद अपना फ़ैसला बदलकर वर्मा जी की बातों से सहमत हो जाएगी, परंतु अगले ही पल उसने आत्मविश्वास से भरे ठोस शब्दों में वर्मा जी की ओर देखकर कहा- "आपका कहना शत-प्रतिशत ठीक है, लेकिन पति की मौत के बाद मेरा मन इस संसार के मोह जाल से पूरी तरह विरक्त हो चुका है। मैं नहीं जानती कि मेरा यह निर्णय कितना सही या कितना गलत है... मेरे पति जिन रिश्ते-नातेदारों से एक दूरी बनाए हुए थे, मैं भला कैसे उन्हें अपना सकती हूँ, रही बात किसी को गोद लेने की, तो जब उन्होंने अपने जीवन-काल में किसी को गोद लेने के विषय में नहीं सोचा, तब मैं कैसे उनके सिद्धांतों के विरुद्ध जा सकती हूँ...?" सुशीला साँस लेने के लिए रुकी। उसने गिलास से थोड़ा पानी पिया फिर कहने लगी "...जब मेरा सुहाग ही नहीं रहा, तब मैं दुनियादारी के बंधन में बँधकर क्या करूँगी? जिन रिश्तेदारों से उन्होंने जीते-जी संबंध नहीं रखे, अब उनके बीच जाकर रहना मुझे उचित नहीं लगता है। रहा सवाल बनारस का, तो मुझे यकीन है, वहाँ मैं शांति से रह पाऊँगी। गुरुजी के आश्रम में रहकर उनकी सेवा करके और ईश्वर के ध्यान में बाकी जीवन गुज़ार दूँगी। वैसे भी अब उम्र ही कितनी बची है और अब तो ज़िन्दगी से भी मोह समाप्त हो चला है।"

वर्मा जी जान गए कि चिकने घड़े पर पानी ठहरने वाला नहीं है। सुशीला ने जो रास्ता चुन लिया है अब वह इससे तनिक भी हिलने वाली नहीं है। अत: उन्होंने भी अब इस विषय को यहीं पर समाप्त करना उचित समझा। अंत में, उन्होंने अपनी ओर से उसे आगामी जीवन की शुभकामनाएँ दीं तथा स्वयं का ध्यान रखने और समय-समय पर अपनी खबर करते रहने की नसीहत देते हुए विदा किया। पड़ोस के प्राय: सभी लोग उपस्थित थे। सबसे विदा होकर माहौल को गमगीन करती हुई सुशीला गाड़ी में जा बैठी।

दो वर्ष बाद

मैं अपने ऑफ़िस जाने के लिए तैयार होकर नाश्ते की मेज़ पर बैठा नाश्ते की प्रतीक्षा कर रहा था। अंजली रसोई में आलू के परांठे सेंक रही थी। सोनाली की कॉलिज की परीक्षा चल रही थी। वह देर रात तक पढ़ाई करती थी। अत: सुबह देर से ही उठती थी। रसोई से आती हुई परांठे की भीनी-भीनी सुगंध भूख बढ़ाती जा रही थी। मैं अपने मोबाइल पर व्हाट्सएप पर सुप्रभात के संदेशों का आदान-प्रदान कर रहा था। अचानक मेरा फ़ोन बज उठा। देखा तो स्क्रीन पर वर्मा जी का नाम उभरकर आ रहा था।

"हैलो वर्मा जी गुड मॉर्निंग..." मैंने मोबाइल कान से लगाते हुए कहा।

"गुड मॉर्निंग ठाकुर सा'ब, टी. वी. पर आज का समाचार देखा आपने?"

"क्यों... कोई खास बात है क्या...?" मैंने पूछा। मैंने टी. वी. पर समाचार की सिर्फ़ प्रमुख पंक्तियाँ ही देखी थीं, जिनमें राजनीति की बातें ही अधिक थीं। कोई रुचिकर समाचार मेरी समझ से नहीं था। वैसे भी मैं सुबह ऑफ़िस जाने के समय टी. वी. पर अधिक समय नहीं दे पाता था।

"अरे जल्दी से ज़ी न्यूज़ उत्तर प्रदेश लगाओ।" वर्मा जी ने जल्दी से कहा। वर्मा जी मूल रूप से आजमगढ़ के थे। अत: वे उत्तर प्रदेश के समाचार अवश्य देखते थे।

"बस, अभी लगाता हूँ..." मैंने दूसरे हाथ से टी. वी. का रिमोट लेकर टी. वी चालू किया। फिर ज़ी न्यूज़ सर्च करते हुए पूछा "...क्यों भाई क्या हो गया?"

"अरे, बनारस का एक समाचार आ रहा है। एक महिला की ट्रेन के नीचे आ जाने से मृत्यु हो गई है...।"

"तो इसमें इतनी हैरान होने की क्या बात है... आये दिन ऐसे हादसे होते रहते हैं" मैंने कहा, तो वर्मा जी कह उठे "आये दिन होने वाले हादसों की बात मैं नहीं कर रहा हूँ। पहले उसे देखो तो सही।"

मैंने ज़ी न्यूज़ लगाया, तो उसमें वही खबर सविस्तार बताई जा रही थी। जो महिला ट्रेन के नीचे आई थी, उसकी तस्वीर भी आ रही थी। उसके बाल रूखे और बिखरे हुए

थे। सूखा झुर्रियों वाला चेहरा ऐसा लग रहा था, मानो उसने कई दिनों से कुछ न खाया हो। समय की मार उसके चेहरे पर स्पष्ट रूप से देखी जा सकती थी। साड़ी पर जगह-जगह थिगड़े लगे हुए थे। मुझे तो कोई अनजान ही लगी थी। मैंने वर्मा जी को फ़ोन लगाया और पूछा इसमें क्या विशेष बात है, तो उन्होंने आश्चर्य से पूछा- "आपको कोई विशेषता नज़र नहीं आ रही है? ज़रा ध्यान से देखो, ये सुशीला जैसी नहीं लग रही है? वह भी तो बनारस चली गई थी।" अब मैंने उसे ध्यानपूर्वक देखा- "अरे हाँ... यह तो वही है... शत-प्रतिशत सुशीला ही है। पर वह तो किसी संत के आश्रम में थी।" उत्तेजनावश मेरी आवाज़ कुछ अधिक तेज़ हो गई थी। मेरी आवाज़ सुनकर अंजली भी रसोई से निकल आई। पूछा- "क्या हो गया...?" मैंने उसे टी. वी. की ओर देखने का इशारा किया। अंजली ने थोड़ी देर टी. वी. देखा फिर वह भी बोल पड़ी- "अरे... यह तो सुशीला है।" वह भी टी. वी. पर नज़रें गड़ाकर बैठ गई। बनारस रेलवे स्टेशन से ज़ी. टी. वी. का संवाददाता बोले जा रहा था।

"यह महिला पिछले डेढ़ वर्षों से रेलवे स्टेशन पर ही भीख माँगकर या ट्रेन की बोगियों में झाड़ू लगाकर यात्रियों से पैसे माँगकर अपना जीवन-यापन कर रही थी। जानकारों का कहना है कि यह पिछले कुछ दिनों से बीमार थी। भागलपुर एक्सप्रेस प्लेटफ़ॉर्म पर खड़ी थी। एक बोगी में चढ़कर झाड़ू लगाकर उसके एवज में जिसने जो दिया, उसे लेकर वह ट्रेन से उतर ही रही थी कि एक झटके से ट्रेन आगे बढ़ गई। कमज़ोरी और भूख के कारण वह स्वयं को संभाल नहीं सकी और प्लेटफ़ॉर्म से होती हुई रेल की पटरियों पर जा गिरी। किसी ने चेन खींचकर गाड़ी रोकी, लेकिन तब तक गाड़ी के कई पहिए उसके शरीर को रौंदते निकल गए थे। उसका शरीर वहीं पर थोड़ी देर तड़पकर शांत हो गया।" फिर उसने स्टेशन पर काम करने वाले एक कुली का इंटरव्यू दिखाया। उससे पूछा-

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"रामकिसन"

"यहाँ कब से काम करते हो?"

"करीब छ: सात साल से"

"इन माताजी के बारे में कुछ जानते हो?

"मैं इन्हें अच्छी तरह जानता हूँ। ये पहले ऐसी नहीं थीं। करीब दो साल पहले कहीं से एक बाबाजी के आश्रम में आई थीं। सुना है इनके पति की मौत के बाद बाबाजी और उनके चेले उनकी सारी सम्पत्ति और रुपया पैसा सब अपने आश्रम के नाम कर, आश्रम में ही उम्र भर रहने का लालच देकर इन्हें बनारस ले आये थे। यह भोली-भाली महिला पता नहीं कैसे इन ढोंगियों के चक्कर में पड़ गई थी। आश्रम में होने वाले क्रिया-कलाप देखकर कुछ दिनों में ही आश्रम से इसका मोह भंग होने लगा था। जब तक इसे अपने ठगे जाने का एहसास होता, बहुत देर हो चुकी थी। इसने बाबाजी से आश्रम छोड़ने की बात की, तो उन्होंने कह दिया जहाँ जाना हो वह चली जाए। और जब उसने अपने पैसे माँगने चाहे, तब बाबाजी ने साफ़ कह दिया कि वह तो आश्रम के ट्रस्ट में जमा हो चुके हैं, वापस नहीं मिलेंगे। लाचार होकर इसने पुलिस में रिपोर्ट लिखवाने की धमकी दे डाली। बस फिर क्या था बाबाजी का गुस्सा सातवें आसमान पर जा पहुँचा। उन्होंने धक्के मारकर उसे आश्रम से बाहर निकलवा दिया। सा'ब यहाँ धार्मिक माफ़ियाओं का गिरोह चलता है। एक सीधी-सादी महिला इनके विरुद्ध कर भी क्या सकती थी? बेचारी इधर-उधर भटकती, भूखी-प्यासी स्टेशन पर आ गई। पिछले डेढ़ साल से वह यहीं रहकर यात्रियों के रहमो करम पर अपना गुज़ारा कर रही थी। जो हुआ बहुत बुरा हुआ, लेकिन मेरा मानना है, इसके लिए अच्छा ही हुआ, क्योंकि जीते-जी तो इसके दुखों का अंत होना नामुमकिन ही था..."

यह समाचार टी. वी. में बार-बार दिखाया जा रहा था। रसोई से परांठे जलने की दुर्गंध बाहर तक आने लगी थी। अंजली अचानक उठी और रसोई की ओर भागी। मैंने उसकी आँखों में छलक आई नमी को महसूस किया। मेरा मन भी बहुत विचलित हो गया था। ऑफ़िस जाने का बिल्कुल मन नहीं कर रहा था। मैंने अपने ऑफ़िस में फ़ोन लगाकर कह दिया आज अस्वस्थता के कारण नहीं आ पाऊँगा।

मैं बहुत देर तक बैठा कुछ अनसुलझे प्रश्नों को हल

करने का प्रयास करता रहा। मुझे दिलीप राय का उस रात का विदाई-समारोह याद आ रहा था। उस दिन के विदाई-समारोह से आज के टी. वी. समाचार के बीच के घटनाक्रम पर विचार करता हूँ, तो मुझे यह समझ नहीं आता है कि इस सारे घटनाक्रम में आखिर दोष कहाँ और किसका था? हमारी सरकारी व्यवस्था इसी तरह की है, भले ही लोग कहते हैं कि जहाँ चालीस वर्ष मर-मरकर काम किया, वहीं सेवा-निवृत्त होने पर सारा महकमा रिटायर हुए व्यक्ति के पीछे लग जाता है। उसे चार महीने भी सरकारी आवास में रहने की पात्रता नहीं होती है। मैंने विचार किया यह तो विधि का भी विधान है कि जो जन्म लेता है, उसका समय पूरा होने पर उसे भी नश्वर देह त्यागना ही पड़ता है। अत: मोह-माया के भँवर में इतना अधिक भी नहीं फँसना चाहिए, जिससे बाहर निकलना मुश्किल हो जाए। यह सच सभी को स्वीकार करके स्वयं को परिवर्तन के लिए तैयार रखना बहुत ज़रूरी हो जाता है। किसी भी व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए ही नियम बनाए जाते हैं, जिन पर चलना सबके लिए आवश्यक होता है, वरना अव्यवस्था फैलने में देर नहीं लगती है।

यह अपनी तरह का अनोखा विदाई-समारोह था, जिसका परिणाम इस तरह सामने आया था। कहाँ लोगों ने शहर से विदा करने के लिए विदाई-समारोह किया था और कहाँ पहले दिलीप राय और अब सुशीला दोनों संसार से ही विदा हो गए थे।

ajaypandey117@gmail.com

एक साहित्यकार के आँसू

रंगनाथ द्विवेदी
जौनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

आज, पूरे तीन वर्ष बाद अपने ऑफ़िस के काम से मेरा कानपुर आना हुआ था। ऐसे में मुझे मनहर जी से मिलने की बड़ी इच्छा हुई। इसलिए मैंने एक रिक्शेवाले को हाथ देकर अपने पास बुलाया और उससे कहा कि, मुझे कबाड़गली की बाई तरफ़ नाले के पास जाकर खत्म हो रही सड़क पर छोड़ सकते हो क्या? रिक्शेवाले ने अजीब-सा मुँह बनाकर पहले मुझे एक बार ऊपर से लेकर नीचे तक बहुत ही गौर से देखा और फिर वह मुझसे बोला- 'छोड़ तो सकता हूँ, साहब! लेकिन सत्तर रुपए लगेंगे।' हालाँकि मैं यह जान रहा था कि रिक्शावाला मुझसे अधिक किराया माँग रहा है, लेकिन मेरी भी मजबूरी थी, क्योंकि उस बस्ती की तरफ़ रिक्शे के अलावा कोई भी अपनी गाड़ी आदि लेकर दिन में भी नहीं जाता था, क्योंकि वहाँ उनके दिन भर की कमाई को उच्चको के द्वारा छीन लिए जाने का खतरा बना रहता था।

ऐसे में किसी तरह एकाध रिक्शेवाले रिस्क लेकर जाने के लिए तैयार हो जाते थे, तीन वर्ष पहले भी उनके यहाँ कबाड़ गली में जाने के लिए कमोबेश यही स्थिति थी। दरअसल, मनहर जी से मेरा यह अगाध स्नेह उनके उत्कृष्ट साहित्य लेखन की वजह से था, पर उनकी माली हालत इतनी दयनीय और कमज़ोर थी कि, मेरे ख्याल से वे केवल कानपुर ही नहीं, बल्कि पूरे हिंदी साहित्य जगत् के एकलौते ऐसे व्यक्ति थे, जिनकी माली हालत इतनी खराब थी।

किसी तरह उन दिनों उनकी पत्नी और उनके बेटे प्रिंस का पेट पलता था और रहने के नाम पर या सर छुपाने के नाम पर किराए का एक बदबू से भरा हुआ कमरा था। उस बदबू का मुख्य कारण था कि उस कमरे के जस्ट बगल से शहर के तमाम कचरों से भरा हुआ एक गंदा नाला बहता था, जोकि इस बदबू को और चौगुना कर देता था। उसपर अगर कभी-कभार कोई मरा हुआ कुत्ता बहकर आ जाता था, तो साँस लेने की स्थिति और विकट हो जाती थी।

ऐसे परिवेश में रहना उनके जैसे अभावग्रस्त हिंदी साहित्यकार की नियति थी। मैं जब उन दिनों कानपुर में रहा करता था, तब उनसे महीने में एकाध बार मिलने और उनसे घंटों साहित्य की बातें करने पहुँच जाता था, हालाँकि मुझे

उनके चेहरे से यह स्पष्ट परिलक्षित होता था कि जैसे वे नहीं चाहते थे कि, मैं ऐसी जगह उनसे मिलने और घंटों साहित्य-वार्ता करने के लिए आऊँ, क्योंकि उन्हें पता था कि इस जगह एक सामान्य नौकरी पेशा व्यक्ति या आदमी का साँस लेना दुर्भर है, लेकिन मैं उनका साहित्यिक मुरीद था और उन दिनों मेरी सबसे बड़ी उपलब्धि थी, उनसे साहित्य से जुड़ी हुई बातें करना, एक तरह से अगर कहूँ, तो मेरा कानपुर प्रवास केवल एक नौकरी पेशा प्रवास नहीं था, बल्कि वह मेरे साहित्य भूख की अलौकिक तृप्ति थी, जो मुझे मनहर जी से प्राप्त हुई।

अक्सर! जब मैं उनके इस बदबूदार कमरे में पहुँचता, तब वे संकोचवश अपनी पत्नी से कहते कि यशोदा ज़रा दो कप चाय बना देती। यशोदा, मनहर जी की पत्नी थी। एक बार मैं मनहर जी की अनुपस्थित में पहुँच गया था। उस दिन मैंने अवसर देखकर थोड़ी-सी आर्थिक मदद करनी चाही, तो यशोदा ने कहा- 'नहीं! हमें इसकी ज़रूरत नहीं, आप शर्मिंदा न करें।' मैं यशोदा का यह उत्तर सुनकर झेंप गया, लेकिन उनके इस आत्म-सम्मान के सामने बार-बार मेरी इच्छा नतमस्तक होने की हो रही थी।

मनहर जी का साहित्य-चिंतन, लेखन और उनके साहित्य-वार्ता का जादू नहीं, तो और क्या है? जिसकी हर डुबकी मेरी साहित्यिक प्यास को पहले से और ज्यादा बढ़ा देती है। आखिर हिंदी साहित्य की इस घाट पर इसके प्यासे कब पहुँचेंगे? आखिर इस कमरे के साहित्य को यह देश कब पहचानेगा और उनके उत्कृष्ट साहित्य को सम्मान देगा। जबकि इस देश में कुछ पूँजीपति साहित्य के पुरस्कारों की खरीद-फ़रोख़्त कर रहे हैं।

मनहर जी के रूप में हिंदी साहित्य का वास्तविक यथार्थ, कानपुर के इस बदबूदार कमरे में अपने अभाव और अक्षमता की साँस ले रहा था, जहाँ कोई इंसान तो क्या जानवर भी साँस लेना गँवारा न करें। तभी मनहर जी आ गए और मेरी सोच की तंद्रा भंग हो गई- 'अरे! अंबरीश तुम आए हो, बैठो-बैठो!' मैं अभी मनहर जी के कहने पर तीन टांग की एक टूटी कुर्सी पर ठीक से बैठा भी नहीं था कि मनहर जी के कमरे का मालिक किराया लेने आ धमका और उनसे बड़े अपमान-जनक शब्दों में बोला कि तुमने तीन महीने से इस कमरे का किराया नहीं दिया, अगर किराया नहीं दे सकते, तो चार दिन बाद यह कोठरी खाली करके चले जाओ।

उस नर्क के मालिक के इस व्यवहार ने उस दिन मेरे साहित्यिक मूड को खराब कर दिया। मैंने कनखियो से मनहर जी की तरफ़ देखा, जो शायद कहीं ट्यूशन पढ़ा के अभी लौटे थे। मनहर जी की यथास्थिति पर यह ज़िक्र करना मैं भूल गया कि इस साहित्यकार के इस छोटे-से परिवार को भूख से निजात दिलाने का बस एक यही रास्ता था कि वे दो-तीन ट्यूशन इधर-उधर पढ़ा आते थे। उनकी स्थिति से स्पष्ट था कि वे ट्यूशन से कितना कमा लेते थे। वे पढ़े-लिखे विद्वान थे, पर इस सरस्वती-पुत्र से जैसे लक्ष्मी जी ने अपना कोई व्यक्तिगत खुन्नस निकाला हो। वह जब तगादा कर चला गया, तब मनहर जी कुछेक तनाव-भरी साँसें लेकर सामान्य होने का ड्रामा कर, पत्नी यशोदा से बोले- 'दो कप चाय बना दो।'

यशोदा ने चाय रखने के लिए ज्योंही अपना कदम बढ़ाया, त्यूँहि मैं उनकी चाल से यह भाँप गया कि अभी वे डिब्बे के पास पहुँचकर चीनी के डिब्बे को खोलेगी और मनहर जी से यह कहेगी- 'अरे! चीनी तो समाप्त हो गई', जबकि उन्हें पहले से पता होगा कि चीनी तो पहले से ही खत्म है। मैं उनके पास साहित्यिक-वार्ता के लिए कई बार आ चुका था, इसलिए काफ़ी हद तक उनकी कुछ मौन बातें भी समझ जाता था। इससे पहले कि चीनी खत्म हो गई कहने की नौबत आए, मैं उनसे पहले ही यह कह गया कि रहने दीजिए चाय पीने की अभी इच्छा नहीं है, क्योंकि जब मैं आपसे मिलने आ रहा था, तब यहाँ पहुँचने से पहले ही मेरे आफ़िस में साथ काम करने वाले एक मित्र ने मेरे लाख मना करने के बाद भी एक पास की दुकान में मुझे ज़बरदस्ती चाय पीला दी। वैसे भी आप जानते हैं कि अत्यधिक चाय पीने से गैस की प्रॉब्लम हो जाती है। मेरा यह झूठ हिंदी साहित्य का यह मनीषी न समझ पाया हो, ऐसा हो ही नहीं सकता, लेकिन क्या करें? उस दिन मैं एक आवश्यक कार्य का हवाला देकर उनके कमरे से जल्द ही बाहर निकल आया, तो वहीं से कुछ दूर एक मैली-कुचैली-सी कड़ाही में अपनी बहती नाक को पूरी फुहड़ता के

साथ पोंछकर आलू की टिक्की निकाल रहा था, एक व्यक्ति से पूछा कि 'भाई आप यह बता सकते हैं कि आपकी बायी तरफ़ जो कमरा है, उसके मालिक का घर कहाँ है?' जी हाँ! क्यों नहीं? उनका नाम रामअचल है। यहाँ से दाहिने तरफ़ जाने के बाद बामुश्किल चार सौ मीटर पर आप अपनी बाई तरफ़ मुड़ जाइएगा, बस सामने सबसे पहले उन्हीं का घर है। मैं उस टिक्की तल रहे आदमी को धन्यवाद कहकर उस ओर चल पड़ा, जिधर कि उसने उस कमरे के मालिक का घर बताया था।

मैं जब उस पूराने मकान के बाहर पहुँचा, तब देखा कि उसने अपने दरवाज़े पर जुगाड़ से तैयार किए हुए लकड़ी के एक छोटे-से फट्टे पर अपना नाम लिखा हुआ था। मैंने जब नाम पढ़ा, तब मैं समझ गया कि मैं उसी महानुभाव के घर पर पहुँच गया हूँ, जिसका पता मुझे आलू की टिक्की तलने वाले उस व्यक्ति ने बताया था। कुछ देर खड़े होने के बाद मैंने दरवाज़े को खटखटाया, तो अंदर से एक कर्कशा स्त्री की आवाज़ आई। मैं तुरंत समझ गया कि इस आवाज़ की मालकिन कोई और स्त्री नहीं, बल्कि मनहर जी के मकान मालिक की पत्नी ही हो सकती है। अतः मैंने कहा- 'जी! मैं रामअचल जी से मिलने आया हूँ।'

'चले जाओ! वहीं दाहिने कमरे में बैठे होंगे निठल्लों की तरह और उनको काम ही क्या है, बैठने के अलावा। मेरी किस्मत ही फूटी थी, जो पिताजी ने मेरी शादी ऐसे कुढ़ मगज़ आदमी से कर दी। मैं क्या थी, इनके साथ ब्याह करके क्या हो गई।' इतना कहकर वह बड़बड़ाती हुई आगे बढ़ गई और मैं हल्की-सी मुस्कान के साथ उस कमरे में पहुँच गया, जहाँ वे महाशय जिस पहनावे में बैठे थे, उनसे कहीं अच्छे पहनावे में तो भीख माँगने वाले अपने भीख माँगने के अड्डे पर बैठते हैं।

मैंने इन स्थितियों को नज़रअंदाज कर अपने दोनों हाथों को नमस्ते की मुद्रा में जोड़ा। उन्होंने अपने उसी रसहीन भाषा में पूछा- 'आप कौन है? जहाँ तक मुझे याद है, मैं इससे पहले आप से कभी और कहीं नहीं मिला हूँ।' उस बदमिजाज़ आदमी ने मुझे बैठने के लिए भी नहीं कहा। बस अपने सवाल के उत्तर की प्रतीक्षा में मेरे चेहरे को एकटक देखने लगा जैसे वह बात को बहुत जल्द खत्म करने को लालायित हो। मैंने कहा- 'जी बिल्कुल! सही कहा आपने, मैं इससे पहले आपसे कभी नहीं मिला हूँ।' फिर उसने 'हूँ' ऐसे कहा जैसे उसने अपने इस 'हूँ' के साथ यह कहा हो कि फिर यहाँ क्या तेल लेने आए हो, लेकिन मैंने जैसे ही मनहर जी का नाम लिया, तो उसने मुझे ऐसे देखा जैसे कि वह मेरा एक्सरे कर रहा हो। एक्सरे करने के बाद वह बोला- 'मुझे तो तुम्हारी वेशभूषा से नहीं लग रहा है कि तुम मेरे उस कमरे के किराएदार होने लायक हो।' उसने यह अंदाजा मेरे हाव-भाव और पहनावे से लगाया था। मैंने भी उससे कहा- 'बिल्कुल सही समझा आपने, मैं यहाँ आपसे वह कमरा किराए पर लेने के लिए नहीं आया हूँ। मैं तो बस केवल आपसे यह पूछने के लिए आया हूँ कि आपका मनहर जी के यहाँ कितना किराया हुआ और कितने महीने का किराया बाकी है बताइए?'

उसने कहा- 'इस महीने को लेकर 4 महीने हो गए, लेकिन वह ससुरा है कि किराया देने के नाम पर मुझे हर महीना केवल आनाकानी कर टाल रहा है। अब मैं और अधिक दिन तक उसको किराए पर नहीं रख सकता। आखिर मैंने कोई धर्मशाला थोड़ी खोल रखा है।' मैंने जब उस व्यक्ति को मनहर जी के लिए 'ससुरा' शब्द सुना, तब बड़ी इच्छा हुई कि मैं इस बदतमीज़ आदमी के चेहरे पर दो-तीन तमाचे रसीद कर दूँ, लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सकता था। मैंने उससे पूछा- 'कितना किराया हुआ', तो उसने बताया इस महीने को लेकर टोटल तीन हज़ार होते हैं। मैंने उसे 6000 रुपए दिए और यह कहा अब तुम मनहर जी से किराया मत माँगना और वे लाख पूछें, उन्हें यह मत बताना कि मैंने उनका सारा किराया चुकता कर दिया है। उसने झट पैसे को पकड़ते हुए कहाँ कि मुझे क्या पड़ी है बताने की! मुझे तो बस अपने किराए से मतलब है, चाहे वह आप से मिले या फिर मनहर जी से।

मैं रिक्शावाले को किराया देकर उसके रिक्शे से उतरकर जल्द-से-जल्द उस कमरे की तरफ़ बढ़ चला, जहाँ मेरे हिंदी साहित्य के महबूब लेखक मनहर जी उन दिनों किराए पर रहा करते थे। जब मैं कानपुर में नौकरी कर रहा था, तब मैं जैसे ही उस कोठरी के बाहर पहुँचा, तब मैं भावा वेश में यह

तक भूल बैठा कि मुझे उस कमरे के अंदर जाने से पहले एक बार कम-से-कम आवाज़ देकर या दरवाज़े को खटखटाकर जाना चाहिए था, लेकिन मैं बिना किसी औपचारिकता के कमरे के अंदर प्रवेश कर गया, जैसे ही मैंने उस अंधेरी सीलन और बदबूदार कमरे में प्रवेश किया तो वहीं जानी-पहचानी-सी बदबू ने मेरा स्वागत किया।

लेकिन अचानक से उजाले में से अंधेरे कमरे में आने की वजह से मेरी आँखें वहाँ कुछ देखने लायक थोड़ी देर बाद हुई। तब मुझे वहाँ टूटी चारपाई पर मरणासन्न लेटे हुए मनहर जी दिखाई दिए। उनकी हालत देखकर मुझे यह विश्वास ही नहीं हो रहा था कि यह वही मनहर जी है, जिनसे मैं तीन वर्ष पहले मिला करता था। वे काफ़ी जीर्ण-शीर्ण से हो गए थे।

उन्होंने मेरे उस कमरे में पहुँच जाने के बाद भी, मुझे नहीं पहचाना और न ही कोई प्रतिक्रिया व्यक्त की, तो मैं खुद ही उनके करीब जाकर उसी तीन पाए वाली टूटी कुर्सी पर बैठ गया, जिसपर मैं उन दिनों बैठा करता था। मैंने तीन-चार बार मनहर जी को आवाज़ दी तब जाकर उन्होंने अपनी मूंदी हुई आँख थोड़ी-सी खोली और बोले- 'कौन हो भाई?' मेरी आँख से लगातार आँसू बह रहे थे। जैसे मेरे सामने हिंदी साहित्य का स्तंभ अपनी आखिरी साँस ले रहा था। मैं उनके पूछते ही अपने बह आए आँसुओं को साफ़ कर उनसे बोल पड़ा- 'सर! मैं तो आपके हिंदी साहित्य का वहीं पुराना मुरीद अंबरीश हूँ।' तभी जैसे उनकी स्मृति पटल पर अंबरीश का चित्र उतरा हो और वे पूरे अपनत्व से बोल पड़े- 'ओह! अंबरीश कई वर्षों के बाद आना हुआ!'

'हाँ, सर! हमारी बदली मिर्जापुर में हो गई थी। व्यस्तता के कारण मैं आपसे मिल भी नहीं पाया था। नहीं तो सोचा था कि मैं कानपुर को छोड़कर जाने से पहले एक बार आपसे मिलकर और यह बताकर जाता कि मेरी बदली दूसरे जनपद यानी कि मिर्जापुर में हो गई है। मनहर जी बोले- 'कोई बात नहीं अंबरीश!' इस वार्ता के बीच मुझे एक बात लगातार खटक रही थी, कि आज मनहर जी अपनी पत्नी यशोदा को दो कप चाय बना लाने के लिए क्यों नहीं कह रहे थे? आखिर उनकी हालत ऐसी हुई कैसे? कुछ देर और बीती, तो मैं खुद को यह पूछने से नहीं रोक पाया कि सर आपके लड़के और यशोदा जी नहीं दिख रही है। उन्होंने एक लंबी साँस ली, जैसी साँस शायद शाहजहाँ ने भी, अपनी ज़िंदगी के आखिरी लम्हे में नहीं ली होगी।

उन्होंने बड़े दर्द और पीड़ा के साथ कहा- 'अंबरीश डेढ़ वर्ष पहले एक एक्सीडेंट में मैंने अपने पुत्र को पैसे के अभाव में खो दिया। उससे निजात भी नहीं मिली थी कि मेरी पत्नी यशोदा भी मुझे इस दुनिया में बिल्कुल अकेला छोड़कर चली गई। जब उसे सरकारी अस्पताल में दिखाया, तब डॉक्टर ने कहा- "कितने लापरवाह हो तुम कि तुम्हारी पत्नी टीबी के अंतिम स्टेज पर खड़ी है और तुम अब लेकर आए हो इसे दिखाने, डॉक्टर बोला इसको यह टीबी आज से नहीं है, बल्कि तकरीबन पाँच-छः वर्ष पहले से है।"

डॉक्टर के इस उत्तर को यशोदा ने सुन लिया था। "सच! अंबरीश मैं पहली बार खुद को अपनी पत्नी यशोदा का कातिल और गुनहगार समझ रहा था। अगर मेरे पास पर्याप्त पैसा होता, तो मुझसे यशोदा कभी भी अपनी इतनी गंभीर बीमारी को न छुपाती, मैं उस दिन बहुत रोया, बहुत तड़पा, अगर मेरा बस चलता, तो मैं खुदकुशी कर लेता, लेकिन नहीं कर पाया, उस दिन मैंने यशोदा से कहा अगर संभव हो सके, तो यशोदा तुम अपने इस अपराधी या गुनहगार पति को क्षमा कर देना। देखो! मैं कितना अभागा निकला यशोदा कि पूरी ज़िंदगी तुम्हें कोई सुख न दे सका। मेरे इतना कहने पर यशोदा ने रोते हुए अपना हाथ मेरे होठों पर रख दिया और मुझसे बोली कि आप मुझसे माफ़ी माँगकर मुझे शर्मिंदा न करें। आप मेरे भगवान है, जिन्हें मैं अपने पति के तौर पर जन्म-जन्मांतर तक पाना चाहूँगी। सच अंबरीश मेरे जीवन के लेखन से कहीं ज्यादा ऊँचा किरदार तो मेरी अपनी पत्नी यशोदा का निकला।"

"अंबरीश मुझे यह भी पता है कि तुमने मेरा कई महीने से बकाए किराए को भी चुकाया था। अघोषित रूप से ही सही तुमने मेरे बेटे की तरह से मदद की थी। इस रिश्ते से तुम मेरे बेटे हुए। मुझे अपनी मौत का मलाल नहीं रहेगा। पर इतना मलाल अवश्य रहेगा कि जिस हिंदी साहित्य ने मेरा

सब कुछ छीन लिया, उसी हिंदी साहित्य की पांडुलिपि आज मेरी तरह, मुफ़लिसी और गरीबी के बिस्तर पर मेरे साथ लेटी छटपटा रही है। अगर मेरी मौत का यह शाहकार दुनिया के सामने न आ पाया, तो कभी भी मेरी आत्मा को शाँति नहीं मिलेगी। मैं तुमसे हाथ जोड़कर विनती कर रहा हूँ, अंबरीश, वाकई अगर तुम्हारे दिल में मेरे लिए थोड़ी-सी भी जगह हो, तो तुम मेरी इस साहित्यिक वसीयत को इस बदरंग दुनिया के हाथों में सौंप देना।'' मैंने उनके बगल में पड़ी हुई पांडुलिपि को बहुत ज़ोर से पकड़ा और अपने सीने से लगाकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। तभी उनके वसीयत की वह आँख हमेशा के लिए बंद हो गई।

आज उन्हीं के नाम से प्रकाशित हिंदी साहित्य की किताब "मनहर के आँसू" के नाम से हर हिंदी साहित्य प्रेमी के हाथ में है और उसके प्रकाशक अपनी जेब भर रहे हैं, "मनहर के आँसू" की किताब से, जिस किताब को लिखने वाला खुद अपने और अपने छोटे-से परिवार का पेट नहीं भर पाया, आज उस शाहकार को हिंदी साहित्य का कोई भी ऐसा सरकारी या ग़ैर-सरकारी साहित्यिक पुरस्कार नहीं, जोकि साहित्यिक संस्थाओं द्वारा मरणोपरांत मनहर जी की इस पुस्तक को न मिला हो। मैंने तो मनहर जी की उस वसीयत का कर्ज उतार दिया, लेकिन जाने कब हिंदी साहित्य के अनगिनत "मनहर के आँसू" इस बदबूदार कमरे से निजात पाएँगे।

rangnathdubey90@gmail.com

विदाई

प्रो. खेमसिंह डहेरिया
भारत

रामइया के चेहरे पर आज खुशी छलक रही थी। गौरी ने उसे बताया - "वह पेट से है।" सचमुच वह फूला नहीं समाया। छह बरस बाद अब ऐसी खुशी नसीब हुई थी। कितने देवी-देवताओं की पूजा की। गाँव के "माँगी ओझा" तथा दूसरे बड़े-बुजुर्गों से न जाने कितनी दफ़ा इस बारे में सलाह माँगी। गौरी भी गाँव की जानकार औरतों से पूछ-पूछकर दवा खाती।

हाल ही में यह अंकुर फूटा था। रामइया की दृष्टि घर के सामने बाड़े के एक कोने पर पड़े आम की गुठली पर जाती है। उसे याद आता है- "कुछ दिन पहले निकट के कस्बे के बाज़ार से मीठे आम लेकर आया था और खाकर उसकी गुठलियाँ यहीं-कहीं फेंक दी थीं। "आज देखा तो उसमें से एक नन्हा-सा पौधा मानो अभी-अभी अंगड़ाई लेकर मिट्टी से ढँकी एक गुठली से निकलकर झाँक रहा था। उसकी खुशी दोहरी हो गई। वह झट अपनी पत्नी को बताने दौड़ा। गौरी इस समय रसोई घर को गोबर से लीप रही थी। रामइया मुख्य द्वार से चिल्लाया - "जल्दी बाहर आओ।"

देख नहीं रहे गोबर लीप रही हूँ? बहुत काम पड़ा है। तभी धड़धड़ाते हए रामइया उसके निकट पहुँच जाता है और उसकी बाँह पकड़कर कहता है, आओ तुम्हें एक चीज़ दिखाता हूँ।

क्या चीज़?

अरे चलो तो सही। उसको अपनी ओर खींचकर।

बाड़े के निकट लाकर रामइया वह अनुपम वस्तु दिखाता है। गौरी देखकर आश्चर्य मिश्रित खुशी का अभिनय करती है। रामइया को इसका किंचित भी अहसास नहीं होने देती कि वह अंकुर को भोर की पहली किरण के साथ ही निहार चुकी है।

दोनों नित्य उस नन्हे पौधे की देख-रेख बड़े आत्मीय भाव से करते हैं।

मौसम बीतता जाता है। अंकुर पौधे का रूप ले लेता है। एक दिन आधी रात में प्रसव-वेदना के साथ गौरी के पेट का अंकुर भी बेटी का रूप लेकर उसके आँगन में आता है। काफ़ी सोच-विचार करने के बाद जब उन्हें कोई अच्छा-सा नाम नहीं सूझता, तो वे आँगन में लगे आम के पेड़ से उसकी साम्यता के आधार पर अमिया रख देते हैं।

अपनी भोली चंचलता और चेहरे की जागृत सुन्दरता

के कारण अमिया अपने अम्मा-बाबू जी के साथ-साथ गाँव भर के लगभग सभी लोगों के आकर्षण का केन्द्र बनती है। रामइया तो अपनी बेटी पर जान छिड़कता है। अमिया के प्रति उसका पितृ-भाव अतुलनीय है।

आम का पेड़ जब तीन-चार बरस का हुआ, तभी गाँव की एक वृद्धा "भखनी मौसी" की सलाह पर इसका ब्याह एक दूसरे आम के पेड़ के साथ कर दिया गया। भानी मौसी का तर्क था - "ऐसा करने से जल्दी फल लगने लगेगा।" कुछ ही महीनों में मानो उसका यह तर्क सही साबित हुआ। अगली गर्मी में पेड़ में बौर आ गये। अब तो अमिया उसकी मनमोहक खुशबू के इर्द-गिर्द झूमती-नाचती, खेलती-कूदती। बौर के फल बन जाने पर उसके कच्चे-पक्के दोनों रूपों का भरपूर स्वाद चटकारे लगाकर लेती।

अमिया अब उम्र के सोलहवे वर्ष की दहलीज़ पर पहुँच चुकी थी। गाँव वालों को इस बात की खबर पहले होती है कि अमिया अब जवान हो गयी है। रामइया और गौरी को बाद में। आते-जाते, बैठते-उठते लोग बातों-बातों में अकारण ही अब उसका विवाह कर देने का विचार करते हैं। रामइया का तो जैसे शरीर ही डोल उठता। अपनी पुत्री की विदाई की कल्पना मात्र से प्रत्युत्तर में उसकी ज़बान लड़खड़ा पड़ती। आँखों में आँसू डबडबा जाते। बड़े प्रयास से वह उन्हें रोक पाता। गौरी भी अधीर हो उठती।

होनी को अधिक समय तक टाला नहीं जा सकता। पड़ोस के गाँव में अमिया का रिश्ता तय किया जाता है। देखने -सुनने में अच्छा घर था। ज़मीन-जायदाद थी। काम के लिए नौकर-चाकर थे।

आँगन में लगे आम के पेड़ से पत्ते तोड़कर मंडप सजाये जा रहे हैं। कुछ पत्ते ताम्र कलश में रखे जाते हैं। ज़रूरी प्रबंधों की पड़ताल की जा रही है। बारात आ चुकी है। ब्याह की ढेर सारी रस्मों को निपटाने के पश्चात् अब विदाई का क्षण आ गया है। रामइया और गौरी के लिए यह क्षण किसी वज्रपात से कम नहीं था। अंततः कर्त्तव्य के सम्मुख भावना को नतमस्तक तो होना ही था।

अमिया के ससुराल चले जाने के बाद उसकी अम्मा-बाबूजी के दिन बेटी की याद में जैसे-तैसे मुश्किल से कटते हैं। शीघ्र ही नाना-नानी बन जाने की तीव्र इच्छा अब उनके कोमल हृदय में जाग उठी है। आज पूरा एक साल होने को आया है। आने वाले तीज-त्योहार पर अमिया के मायके लौटने की खबर एक संदेशिया दे जाता है। दोनों के बोझिल शरीर पर उमंग की लहर उठती है। आज उनकी वही सहज इच्छा फिर बलवती हो रही है। अमिया अपने पुराने घर-आँगन आती है। आम का पेड़ असंख्य पत्ते हिलाकर हर्ष प्रकट करता है। अम्मा-बाबूजी के चेहरे खिल उठते हैं। गौरी के मनोभाव बतला रहे हैं कि वह अमिया के अन्दर कुछ टटोल रही है। अपनी जिज्ञासा अमिया से कह पाने में उसे तत्काल संकोच है। कदाचित् कुछ समय बाद वह फुरसत के क्षणों में अवश्य पूछेंगी।

गौरी निराश हो उठती है। फिर भी भविष्य पर नज़रें टिकी हैं। आशा की किरण कुछ समय के लिए घुँधली अवश्य हुई थी, किन्तु वह समाप्त नहीं हुई।

रामइया की उम्र में ढलान आने लगा है। थकान जल्दी घर कर जाती है। गौरी की निराशा चिन्ता का रूप धारण करती है। उसे रह-रहकर अमिया के जन्म के पूर्व की व्यथा सताये जा रही है। छाती में दर्द भर रहा है। बीच-बीच में गले से खाँसी के तेज़ प्रवाह अचानक फूट पड़ते हैं। अमिया को ससुराल गये चार बर्ष बीच चुके हैं। वह जब भी मायके लौटती है, तब गौरी बेझिझक कुछ देर में ही पूछ बैठती है- "कुछ हुआ?" अमिया गर्दन झुकाकर नकारात्मक भाव में सिर हिला देती है। यह देखकर गौरी हतभाग्य पर खीझ उठती है। हर बार कितने ममत्व से गौरी, अमिया के ससुराल आँगन के पेड़ से चुने आमों की टोकरी भिजवाती है, परन्तु इस प्रयोजन का निरर्थक हो जाना जैसे नियति बनती जा रही है। इस बार भी यही हुआ था। गौरी के साथ आम का पेड़ भी अब पहले की तरह अमिया को पाकर प्रसन्न नहीं होता। असंख्य पत्ते नहीं हिलाता। रामइया कुछ कहता तो नहीं, पर मन मसोसकर रह जाता है। अमिया घर-आँगन को निराश करके पुनः अपने ससुराल लौट जाती है।

अमिया कुछ दिन से अपने हृदय में खुशी की लहर

महसूस कर रही थी। आम खाने को उसका मन बार-बार मचल रहा था। अब तक अम्मा के भिजवाये आम की टोकरियों को याद कर उसका मन बहुत ललचा रहा था। तभी उसे खबर मिली कि उसकी अम्मा बहुत बीमार है, उसे जल्दी मायके बुलाया है। वह एकाएक बेचैन हो उठी। झट कपड़े पेटी में डालकर जाने को तत्पर हुई।

बैलगाड़ी घर के समीप आकर रुकती है। लोगों का कुछ जमावड़ा-सा है। अमिया के सिर पर बड़े-बुजुर्गों के लिहाज से घूँघट है। उसे तत्काल कुछ आभास नहीं होता। बैलगाड़ी से नीचे उतरने पर जन-समूह दिखता है। अनायास ही आँगन के आम के पेड़ पर दृष्टि जाती है। वह निर्मोक खड़ा है, डालें झुकी हैं। पत्तियाँ सनसना रही हैं। बौर के गुच्छे झाँककर नवजीवन का संकेत कर रहे हैं।

गौरी ने पिछली रात विश्रान्ति पा ली थी। शरीर ठंडा पड़ चुका था। अधीरता और निर्जीवता बन चुकी थी। सिरहाने पर बैठा रामइया, अमिया के आने की सूचना पाकर फफक पड़ता है।

अमिया तो कुछ महकते भाव लेकर अपनी अम्मा के लिए उसके अब तक पूछे गये अनुत्तरित प्रश्न का उत्तर लायी थी। लेकिन अम्मा तो अंतिम विदाई ले चुकी थी।

Khemsingh.daheriya@gmail.com

गुलाबी कबूतर

डॉ. राज शेखर
आई.सी.सी.आर चेयर, एम.जी.आई., मोका

अभी-अभी हल्की रिमझिम बारिश हुई थी और सुनहरी धूप के साथ आकाश में इंद्रधनुष अपने चटकीले रंग बिखेर रहा था। इस मनमोहक दृश्य के बीच स्वधा के पिताजी अपनी मोटर गाड़ी गन्ने के खेतों के बीच बनी सड़क पर सरपट भगाए जा रहे थे। खेतों में चिड़ियों की चहचहाहट और उनकी इधर-उधर फुदका-फुदकी दिल को छू लेनेवाली थी। लेकिन स्वधा कहीं और खोई हुई थी। उसके पिताजी ने कहा- "सामने की सड़क को देखो बेटा! लगता है, जैसे यह सड़क आसमान में स्वर्ग की ओर जा रही है।" अपने में बेचैन स्वधा ने थोड़ा व्यग्र होते हुए कहा - "आप इधर-उधर की बातों में मुझे मत उलझाएँ। यह बताइए कि हम लोग कब तक वहाँ पहुँच जाएँगे?"

"जीवन में धैर्य रखना सीखो स्वधा! हम लोग 10 मिनट में पहुँचने ही वाले हैं।" स्वधा के पिताजी ने उसे आश्वस्त किया। लेकिन स्वधा फिर भी विचलित होते हुए बोली - "लगता है आप इस क्रिसमस में भी मेरी इच्छा पूरी नहीं करेंगे।"

स्वधा बहुत दिनों से ब्लैक रिवर गॉर्जेस नेशनल पार्क जाने की ज़िद्द कर रही थी। यह मॉरीशस देश के दक्षिण-पश्चिम में लगभग 67 वर्ग किलोमीटर में फैला वहाँ का सबसे बड़ा नेशनल पार्क है। यह पैदल यात्रियों और प्रकृति प्रेमियों के लिए उत्तम जगह है।

पार्किंग में गाड़ी खड़ी कर वे सभी छायादार पेड़ों के नीचे पैदल यात्रा पर निकल पड़े। स्थानिक प्रजाति के ऊँचे-ऊँचे पेड़ों के साथ झाड़ियों का झुरमुट इधर-उधर बेढंगे फैले पड़े थे। उनपर रंग-बिरंगे फूल खिले थे और रसीले फल भी लगे थे, जिसपर कहीं-कहीं लाल रंग की प्यारी और छोटी फोडी चिड़िया फुदक रही थी। उन लोगों के पास से बुलबुल चिड़िया भी इतराते हुए उड़ती जा रही थी। ऐसा लगता था, मानो उन नन्ही चिड़ियों को किसी का भी भय नहीं है। लेकिन दूर एक ऊँचे पेड़ पर केस्ट्रेल पक्षी का एक जोड़ा सहमा बैठा था, जिसे वहाँ आए आगंतुक गौर से देख रहे थे और अपने कैमरे में कैद भी कर रहे थे। क्या एक समय सम्पूर्ण मॉरीशस पर राज करने वाले ये अद्वितीय जीव 2 प्रतिशत जंगल में कैदी का जीवन जी रहे थे?

इस उद्यान के बीचों-बीच ब्लैक रिवर बह रही थी, जिसका पानी साफ़ और शीतल था। कई बच्चे उसमें कूद और तैर रहे थे। परन्तु हमेशा ऐसी जगहों पर मस्ती करने वाली स्वधा इस ओर बिलकुल भी आकर्षित नहीं हुई। वे लोग

आगे बढ़े। उमस भरी गर्मी के कारण वे लोग जल्दी थक गए। पिकनिक वाली जगह पर वे लोग रुके और कुछ खा-पीकर सुस्ताने लगे।

वहीं पास में एक बड़ी-सी चट्टान के पीछे बम्बू ऑर्किड के झुरमुट थे, जिनपर गुलाबी रंग के सुन्दर चटकीले फूल लगे थे। स्वधा ने उस झाड़ी के पीछे एक गुलाबी रंग के पक्षी को चहलकदमी करते हुए देखा। वह उस तरफ़ तेज़ी से दौड़ पड़ी, किन्तु कुछ ही देर में वह पक्षी उसकी आँखों से ओझल हो गया। क्या वह वही कबूतर तो नहीं था, जिसके लिए वह आयी थी? गुलाबी कबूतर! उसने पीछे मुड़कर देखा, तो उसके घरवाले भी नज़र नहीं आए। उसने अपने आपको एक घने जंगल में पाया, जहाँ कीट-पतंगों की आवाज़ और चिड़ियों की चहचहाहट संगीतबद्ध होकर गूँज रही थी।

"घबराओ नहीं मित्र ! मैं आ गया हूँ ना !" एक कीचड़ भरी दलदली ज़मीन के अंदर से आवाज़ आयी। अगले ही क्षण मिट्टी से सना हुआ एक बड़ा-सा कछुआ स्वधा की ओर आया। उसे देखते ही स्वधा ने आश्चर्य से कहा - "अरे तुम वही कछुआ तो नहीं हो, जो इस द्वीप से विलुप्त हो गया था।"

"नहीं! मैं बिलकुल वह नहीं हूँ। मेरा नाम मोनेट है। वे तो बहुत विशाल कछुए हुआ करते थे। हम लोग तो उनके करीबी रिश्तेदार सेशल्स के अल्डबरा कछुए हैं। उन कछुओं की देशी पारिस्थितिकी तंत्र में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। वे बीज फैलाने में मदद करते थे। कई देशी और स्थानिक पौधे कछुओं की उपस्थिति के साथ विकसित हुए और उनके अनुकूल बने। इनके विलुप्त हो जाने के बाद मॉरीशस के पारिस्थितिकी तंत्र के भीतर कई कार्यात्मक संपर्क खो गए। इसे ठीक करने के लिए हम लोग यहाँ लाये गए हैं।"

"वे विलुप्त क्यों हो गए?" स्वधा ने अफ़सोस जारी करते हुए पूछा।

"मॉरीशस द्वीप दक्षिणी हिंद महासागर में रीयूनियन और मेडागास्कर द्वीपों के पास है। 16वीं सदी में जब मनुष्य ने पहली बार इस द्वीप पर कदम रखा, तब यह द्वीप अद्वितीय पेड़-पौधे और जानवरों से भरा पड़ा था। मॉरीशस में बोइस डी. एबेने और बोइस डी. गैर के पेड़ थे। जंगल में डोडो, ब्लू पिजन्स, विशाल तोते, विशाल गेको, विशाल कछुए जैसे जीव थे। इस द्वीप पर मनुष्यों के कब्ज़े के बाद यहाँ के मूल वनस्पतियों और जीवों को बहुत क्षति पहुँची। चूहे, बिल्ली, नेवले, सूअर और बंदर जैसे आक्रामक जानवर स्थानिक पत्तियों और साँपों के अंडों एवं बच्चों को खा जाते थे। लोगों के निवास और गन्नों की खेती के लिए जंगल काट डाले गए। इससे द्वीप के मूल निवासी जीव-जंतु और पेड़-पौधे काफ़ी प्रभावित हुए, कुछ समाप्त हो गए, तो कुछ विलुप्ति के कगार पर पहुँच गए।"

"माफ़ करना मोनेट ! लगता है मैं रास्ता भटक गयी हूँ और तुम्हारे क्षेत्र में अनधिकृत प्रवेश कर गयी हूँ। मैं गुलाबी कबूतर के पीछे-पीछे यहाँ चली आयी।"

"अच्छा! तुम्हें गुलाबी कबूतर पसंद है?"

"हाँ! मुझे पसंद है और उनके बारे में बहुत कुछ जानना चाहती हूँ।"

"कोई बात नहीं दोस्त! तुम्हारा यहाँ स्वागत है। मैं तुम्हें उनके बारे में बताऊँगा। मुझे भी गुलाबी कबूतर पसंद है। वे मेरे मित्र हैं। वे मेरे लिए पेड़ों से मीठे फल ज़मीन पर गिराते हैं।" मोनेट ने थोड़ा भावुक होकर बताना शुरू किया।

गुलाबी कबूतर एकमात्र मस्करीन कबूतर की प्रजाति है, जो विलुप्त होते-होते बच गयी है। इन विलुप्त कबूतरों में सबसे प्रसिद्ध निस्संदेह डोडो थे, जो निकोबार से उड़कर आये कबूतर थे। कबूतर शुरुआती समय से ही मनुष्य का हितैषी और मित्र रहा है। कबूतर को शांति का दूत माना जाता है। उसे संदेशवाहक भी कहा जाता है। जब डाक घर नहीं हुआ करता था, तब कबूतर ही तो पत्र पहुँचाते थे।

ये पक्षी बड़े ही सीधे और सरल स्वभाव के थे और इसे किसी शिकारी से भय नहीं होने के कारण भयरहित और आक्रामक रहित जीवन जी रहे थे। इसलिए बाद के दिनों में ये शिकारियों के आसान शिकार बने। डोडो पक्षी गायब हो गए, लेकिन गुलाबी कबूतर का भविष्य अधर में रहा। इसका एक प्रमुख कारण उसके मांस के विषैले होने को भी माना जाता है। जिसके कारण मानव और पशु शिकारी इसके मांस को खाने से बचते रहे। फिर भी इनको मकाक बन्दर और जंगली

बिल्ली से खतरा बना रहा।

वे बातें करते हुए आगे बढ़े, तो उनको चायनीज़ अमरूद के ढेर सारे पेड़ दिखे। स्वधा ने एक पेड़ से अमरूद तोड़े। दोनों एक डोडो पेड़ के नीचे बैठकर अमरूद खाने लगे। उसी समय गुलाबी कबूतरों का एक झुंड वहाँ आ गया। वे भी ज़मीन पर गिरे हुए फलों को खाने लगे। गुलाबी शरीर, भूरे पंख वाले ये कबूतर बहुत ही सुंदर थे। उनकी आँखें चमकीली और चोंच गुलाबी रंग के थे। एक नन्हा कबूतर स्वधा की गोद में बैठकर उसके हाथ से अमरूद खाने लगा। तभी एक जंगली बिल्ली ने उस नन्हे कबूतर पर झपट्टा मारा। स्वधा ज़ोर से चिल्ला उठी- "नहीं, दूर हो जाओ यहाँ से।" वातावरण में ज़ोरदार पंखों की फड़फड़ाहट के साथ भयानय कोलाहल हुआ। उसकी माँ ने उसे बड़बड़ाते देखकर कहा- "उठो स्वधा! क्या यह सोने का वक्त है। हम लोगों को अभी और भी आगे जाना है। कुछ लोग बता रहे थे कि उन लोगों ने यहाँ से कुछ दूरी पर गुलाबी कबूतर देखे हैं।"

माँ के कहते ही वह भौंचक्की होकर इधर-उधर देखने लगी। होश सँभालते ही उसने अपने पिताजी को अपने सपने की बात बतायी। उसकी बात सुनकर उसके पिताजी ने कहा- "तुमने जो भी सपने में देखा है वही तो यहाँ की हकीकत है बेटा।"

"डैडी! क्या हम लोग उनकी सुरक्षा के लिए कुछ कर सकते हैं?"

"बिलकुल कर सकते हैं। पहले हमें यह समझना ज़रूरी है कि इस प्रकृति पर केवल मनुष्य का अधिकार नहीं है, बल्कि सभी जीवों और पेड़-पौधों का भी है। प्रकृति में पारिस्थितिकी नियंत्रण कायम रखने के लिए सभी का होना ज़रूरी है। यह द्वीप कभी भी किसी महाद्वीपीय भूभाग से नहीं जुड़ा था। इस कारण यहाँ पर असाधारण जैव विविधता को विकसित होने का मौका मिला, लेकिन इस द्वीप पर मनुष्य के अतिक्रमण ने इस विविधता को तहस-नहस कर दिया। यहाँ के मूल निवासी पक्षियों को इससे काफ़ी नुकसान झेलने पड़े।"

"वे एक-एक कर विलुप्त क्यों होते चले गए डैडी?"

"इसका सबसे बड़ा कारण उनके आहार से जुड़ा हुआ है। ये सभी जीव इस द्वीप पर उगने वाले पेड़-पौधों पर आश्रित थे। वे पेड़ों की पत्तियाँ और फल-फूल खाते थे। इनका संघर्ष दो स्तरों पर हुआ। पहला देशी वनस्पति की जगह विदेशी पेड़-पौधों ने अपना विस्तार किया। दूसरा बाहर से लाये गए जानवरों से उनका मुकाबला हुआ। वे गायब होते गए क्योंकि उनकी देखभाल करने वाला और उनको सुरक्षित प्रजनन अभ्यारण्य प्रदान करने वाला कोई नहीं था।"

"कितने अफ़सोस की बात है न डैडी! वे सभी विलुप्त पक्षी यहाँ जीवित होते, तो कितना अच्छा होता !"

"यहाँ के प्रत्येक निवासी को यह जानकार बुरा लगता है। इसलिए अब मॉरीशसवासी यहाँ पर पाए जाने वाले देशी पेड़-पौधों और जीवों को विलुप्त होने से बचाने का प्रयास कर रहे हैं, जिनमें उनको सफलता भी मिली है। एक समय में पूरे मॉरीशस में हज़ारों गुलाबी कबूतर थे, लेकिन 20वीं सदी के अंत तक इनकी संख्या 9 तक पहुँच गयी थी। इनको बचाने के लिए उपयुक्त माहौल तैयार किया गया और शिकारियों से इनकी रक्षा की गई। अब ताज़ा आंकड़े बताते हैं कि इन जंगली गुलाबी कबूतरों की संख्या 500 से ऊपर पहुँच गयी है। यह बहुत बड़ी उपलब्धि है, जिसपर सभी को गर्व करना चाहिए।"

दूसरी ओर उनसे कुछ दूरी पर एक ऊँचे पेड़ से किसी चीज़ के गिरने की आवाज़ आयी। उन लोगों ने वहाँ जाकर देखा, तो एक नन्हा गुलाबी कबूतर एक झाड़ी में फँसा छटपटा रहा था। वह उड़ने में असमर्थ था। स्वधा ने दौड़कर उसे अपनी गोद में उठा लिया और अपने हृदय से लगा लिया। उस नन्हें कबूतर की साँसें तेज़ चल रही थी। उसी समय एक जंगली बिल्ली भी स्वधा के पास से गुज़री। यदि उसे उठाने में एक क्षण की भी देरी होती, तो वह उस बिल्ली का शिकार बन जाता।

उन लोगों ने वहाँ के पार्क रेंजर प्रेमानंद को उस कबूतर के बच्चे को सौंप दिया। वे स्वधा की चपलता और बुद्धिमानी से बहुत प्रभावित हुए और उसकी प्रशंसा में उन्होंने उसकी पीठ भी थपथपाई। सब लोगों ने उस नन्हें कबूतर के साथ फ़ोटो भी खिंचवाया। जाते समय प्रेमानंद ने स्वधा को उपहार स्वरूप डोडो की एक प्यारी-सी प्रतिमा दी।

rajshekhar@mgi.ac.mu

अधूरी

रेखा राजवंशी
ऑस्ट्रेलिया

अपने घर की बालकनी में बेचैनी से टहलती हुई अपर्णा जाने कितने साल पीछे चली गई थी। यादों के दरीचे खुल गए थे और न जाने कितनी बातें उसके मनोमस्तिष्क को मथ रही थीं। पिछले बीस साल से वह मेलबर्न में अकेले रह रही थी। किसी से वह अधिक संपर्क में नहीं थी और दिन-ब-दिन अंतर्मुखी होती जा रही थी।

उम्र ही क्या थी उसकी? सिर्फ़ बयालीस साल। इतनी आयु में तो ऑस्ट्रेलिया में लड़कियाँ शादी करती हैं। पर उसने तो शादी की बातों पर बंधन लगा दिया था। अपने काम-से-काम और मतलब-से-मतलब। घर से ऑफ़िस तक का बंधा-बंधाया रूटीन। उसके गंभीर चेहरे पर मुस्कुराहट या तो आती नहीं थी या अनुशासन के कड़े बंधन में स्वयं को बाँधकर बैठी थी। शायद उसे लगता था कि वह मुस्कुरा देगी, तो लोग उसका फ़ायदा उठा लेंगे। इतनी कम उम्र में इतनी सीनियर पोस्ट पर जो चली गई थी, बड़े बैंक की ब्रांच मैनेजर थी। काफ़ी ज़िम्मेदारी का काम था। सब उसकी इज़्ज़त करते थे। उसके ऑफ़िस का कोई मित्र या सहेली नहीं थी, पर बिल्डिंग की एक दो महिलाएँ अनचाहे ही सहेलियाँ बन गई थीं। नीना और अजय अपनी छह माह की बच्ची के साथ करीब दस साल पहले ही उसके पड़ोस में आए थे। नए-नए थे, तो बहुत-सी बातें पता नहीं थीं। तो कभी उससे पूछ लेते और वह उन्हें खुशी-खुशी समझा देती। एक दिन संडे को घर की घंटी बजी। उसने दरवाज़ा खोला देखा हाथ में प्लेट लिए नीना बाहर खड़ी थी।

''आज घर में पूजा थी, उसी का प्रसाद है'' - कहते हुए प्लेट अपर्णा को पकड़ा दी। जाने क्यों अपर्णा को अच्छा लगा और उसे अंदर आने का न्योता दे दिया। छोटी-सी रिया को गोद में थामे नीना तुरंत अंदर आ गई, जैसे इसी बात का इंतज़ार कर रही थी। घर की हर चीज़ को देखती रही। फिर धीरे से बोली -

'दीदी, आपका घर इतना साफ़ कैसे रहता है?'

अपर्णा ने मन में सोचा - 'गंदा करने के लिए है ही कौन? पर मुस्कुरा कर बोली - 'आओ बैठो, चाय पियोगी?'

''हाँ, एक कप चाय मिल जाएगी, तो सारे दिन पूजा के पकवान बनाने की थकान मिट ही जाएगी।'' उसके चेहरे पर मुस्कान आ गई।

''टी बैग वाली लोगी या मसाले की?'' मैंने पूछा

''दीदी, मसाले वाली होगी तो मज़ा आ जाएगा, पर कोई तकलीफ़ तो नहीं होगी न आपको?''

''इसमें तकलीफ़ कैसी?'' कहते हुए अपर्णा इलायची कूटने लगी।

चाय लेकर आई, तो देखा नीना रिया को सोफ़े के एक तरफ़ सुला चुकी थी और सोफ़े पर पैर मोड़कर बैठ गई थी, जैसे जाने कितनी थकी हुई हो।

''दीदी, आप कितनी अच्छी हो।'' कहते हुए चुस्की लेकर चाय पीने लगी।

''परदेस में माँ-बहन तो हैं नहीं। कितना काम करना पड़ता है, यहाँ बच्ची के साथ। आपको देखती हूँ, न तो अपनी बड़ी बहन याद आ जाती हैं,'' उसने कहा।

उसे दिलासा देते हुए अपर्णा ने कहा -''कोई बात नहीं, जब जी चाहो आ जाओ।''

उसने बच्ची की तरफ़ नज़र डाली, गोल मटोल, गेहुएं रंग की छोटी-सी डॉल जैसी बच्ची, कितनी निश्चिंतता से सो रही थी।

उस दिन कुछ देर साथ बैठकर नीना चली गई। जितनी देर बैठी, अपने परिवार को याद करती रही। वहाँ परिवार होता, तो कितना सुख होता, कोई काम न करना पड़ता, रिया के साथ कितनी मदद मिल जाती आदि। तब से नीना कभी-कभार आ जाती।

सच है परदेस में भारत बहुत याद आता है। यहाँ तो

लगातार काम का बोझ लगा रहता है, नौकर-चाकर तो होते नहीं। कितनी मदद मिल जाती है, वहाँ। नौकर या मेड कितना ख्याल रखते हैं।

घर की दूसरी तरफ़ वीणा रहती थी। वीणा महाराष्ट्र की थी। दिन में चाइल्ड केयर में काम करती और शाम को संगीत सिखाती थी। लगभग रोज़ शाम को संगीत सीखने कुछ लोग उसके घर आते थे। उसका पति बस चलाता था। बच्चे अब बड़े हो गए थे, एक यूनिवर्सिटी में था और दूसरा हाईस्कूल में। कभी आते-जाते वीणा से हैलो हो जाती।

इतने सालों में सब कुछ बदल गया था। अनेक खूबसूरत घर टूट गए थे और उनकी जगह बहुमंज़िला फ्लैट्स बन गए थे। उसके घर के पास चारों तरफ़ जाने कितनी खिड़कियाँ और दरवाज़े बन गए थे। काम से जैसे ही घर पहुँचती, दरवाज़ों, खिड़कियों को भेदती लड़ाई-झगड़े या संगीत की आवाज़ सुनाई देतीं। पूरे हफ़्ते काम, शनिवार को घर की सफ़ाई और फल, सब्ज़ी, ग्रोसरी और रविवार को आराम या कोई मूवी देख लेना, यही रूटीन था उसका।

और अब यह खबर। यह संदेश जिसकी उसे सालों से प्रतीक्षा थी, दस साल पहले आता, तो पाँव ज़मीन पर न पड़ते। पर अब इस तरह अचानक।

उसे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करे। चहलकदमी बंद कर एक कप कॉफ़ी लेकर, अपने सोफ़े पर आ बैठी। विगत जैसे उसे कैलेंडर के पन्नों में बीस साल पीछे ले गया, जब वह सी. ए. कर रही थी। तभी हाँ ...तभी तो वह मिली थी, आदित्य से। लाइब्रेरी में एक ही किताब ढूँढते हुए वे टकरा गए थे।

किताब की एक ही कॉपी थी, तो आदि ने उससे कहा - ''ठीक है पहले तुम पढ़ लो, बाद में मैं, पर जिस दिन लाइब्रेरी में वापस दो, प्लीज़, मुझे फ़ोन कर देना। ताकि कोई और न ले जाए। यह मेरा नंबर है।'' कहते हुए उसने स्टिकी नोट मेरी तरफ़ बढ़ा दिया।

पढ़कर किताब जमा करने के पहले उसने आदित्य को फ़ोन कर दिया। जब अपर्णा पहुँची, तब वह बाहर ही खड़ा था। किताब लेने-देने की प्रक्रिया हुई, जब लाइब्रेरी से निकले, तब आदि ने उससे पूछा - 'अगर आपके पास समय हो, तो चलकर चाय या कॉफ़ी पिएँ? थोड़ा किताब पर डिस्कशन भी हो जाएगा।'

अपर्णा को यह विचार अच्छा लगा। वहीं पता लगा कि आदि आई. ए. एस की तैयारी कर रहा था। आदि जितना देखने में अच्छा था, उससे ज्यादा बातें करने में। जाने कैसे दुनिया भर का ज्ञान था उसको। अपर्णा भी क्या कम थी? पढ़ने का शौक तो बचपन से था, सुंदर भी थी। घर की लाड़ली थी, पर अनुशासनप्रिय पिता से डरती थी। माँ अक्सर उसकी नज़र उतार देती। छोटा भाई बिट्स पिलानी से इंजीनियरिंग कर रहा था। दादा-दादी के साथ पुश्तैनी बड़े घर में पूरा परिवार रहता था।

आदि से बातचीत शुरू हुई और शीघ्र ही मुलाकातों में बदल गई। कब वे एक-दूसरे को दिल दे बैठे, पता ही नहीं चला।

अक्सर आदि उससे कहता - ''अपर्णा, जबसे तुम मेरी ज़िंदगी में आई हो न, अच्छा-ही-अच्छा हो रहा है।''

वह हँस देती और कहती - ''आदि तुम्हारे साथ मुझे भी बहुत अच्छा लगता है।''

''वादा करो, मुझसे दूर नहीं जाओगी''- एक दिन वह बोला।

''तो शादी कर लो न मुझसे'' - उसने शर्मीली मुस्कुराहट बिखेर दी।

''अपने पैरों पर खड़ा हो जाऊँ, बस। एक दिन तुम्हें डोली में बैठाकर ले जाऊँगा।'' उत्साह से उसने कहा।

दिन बड़े अच्छे बीत रहे थे। मिलना-जुलना तो होता था, पर दोनों अपने कैरियर पर फ़ोकस कर रहे थे।

फिर वह दिन आया जब आदि आई. ए. एस में सेलेक्ट हो गया। उसकी खुशी का कोई ठिकाना न था। अपर्णा भी खुश थी। उसने आदि से फ़ोन पर पार्टी माँगी और जल्दी ही उसका निमंत्रण आ गया। ताज पैलेस के रेस्त्रां में मिलना तय हुआ। उस दिन मोरपंखी रंग का सूट, उसके ऊपर कढ़ाईदार शॉल पहन, कितनी जंच रही थी अपर्णा। गले और कान में भी हल्के-से ज़ेवर पहन लिये। आदि भी आज सूट पहन कर

आया था। 'बड़ा हैंडसम लग रहा है,' अपर्णा ने सोचा।

आगे बढ़कर आदि उसे मेज़ तक ले गया। खाने-पीने के बीच ही आदि ने बताया कि उसके परिवार में सब बहुत खुश हैं - माँ, पिता और बड़े भाई सबके बधाई संदेश आए हैं।

चलने से पहले बड़े स्टाइल से घुटने पर बैठते हुए उसने गुलाब के एक फूल के साथ प्रपोज़ किया - ''मुझसे शादी करोगी, अपर्णा?''

अपर्णा को याद है कि उसकी खुशी का कोई ठिकाना न था।

आगे बढ़कर बड़ी अदा से उसके हाथ से गुलाब लेते हुए कहा - ''ज़रूर, मैं तुम्हारे साथ बहुत खुश रहूँगी आदि। पर पापा से आकर परमिशन लेनी पड़ेगी, उसकी।'' कहते हुए अपर्णा मुस्कुरा दी।

तय हुआ कि अगले शनिवार आदि उसके माता-पिता से बात करेगा।

उसने माँ को बता दिया था - ''माँ अगले शनिवार को मेरा एक मित्र मिलने आना चाहता है। ठीक है न? पापा से पूछ लोगी न? आप दोनों का मिलना ज़रूरी है।''

माँ ने हँसकर कहा -''यह कोई खास मित्र लगता है तुम्हारा।''

वह शर्माकर माँ से लिपट गई थी - ''माँ बहुत अच्छा है आदि। आई. ए. एस. में सेलेक्ट हो गया है। उसका एक बड़ा भाई और माता-पिता सब बिहार में रहते हैं। आपको ज़रूर पसंद आएगा। प्लीज़ पापा को मना लोगी न?'' एक ही साँस में कह गई थी सब।

उसे यकीन था सब ठीक होगा। दो दिन बाद शनिवार को नियत समय पर आदि घर आया। पापा ने दरवाज़ा खोला और आदि को अंदर बुलाया। हल्का-सा नर्वस तो था आदि, पर नमस्ते कहते हुए अंदर आ गया।

चाय पर बैठे, तो माँ ने चाय के साथ समोसे, कटलेट्स और घर का नाश्ता रखा।

पापा आदि की हर बात को जैसे ध्यान से सुन रहे थे। कैरियर के बारे में पूछने के बाद पापा पूछ रहे थे - ''तो तुम लोग भी ब्राह्मण हो न हमारी तरह?''

आदि उनके इस अचानक पूछे गए प्रश्न से घबरा गया - ''जी...। .. जी नहीं''

''तो। .. तुम्हारा पूरा नाम तो पूछा ही नहीं''

''आदित्य कुमार''

''पर जाति क्या है?''

उनके इस अकस्मात प्रश्न से सब चौंक गए।

''पापा तो इतने दकियानूसी नहीं थे'' अपर्णा चौंक गई।

उत्तर के लिए सब आदि की तरफ़ देखने लगे। आदि का चेहरा जैसे लाल हो उठा। धीरे से बोला -''अंकल, वी आर शेड्यूल कास्ट।''

पापा के चेहरे का रंग उड़ गया, उठकर खड़े हो गए, ''अरे! हम उच्चवर्गीय ब्राह्मण सोच भी नहीं सकते, अपनी लड़की शेड्यूल कास्ट लड़के से ब्याहे। सुंदर है, पढ़ी-लिखी है। समझ नहीं आता तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई मेरी बेटी को फँसाने की।'' कहते-कहते उनकी आवाज़ ऊँची हो गई।

आदि इस अपमान के लिए तैयार नहीं था। उठा और कहने लगा - ''गलती हो गई अंकल, आप जैसे पढ़े-लिखे असभ्य लोगों के घर अपर्णा कहाँ से पैदा हो गई, समझ नहीं आता। मेरे पिता भी कलेक्टर हैं, माँ उद्योगपति घर से है। आप जैसे लोग ही देश की उन्नति नहीं होने दे रहे।''

कहते-कहते वह घर से चला गया। अपर्णा क्या करती? अपने पिता से ऐसे व्यवहार की अपेक्षा तो उसे कदापि नहीं थी, अचानक उसकी आँखों से आँसू बह निकले।

पापा कह रहे थे - ''एक राजकुमार से होगी मेरी अर्पी की शादी। उच्च ब्राह्मण कुल के। जाने कहाँ से चले आते हैं लोग, कम-से-कम सोचा तो होता और अर्पी कान खोलकर सुन ले, आगे से इस तरह के लोगों को घर में बुलाने की कोई ज़रूरत नहीं हैं।''

रोते हुए अपने कमरे में निढाल-सी बिस्तर में ढह गई। यह आदि का नहीं उसका अपमान किया था पापा ने।

आदि को बहुत बार फ़ोन किया, हर बार फ़ोन बंद मिला। उसके दोस्त से पता लगा कि आदि ट्रेनिंग पर चला गया है। फिर नौकरी पर चला जाएगा।

लगा कि किसी ने भरे बाज़ार उसे तमाचे मारे हों। आदि

को कैसा लगा होगा, वह तो इसके लिए बिल्कुल तैयार न था, यह सोचकर और दुखी हो गई। माँ को उससे सहानुभूति थी, पर पापा ज़िद में थे और दादा-दादी तो अपने उच्चवर्गीय संस्कारों में ही उलझे रहते।

अब अपर्णा का मन न लगता। घर में ज़ोर-शोर से रिश्ते तलाशे जा रहे थे। उसकी एक सहेली ऑस्ट्रेलिया में परमानेंट रेसीडेंसी के लिए आवेदन कर रही थी, अपर्णा ने भी एप्लिकेशन फ़ॉर्म भर दिया। सात-आठ महीने में उसकी औपचारिकताएँ पूरी हो गईं, मित्र के यहाँ कुछ दिन रहने का बहाना बनाकर उसने सूटकेस पैक किया।

''मन बदल जाएगा बच्ची का'' सोचकर माँ ने पापा को मनाया।

पापा ने उसे ड्राइवर के साथ राखी के घर छुड़वा दिया। दो दिन बाद दोनों लड़कियों ने ऑस्ट्रेलिया की फ़्लाइट ले ली। हालाँकि अपर्णा ने आने से पहले माँ-पापा को चिट्ठी लिख दी थी। यह भी कि उससे रिश्ता तोड़ना है, तो तोड़ लें, पर आदि के साथ उन्होंने अच्छा नहीं किया। उसे पता था कि उसके आने के बाद माँ रो-रोकर बुरा हाल कर लेगी, दादा-दादी की नाक कट जाएगी और पापा उच्च ब्राह्मण परिवार के होने के दंभ में उसे गालियाँ दे देंगे। अब जो भी होना है, सो हो।

ऑस्ट्रेलिया में टीचर्स की ज़रूरत थी और राखी को टीचिंग में जाना था। अपर्णा को बैंक में टैलर की नौकरी मिल गई। दोनों अपनी इस नई ज़िंदगी से खुश थे। उन्हीं दिनों राखी की मुलाकात विकास से हुई। विकास इंजीनियर था और दोनों ने शादी कर ली। राखी और विकास एक साल बाद सिडनी चले गए और अपर्णा अपनी नौकरी को समर्पित हो गई। कुछ साल में ही यह दो बेडरूम वाला यूनिट भी खरीद लिया।

ऐसा नहीं कि इन बीस सालों में उसे लड़के नहीं मिले, या लाइन लगाने की कोशिश नहीं की। पर, मन में बसा हुआ आदि को कैसे निकालती? और उसे ऑस्ट्रेलिया में कहाँ से लाती?

सच है 'मन नाही दस बीस।'

आने के दो साल बाद ही राखी के माध्यम से भाई ने मेरा नंबर ढूँढ लिया था - ''दीदी बहुत याद आती है, तुम्हारी। माँ भी तुमको मिस करती है।''

माँ कह रही हैं - ''अर्पी कब आओगी?'' अपर्णा को पता है, वह उस घर में कभी नहीं जाएगी, जहाँ उसके सपनों के महल ढहढहा के गिर पड़े थे। जहाँ उसके आदि को बेइज़्ज़त होकर जाना पड़ा था।

इस बीच भाई मेलबर्न आ चुका है। उसकी शादी में भी वह नहीं गई, तो वही पत्नी को लेकर आ गया था।

उसी ने फ़ोन पर बताया था, जब दादा और दादी का स्वर्गवास हुआ।

माँ कुछ टूटी उदास रहती थीं।

और अपर्णा ...उसके आँसू रिसते-रिसते जाने कब उसके सीने से गाँठ के रूप में उभर आए थे। पैंतीस साल की उम्र में ही उसे अचानक महसूस हुआ कि उसके सीने पर उभरा लम्प बड़ा हो गया है। चिंता हुई डॉक्टर को दिखाया, तो तुरंत मैमोग्राम और अल्ट्रासाउंड करवाने की राय दी।

और फिर आनन-फ़ानन में सारे टेस्ट और बायोप्सी ही गई।

पता लगा ब्रेस्ट कैंसर फैल चुका है। मन इसके लिए तैयार न था, सोच भी नहीं सकती थी। पर डॉक्टर कह रहा था – 'शीघ्रातिशीघ्र सर्जरी करवानी पड़ेगी, राइट ब्रैस्ट रिमूव करनी पड़ेगी।'

सो जल्दी ऑपरेशन की डेट फ़िक्स हुई।

वैसे भी अपर्णा को इन वक्षों से लगाव भी कैसा? जिसे खुद से अधिक लगाव न रहा हो, वह क्या सोचे? जो सुख उसने आदि के नाम कर रखा था, वह तो मिला नहीं। और फिर स्त्री होने-न-होने का सबूत सिर्फ़ वक्ष ही तो नहीं होते। सिडनी में राखी को फ़ोन किया, तो वह तुरंत विकास के साथ पहुँच गई। उसके आने भर से बहुत हिम्मत मिली। दोनों रात देर तक बतियाती रहीं, आदि को याद कर अपर्णा एक बार फिर भावुक हो गई। सच तो यह है कि अपनी किस्मत बनाने में यकीन करने वाली अपर्णा मानने लगी थी कि भाग्य के आगे किसी की नहीं चलती।

अगले दिन सुबह जल्दी उठकर तैयार होना था। जाने क्यों नहाने के बाद शीशे पर नज़र पड़ गई। अब तक तो कैंसर के हिसाब से वक्षों की जाँच की थी, पर आज एक बार भरपूर नज़र से खुद को देखा, उसने। उसे लगा वह माँ जैसी ही सुंदर है। वही नाक-नक्श, रंग, लम्बी गर्दन, बड़ी आँखें, फूल की कली से ओंठ और सधी हुई देह यष्टि। अपने वक्षों पर निगाह पड़ी, राइट ब्रैस्ट को हाथ में थाम थोड़ी देर देखती रही। कहीं कैंसर के कोई लक्षण नहीं। शायद झूठ बोल रहा है डॉक्टर। पर रिपोर्ट्स का क्या करती? वे तो सच थीं न? कई दिन बाद उसने बाथरूम के फुल मिरर में खुद को देखा था। उसकी पूरी देह किसी फ़िल्म एक्ट्रेस-सी सुन्दर थी। और उम्र ही क्या थी उसकी? सोच ही रही थी कि बाथरूम के दरवाज़े पर राखी ने दस्तक दी - ''कितनी देर लगाएगी, लेट नहीं हो, सकते माय डिअर।''

उसने जल्दी से अपनी राइट ब्रैस्ट को आखिरी बार निहारा और जैसे प्यार से गुड बाय कह दिया।

राखी और विकास के साथ कार में अस्पताल जाते समय रास्ते में कोई कुछ न बोला। सब तनाव में थे। ऑपरेशन थिएटर में जाने के पहले विकास ने मेरे माथे को चूमा - ''सब ठीक होगा अर्पी, तुम जैसी बहादुर लड़की का कैंसर तो क्या उसका बाप भी कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। यू आर अ विनर''

राखी ने मेरा हाथ थामे रखा और अपर्णा को इस विकट स्थिति में न माँ याद आई, न भाई और न पापा। याद आया, तो आदि। लगा आदि ने उसका हाथ थाम लिया है और कह रहा है - ''अर्पी, स्टे स्ट्रांग। मैं हूँ न। तन से भले दूर हूँ, पर मन से पास हूँ।''

ऑपरेशन ठीक हो गया। जब होश आया, तब वह अस्पताल के बिस्तर में थी। आँखें खुलीं, तो नर्स की आवाज़ सुनाई दी - 'पेशेंट को होश आ गया है।'

लगा कोई उसके माथे पर हाथ फेर रहा है। स्पर्श चिर-परिचित लगा। नज़र पड़ी तो माँ थीं, आँखों में आँसू लिए कह रही थी - ''मैं आ गई हूँ अर्पी, तुम्हें बिल्कुल ठीक करके ही वापस जाऊँगी।''

''कितना कष्ट सहा अकेले, मेरी फूल-सी बच्ची ने।'' माँ उसके हाथों को चूम रही थीं।

राखी ने उसकी तरफ़ देखा और बोली - ''माफ़ करना अर्पी, तुमसे पूछे बगैर माँ को बुला लिया।''

सच में उस दिन अपर्णा को राखी पर बिल्कुल गुस्सा नहीं आया। जाने क्यों माँ की गोद में सिमटकर सो जाने का मन किया। उनसे लिपट कर रोने का मन किया। जैसे एक छोटी बच्ची जब चलते-चलते थक जाती है न, तो माँ की गोद में जा बैठती है और सारी थकान भूल जाती है।''

अस्पताल से तीसरे दिन छुट्टी मिल गई और अर्पणा घर आ गई। राखी एक हफ़्ते बाद वापस चली गई।

उसके जाने के बाद माँ ने ही छह महीने उसका ख्याल रखा। खाने में आँवले का मुरब्बा, जूस, कच्ची हल्दी के साथ दूध। मन्त्रों का निरंतर जाप। माँ का यही रूटीन था। कभी-कभी अपर्णा स्वयं को गिल्टी समझने लगती कि जिस उम्र में माँ को आराम मिलना चाहिए था, उस उम्र में उन्हें उसकी सेवा करनी पड़ रही है। रेडियोथेरेपी और कीमोथेरेपी के सेशन चलते रहे। इस बीच भाई-भाभी भी उसे देखने आए, पर पापा? वे शायद उसे माफ़ न कर सके थे या फिर अपराध-भाव उनपर इतना हावी हो चुका था कि वे बात भी करने की हिम्मत नहीं जुटा पाते थे। माँ से ही उनके बारे में पता चलता। उसके पीछे शायद वे माँ से ही उसका हाल पूछ लेते थे।

माँ का वीज़ा छह महीने का था। तब तक अपर्णा सँभल गई थी, काम पर भी जाने लगी थी। इस बीच विकास और राखी के चक्कर भी कई बार लगे। अपर्णा और माँ को लेकर कभी कहीं पार्क में या समुद्र-तट पर घुमा लाते। छह महीने बाद माँ चली गईं, पर अपने प्रेम का अथाह खज़ाना उसके पास छोड़ गईं। उनसे गाहे-बगाहे अब बातचीत होने लगी थी, भाई के बच्चे हुए, तो उसने उनके लिए छोटे-छोटे कपड़े खरीद कर भेजे। इधर उसका कैरियर भी अच्छा चल रहा था। लगातार प्रमोशन मिल रहे थे और पिछले पाँच साल से वह ब्रांच मैनेजर है।

अब जब अपनी ज़िंदगी से उसने समझौता कर लिया है, आदि को भूल गई हो, ऐसा बिल्कुल नहीं था। उसका पहला और आखिरी प्यार था, आदि। उसके मिलने की आशा भी

अब नहीं रही थी। आज जबसे उसका मैसेज आया है, वह समझ नहीं पा रही है। उसने लिखा है कि वह परसों मेलबर्न पहुँच रहा है, अपर्णा से मिलेगा तो बीस साल पुरानी सभी यादें मन में चलचित्र की तरह घूमती जा रही है। सोच रही है कैसे मिलेगी उससे। अपने आदि को कैसे बताएगी कि वह पहले जैसी नहीं रही। अब मिलकर क्या करेगा वह। अब वह अधूरी-सी है। उसके शरीर का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा कट चुका है। कैसे कहेगी उससे कि उसकी एक ब्रेस्ट नहीं है। उसकी जगह प्रोस्थेसिक इम्प्लांट है। फिर ख्याल आता है कि अरे अब तक तो आदि की शादी हो गई होगी। कितनी पागल है वह। क्या पता अपनी पत्नी और बच्चों के साथ घूमने आ रहा हो। या हो सकता है, किसी ऑफ़िशियल काम से आ रहा हो। किसी तरह खुद को सँभालने की कोशिश कर रही है, पर जाने क्यों आदि की यादों में और उलझती जा रही है।

विश्वास नहीं होता कि परसों आदि मेलबर्न पहुँच जाएगा। पर अच्छा तो यही है, उसे कुछ पता न चले। पहले की तरह हँसती-मुस्कुराती उससे मिले। और फिर पापा की बात की माफ़ी भी तो माँग लेगी। उठकर जल्दी से ब्यूटी पार्लर में अपॉइंटमेंट बुक किया। कई साल बाद थोड़ा अच्छा लगने का मन किया। अगले दिन आदि का मैसेज था, 'अपर्णा, एयरपोर्ट आओगी क्या लेने?'

मना कैसे करती? संदेश भेजा, ''यस आई विल बी दियर।''

अगले दिन सुबह एयर इंडिया की फ़्लाइट से आदि आ रहा था।

सुबह जल्दी उठी, घर ठीक-ठाक किया। फिर लगा धत। पागल है पूरी। वह घर में थोड़े ही रहेगा। और शायद अब उसका कोई नहीं हो।

जल्दी से ड्रेस निकाली, पसंद आई तो फिर वही, पीकॉक रंग की। जल्दी-जल्दी हल्का-सा मेकअप लगा वह एयरपोर्ट की ओर चल दी।

पार्किंग में गाड़ी लगाकर एयरपोर्ट के बाहर इंतज़ार करने लगी।

यात्रियों का आना शुरू हुआ, तो जाने क्यों अपर्णा का दिल धड़कने लगा। वैसे तो वह आदि को किसी भी रूप में पहचान लेगी। दो साल इतने करीब से देखा है, उसे। तभी उसे लगा दूर से कोई हाथ हिला रहा है। फ़्रेंचकट दाढ़ी में एक हैंडसम-सा आदमी। अरे यह तो मेरा आदि है। उसके साथ चलती महिला को देख लगा, शायद उसकी पत्नी हो। पर जल्द ही यह गलतफ़हमी भी दूर हो गई, जब वह महिला अपने परिचितों से जा मिली।

उसके कंधे पर हाथ रख आदि कह रहा था - ''गले नहीं मिलोगी, अर्पी। इतने साल बाद मिली हो कहाँ खोई हुई हो।''

उसने कुछ दूरी पर रहकर उसे हग दिया जैसे एक मित्र दूसरे को देता है।

आदि कोट पहनने लगा, तो ट्रॉली अपर्णा ने थाम ली। कोट पहनकर जाने वह अचानक झुका अपने घुटने को मोड़कर, अपने कोट से कुछ निकालकर बड़े नाटकीय अंदाज़ में उसका हाथ थाम ज़ोर से बोला - ''विल यू मैरी मी अर्पी?''

आस-पास के लोग ठहर गए, सब हमें देखने लगे। पास खड़ी लड़कियाँ और औरतें ताली बजाने लगीं और जल्दी उनके परिवार उसमें शामिल हो गए। चारों तरफ़ से आवाज़ें आने लगीं - ''से यस, से यस'' ही इज़ अ हैंडसम मैन, ही लव्स यू।'

और इससे पहले कि अपर्णा कुछ समझ पाती, सँभल पाती, कुछ कहती, उसके मुँह से निकल गया ''यस''

आदि ने दो कैरेट सॉलिटेयर हीरे की अंगूठी कब उसकी ऊँगली में पहना दी, उसे पता ही नहीं चला।

लोगों की तालियों की आवाज़ के बीच अपर्णा का हाथ थामे ट्राली धकेलते आदि कह रहा था,

''मेरी ज़िन्दगी का सबसे खूबसूरत दिन है, आज।''

जाने क्यों अपर्णा फिर चिंता में डूब गई - ''पर आदि, एक बार बात तो कर लेते। अचानक कर दिया ये सब। मैं कुछ बताना चाहती थी, तुम्हें।''

आदि ने उसके होंठों पर ऊँगली रख दी, ''कुछ न कहो, कुछ भी न कहो।''

अपर्णा ने लगभग चिल्लाकर कहा -''मेरी बात सुनो

आदि!''

''हाँ जानता हूँ, यही कि तुम्हें ब्रेस्ट कैंसर था, तुम्हारी एक ब्रेस्ट नहीं है, तुम अधूरी हो, यही सब बुलशिट न...। यही बताना चाहती हो न मुझे...। ये सब मुझे तुम्हारे पापा ने पहले ही बता दिया है। और सच तो यह है कि उन्होंने ही मेरा फ़ोन नंबर ढूँढकर मुझे फ़ोन किया और तुम्हारे बारे में बताया। और इस बात से मुझे कोई फ़र्क नहीं पड़ता, क्योंकि मैंने तुम्हें तुम्हारी पूरी समग्रता के साथ स्वीकारा था। मुझे भी तो कुछ हो सकता था। तो क्या मुझे छोड़ देती। शरीर का कोई एक अंग मात्र नहीं हो तुम। मुझे पता था एक दिन हम दोनों अवश्य मिलेंगे। अर्पी वी आर मेड फ़ॉर ईच अदर।''

''पापा ने...? उन्होंने तुम्हें फ़ोन किया...?''

अपर्णा जाने कैसे बिना पलकें झपकाए उसकी बात सुनती रही। जाने कैसे पापा के लिए उसका सारा आक्रोश आँसुओं में बह निकला। आदि के कोट के अंदर सिर छिपाए वह आँसू बहाने लगी।

आदि उसकी पीठ सहला रहा था।

''तुम औरतें भी अजीब हो। लगता है रोना तुम्हें बहुत पसंद है। खुशी के मौके पर भी रोती हो और दुख के मौके तो ढूँढ ही लेती हो। चलो गाड़ी का बूट तो खोलो।''

आँसू पोंछ अपर्णा ने पर्स से कार की चाबी निकाली। आदि बूट में सूटकेस रख उसकी बगल में आ बैठा।

''घर ले चलोगी न अपने।'' उसने आँखों में अपर्णा के प्रश्न को जैसे पढ़ लिया।

कार चलाते हुए अपर्णा को विश्वास नहीं हो रहा था कि कैसे इतनी खुशियाँ उसकी झोली में गिर गईं। आदि भी और पापा भी। अचानक उसे लगा कि वह अधूरी नहीं है।

rekha_rajvanshi@yahoo.com.au

प्रवासी लेखिका का फ़ेंग शुई

डॉ. आरती 'लोकेश'
दुबई, यू.ए.ई.

अरुंधति घर के दरवाज़े पर पहुँची ही थी कि फ़ोन की घनघनाती घंटी बंद दरवाज़े के बाहर तक सुनाई पड़ रही थी। उसने अपनी फ़रयुक्त मोटी जैकेट की जेबें टटोलीं। फिर वह अपने बड़े झोले जैसे पर्स में चाबियाँ ढूँढने लगी। यहाँ टोरंटो में उसके बेटे अश्लेष ने आते ही 'माइकल कोर्स' का बड़ा-सा बैग दिलवा दिया था। इसमें उसका सब सामान सँभले रहने की बजाय और खो जाता था। कहाँ वह जयपुर में स्थानीय दुकान से खरीदा हुआ छोटा और पतला-सा बटुआ रखती थी। उसमें रखना ही क्या होता था उसे? एक घर की चाबी और सौ-दो सौ रुपए। उसे वह बड़ी आसानी से अंटी में खोंस लेती या ब्लाऊज़ में छुपा लेती। बसों में, ऑटो में और रिक्शा में गृहस्थी का सामान जुटाते या विद्यालय के चक्कर काटते कहीं गिरने या छिन जाने का कोई डर नहीं रहता था। कभी बिछुए या दिवाली पर चाँदी का सिक्का खरीदने पर सर्राफ़े वाला एक ज़िप वाला बटुआ दे देता, तो वह भी उसका पर्स बन जाता था।

लिफ़्ट से इक्कीस मंज़िल चढ़कर वह बुरी तरह हाँफ़ रही थी। इतना तो वह जयपुर में तीसरी मंज़िल की सीढ़ियाँ पार करके भी न हाँफ़ती थी। फ़ोन की घंटी की आवाज़ आनी बंद हुई, तो उसकी जान-में-जान आई। माइकल कोर्स की कारा से एक-एक कर सारा सामान स्वतंत्र कर फ़ेंग शुई पौधे के गमले की मुँडेर पर रख चाबी तलाशने लगी। घर के दरवाज़े पर यह असली पौधा उसी ने लगवाया था। नकली वस्तुएँ हों, प्राणी या व्यवहार, उसे कभी पसंद नहीं थे। कुछ चीज़े किनारे पर रखी रहीं, तो कुछ अपना मुँह छिपाती मिट्टी में लुढ़क गईं। पर्स में सबसे नीचे चाबी मिली। उसे खुद पर रोष आया कि चाबी में कोई छल्ला या धागा क्यों न बाँध लिया। चाबी निकालकर झटपट दरवाज़ा खोला। घंटी फिर दनदना कर बजने लगे थी।

यह कौन बेचैन आत्मा है, जो फ़ोन-पर-फ़ोन किए जा

रही है? तनिक भी सब्र नहीं, वह झल्ला उठी। एक नज़र गमले पर डाली, वह फ़ेंग शुई अचानक क्रिसमस ट्री जैसा लगने लगा, जिसके तले में खूब सारे उपहार रखे हों। उसने उस सारे सामान को जल्दी-जल्दी पर्स में भरना शुरू किया। पिछली बार इमारत में मुख्य प्रवेश द्वार को खोलने वाला रेडियो फ़्रीक्वेंसी कार्ड गमले में ही छूट गया था। अत: उसने फिर पलटकर देखा कि कुछ छूटा तो नहीं है।

फ़ोन की घंटी चीख-चीखकर पुकार रही थी। उसने अपने कदमों को तेज़ी से बढ़ाया और तत्परता से फ़ोन का रिसीवर उठाया। टूँ-टूँ – टूँ-टूँकर निश्चित अंतराल पर धुन बजने लगी, जिसके अव्यक्त शब्द ध्वनित कर रहे थे कि कॉल उधर से काटी जा चुकी है। वह वहीं धम्म से बैठ गई। जाने कौन होगा? किसने फ़ोन किया होगा? वह सोच में पड़ गई। लगा जैसे फ़ोन उसी के लिए हो। शायद निवेद्या का..., पर उसकी तो आज परीक्षा है। वह फ़ोन नहीं करेगी। अश्लेष अभी ऑफ़िस से निकला नहीं होगा। क्या पता वह... मन में कुछ बुरे विचारों ने आसन जमाना शुरू किया। उसने मोबाइल निकालकर देखा कि कहीं अश्लेष की मिस्ड कॉल हो। किसी रिश्तेदार का... अरे नहीं! भारत में तो रात हो रही है। उसकी आँखें देर तक फ़ोन के उस ओर के अनचीह्ने व्यक्ति को पहचानने का असफल प्रयत्न करती रहीं। मन ने एक विचार दिया कि किसी प्रकाशक का... पर अब कोई प्रकाशक उसे फ़ोन करता ही कहाँ है।

आज वह जब दीन-हीन शरणार्थियों को कम्प्यूटर प्रयोग की आरम्भिक शिक्षा दे रही थी, तब भी उसका मोबाइल लगातार बज-बजकर झनझनाए जा रहा था। कभी नोकिया, फिर सैमसंग की आदी रही अरुंधति को 'आईफ़ोन' पर कॉल उठाना ही नहीं आ रहा था। एक बार कोशिश करने के बाद मोबाइल बजता ही छोड़ दिया था। वह शरणार्थी युवकों के लिए हास्य-मनोरंजन का साधन नहीं बनना चाहती थी। वह जो पढ़ा रही थी, उसका असर भी उन नवयुवकों पर कम हो जाता। असर से उम्र का डर उसे याद आया। क्या वह इतनी बुज़ुर्ग या मूढ़मगज़ हो चली है कि एक नए उपकरण का प्रयोग न कर पा रही है? सोचने लगी अरुंधति।

अपने-अपने देश से जान बचाकर आए ये युवक-युवतियाँ आँखों में सपने, दिल में उमंगें और मन में जीवन का विश्वास लेकर आते हैं। किन-किन मजबूरियों से दो-चार होकर ये देश छोड़, परदेश में सिर छुपाए पड़े हुए हैं। वह रोज़ ही किसी की व्यथा उसके चेहरे पर पढ़ती और कई कथाएँ उनके कदमों की आहट में। उनकी आँखें, केश, कपड़े, जूते, तौर-तरीके, उठना-बैठना, खाना-पीना; सब कुछ ही तो उनके अतीत की मिट्टी की जड़ों को नई मिट्टी में स्थान बनाने की मशक्कत-कवायद को मुखरित करता था। संगीत और भाव कब भाषा के मोहताज हुए हैं। वार्तालाप का माध्यम कोई एक आम जनभाषा का अभाव उन्हें कुछ सिखाने के लिए था, परंतु आत्मीयता के लिए कदापि नहीं। वह उनकी टूटी-फूटी अंग्रेज़ी समझने लगी थी और अपनी अंग्रेज़ी को कंगूरे व बेले-बूटेदार छज्जे से उतार उनकी ज़मीन के स्तर तक नीचे ले आने के लिए भी उसने खासा प्रयास इन दस दिनों में किया था।

'आप्रवासी' शब्द का सही अर्थ उसने इन प्रवासी जन-समुदायों को जानकार ही जाना। इनके साथ जुड़ा हुआ 'शरणार्थी' शब्द इन्हें दो देशों का होते हुए भी किसी एक का भी नहीं रहने देगा। 'निवासी' शब्द का परित्याग कर, पीढ़ियों तक ये 'प्रवासी' की श्रेणी से बाहर ही बैठे रहेंगे और दूतावास के भी। कई बार मन में आता था कि इन शरणार्थियों के साथ मिले अनुभवों को जोड़कर एक कहानी में ढाल लें। फिर याद आया कि अब किसे आवश्यकता पड़ी है, उसकी लिखी कहानी की? ...किसे विश्वास है उसकी कलम पर? किसी और की क्या कहें... क्या उसका विश्वास बचा है, स्वयं की लेखनी पर? पिछले अनुभवों को याद कर अब उसकी कलम का मुख भी नीम चढ़े करेले-सा कड़वा हो गया था।

आज दरवाज़े से फ़ोन तक आते-आते कहानी के सैकड़ों कथानक उसकी कल्पना से निकलकर आँखों के सामने टहलने लगे थे। घर के दरवाज़े पर सजा यह फ़ेंग शुई तो उसे हर दस्तक पर एक कहानी देकर जाता था। अपने जीवन के बिखरे टुकड़ों को समेट एक पात्र में बटोरने की प्रेरणा भी यह फ़ेंग शुई ही तो देता था। 'हवा' और 'पानी'

का पर्याय यह चीनी पौधा उसे जीवन की ऊर्जा देता रहता था। मिट्टी बदलती है और नाम हवा-पानी के बदलाव का लगता है। मिट्टी पर अमिट रेखाएँ खिंची हैं, जबकि हवा और पानी को कौन रेखाओं में बाँट और सीमाओं में बाँध सका है। हवा-पानी सबके हैं पर मिट्टी सबको नसीब नहीं होती। मिट्टी बदलते ही पहचान बदलती है, नाम बदलता है, गुण बदलते हैं, अवगुण भी बदलते हैं।

जब वह फेंग शुई को लाई थी, तब वह भी कुछ दिन तो मुरझाया-सा रहा था। फिर वह नन्हा पादप अरुंधति की चाह से ताल-मेल बिठाना सीख गया था या फिर कहें कि अरुंधति उसकी मूक भाषा समझने लगी थी। आज उसकी चिरपरिचित आकांक्षाएँ उसके आगे-आगे चल रही थीं और वह किसी सम्मोहन की डोर से बँधी उनके पीछे-पीछे। अपने सूटकेस में से अपनी डायरी निकाल ही लाई और कहानी लिखने लगी। ठंड से हाथ जम रहे थे या कि इतने समय बाद कलम पकड़ने के भय से... वह कुछ घड़ी शून्य में ताकती रही। शब्दों के बवंडर से संगत वर्णों को पकड़ पाना भूस में सुई खोजने जैसा मालूम होता था। कुछ देर में मानसिक भूचाल थमा, तो जैसे ही कलम, कागज़ के संसर्ग में आई, पन्नों पर ऐसे फिसलने लगी जैसे तंदूर से निकले कुलचे पर नवनीत की डली।

'कोरोना' में पति नीरोत्तम के यूँ अचानक चले जाने के बाद से उसका लेखन लगभग समाप्त हो गया था। वह अड़तालीस की उम्र में साठ जैसी अक्षम और निस्सहाय महसूस करने लगी थी। कुछ कमी थी, जो खटकती रहती थी। जब से अश्लेष के ज़ोर देने पर टोरंटो आई है, लेखन की इच्छा कई बार प्रेतात्मा की तरह जकड़ लेती है। शायद शीश पर धरी उत्तरदायित्व की हिमशिला पिघलकर बही है, तो हल्के हुए मन में भावों की गर्माहट भरी तरंगें अधिक ऊपर उठ आई हैं।

"माँ! आप कब से यहाँ बैठी हैं? लगता है वापिस आकर चाय भी नहीं पी आपने तो?" अश्लेष की आवाज़ सुनकर उसकी कलम को ऐसे ही ब्रेक लग गया, जैसे हिमशैल पाकर जलपोत को।

"अरे! तू कब आया? बेटा! मुझे तो पता ही नहीं लगा। तूने तो कपड़े भी बदल लिये?" अरुंधति हैरान थी कि अश्लेष ने अपनी चाबी से दरवाज़ा खोला, अंदर कमरे तक चला गया और उसे पता तक नहीं लगा।

"अभी ही! आप बहुत समय बाद लिख रही थीं... पापा के जाने के बाद शायद पहली बार...। सही है न? ...आपको लिखने का कैसा जुनून होता था। आप तो रात-रात भर जागकर लिखा करती थीं। इतने दिनों बाद आज आपको लिखते देखकर बड़ा सुकून लगा, तो आने के बाद कुछ देर मैं अपने कमरे में ही रहा।" अश्लेष डायरी पर निगाह उछालते हुए बोला।

"अब वह ताकत कहाँ बची है। ...चाय बना लाती हूँ, साथ में पीयेंगे।" कहते हुए अरुंधति उठने लगी। अपने ही मुँह से निकले 'ताकत' शब्द पर गौर करने लगी।

"बैठो माँ! तुम अपनी कहानी पूरी करो। मैं कॉफ़ी बना लाता हूँ अगर तुम मेरे हाथ की पीनी चाहो तो।" अश्लेष आँखें चौड़ाकर उलाहने भरे स्वर में बोला।

"चल! आज कॉफ़ी ही सही।" अश्लेष का मनुहार उसे प्यारा लगा।

फिर जैसे कुछ याद आया और बोली, "अश्लेष बेटा! इस फ़ोन पर बार-बार घंटी बज रही थी, जब मैं घर में घुसी। कॉल लॉग मैं चला नहीं पाई थी। देख लेना किसका ज़रूरी फ़ोन था और आज तो मेरे मोबाइल पर भी किसी का दो-तीन बार फ़ोन आया।" कुछ घड़ी के विराम के पश्चात् कह ही गई, "... तू मेरी सिम मेरे दुबई वाले सैमसंग में ही डाल दे। वही मेरे हाथ लगा हुआ है।"

अरुंधति जानती थी कि उसका यह आग्रह अश्लेष को बिल्कुल पसंद न आएगा। दुबई में रहते हुए भी वह तब तक नया मोबाइल या लैपटॉप नहीं लेती थी, जब तक पुराना वाला बिल्कुल ही मरणासन्न न हो जाए। तब भी नीरोत्तम से कहती कि इसे रिपेयर करा लेते हैं।

"इसे दुबई की मैट्रो लाइन पर रख आओ।" वे हँसकर कहते।

"कूड़ेदान भी इसे रिजेक्ट कर देगा मम्मी!" निवेद्या

कहती।

"तू भी तो अपना मोबाइल बदलने को कह रही थी। मैं तेरा वाला ले लेती हूँ, तू नया ले ले।" वह कहती और निवेद्या का फ़ोन उसका हो जाता।

अपने बच्चों के लिए माँ दधीचि भी होती है और कर्ण भी, झाँसी की रानी भी और पद्मावती भी, नदी भी और पुल भी, यहाँ तक कि कुशन भी और पंचिंग बैग भी।

"माँ, दुनिया आईफ़ोन के पीछे पागल है और तुम ...।" अश्लेष ने वाक्य अधूरा छोड़ उसका फ़ोन अपने हाथ में उठा लिया।

"हम औरतों की दुनिया बाकी दुनिया से मेल कहाँ खाती है बेटा! किसी अन्य ग्रह-सी अलग ही हुआ करती है हमारी परिक्रमा, दिन-रात, ...और हम सभी अपने-अपने सूर्य भी खुद ही गढ़ती हैं। ..." गहरी निश्वास के साथ अरुंधति कह गई।

"माँ, किसी बुद्धप्रकाश जी का फ़ोन आया था मोबाइल पर... जो अनआंसर्ड गया है, आपकी ओर से।" फ़ोन पर छूटे हुए कॉल का इतिहास जाँचता हुआ अश्लेष बोला।

"ओह! बुद्ध प्रकाश! आज उन्हें मेरी याद कैसे आ गई?" कुछ शब्द बाहर और कुछ अंदर ही दोहराए अरुंधति ने।

"कौन हैं ये बुद्ध प्रकाश?" पूछता हुआ अश्लेष फ़ोन लेकर भीतर कमरे में चला गया। उसे स्वयं अपना प्रश्न अटपटा लगा कि जाने माँ इसका उत्तर देना भी चाहें अथवा न चाहें। उन्हें यथोचित निजी स्थान मिलना ही चाहिए।

रसोई से कप में कॉफ़ी फेंटे जाने की आवाज़ आने लगी। कप में घूमती हर चम्मच के साथ अरुंधति को अपनी रचनाओं के वे सभी शीर्षक याद आने लगे, जो बुद्ध प्रकाश जी के संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'लेखिका जगत्' में छपा करते थे। अक्सर प्रवासी कॉलम के लिए बुद्ध प्रकाश जी उसे विषय देकर लेख लिखवाते रहते थे। वह सहर्ष लिख देती और आकर्षक शीर्षक के साथ रुचिकर सामग्री के कारण वे खूब पसंद भी किए जाते थे।

दो वर्ष पहले तक वह दुबई में रहती थी। पूरे पाँच वर्ष, बल्कि कुछ अधिक ही दुबई में हँसी-खुशी बिताए थे। नीरोत्तम को तो और भी छः वर्ष पूर्व दुबई में नौकरी मिली थी। तब वह अश्लेष की पढ़ाई के कारण पति के साथ विदेश न गई। नीरोत्तम ने बहुत समझाया कि दुबई, शारजाह समेत सभी अमीरातों में सी.बी.एस.ई. पाठ्यक्रम के भारतीय स्कूल हैं और बहुत अच्छी पढ़ाई होती है इनमें, पर उसने एक न सुनी। बारहवीं पास कर अश्लेष दिल्ली इंजीनियरिंग कॉलिज में पढ़ाई करने चला गया। तब नीरोत्तम ने उसे निवेद्या को लेकर दुबई आने पर मज़बूर कर दिया था। निवेद्या ने जब दुबई में पढ़ाई शुरू की और उसने यहाँ के स्कूलों को समझा तब उसे पिछले पाँच सालों के विछोह पर बड़ा पछतावा हुआ। ये पाँच वर्ष उसे चिड़िया के चुगे खेत से प्रतीत होने लगे और वह स्वयं कागभगोड़ा बनी खड़ी रह गई।

जयपुर में प्रशासन के विद्यालय में मनोविज्ञान अध्यापिका के पद पर पंद्रह वर्ष का अनुभव अरुंधति को था। दुबई में नौकरी का उसने कोई प्रयास नहीं किया था। वह निवेद्या की पढ़ाई पर ध्यान देना चाहती थी और बीच-बीच में उसे अश्लेष के पास भी जाना पड़ ही जाता था। उसे हरियाली से खतरनाक एलर्जी थी, तो जब भी एलर्जी बढ़ जाती, वह देखभाल करने कुछ दिन दिल्ली चली जाती थी। नीरोत्तम और निवेद्या एक-दूसरे का ख्याल रख लेते थे।

दुबई प्रवास के उन पाँच सालों में अपनी बरसों की तमन्ना पूरी करते हुए, जैसे ही अरुंधति को अवकाश मिलता, वह कहानी या कविता में अपने मन के भाव पिरो देती। उसकी पहली ही कहानी 'परजाई' ने खूब वाह-वाही बटोरी। प्रकाशक ने कहानी में उसके नाम के साथ बड़ा-बड़ा लिखा था -'प्रवासी लेखिका'। बुद्ध प्रकाश जी को जब पता चला इस 'प्रवासी लेखिका' के बारे में, तो तुरंत संपर्क साधकर लेख का निवेदन किया। राजस्थान के संस्कृति मंत्रालय द्वारा चलाई जा रही 'लेखिका जगत्' पत्रिका में उस लेख के लिए उन्होंने मानदेय 1500 रुपए देने को कहा, तो अरुंधति बहुत खुश हुई। नीरोत्तम ने अरुंधति को वह बैंक चेक लेने से रोक दिया। उसका कहना था- ''तुम्हें पैसों की कोई कमी नहीं है। आजकल पत्रिकाओं का खर्च निकालना मुश्किल ही होता है। पत्रिका पर ज़ोर कम पड़ेगा तो वह लम्बे समय तक चलती रहेगी।''

अरुंधति को मानदेय छोड़ने का दुख तो हुआ था, किंतु विचार और तर्क के आगे उसे झुकना पड़ा था। पत्रिका के चलते रहने में ही लेखकों का भी भला है। अपनी रचना को प्रकाशित देखकर एक लेखक को ऐसा ही आह्लाद मिलता है, जैसे अपने बालक की बुद्धिमता देखकर। जब तक वह दुबई में रही, पत्रिका के हर मासिक अंक में उसकी कोई-न-कोई रचना अवश्य छपती। पाँच साल में उसने कभी मानदेय न लिया, न उसे देने का किसी ने फिर प्रयास ही किया। एक बार के बाद ही उस परिप्रेक्ष्य में पूर्ण विराम लग गया था।

कोरोनाकाल का नामकरण और विस्तार अभी हुआ ही था कि नीरोत्तम उसकी चपेट में आ गया। उसमें रोग के सभी घातक लक्षण उपस्थित होने के कारण उसे सरकारी अस्पताल में भर्ती करवाना पड़ा। वैश्विक स्तर की आधुनिक सुविधाएँ तथा अद्यतन उपचार बड़े-बड़े देशों में भी विफल हो रहे थे। सब जगह बस परीक्षण ही हो रहे थे, परिणाम कुछ नहीं। कोई ठोस इलाज या दवा अभी इजाद नहीं हुई थी। इस पर यह महामारी ऐसी कि रोगी से मिलना क्या, देखना भी संभव न होता था। रोगी अलग तड़प रहा होता और घरवाले अलग। दुबई के सरकारी अस्पताल में बड़े नामी चिकित्सक होते हुए भी, बहुतेरे प्रयत्नों के बाद भी, नीरोत्तम कोरोना की भेंट चढ़ गया। डॉक्टरों के सारे ग्रंथ, सारे उपकरण, सारे प्रयोग, सारी विद्या उस दिन नाकाम हो गई थी।

अरुंधति का तो संसार ही उजड़ गया। वह जड़-सी हो गई। कैसे स्वयं को सांत्वना दे और कैसे निवेद्या को सँभाले। बाढ़ से उमगी नदी पर बने कच्चे पुल-सी डाँवाडोल स्थिति में थी। तथापि उसे केदारनाथ की चट्टान सम भूमिका निभानी थी, क्षणिक जल-प्लावन हो या वेगवती दीर्घकालिक बाढ़ का प्रवाह, उसे ही आस्था को बचाए रखना था। उधर अश्लेष का रो-रोकर बुरा हाल था। वह भी जयपुर में अकेला इस दुख को वहन कर रहा था। अश्लेष अपनी इंजीनियरी पूरी कर, अब परास्नातक के लिए कनाडा जाने के आवेदन-पत्र भर रहा था। निवेद्या भी बारहवीं कक्षा की परीक्षाएँ दे रही थी। नीरोत्तम के ऐसे असमय दगा दे जाने से उसकी तो दुनिया के बेतार के तार टूट गए थे।

निवेद्या के बारहवीं का परीक्षा परिणाम घोषित होने तक अरुंधति ने जैसे-तैसे दुबई में निर्वाह किया। एक देश से दूसरे तो क्या, घर से बाहर निकलने तक की मनाही थी। जैसे ही एकतरफ़ा हवाई यात्रा आरंभ हुई, वह दुबई की गृहस्थी समेटकर जयपुर के पुश्तैनी मकान में स्थानांतरित हो गई। निवेद्या ने मैंगलोर में दाखिला ले लिया। इधर निवेद्या का मेडिकल का खर्च और अश्लेष का कनाडा में परास्नातक इंजीनियरी का; यूँ तो नीरोत्तम ने बैंक में अच्छी-खासी रकम छोड़ी थी, पर अरुंधति जानती थी कि दोनों हाथों से लुटाने पर कुबेर का कोष भी रिक्त हो जाता है। अत: उसने अपने दोनों हाथों से काम करके बेहिसाब खर्च पर हिसाब का अंकुश लगा दिया था।

जयपुर में अध्यापन का कार्य पुन: शुरू किया, तो उसे एक आशा यह भी थी कि अपने लेखन के लिए अब वह मानदेय लेने से इंकार नहीं करेगी। उसके एक व्हाट्सऐप संदेश पर जो प्रकाशक झटपट कॉल कर लेते थे और रचना के विषय में विस्तार से चर्चा करते थे, उनमें से एक ने भी उसकी कई-कई घंटियों पर फ़ोन नहीं उठाया। ईमेल, फ़ेसबुक मैसेंजर, व्हाट्सऐप, एस.एम.एस.; सभी माध्यम से उसने एक नहीं, कई प्रकाशकों से संपर्क करने की कोशिश की थी। इन्हीं बुद्ध प्रकाश के कार्यालय में सौइयों कॉल करने पर सहयोगी से जवाब मिलता था- ''साहब फ़्री होकर कॉल करेंगे।''

दो साल तक बुद्ध प्रकाश को अपनी पत्रिका के लिए किसी आलेख की आवश्यकता ही न पड़ी कि वे फ़्री होते और उसे कॉल करते। एक देशवासी जिस निगाह से प्रवासी को देखता है, वह कैसे बदल जाती हैं, प्रवासी के देशवासी बन जाने पर, वह समझ न पाई थी। क्या पैरों के नीचे की मिट्टी इतनी ताकतवर होती है? यदि हाँ, तो यह ताकत बढ़ जानी चाहिए थी, अपनी मिट्टी पर कदम रखने के बाद से। आवश्यकता के क्षणों में सभी तो उससे दूर छिटक गए थे। मजबूरी चुंबक का उत्तरी ध्रुव है, तो सदाशयता दक्षिणी।

दो साल से अधिक गुमनामी में बिताने के बाद कभी ख्यातनाम रही प्रवासी लेखिका अभी पंद्रह दिन पहले ही

टोरंटो आई थी। अश्लेष माँ को बिल्कुल अकेला न छोड़ना चाहता था। कनाडा में दाखिले के लिए खूब भाग-दौड़ करते हुए भी उसे इसका बहुत मलाल रहता था। अब वह अपनी ग्लानि की पिलपिली ग्रंथी को मवादरिक्त कर सुखा देना चाहता था। निवेद्या भी मेडिकल कॉलिज जा चुकी थी। उसकी पढ़ाई दो साल से ऑनलाइन ही चल रही थी। इसी समय भाग्य से कुछ ऐसा संयोग हुआ कि मास्टर्स खत्म होते-होते कैम्पस से ही अश्लेष की नौकरी लग गई। उसने अविलम्ब माँ का दस वर्षीय वीज़ा निकलवाकर अपने पास बुला लिया। उसका बस चलता तो शरणार्थियों को पढ़ाने भी न जाने देता। यह काम तो अरुंधति अपने मन की शांति के लिए करती थी। पद भी अवैतनिक था। माँ की खुशी देखते हुए उसने उसमें बाधा बनना ठीक न समझा। पैसे कमाने का सारा ज़िम्मा उसने स्वयं ले लिया था।

"कॉफ़ी हाज़िर है आपकी सेवा में।" अश्लेष ने कॉफ़ी का कप अरुंधति को थमाते हुए बेयरे की तरह सलाम ठोंकते हुए कहा। यह स्नेह भी तो एक अंतराल के बाद नसीब हुआ है। गर्माहट पाते ही अरुंधति जैसे यादों की जमी हुई दलदल से निकल राजीव के समान खिल आई।

"वाह! क्या मज़ेदार कॉफ़ी बनाई है।" कॉफ़ी की चुस्की लेते हुए अरुंधति ने कहा।

"लो माँ! मैंने तुम्हारा फ़ोन भी बदल दिया है। मन था कि तुम्हें किसी चीज़ की कमी न हो पाए। पहले भी तुम हमें नया दिलवाकर खुद पुराना रख लेती थीं। पापा के जाने के बाद स्वयं को निचोड़कर तुमने मुझे कनाडा में आगे पढ़ाया है। मैं चाहता हूँ तुम्हें हर खुशी दूँ। ...पर तुम्हारी खुशी सैमसंग है।" कहकर ज़ोर से हँसा अश्लेष। अरुंधति ने बेटे को गले से लगा लिया। गला रुँध गया उसका।

स्थिर लाइन पर फ़ोन की घंटी ऐसे बजी कि एक बार को अरुंधति का दिल दहल गया और उसके हाथ से कॉफ़ी गिरते-गिरते बची। दोपहर में खूब भाग कर भी वह फ़ोन न उठा पाई थी। अबकी बार पास बैठे हुए भी न उठा सकी।

अश्लेष ने लपककर फ़ोन उठाया। बुद्ध प्रकाश का फ़ोन था। अश्लेष ने माँ को रिसीवर पकड़ा दिया।

"नमस्कार अरुंधति जी! आप कनाडा में हैं?" बुद्ध प्रकाश का स्वर आया।

यह प्रश्न था? उत्तर सचमुच चाहिए था क्या बुद्ध प्रकाश को? पुष्टि चाहिए थी केवल? प्रश्न के लिबास में सत्यता की जाँच का वक्तव्य था। क्या उत्तर दे इस बात का? दिमाग डेटाबेस में चक्कर काट उत्तर ढूँढने लगा।

"नमस्कार बुद्ध प्रकाश जी! अभी दो सप्ताह ही हुए हैं आए हुए।" अरुंधति ने जानकारी पर सत्यापित की मुहर अंकित की।

"मैं कब से आपको ढूँढ रहा था। अब जाकर नम्बर मिला। ...आपने बताया ही नहीं कि आप कनाडा जा रही हैं।" उन्होंने राहत की साँस लेते-लेते अचानक एक नया प्रश्न दाग दिया।

अनेक कसैले घूँट एक साथ अरुंधति के गले में भर आए। सम्पन्नता के यज्ञमान विपन्नता के हवन में अंगुष्ठ भर समिधा डालने से बच जाते हैं और स्थिति बदलते ही पुन: अनुष्ठानरत हो जाते हैं, भारत देश की सीमा-रेखा पार करने पर ही इस ज्ञान का उदय टोरंटो के सूर्योदय के साथ हुआ।

"मगर आपको नम्बर मिला कैसे? वह भी लैण्डलाइन का?" अरुंधति चकित थी कि न तो उसने अपना व्हाट्सऐप नं. बदला अभी तक, न ही फ़ेसबुक अपडेट किया, न कोई स्टेटस ही डाला। कोई उसे ढूँढने चला है, यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं थी। ढूँढा तो ऐसा ढूँढा कि शहर-देश तो छोड़ो, फ़ोन का नम्बर तक निकाल लिया।

"अरे नम्बर... वह तो मैंने आपकी सुपुत्री से लिया।" वे अपनी होशियारी पर घमंड से हँसे।

"निवेद्या से? पर क्यों?" यह पूछा उसके कंठ ने... और मन ने पूछा कि ऐसी क्या ज़रूरत आन पड़ी कि फ़ोन न उठाने वाले अंतर्राष्ट्रीय कॉल का खर्चा उठा रहे हैं।

"आपके व्हाट्सऐप पर आपकी प्रोफ़ाइल तस्वीर में आपको सुपुत्र अश्लेष के साथ देखा तो सोचा हाल-चाल पूछ लूँ।" एक बेशर्म बत्तीसी दाँत निपोरती दिखी होगी, उस पार उनके आस-पास के सहयोगियों को।

अरुंधति को तुरंत अहसास हुआ कि उस तस्वीर में

उसके और अश्लेष के अतिरिक्त विश्वप्रसिद्ध सी.एन. मीनार (टॉवर) भी समाई हुई है। उसे पार्श्व में रखकर ही अश्लेष ने वह सेल्फ़ी खींची थी, माँ के संग। निवेद्या का नम्बर पता लगाना तो कोई मुश्किल काम था ही नहीं। गुड़खोर और गुड़चोर को गुड़ मिल ही जाता है।

"जी हाल-चाल सब ठीक हैं। निवेद्या, अश्लेष, सबके हाल जान ही गए हैं अब आप।" शब्दों में न होकर उसके भावों में तीखा व्यंग्य उभर आया था।

"हाँजी-हाँजी! पिछले कुछ समय से बहुत अधिक व्यस्त रहा हूँ। आपके पति के बारे में दुखद समाचार भी मिला था। तब ही से सोच रहा था कि आप से बात करूँ, कुछ सांत्वना दे सकूँ...।" कृत्रिम संवेदना के कुछ सतही स्वर उभरे।

"इस हादसे के बाद से तो मैं वहीं थी, जयपुर में.. पूरे ढाई वर्ष। कभी दिखी नहीं, आपकी छूटी हुई कॉल मुझे।" चेहरे पर तल्खी उभर आई थी। सोचा- अभी आज ही कॉल छूटी है जब उसकी कोई उम्मीद शेष न रह गई थी।

आमतौर पर अरुंधति यूँ किसी को ताने-उलाहने देने में विश्वास न करती थी, किंतु इस बार वह विवश हो गई थी। हैरान थी कि किस प्रकार यह देशवासी अपने मतलब और मक्कारी को हमदर्दी के मुखौटे में छुपाते हुए उसे प्रवासी दृष्टि से देख रहा है। बातों के जमाखर्च से कोष कब रिक्त हुए हैं, जो आज खजाने में घाटा होता? संबंधों को बट्टा लगाया जा सकता है। उसकी भवें तन गई थीं।

"जी, रखता हूँ फिर। बात करती रहिएगा।" खिसियानी-सी आवाज़ में वे बोले।

"जी, अवश्य!" कहकर वह रिसीवर रखने ही वाली थी कि उधर से कुछ आवाज़ आई।

"...अरुंधति जी! ...मैं कह रहा था कि कोई कहानी-लेख इत्यादि लिखा हो तो भेजिए। पत्रिका आपके बिना सूनी-सी लग रही है। बहुत दिनों से कुछ भेजा नहीं आपने।" वे निरीह-सा स्वर निकालकर बोले।

"देखती हूँ।" कहकर फ़ोन पटक दिया अरुंधति ने। जी में तो आया कि कह दें अब किस मुँह से रचना माँग रहे हो। मेल पर दसों रचनाएँ भेजीं। एक का जवाब तक न आया। स्वीकृति की तो छोड़ ही दो, खेद सहित अस्वीकृत करने का ही जवाब दे देते, पर इतनी सज्जनता भी न दिखा सके।

"तुमने सही ही लिखना शुरू किया है माँ! देखो तुम्हारी रचनाओं की माँग आने लगी।" अश्लेष ने उसके गले लगते हुए गर्व से कहा।

"देखती हूँ।" मंद-मंद मुस्कान बिखेरते अरुंधति बोली।

"देखना क्या है? भेज देना जो अभी लिख रही हो। ...पूरी कर लो। खाना बाहर से मँगवा लेते हैं। सेलिब्रेशन भी हो जाएगा और तुम्हें लिखने का समय भी मिल जाएगा।"

अरुंधति से अधिक अश्लेष उत्साहित था। माँ को दुबई की फ़ाख़्ता-सी चहकती हुई फिर से देखना चाहता था या अरेबियन ऑरिक्स सी कुलाँचे भरते हुए साहित्य मरुद्यान में।

अरुंधति ने अपनी डायरी पर निगाह डाली कि वह लिख क्या रही थी-

'फ़ेंग शुई पौधा मुझे इसलिए प्रिय है, क्योंकि यह सिखाता है कि बदलते पर्यावरण से जुड़े रहते हुए, इसके साथ-साथ बदलाव से सामंजस्य बिठाकर, बहाव के साथ कैसे बहा जाए। 'फ़ेंग शुई' वनस्पति का नहीं, उस विज्ञान का नाम है, जो हमें इस प्राकृतिक संसार में अपने जीवन के समुचित स्थान तलाशने के लिए संतुलन बनाने का ढंग बताता है।'

अपनी ही लिखी पंक्तियाँ बार-बार उसने पढ़ीं। कुछ देर वह कलम को उँगलियों में दबाए उसके साथ उलझती-खेलती रही। फिर कलम ने हठ पकड़ ली, तो उसकी पकड़ भी मज़बूत हुई और कहानी आगे चल पड़ी।

"माँ! खाना आ गया।" कुछ देर बाद अश्लेष बोला।

"मेरी कहानी भी पूरी हो गई। जैसा तू कहता है भेज दूँगी बुद्ध प्रकाश जी को आज ही।" अरुंधति का चेहरा विजयी आभा से जगमगाने लगा।

"माँ, मानदेय मत लेना। तुम्हें किसी चीज़ की कमी है क्या?" अश्लेष बोला।

अरुंधति को लगा कि जैसे नीरोत्तम ही बोल रहा है।

"हाँ, अब मैं फिर से प्रवासी लेखिका जो बन गई हूँ।" आँखों में उमड़ आए मेघों को अरुंधति ने अपनी गहरी मुस्कान के गड्ढों में छुपा लिया।

arti.goel@hotmail.com

पंखों वाली औरत

शुभ्रा ओझा
शिकागो, यू.एस.ए.

छोटी बिटिया को सुलाने के बाद आदर्शिनी उठी और खिड़की के पास आकर बैठ गयी। खिड़की के बाहर उसे कई रंग-बिरंगे पत्तों वाले पेड़ दिख रहे थे। घर के बाहर इतना सुंदर दृश्य देखकर आज दर्शिनी को अपनी माँ से सुनी हुई एक कहानी याद आ गई।

बचपन में आदर्शिनी की माँ उसे परियों वाली एक कहानी सुनाती थी। उस कहानी में एक औरत जाने कहाँ से परियों के देश में पहुँच जाती। जब भी वह औरत परियों के पंख देखती, तब बहुत खुश होती थी। परियों को उड़ते देख अक्सर वह सोचती कि "काश, मेरे पास भी पंख होते, तो मैं भी इन परियों की तरह उड़ सकती।" वह औरत परियों के सुंदर महल में रहती और परियों के लिए खूब मन लगाकर काम करती थी। परियाँ भी उस औरत से बहुत खुश रहती, क्योंकि जब परियाँ अपने काम से महल से दूर जाती, तब वह औरत महल में रहकर परियों के सारे काम करती थी। परियों के देश में सारी सुख-सुविधाएँ थीं, चमकीले रास्ते, ऊँचे-ऊँचे महल, जादुई बगीचे, मीठे-मीठे फल, मनोरंजन के सभी साधन, खाने-पीने के लिए ढेर सारे पकवान और पहनने के लिए राजसी वस्त्र। परियों के महल में दुनिया भर की सुख-सुविधाएँ उपलब्ध होने के बावजूद उस औरत का मन परियों के देश में नहीं लगता था। एक दिन वह औरत उदास-सी बैठी थी तभी परियों की सलाहकार परी वहाँ आ पहुँची और उस उदास औरत से बोली - "तुम्हें यहाँ किसी चीज़ की ज़रूरत हो, तो मुझे बताना, मैं तुम्हारी मदद करूँगी।"

"धन्यवाद, मुझे कुछ नहीं चाहिए", उस औरत ने कहा

"तब तुम उदास क्यों हो?", परी ने पूछा "क्या मैं भी परियों की तरह उड़ सकती हूँ?" उस औरत ने सलाहकार परी से पूछा -

"हाँ, ज़रूर।" सलाहकार परी ने कहा

"लेकिन कैसे ? मेरे पास तो पंख नहीं हैं।", औरत बोली।

"यह लो रेशम का धागा और बुन लो अपने पंख।", सलाहकार परी ने रेशम का गोला उस औरत को देते हुए कहा

वह औरत रेशम का गोला पकड़ते ही हड़बड़ा गई और सलाहकार परी से बोली, "लेकिन, मुझे तो पंख बनाना नहीं आता और न ही पंख लगाकर उड़ना।"

यह सुनकर सलाहकार परी हँसने लगी और फिर बोली "देखो, पंखों को बनाना बहुत आसान है। जब तुम उड़ने के लिए मन में ठान लोगी, तब इन रेशम के धागों से तुम्हें पंख बुनना आ जाएगा।" यह कहकर वह सलाहकार परी चली गई और रेशम का गोला लेकर वह औरत अपने कामों में व्यस्त हो गई। परियों के काम से जब भी उस औरत को थोड़ी-सी फ़ुर्सत मिलती, तो वह अपने पंखों को बुनने बैठ जाती।

यह कहानी आदर्शिनी ने अपनी माँ से न जाने कितनी ही बार सुनी थी, लेकिन जब भी वह यह कहानी सुनती हर बार अपनी माँ से यही प्रश्न पूछती - "माँ, वह औरत परियों के इतने सुंदर देश में रहती है, जहाँ दुनिया की सारी सुविधाएँ हैं, तो फिर वह उड़ना क्यों चाहती है?" इस प्रश्न का सही-सही उत्तर माँ कभी नहीं दे पाती और जो कभी उत्तर दे भी देती, तो आदर्शिनी उस उत्तर से संतुष्ट नहीं हो पाती।

धीरे-धीरे आदर्शिनी बड़ी हो गई और माँ का कहानी सुनाना भी बंद हो गया, लेकिन परियों के देश की सुंदरता का वर्णन, जो माँ कहानियों में करती थी, वह कहीं-न-कहीं आदर्शिनी के दिमाग में बैठ गया था। आदर्शिनी चाहती कि एक ऐसे ही सुंदर देश में रहने को मिले, जो परियों के देश जितना ही सुंदर हो।

भगवान ने आदर्शिनी के मन की बात सुन ली। शादी के पाँच साल बाद आदर्शिनी के पति का ट्रांसफ़र अमेरिका के इंडियाना राज्य में हो गया और वह अपने पाँच महीने की बिटिया और पति के साथ यहाँ अमेरिका में आ गई।

आदर्शिनी को इंडियाना में आये कुछ ही महीने हुए थे, लेकिन उसे यहाँ अमेरिका में कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। उसने क्या-क्या न सोचा था कि अमेरिका जैसे देश में जहाँ ऊँची-ऊँची चमचमाती बिल्डिंग और बड़े-बड़े शॉपिंग मॉल हैं और गोरे लोगों के बीच वह कितनी खुश रहेगी, लेकिन यह क्या? अमेरिका आते ही वह किचन में लग गयी। किचन तक तो ठीक भी था, पर यहाँ तो किचन के साथ बाथरूम साफ़ करना, कपड़े धोना, फिर प्रेस करना, घर की सफ़ाई भी करना, खाना बनाना और साथ में छोटी बिटिया के साथ पूरा दिन खटना। कभी-कभी तो आदर्शिनी काम करते हुए रोने भी लगती, बेचारी अब अपना दुःख कहे भी तो किससे? उसने ही तो अपने पति आदित्य को अमेरिका आने के लिए कई सालों से परेशान कर रखा था। यहाँ तक कि आदर्शिनी ने अमेरिका में रहने के लिए घर भी ऐसी सोसाइटी में लिया, जहाँ भारतीयों की संख्या बहुत ही कम थी, आदित्य ने उसे कितना समझाया था कि आस-पास अपने जैसे भारतीय लोग रहेंगे, तो उनसे घुलने-मिलने में कितनी आसानी रहेगी, लेकिन आदर्शिनी ने अपने पति की बोलती यह कहकर बंद कर दी कि "भारत में तो अपने जैसे ही लोगों के साथ रहते थे, अब अमेरिका में तो गोरे लोगों के साथ रहने दो, उन्हीं लोगों के साथ दोस्ती करने दो, बहुत अच्छा लगेगा, अंजान देश में अलग लोगों के साथ रहकर।" गोरे पड़ोसी तो मिल गये, लेकिन उनके साथ तो केवल हाय-हैलो तक का ही रिश्ता रह गया, कभी भी किसी पड़ोसी ने बहुत लम्बी बात-चीत नहीं की आदर्शिनी से, वैसे भी यहाँ अमेरिका में लोगों के पास समय ही कहाँ हैं? सुबह 7 बजे तक तो सब काम पर निकल जाते हैं, शाम को घर लौटने के बाद कुछ समय अपने परिवार के साथ बिताने और कुछ समय अपने लिए निकालने में ही रात हो जाती है। रात आठ बजे तक लगभग सभी गोरे पड़ोसी सो जाते हैं। पूरे हफ़्ते का यही क्रम चलता रहता है, वीकेंड पर वे पड़ोसी अपने परिवार या दोस्तों से मिलने शहर में या शहर से दूर चले जाते हैं। पड़ोसियों से मिलने का समय किसी के पास नहीं होता, वह भी अगर पड़ोसी किसी अन्य समुदाय से हो तो।

कुछ ऐसे ही अमेरिकन सोसाइटी में आदर्शिनी रह रही थी, जहाँ उसके अनुसार सब कुछ था- सुंदर घर, रंग-बिरंगें पेड़, थोड़ी-थोड़ी दूर पर शॉपिंग करने के लिए मॉल और आस-पास गोरे लोगों का घर। सब कुछ मन मुताबिक मिलने के बावजूद आदर्शिनी खुश नहीं रह पा रही थी, पता नहीं क्यों उसे लग रहा था कि कुछ तो कमी है, उसे रह-रहकर भारत की याद आ रही थी, विशेष रूप से अपनी नौकरी की।

शादी के बाद अपने देश भारत में सब कुछ कितने अच्छे से सेट हो गया था। बैंक में नौकरी और घर के कामों के लिए भी आनन्दी आ जाती थी। त्योहारों और घर की पार्टियों के लिए आदर्शिनी कुछ ज्यादा पैसे देकर आनन्दी को घर पर रोक लेती थी, जिससे कि घर की सफ़ाई के साथ किचन के कामों में भी आदर्शिनी की मदद हो जाती थी। वैसे भी पूरा दिन बैंक में काम करने के बाद आदर्शिनी के पास इतनी हिम्मत ही नहीं बचती थी कि वो किचन के कामों को अकेले समेट ले।

जब घर की लक्ष्मी के हाथों में नोटों और सिक्कों से भरा कलश हो, तब किचन की कलछी चलाने के लिए कोई-न-कोई आनंदी मिल ही जाती है, लेकिन यहाँ अमेरिका में न नौकरी थी, न हाथ में डॉलर और न ही मदद करने के लिए आनंदी। छोटी बिटिया और EAD Authorization (Employment Document) न होने की वजह से अभी आदर्शिनी जॉब भी नहीं ढूँढ सकती थी। इसी उधेड़बुन में बैठी आदर्शिनी अब भी खिड़की से बाहर रंग-बिरंगे पत्तों वाले पेड़ों को देख रही थी, तभी चुपके से उसके पति आदित्य ने पीछे से उसकी आँखों को अपने हाथों से बंद कर दिया। आदर्शिनी ने चौंकते हुए पूछा- "अरे, आँखों को क्यों बंद कर दिया ?"

"तुम्हारे लिए गिफ़्ट है।"

"गिफ़्ट ?"

"हाँ, गिफ़्ट। बताओ क्या है ?"

"मुझे नहीं पता।" अपनी आँखों से आदित्य का हाथ हटाते हुए आदर्शिनी बोली सामने एक बड़ा-सा गिफ़्ट का पैकेट पड़ा था।

"ये क्या है? गिफ़्ट की क्या ज़रूरत थी ?"

"मुझे सब पता है, तुम्हें पिछले कई हफ़्तों से देख रहा

हूँ। तुम कितना परेशान रहती हो, घर के काम और बिटिया में ही उलझी रहती हो। अमेरिका आने से पहले तुम कितनी चहकती रहती थी और अब कितनी चुपचाप। मैं अपने नए प्रोजेक्ट की वजह से चाहकर भी तुम्हारी मदद नहीं कर पा रहा था, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि मैं तुम पर ध्यान नहीं दे रहा था। आज ही मेरी मैनेजर से बात हुई है प्रोजेक्ट का काफ़ी काम हो चुका है, तो अब ऑफ़िस से थोड़ा-बहुत समय मुझे भी मिल जाएगा और मैं घर के कामों में तुम्हारी मदद कर दिया करूँगा।"

यह बात सुनकर आदर्शिनी ने भावुक होकर आदित्य के हाथों को अपने हाथों में थाम लिया। हाथ छुड़ाकर, मुस्कुराते हुए आदित्य बोला- "अरे गिफ़्ट तो खोलो।"

आदर्शिनी ने जब पैकेट खोला, तब उसमें कैनवास, रंग-बिरंगे पेंट और कई तरह के पेंटिंग ब्रश थे। यह सब देख आदर्शिनी की आँखों में खुशी की एक नई चमक आ गई। वह मुस्कुराते हुए बोली-" यह सब मेरे लिए?"

"हाँ, तुम्हारे लिए। मुझे पता हैं पेंटिंग तुम्हारे लिए जुनून है। भारत में नौकरी की वजह से तुम इसके लिए टाइम नहीं निकाल पाती थी। लो, अब उठाओ अपना ब्रश और भरो अपने सपनों में रंग और हाँ यहाँ अमेरिका में तुम्हारे जुनून की कीमत डॉलरों में लगेगी।" हँसते हुए आदित्य ने कहा

"इतनी छोटी बिटिया के साथ, ब्रश कैसे चलेगा?"

"मैं हूँ न तुम्हारे साथ। तुम अपना ब्रश संभालना मैं अपनी बिटिया को संभाल लूँगा।"

आज अपने हाथों में पेंट ब्रश लेते हुए आदर्शिनी को पंखों वाली वह औरत याद आ गई, उसे लगा उसके हाथों में ब्रश नहीं, रेशम का वह गोला है, जिससे वह बुनेगी अपने लिए दो सुनहरे पंख।

imshubhra.ojha@gmail.com

चीरहरण

अश्वनी कुमार
उत्तर प्रदेश, भारत

दुर्योधन बोला दुशासन जाओ जल्दी आना,
अगर द्रौपदी न माने तो केश पकड़कर लाना॥

बतलाना उसको तुम, न रानी न पुर वासी हो,
तुम्हें युधिष्ठिर हारा, अब तुम मात्र एक दासी हो॥

सुन भ्राता के बोल कुटिल, दुशासन भी गुर्राया,
बोला उस दासी को भईया, अभी खींचकर लाया॥

काल निकट आता है, जब-जब, तब-तब यह होता है,
अहंकार व मद में मानव बुद्धि को खोता है ॥

कुरुकुल के एक हठी मूर्ख ने कर दी सीमा पार,
केश पकड़ खींची एक नारी, जो कि थी लाचार॥

अपनी लाज बचाने की वह माँग रही थी भीख,
देख रहे थे सभी मगर न सुनी किसी ने चीख॥

धर्म की पट्टी बाँध आँख पर सभा हुई थी मौन,
भीष्म हो गए कायर उस दिन तथा नपुंसक द्रौण॥

याज्ञसेनी को वैश्या कहकर कर्ण करे उपहास,
घटित हुआ उस दिन ये सब क्यूँकि पांडव थे दास॥

दुर्योधन के बैर भाव ने दी सीमाएँ लाँघ,
एक सती को दासी कहकर जब दिखलाई जाँघ॥

उस पल धरती डोल गई थी काँप रहा क्षण डरके,
थी उस दिन अस्मिता ताक पर क्या होता प्रण करके॥

दुर्योधन ने दिया अनुज को वस्त्र हरण आदेश,
दुशासन में एक पशु का तभी हुआ प्रवेश॥

शिथिल द्रौपदी हाथ जोड़कर खड़ी सभा के बीच,
किया कृष्ण का सुमिरन उसने दो नयनों को मीच॥

आज अकेली हूँ माधव तुम आकर मुझे बचा लो,
दीन-हीन इस शरणागत को मुरलीधर अपना लो॥

परिजन-बंधु-बाँधव, जब कोई भी न हो साथ,
विकट समय में निकट सदा होता है दीनानाथ॥

एक नपुंसक उस दिन स्वयं को समझ रहा था वीर,
शुरू कर दिया उसने हरना एक नारी का चीर॥

कामुकता में आज सभी को पूर्ण मग्न कर दूँगा,
दुशासन हूँ इस दासी को आज नग्न कर दूँगा॥

भूल गया भीरु उसका भी अंत समय आएगा,
धड़ से भुजाएँ उखड़ेंगी सीना चीरा जाएगा॥

एक अलौकिक घटना का वर्णन करता हूँ आज,
कैसे रखी थी मोहन ने अपनी सखी की लाज॥

तेजवान एक ज्योत ने तब डाला अपना डेरा,
सभा मध्य द्रुपद कन्या को चहुँ ओर से घेरा॥

दुशासन की हार देख सब कौरव हुए अधीर,
गिरा कुटिल थककर भू पर, पर खत्म हुआ न चीर॥

सभी चकित थे सभी अचंभित सभी हुए भयभीत,
जब दानवता ने देखी पावन भक्ति की जीत॥

भरी सभा ने द्रुपद कन्या की जयकार लगाई,
काल देख चौखट पर तब सबको थी बुद्धि आई॥

जिसके कारण हुआ सती शामा का वैसा हाल,
आमंत्रित कर डाला था उसने स्वयं अपना काल॥

वनवासी पांडव रखेंगे जीवित अपना क्रोध,
कुरुक्षेत्र में चीरहरण का ले लेंगे प्रतिशोध॥
कुरुक्षेत्र में चीरहरण का ले लेंगे प्रतिशोध॥

ashipe90@gmail.com

मॉरीशस का आप्रवासी घाट

दीप्ति अग्रवाल
भारत

मॉरीशस का आप्रवासी घाट
पत्थर पर पड़े देखे
गिरमिटियों के कदमों के निशान
पहला ख्याल कौंधा
क्या जब वे आए
तब नंगे पैर थे
जो छप गए उनके पैर
कैसा मंजर रहा होगा न?
क्या-क्या चल रहा होगा मन में?
अनजान धरती, अनजान देश
छोटी-सी पोटली बगल में
दबाकर आ गए इतनी दूर
राम नाम का गुटका और लोटा डंडा
क्या कर देंगे बेड़ा पार?
'एटलस' जहाज़ में चढ़ाया 'अराकाटी' ने
भेजा इतनी दूर
क्या पाँच बरस बाद वापस भी ले जाएगा
वापस गाँव?
उन्हें तो नहीं मिला किसी पत्थर के नीचे सोना
हाँ खून ज़रूर बन गया पसीना
बना दिया सफ़ेद सोना
कर दिया जंगल में मंगल
गोरों ने बटोरे नोटों के बंडल
जागी चेतना, किया विद्रोह
लिया श्रम, विद्या, आस्था का साथ
बन गया उनका देश
जिसने दी उनको रोटी, पद, प्रतिष्ठा
और आज यहाँ हम 70 प्रतिशत भारतवंशी
पूजते हैं अपने पूर्वजों के चरणों को
जो छपे हैं आप्रवासी घाट पर।

deeptiaggarwalmail@gmail.com

भाषा, बोली और आदमी

श्री प्रदीप कुमार ठाकुर
नई दिल्ली, भारत

ब्रह्मांड के किसी कोने से
उठती है एक आवाज़!
आवाज़ जिसे किया जाता है अनसुना,
जो गूँजती है एक काल कोठरी में
तुम्हारे शब्द-कोशों में जो नहीं है शामिल!
जिसे तुम अपनी भाषा में कहते हो बोली
और मैं...और मैं...
कहता हूँ उसे अदना-सा एक आदमी!
जिसकी नहीं है कोई औकात
नहीं है कोई गिनती
उन वर्णक्रमों में
जिसे सजाया, सँवारा है तुमने
अपने मूल्यवान 'कोशों' में।
बोलियों से तो मिलकर ही बनी हैं भाषाएँ!
उसकी हड्डियाँ, उनकी अस्थिमज्जाएँ।
ध्वनियाँ रक्त बनकर दौड़ती हैं भाषा की शिराओं में।
उनका संगीत बहता है रग-रग में।
परन्तु तुम्हारी भाषा!
तुम्हारी अभिजात भाषा में
जिसके लिए नहीं बन पाई
एक मुकम्मल जगह।

भाषाओं की रस्साकशी में पिसती रहती हैं बोलियाँ
घुटता रहता है दम
उखड़ता रहता है बल
और एक दिन
तुम्हारे जश्न के बीच
एक-एक कर दम तोड़ देती हैं बोलियाँ! जैसे मरता है
एक बेज़ुबाँ
न कह पाने की पीड़ा से
न सह पाने की पीड़ा है।
बोलियाँ जिसमें दर्ज है तुम्हारा इतिहास, तुम्हारे पूर्वज,
तुम्हारी संतति!
किंतु बड़बोलापन और तुम्हारी नासमझी
घोंट रही है जिसका गला।
अब भी जब तुम चाय की चुस्की
का ले रहे हो स्वाद!
कहीं अंधेरे में गुम हो रही होगी कोई बोली
और कहीं कोने में एक अदना-सा आदमी भी!

pradipb.ed@gmail.com

इसीलिए उठ वीर पुरुष!

मिति भारद्वाज
अजमेर, भारत

भारत माता ललकार रही जा वीर तुझे अब जाना है।
और अपनी माँ के गौरव को उस दुश्मन को दिखलाना है।।
यह दुश्मन कोई और नहीं यह तो घर का ही भेदी है।
जो था अपना जाने कैसे हिंसा का यह कैदी है।।
मैं बन मूरत बलिदानों की न जाने कितना कष्ट सही।
पर अब हिंसा को सहने की मुझमें भी क्षमता नहीं रही।
अब अंत हुआ उस माँ का जो सबको आंचल में लेती थी।
सब थे समान, जिनके खातिर सब कष्टों को सह लेती थी।।

मुझको भी वीर जवानों का बलिदान रुँआसा करता है।
एक नहीं, किसी का पुत्र किसी का भाई किसी का पति मरता है।
सोच ज़रा उस बहना का जो थाल सजाया करती है।
और अपनी राखी हाथ लिए, वह राह निहारा करती है।।

जाने भैया कब आएगा और देख मुझे मुस्काएगा।
और अपनी वीर कलाई पर मुझसे राखी बँधवाएगा।
पर क्या वह भैया आएगा उससे राखी बँधवाएगा।
या अपनी भारत माँ की खातिर वह शहीद कहलाएगा।।

इसीलिए उठ वीर पुरुष! इतनी ही मेरी आशा है।
लहराए तिरंगा हर घर में अब यही मेरी अभिलाषा है।
भारत का इक-इक बच्चा बोले जन-गण-मन, भारत की जय।
आशीष मेरा है तेरे संग, कि तू ही सब पर करे विजय।।

mitibhardwaj@gmail.com

तुम कैसे भगवान हुए

श्री अनंत देव
दिल्ली, भारत

सारा जीवन श्रापित-श्रापित,
हर रिश्ता बेनाम कहो,
दो मेरे प्रश्नों का उत्तर,
है! मुरली वाले श्याम कहो...

सूर्य का अंश होकर भी,
मैं क्यूँ सूत पुत्र ही कहलाया,
ज्येष्ठ कौंतेय होकर भी,
क्यू मैं कुंती माँ को नहीं भाया।
पांडवों पर जब मृत्यु का संकट मंडराया,
तब उनको मैं याद आया,
मैंने उनको वचन दिया कि,
पांडवों का काल नहीं हूँ मैं,
पर जो अपनी संतान गंगा में बहाए,
ऐसी जननी का लाल नहीं हूँ मैं।
क्यू करूँ मैं उन्हें याद,
जो मेरी न पहचान हुए,
रणभूमि में छल करते हो,
तुम कैसे भगवान हुए।

हे! गुरु द्रोण...
अच्छा धनुर्धर था मैं भी,
फिर अर्जुन का मोह क्यूँ न तुमसे छूटा,
क्यूँ ब्रह्मास्त्र दिया सिर्फ़ अर्जुन को,

ये जात-पात का चक्रव्यूह क्यूँ न तुमसे टूटा,
एकलव्य का लिया अँगूठा,
मुझको सूत बताते हो,
खुद ब्राह्मण होकर अस्त्र उठाए,
और मुझको जात दिखाते हो!
किससे कहूँ मैं अपनी पीड़ा,
कैसे-कैसे इंसान हुए,
रणभूमि में छल करते हो,
तुम कैसे भगवान हुए।

दिनकर मेरे पिता थे,
फिर भी उनका साथ क्यूँ न मैंने पाया,
पार्थ परास्त हुआ जब मुझसे,

उसका पराजय क्यूँ न तुमको भाया,
तुम्हारे ही चाहने पर,
दिनकर को ओट में छुपना पड़ा,
और तुम्हारे ही कहने पर,
उनको दो पल अधिक रुकना पड़ा।
जो दिनकर देते मेरा साथ,
तो सारे जग को अपना पराक्रम दिखा देता मैं,
जो दिनकर ठहरते कुछ क्षण और,
तो हे! मुरलीधर...
तुम्हारे समक्ष ही अर्जुन का शीश गिरा देता मैं।
अपने ही पुत्र के साथ अन्याय करते हो,
तुम कैसे दिनमान हुए,
अरे, रणभूमि में छल करते हो,
तुम कैसे भगवान हुए।।

anantdevdps@gmail.com

सूर्य-वंदना

डॉ. कुसुम कुंज मालाकार
असम, भारत

सूर्य की भक्ति में हम सबकी है आस
एकनिष्ठ, परम पिता सूर्य,
हम सभी के हैं खास।

सृष्टि के आदि से अंत तक,
आप ही इसके पहरेदार,
सूर्य! आप ही हैं सभी के खास।

प्रत्यक्ष देवता आप मेरे,
आप से ही हम सबकी है आस।
सूर्य! आप ही हैं सभी के खास।

जग की सर्वोच्च शक्ति,
आप ही सबके पालनहार,
सूर्य! आप ही हैं सभी के खास।
तिमिर हरकर रोज़ भू पर ,
आप करते हैं उम्मीदों का प्रकाश,
नि:स्वार्थ यह सेवा आपकी,
निरंतर, जग को किया कृतार्थ।
खिल जाते हैं कोंपल-कलियाँ;
भर जाती हैं सब में प्राण!
इस सकल संसार में आप ही प्रभु!
परम पिता का प्रत्यक्ष प्रमाण।

अनुशासन, आत्मबल, धैर्य आप ही में!
आप ही एकल परोपकारी;
आशीष प्रभु देना हमें भी,
बीते आप-सा ही जीवन हमारा।
शिक्षक आप ही, रक्षक आप ही,
सच्चे मित्रता का आधार,
पिता की भाँति चिंता करते,
चलते हमारे साथ!
वंदना मेरी स्वीकार करो प्रभु,
हे सूर्य! आप ही हैं सभी के खास।
आप ही हैं सभी के खास।।

kusumkunja@gmail.com

बेटियाँ

श्री लक्ष्मीकांत मुकुल
भारत

सेमल के फूल की तरह होती हैं बेटियाँ
हवा के झोंके से लचकती डालियों-सी डुलती हुई
नील गगन में सपनों की उड़ान पाले

आँगन में चीं-चीं करती फुदकती
गौरैया की तरह होती हैं बेटियाँ
सन्नाटे में भरती हुई खुशियों के गीत

नदी की मछलियाँ सरीखी होती हैं वे
बिन सिखाये जान जाती है तैरने की कला
एक ही डुबकी में पहुँच जाती हैं गहरे पानी के तल में

लाजवंती के पत्तों जैसी संकोची होती हैं बेटियाँ
हादसे की धमक पाते ही छिपा लेती हैं
अपनी नैसर्गिक चंचलता

आम्र बौरों, चूवे-महुवे की मादक गंध बिखेरती
सयानी होती बेटियाँ चली जाती हैं दूसरे घरों में
छोड़कर दीवाल पर अपनी हथेलियों के निशान
झड़ती आँखों से छोड़ती हुई गंगा जमुना की धार !

kvimukul12111@gmail.com

एक बेटी, बन के बहू ससुराल आ रही...

डॉ. आशा रानी
जबलपुर, भारत

अंजली से अक्षत उछाल, माँ का आँचल छोड़कर।
बहना के गले लग, बाबुल की उँगली छोड़कर।
दुल्हन की चुनर ओढ़, कुँवारी की अल्हड़ता छोड़कर।
एक बेटी, बन के बहू, ससुराल आ रही...

जतन से माँ सजाती, आँसुओं की धार से, पिता पाणिग्रहण कराते।
आशीष की पीयरी पहना, हल्दी लेप हथेली लगन कराते।
गठ-बंधन कर दुल्हे संग, सपनों का अपना संसार बसाने,
एक बेटी, बन के बहू, ससुराल आ रही....

डिग्री का उपहार लिए, गुणों की चादर हज़ार सिए।
जीवन के पाठ्यक्रम को उतारने, संस्कारों का इम्तहान देने।
शब्दकोश से संज्ञा रट, रिश्तों का सर्वनाम बनाने।
एक बेटी, बन के बहू, ससुराल आ रही...

खिलखिलाती हँसी को छोड़, मुस्कराकर चूड़ियाँ यहाँ बजाने।
चप्पलों की चटकन बिसार, पायलों की रुनझुन सुनाने।
माँ की रसोई छोड़ अब, अपनी यहाँ बनाने।
एक बेटी, बन के बहू ससुराल आ रही....

आसान नहीं किसी के लिए, बाबुल की गलियाँ छोड़ना।
पर दुहिता पर्याय की बेटियाँ, सीखती हैं केवल गाँठना,
लेकर सतरंगी आभा, एक बेटे का जीवन रंगने के बहाने।
एक बेटी, बन के बहू ससुराल आ रही...

स्वर व्यंजन को जोड़कर, मन-मस्तिष्क की भूख मिटाने,
फगुवा के रंग बिखेरने दिवाली की फुलझड़ी छुड़ाने,
तीज और चौथ पर, पूर्णिमा की चाँदनी बिखेरने।
एक बेटी, बन के बहू, ससुराल आ रही..

देहरी पर चावल बिखेर, अन्नपूर्णा का रूप धर।
थाली की स्वास्तिक और नारियल का ओइम् बन।
राही से मिलन की आशा ले सृष्टि
रोशनी प्रभा की, कार्तिक की भाभी बन
दुआओं की गठरी बाँध कर।
एक बेटी, बन के बहू, ससुराल आ रही..

raniasha2012@yahoo.com

युद्ध अभी-अभी जारी है

डॉ. विवेक बादल बाज़पुरी
बाजपुर, उत्तराखंड, भारत

हालातों से अपनी पल-पल लड़ने की तैयारी है ॥
काल से कह दो, नहीं मैं हारा, युद्ध अभी भी जारी है ॥

साँसों का अनुवाद भी हमनें सिर्फ़ पसीना लिखा है।
पथ कंटक की विधा पढ़ी है टूट के जीना लिखा है।
प्रथमा पग से नियम चले हैं क्रम सीकर फुलवारी है।
काल से कह दो, नहीं मैं हारा युद्ध अभी भी जारी है ॥

पुरुषार्थ का रक्त प्रखर है, ध्येय धर्म का मत माने।
उसने जिया समय का सावन, जो भी जग को सच माने।
कुछ अनुबंध अटल होते हैं, कुछ केवल बाज़ारी है।
काल से कह दो, नहीं मैं हारा, युद्ध अभी भी जारी है ॥

छंद लुभाया करते हैं ये, ज्ञान हमें है सदियों से।
अविरल चलते रहना सीखा, हमने अपनी नदियों से।
आँधी, अरु, अंधकार से बचना चेतन की हुशियारी है।
काल से कह दो, नहीं मैं हारा, युद्ध अभी भी जारी है ॥

सतत वासना में क्षण झुलसे, महताल लग गए तल से
यौवन जिहवा, स्वाद न समझो, सूरज लाना है जंगल से।
प्राण अमर करने का गौरव हिम पर्वत से भारी है।
काल से कह दो, नहीं मैं हारा, युद्ध अभी भी जारी है॥

आयु में प्रस्ताव बहुत है, यही पराजय-जय का भेद।
चूके तो अज्ञात रहेगा, बीहड़ और उपवन का स्वेद।
बलिदान गति है जीवन की, प्रणय समर्पण वारी है।
काल से कह दो, नहीं मैं हारा, युद्ध अभी भी जारी है।

vc33322@gmail.com

विश्व शांति आराधन

श्री पुरुषोत्तम तिवारी
प्रतापगढ़ (उत्तर प्रदेश), भारत

रणक्षेत्र बनाकर अखिल धरा जग का विनाश क्यों करते हो
स्वीकृति देता है कौन तुम्हें जिससे विनाश यह रचते हो।

हो रहा निमिष में धरती पर लाखों लोगों का रक्तपात
है रक्त प्रवाहित यूँ जैसे चहुँ दिशि अगणित रक्तिम प्रपात।
यह ऐसा क्यों है जिस कारण मानव का मन है भयाक्रान्त
प्रतिक्षण अनहोनी का चिन्तन प्रतिक्षण उद्वेलित चिर अशान्त।

यदि हो बलिष्ठ तो निज बल से क्यों नहीं सुमंगल करते हो
स्वीकृति देता है कौन तुम्हें जिससे विनाश यह रचते हो।

जब धरती पर हो त्राहिमाम मर रहे मनुज नंगे-भूखे
जब मानव तड़प-तड़प मरते, जब भोग नहीं रूखे-सूखे।
तब महाविनाशक आयुध पर शस्त्रों पर इतना क्यों अपव्यय
यह ज्ञान क्षीणता, प्रबल दंभ, प्रलयंकारी लगता कतिपय।

यह हाहाकार मचाना क्यों, यह अग्निवृष्टि क्यों करते हो
स्वीकृति देता है कौन तुम्हें जिससे विनाश यह रचते हो।

धरती टुकड़ों में बँटने से मानव को सकते बाँट नहीं
यह धरती नभ, जल, अग्नि, पवन इसको सकते तुम काट नहीं।
यह एक धरा सबकी माँ है, सारे मानव इसके सपूत
हम सभी धरा के परिजन हैं हम सब इस वसुधा के प्रसूत।
यह स्वर्ग सृजन है ईश्वर का अपवर्ग सृजित क्यों करते हो
स्वीकृति देता है कौन तुम्हें जिससे विनाश यह रचते हो।

जिस समय दंभ में डूबे बन उद्दाम सभ्यता के नायक
उस समय आज मानवता के बन गये शत्रु, भीषण घातक।
धरती का कोई मानव तो हो सकता इतना क्रूर नहीं
यह घोर भीरुता का कुकृत्य कर सकता कोई शूर नहीं।

निर्दोषों को निर्भय कर दो, क्यों इनका तुम वध करते हो
स्वीकृति देता है कौन तुम्हें, जिससे विनाश यह रचते हो।

जो रक्त सने उन हाथों से हो सकता मंगल कभी नहीं
जिनके दृग में करुणा बसती वे बनें पातकी, कभी नहीं।
मानवता भर का पतन नहीं, दानवता का यह अट्टहास
संहार चल रहा हो जब तब हो संवादों से प्रिय प्रयास।

तुम शान्तिदूत बनकर देखो, इससे पूजे जा सकते हो
स्वीकृति देता है कौन तुम्हें जिससे विनाश यह रचते हो।

मानव से देवपथी बनना जीवन को करता पावन है
पर, राक्षस प्रवृति वरण करना केवल पिशाच को भावन है।
रोको, रोको, अब बन्द करो, मानवता का यह घोर दलन
निर्ममता का यह नग्न खेल, जग के विनाश का अशुभ चलन।
रक्षक का कवच ओढ़कर क्यों जीवन का भक्षक बनते हो
स्वीकृति देता है कौन तुम्हें जिससे विनाश यह रचते हो।

ptsahityarthi@gmail.com

बाँटकर मृदु मुस्कान

डॉ. इन्द्रदेव भोला इन्द्रनाथ
मॉरीशस

मृदु मुस्कान एक दिव्य वरदान
बाँटकर अपनी मृदु मुस्कान
दुखियारियों पर कर दे एहसान
कि खिल जाए उनका शुष्क चेहरा
मिल जाए उनको आसरा
जीने की उम्मीदें
हँसने-मुस्कुराने की आशाएँ।
कितना है अँधेरा
दुखियों के दिल से पूछो
देखा न कभी सुख का सबेरा
दिल में आया न कभी उजाला
अँधरे में डूबे लोगों से पूछो
दिल उनके टटोलो
भरी पड़ी कितनी निराशा
म्लान है बिल्कुल चेहरा
पड़ा न कभी सर पर सेहरा
आँसू पी-पीकर जीना
क्या यह भी है कोई जीना?
पर, जीये जा रहे हैं
सितम-पर-सितम उठाये जा रहे हैं।
आना है सभी को
जाना है सभी को
आते मुट्ठी बाँध
जाते हाथ पसार

कर जाएँ कोई ऐसा काम
कि अगर हो जाए तेरा नाम
दुखियों के उनका दुख-दर्द समझ लें
उनका दुख हर लें
देकर अपना प्यार
बाँटकर अपनी मृदु मुस्कान
कर दें उन पर एहसान।

गीत : अकेले चले गए

श्री गोवर्धन सिंह फ़ौदार "सच्चिदानन्द"
मॉरीशस

तुम छोड़ के सारे रीत, मीत मेरे कहाँ गए
अब नीरस हुआ संगीत, गीत मेरे कहाँ गए
तुम छोड़ के सारे रीत...

वह पतझड़ वह सावन, संग हमने देखे थे
सपने दो जीवन के, जीने के देखे थे
आई जब थी बारी, थी कैसी लाचारी
अकेले चले गए.., तुम छोड़ के सारे रीत....।

कभी याद मेरी आए, यादों में आ जाना
जब चुभे अकेलापन, मुझे पास बुला लेना
इतनी क्यों जल्दी थी, क्या गलती मेरी थी
ऐसे चले गए....तुम छोड़ के सारे रीत..

आई घड़ियाँ कैसी, अब चैन हुआ बेचैन
बस गम है अब बाकी, दिल लगता नहीं दिन रैन
विनती मैं करूँ किस से, पूछूँ मैं पता किससे
निगाहें मोड़ गए...., तुम छोड़ के सारे रीत।

इन गहरे घावों को, सह-सह मैं भरूँ कैसे
वादे यह मुहब्बत के, तुम तोड़ गए कैसे
एक दीप सजाना था, ताउम्र जलाना था
बुझाकर चले गए, तुम छोड़ के सारे रीत..।

जब मिलके बिछड़ना था, दिल अपना लिया क्यों था
चाहत में थी कोई कमी, मुझे इतना बताना था
अब मुझ को संभाले कौन, मेरा जीना हुआ है मौन
यूँ ही चले गए..... , तुम छोड़ के सारे रीत... ।

goburdhunsingh.fowdar@gmail.com

कवियों का स्वर्ग

किन्तिपोंग बुनकर्ड
थाईलैंड

कवियों का स्वर्ग है अत्यंत सुन्दर
जहाँ चमक रत्नों से अलंकृत नभ भर
गूँजता रहा मधुर स्वर हर कहीं
सुयोग्य उपाधि कवियों का स्वर्ग है यहीं
कई उज्ज्वल विमान कई भव्य भवन
देखते ही बहुत संतुष्ट हुआ मन
रोशनी की किरणों से आया संगीत
दीपकों से आया लय लघु-दीर्घ
देखो, वृक्षों की शाखाओं पर पक्षी
गाना गाते रहे मधुर वाणी
उड़ जाते हैं यहाँ से वहाँ लगातार
उनके गानों के छंदों में तुकांत
सराहनीय हैं ये प्रसन्न गाने
स्वर्गीय पुष्पों के सुगंध महक रहे
गगन में सुगंधित सुगंध की लहरें
हमारा नतमस्तक सभी आनंदित
कवि देवताओं को जो स्थित
उस लोक के कवियों के स्वर्ग में भी
इस लोक के काव्य की पंक्तियों में भी
दोनों स्थानों में अमर रहेंगे सदा
गगन और धरती दोनों में रहेंगे सदा
मैं सुनाता हूँ कवियों की प्रशंसा
आस्वादन करें अब सुनें मेरी कविता

kittipongboonkerd@gmail.com

सूरज को करना था राज़ी

श्री हरिहर झा
ऑस्ट्रेलिया

तारामंडल, नभ में हँसता
गलियों में थी, आतिशबाजी
अँधियारे से, लड़ न पाया, सूरज को करना था राज़ी।

नेक नियति अच्छी लगती
कीमत भारी, पड़ती वैसे
सादा जीवन, प्यारा जिसमें
सूखी रोटी लड़ती घी से
गुत्थमगुत्था, रोटी हारी, लच्छा-रबड़ी, निकली पाजी।

न्याय वही जो मेरे मन में
स्नेह सभी कुछ देना चाहे
हृदय तराजू तोल न पाए
धड़कन कोई सुनता काहे
न्याय, प्रेम में युद्ध हुआ तो, झगड़े में क्या करता काजी।

माधव की थी, बड़ी समस्या
माखन की जब, बहती धारा
छप्पन भोगों के सुवास में
दिल की वाणी ने ललकारा
मेवे में क्या रखा? मनवा, साग विदुर घर, खाकर राज़ी।

खुली हवा में, पंछी उड़ता
बीज खुशी के, फैला देता
अपराधी मन, कैद हमेशा
भले जेल से, बाहर होता
खुली हवा में मौज रहेगी बयार बहती, ताज़ी-ताज़ी।

hariharjha2007@gmail.com

विचारें आज़ाद हैं

डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव
मेलबॉर्न, ऑस्ट्रेलिया

विचारें आज़ाद हैं
कल्पना और अनुमान से परे हैं
कभी लुप्त भी हो जाते हैं
जैसे सुबह होते ही रात्रि का अंधकार,
वे पहचान से परे हैं, आकृति से दूर हैं
मनुष्य की पकड़ से बाहर हैं
'लौह पर्दा' जिनके लिए पारदर्शी है
और बन्दक की गोली जिनके लिए वरदान है,
विचारें आज़ाद हैं।

विचारें स्वछन्द हैं
उन्हें काल-कोठरी में बन्द करना व्यर्थ है
उनमें दीवार तोड़ने की शक्ति है
फिर बन्द दरवाज़ों की क्या औकात?
उनका वेग असीमित है
सागर, पहाड़ और कृत्रिम बाधाओं से अबाधित
संचार-माध्यमों से उनकी दोस्ती है
और नई पीढ़ी उन पर समर्पित है;
विचारें स्वछन्द हैं।

विचार पैदा होते हैं
शिक्षा के मंदिरों से, विवेकशील मंतव्यों से
स्वतंत्र जीवन की अभिलाषा से
और दमन की अग्नि से भी,
उनमें शान्ति की शीतलता है
तो जंगली आग की ज्वाला भी है
जैसे संजीवनी और विष का साहचर्य !

जब फैल रही है असंतोष की आग
दूर देश, क्षितिज पार और गगन तक
सागर की लहरें भी मूक-दर्शी हैं, असमर्थ हैं
कैसे बुझेगी अन्तर्मन से निकली अनल की तरंगें?

इसकी दवा है वैचारिक मन्थन, अर्धविराम
मूल्यों का संरक्षण और आत्मीय अहसास
इसका विकल्प होगा मानवता का परिहास
प्रगति और विनाश का उभरता विरोधाभास।

विचारें अमर हैं
युग परिवर्तन के जनक हैं
स्वछन्द हैं, आज़ाद हैं, बन्धन से मुक्त हैं !!

kkps1944@gmail.com

जीवन

श्री शिव कुमार सिंह
लिस्बन

जल न तू किसी भी जलन में,
बंध न तू, किसी उधेड़बुन में,
चल न तू, किसी हलचल में।
रह वहीं तू, हर पहर में,
थककर कौन बैठता है?
देख यही तू, हर लहर में।
कवि है सोचता, लिस्बन से पोर्तु की राह में,
जीवन रहा क्यों उलझ, बस झूठ की बात में,
'तत् त्वं असि' से 'अहम् सर्वस्व अस्मि' में?

थक गया तो हार मान ले, बैठ फिर से माँ की छाँव में,
गाँव की उन कौड़ियों में, दोस्तों की टोलियों में,
बहन की राखियों में, बड़े बाबूजी की मलाइयों में,
पिताजी की घुड़कियों में, दादाजी की शक्तियों में।

बड़े होने की लड़ाइयों में, नया पाने की इच्छाइयों में,
कठिन दिखता है जीवन, सच की झूठी लड़ाइयों में,
ढक रहा सूरज हमेशा, जीवन की चलती परछाइयों में।

हमसे तो ये पेड़ भले, रहते हमेशा अपनी मिट्टी से जुड़े,
कोयल, कबूतर दोस्त इनके, हैं गर्म-ठंड के डर से परे,
धूल बनकर देख पगले, धूल हैं पंचतत्त्व से मिल बने।

shivsingh@letras.ulisboa.pt

खोज ईश्वर की

अदिति अरोरा
सिंगापुर

ईश्वर को खोजते फिरते हैं
ईश्वर कहाँ है? ईश्वर कैसा है?
जिस मूर्ति की पूजा करते हैं
क्या ईश्वर बिल्कुल वैसा है?

देश, धर्म और जाति के आधार पर
ईश्वर का विभाजन करते हैं।
उस अनंत असीम परम शक्ति को
सीमाबद्ध करके हम रखते हैं।

करते हैं प्रार्थना उस से जब-तब
और बहुत से प्रश्न भी करते हैं।
समझते हैं पृथक अपने से उसको
और शिकायतें भी करते हैं।

क्या सचमुच जाना है हम ने
उस ईश्वर का कैसा है रूप
या बिन जाने बस यूँ ही हम
नित पूजा करते रहते हैं?

क्या खोजा ईश्वर को हमने
कभी किसी पुष्प के अंदर
उसके रंग, उसकी कोमलता
और उसकी सुगंध के अंदर?

क्या खोजा ईश्वर को हमने
किसी उड़ती तितली के अंदर
उसके चमकीले रंगों और
पंखों पर चित्रकारी के अंदर?

क्या खोजा ईश्वर को हमने
कभी चमकते सूर्य के अंदर
उसके उज्ज्वल प्रकाश, ऊष्मा
और उसकी लालिमा के अंदर?

क्या खोजा ईश्वर को हमने
कभी चाँद-सितारों के अंदर
उनकी धवल चाँदनी और
उनकी शीतलता के अंदर?

क्या खोजा ईश्वर को हमने
सावन के काले मेघों के अंदर
उस चमकती चंचल दामिनी
और वर्षा की बूंदों के अंदर

क्या खोजा ईश्वर को हमने
लहलहाते खेतों के अंदर
गीली मृदा की सौंधी महक
और उसकी उपजाऊ शक्ति के अंदर

क्या खोजा ईश्वर को हमने
पक्षियों के घोंसलों के अंदर
उनकी कार्य-कुशलता और
उनके अद्‌त शिल्प के अंदर

क्या खोजा ईश्वर को हमने
विभिन्न पशु-पक्षियों के अंदर
उनके अद्‌त रंगों और
उनकी बोलियों के अंदर

क्या खोजा ईश्वर को हमने
उस नील गगन के अंदर
उसके असीम विस्तार और
उसकी निस्तब्धता के अंदर

क्या खोजा ईश्वर को हमने
विशाल सागर के अंदर
कभी उसके शांत स्वरूप में
और कभी उच्छृंखल लहरों के अंदर

क्या खोजा ईश्वर को हमने
अपने आप के अंदर
आती-जाती श्वासों के मध्य
उस गहरे मौन के अंदर

खोजती जाती हूँ ईश्वर को
कोई अंत नज़र नहीं आता है
है कण-कण में उपस्थिति उसकी
हर जगह नज़र वह आता है

aditi.arora1965@gmail.com

वीकेंड

श्री विनोद कुमार दूबे
सिंगापुर

तलाशता रहता है मन,
उन्मुक्त मानसिक अवकाश,
जैसे देखती हैं किसान की आँखें,
इस मेड़ से उस नहर तक फैले खेत,
मैं भी ढूँढता हूँ,
दूर तलक फैली आलसी वक्त की मिट्टी,
जिसमें बो पाऊँ सृजन के कुछ बीज,
छत पर लेटे देख पाऊँ अनंत आकाश,
तोड़ पाऊँ कल्पनाओं के अनगिनत तारे,

फैलते शहरों ने जैसे गाँव लील लिये,
व्यग्रता और आपाधापी ने,
हर लिया है इंसान का सारा समय,
वक्त की तंग सुरंग में चलते,
सूचनाओं की काई पर पैर फिसलते रहे,
जैसे स्लीपर बर्थ पर बैठा यात्री ,
देखता है स्टेशन पर उमड़ी भीड़ को,
मैं भी टिककर बैठने के लिए,
खोजता रहा निश्चिंत समय का कोना,
और फिर हफ़्ते भर बाद,
दिखती है वीकेंड की स्फटिक शिला,
और सामने वक्त का नीला जलाशय,
पानी में पैर डाले सारी व्यग्रताएँ डुबो देता हूँ,
मैं सोचता हूँ,
नसीब में इतना तो होना ही चाहिए,
शनिवार की भारहीन रात,
रविवार की निश्चिन्त सुबह,
पर सबकी किस्मत में नहीं होती,
एक स्फटिक शिला और नीला जलाशय।

vinod5787@gmail.com

नियति

प्रतिभा सक्सेना
केलिफ़ोर्निया

मानव रचना का महत् कार्य कर, सृष्टि निरख हो कर प्रसन्न,
अति तुष्टमना सृष्टा ने मायामयि सहचरि के साथ मग्न।
देखा कि मनुज हो सहज तृप्त, हो महाप्रकृति के प्रति कृतज्ञ,
आनन्द सहित सब जीवों से सहभाव बना रहता सयत्न।

वन, पर्वत, सरिता, गगन और पवन से सामंजस्य बना संतत,
ऋतुओं से कालविभागों के अनुकूल सदा नियमित संयत।
जड़-चेतनमय जग जीवन को करता चलता सादर स्वीकृत,
तब विधना धरती के मानव से बोल उठे यों स्नेह सहित।

मानव, तुम मुक्त विहार करो ये सब अधीन हैं संरक्षित,
इन सबके साथ चले जीवन सबका हित ही हो अपना हित।
 ये गिरि मालाएँ, वन शाद्वल, ये हरित द्रोणियाँ, उच्च शिखर,
तुम इन सबके संरक्षक हो जग जीवन हो सुखमय सुन्दर।

वसुधा कुटुम्ब है जड़-चेतन संसार यही है सर्वभूत,
तू जी, औरों को जीने दे सुविधाएँ सबके हित प्रभूत।
नत-शीश मनुज बोला - उपकृत हूँ, पा इतनी सामर्थ्य देव,
इस महाप्रकृति की संतानें, लघुतम या दीर्घाकार जीव।

हो गई धरा वरदानमयी फिर चलने लगा सृष्टि का क्रम,
सीखता रहा धीरे-धीरे, सुखमय जीवन का कर उपक्रम।
सदियाँ बीतीं, होता जाता था वह प्रबुद्ध और कर्म-कुशल,
लेकिन अति सुख-सुविधाओं का रोगी बनकर हो गया विकल।

तब शेष जगत के लिए मनुज होता ही गया संवेदहीन,
औरों का हिस्सा, अधिकाधिक अधिकारों के हित रहा छीन।
अति के कारण हिल उठी धरा, आकाश थरथरा गया सहम,
सागर उफनाए, रुद्ध दिशाएँ, आर्तनाद से भरा पवन।

निज अहंकार में लगा रहा कैसे अनिष्ट के महादाँव,
हो चकित विधाता देख रहा क्या बदल गया मानव स्वभाव!
हो रम्य प्रकृति से दूर, सृष्टि का अनुशासन कर रहा भंग,
स्वच्छंद और अतिचारी होता जाता है दिन-दिन प्रचंड।

चर-अचर सभी पर मनमाना अपना अबाध अधिकार मान,
व्यवहार क्रूरता और अनीति से कर देता कंपायमान।
भूधर की रीढ़ें तोड़-फोड़, जल के स्रोतों में ज़हर घोल,
आकाश-दिशाएँ धुआँ-धुआँ, भूगर्भों तक गहरे खखोल।

बेचारे पशुपक्षी निरीह, वंचित, अशरण हो गए दीन,
आतंक मनुज का छाया जड़-चेतन मलीन और शान्तिहीन।
अब तो इतना चढ़ गया, आदमी हुआ आदमी का बैरी
अपने विनाश का कारक ही बन बैठा चालें चल गहरी।

भृकुटी टेढ़ी कर विधना ने तब लिखी मनुज के लिए नियति,
अब तक तू ही तू रहा, किन्तु अब कर पापों का प्रायश्चित।
बेबस, निरीह, तन-मन से व्याकुल, शान्तिहीन ज्यों शापग्रस्त,
तू नेपथ्यों में रह जाकर, यह विश्व हो सके पुनः स्वस्थ।

रे घोर पातकी, तेरे पापों ने जो दूषण फैलाया है,
उसके निस्तारण हेतु प्रकृति का निर्णय सम्मुख आया है।
अपने जीवन का समाधान अब तो तुझ पर ही है निर्भर,
संयत-संयम धर और सुधर या घिसट एड़ियाँ रगड़-रगड़।

सब कुछ पाकर भी चूक गया, सब किया धरा हो गया वृथा,
मानव की यह विकास गाथा, या कहें पतन की महाकथा।
इस काल-चक्र के घूर्णन में, नव-उदय विकास समापन दे,
अविराम कथाएँ रचती रहती नियति नटी अपने क्रम से।

pratibha_saksena@yahoo.com

कहाँ गया अन्न?

पूजा अनिल
स्पेन

सवालों से डरकर न कहीं छिपे न दुबके,
क्या इतना जागरूक हो चुका है समाज?
देश गाँव में कितने पेट, भूखे रहे आज?
क्या किसी को मालूम है?
किसने चुराया उनका अन्न?
क्या किसी को मालूम है?
चिड़िया भूखी रही,
उसके पास दाना नहीं था।
गाय भूखी रही,
उसके पास चारा नहीं था।
घोड़े के पास चना नहीं था।
और ऊँट के पास
खेजड़ी का तना नहीं था।
किसने चुराया उनका अन्न?
क्या किसी को मालूम है?
बूढ़ी काकी को नहीं मिली रोटी।
दादा जी के दूध का अता-पता नहीं था।
बिलख-बिलखकर निष्प्राण हो गया बालक,

बेटी के हिस्से भोजन की जगह बद्दुआएँ आईं।
आधी रोटी खाकर कितनों ने रैन बिताईं!
कहाँ है वह सारा उनके हिस्से का अनाज?
जो उनको मिला नहीं? कहाँ गया वह अन्न?
किसने चुराया उनका अन्न?
मैं फिर-फिर पूछूँगी, कौन देगा जवाब?
क्या किसी को मालूम है?

poojanil2@gmail.com

दोहों के रंग : आईना के संग

हलीम आईना
भारत

जिसको दिल माने नहीं, करो न ऐसी बात।
दिन होवे तो दिन कहो, रात होय तो रात।।

***

जीवन जैसे 'आईना ', इक मकड़ी का जाल।
क्षण-भंगुर हर चीज़ है, नाज़ुक बड़ा सवाल।।

***

दिल को कोई दुखाय तो, मत होना नाराज़।
फलदायक हर पेड़ पर, मारे संग समाज।।

***

सेवा है माँ-बाप की, पुण्य बड़ा नादान।
इनकी खिदमत से बने, कामयाब इंसान।।

***

सात वार, त्यौहार नौ, माने अपना देश।
सतरंगी परिवेश है, नवरंगी गणवेश।।

***

कुदरत भी देने लगी, संकट के संकेत।
हे मानव कुछ फ़िक्र कर, चेत सके तो चेत।।

***

haleemaaina@gmail.com

तृष्णा बावरी

भावना सक्सैना
फरीदाबाद, भारत

1
भटका मन
देख संसार रंग
रमे न ईश
तृष्णा ऐसी बावरी
फिरे नगर गाँव।

2
माया का मृग
भरमाए मन को
छीन ले चैन
गली-गली भटके
पाए न कहीं ठाँव।

3
फूल-सा मन
मुरझाये पल में
छुईमुई-सा
नेह जल-स्पर्श पा
खिलकर मुस्काए।

4
सृजन पीड़ा
प्रसव वेदना-सी
रातों जगाए
उतरे जो शब्दों में
मन को महकाए।

5
उनींदी आँखें
निहारें आसमान
आया न चाँद
तारों को मिल गई
अपनी पहचान।

6
टेसू सेमल
सरसों का आँचल
फाग के रंग
धरती को सँवारे
मंत्रमुग्ध निहारें।

7
फागुनी गीत
गाती रहीं हवाएँ
कोयल कूकी
महकी अमराई
ऋतु बसंत आई।

8
तिथि पंचमी
बसंत माह आए
वाग्देवी पूजें
पुष्प अक्षत रोली
वीणावादिनी वंदन।

9
जीवन गति
मन्द मंथर चली
ज्यों साँझ ढली
अनुभव मुस्काए
स्मृति गीत सुनाए

10
बहे बयार
बतियाएँ पत्तियाँ
वृक्ष संगीत
सुन मन हर्षित
बगिया प्रफुल्लित।

11
देह गणित
बिठाता है पुरुष
स्त्री मन हारे
पुष्प को मकरंद
अलि को रसपान।

12
बौर किरीट
पहन मुस्कुराया
वृक्ष आम का
पवन झकोरे से
हो अहंकार चूर।

13
लेते आलम्ब
बन अमरबेल
खींचते प्राण
होकर ऊर्जायित
आधार पर छाते।

14
मन की फाँसें
टीसती ही रहती
धँस गहरे
प्रेम बोल औषधि
सहलाएँ सुहाएँ

15
बीता अतीत
स्मृतियाँ बनीं पुष्प
दिल लुभाती
सुवास महकाती
पल-पल हर्षाती।

16
मन मगन
श्वास बस चंदन
ठहर गया
समय का टुकड़ा
बरसों ज़हन में ।

17
एक ज़मीन
एक है आसमान
बीच में हम
कुछ सपने लिए
ख्वाहिशों संग जिएँ।

18
धन लोलुप
जीवन का उद्देश्य
जान न पाए
भूल प्रकृति सुख
हुए नेह विमुख।

19
बाँधे रहे हो
मन में गिरह क्यों
ये खोल डालो
बीते जनम फिर
हँसते मुस्कुराते।

20
दम्भ से पूर्ण
गुजरते राहों से
जानते नहीं
नश्वर सभी कुछ
दम्भ भी मनुज भी।

21
बुझ न पाए
अनजान-सा राही
गति काल की
बेआवाज़ घूमता,
चक्र काल का लीले

22
उन्मुक्त बहो
गिरहें सब खोल
दिल की बोल
जीवन ये छोटा-सा
बीते, फिर न आए॥

23
फाड़े थे पन्ने
यादों की किताब से
टूटा न नाता
थपथपा जाते हैं
लम्हें गाहे-बगाहे।

24
गीत सुरीले
गाती है यह ज़िंदगी
सुर पकड़
नए सृजन करो
मन आनंद भरो।

25
छाँव सुख की
नटखट बालक
चंचल दौड़े

नयन मटकाती
टिके नहीं दो घड़ी।

bhawnasaxena@hotmail.com

सात हाइकु

डॉ. जगदीश पन्त 'कुमुद '
खटीमा, उत्तराखंड, भारत

पहाड़-सा है
पहाड़ का दर्द भी
कहे किससे

खटकता है
दुनिया की आँखों में
खरा आदमी

ओ नागफनी !
काँटे हैं आभूषण
पहने रह

खुद को खोया
तब समझ आया
खुद को पाया

मिट्टी का घर
हुआ राजमहल
तुम जो आए

कहाँ हो तुम ?
पूछते रहे हम
खुशी न बोली

बोले दरख़्त
काटने से पहले
छाँह में बैठो

jpkumud@gmail.com

आओ हम मिलकर

फूलचंद यादव,
बस्ती, भारत

आओ हम मिलकर मिलन की खुशियाँ मना लें,
फिर न जाने कब कहाँ कैसे मिलन हो।

बूँद जैसी ज़िन्दगी के व्यस्ततम् संघर्ष में से,
नवरस बने, कुछ पल ऐसे निकालें
प्रेम करुणा शांति के कुछ पल बिता लें
हम एक थे एक हैं, एक रहने का मन बना लें।
फिर न जाने कब कहाँ कैसे मिलन हो।

हम रहेंगे पास या फिर दूर होंगे,
अपनों की खुशियों से हम खुश होंगे
यदि हों किंचित कलि कलुष से हम प्रभावित
प्रभु कृपा से नवल-धवल मक्खन बना लें।
फिर न जाने कब कहाँ कैसे मिलन हो।

हम सदा संसार में बन बीज छिटकें
प्रेम शांति वारि से हों सतत सिंचित,
विश्व में बन्धुत्व की वन फ़सल उपजें,
इक सुखद स्वर्णिम सवेरा, धरा पर पसारें।
फिर न जाने कब कहाँ कैसे मिलन हो।

प्रभु के रचित संसार में, है बहुत आकर्षण,
अनासक्त हो करें कर्म, कर दें सब समर्पण
योग क्षेम वहन करें, प्रभु ने दिया अभय वर
गीता के अमर बोल, विश्वास सुदृढ़ कर लें।
फिर न जाने कब कहाँ कैसे मिलन हो।

जीवन-मार्ग में काँटे बहुत, पर फूल भी हैं
काँटे खुद ही चुभते, फूल को चुनना पड़े
प्रभु कृपा-वृष्टि से, शांति औ' सद्भाव पनपे
उसके ही आलोक में, विष को औषधि बना लें
फिर न जाने कब कहाँ कैसे मिलन हो।

आज इस पावन घड़ी पर, मिलकर संकल्प करें
हर पल मानव बने रहें, यह व्रत अंगीकार करें
समस्त कल्मष मिट जायें, जनहित में काम करें
अपनेपन का भाव जगा लें, सारा जग अपना रहे।
फिर न जाने कब कहाँ कैसे मिलन हो।

यदि तुम कहो तो

पंकज कु."बसंत"
मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत

यदि तुम कहो तो...
प्यार की प्रस्तावना फिर से करूँ मैं।
यदि तुम कहो तो !

उड़ गई है डाल पर बैठी चिरैया ,
बाँट आए फूल सारे गंध अपनी।
प्रीत-पग भूले पुलिन हैं पनघटों पर,
खो गयी बदरी हृदय के ओस-कण भी।

बूँद कुछ संवेदना के पास मेरे,
यदि तुम कहो तो...
प्यास की आलोचना फिर से करूँ मैं !
यदि तुम कहो तो।

जग रहा कोई सकल जग सो रहा है
मुट्ठियों में मिलन की रेखा दबाए
भोर की आहट सितारे दे रहे हैं
नींद नयनों में तरल बन बह न जाए।

मैं प्रतीक्षारत निशा के कोर पर हूँ,
यदि तुम कहो तो.....
स्वप्न की आराधना फिर से करूँ मैं !
यदि तुम कहो तो।

कह गए जो कह सके अब तक बटोही,
अक्षर-अक्षर हैं निठल्ले रास्तों पर।

तोड़ त्यज्य विश्वासों की परिधियाँ जो
खो गये उल्लास खुद संवाद बोकर।

आह में अनुराग भरते आखरों से,
यदि तुम कहो तो....
काव्य की परिकल्पना फिर से करूँ मैं !
यदि तुम कहो तो।

pankaj.krbasant@gmail.com

दो पल की ज़िंदगानी है

समता कुमारी
बिहार, भारत

दो पल की यह ज़िंदगानी है।
आज बचपन तो कल जवानी है
परसो बुढ़ापे की भी दस्तक आनी है।
कल की चिंता छोड़ चले हम
खुलकर जी ले आज को।
फिर न आने वाली यह रुत सुहानी है।
दो पल की यह ज़िंदगानी है।
हँस लो, गा लो, अपनों को मना लो
ज़िंदगी की राह में कुछ रिश्ते नए बना लो।
इस पथ पर कुछ खुशियों के पल भी हमें चुरानी है।
दो पल की यह ज़िंदगानी है।
न कुछ लेकर आए थे, न कुछ लेकर जाएँगे
मीठी बातों से हम सबका मन हर्षाएँगे।
इस दुनिया से जो प्यार मिला बस उसे हमें लौटानी है।
दो पल की यह ज़िंदगानी है।
कभी खुशियों के पल कभी गम के बादल
कभी अपनों का बिछड़ना तो कभी परायों का मिलना।
हर हालत का हिसाब रखती एक किताब रूहानी है।
दो पल की यह ज़िंदगानी है।
इस दुनिया में अपनी पहचान बनाते चले हम
अपने हाथों सुनहरी इबारत लिखते चले हम।
ज़िंदगी की इस कश्ती को हमें ही किनारे लगाना है।
दो पल की यह ज़िंदगानी है।

Samta125@gmail.com

वे भी क्या दिन थे

गंगा धर शर्मा 'हिन्दस्तान'
अजमेर (राज.), भारत

माटी गाती थी मल्हार जब, ता धिन ता धिन थे।
संगत करता चाक कुम्हार का, वे भी क्या दिन थे।

चक्की की जब खटर-पटर सुन, भोर जागती थी।
पनघट के पहिये पर दुल्हन गौरी, डोर डालती थी।
पूरब से निकला सूरज जब, कुछ ऊपर चढ़ता था।
गउओं को लेकर ग्वाला तब, आगे बढ़ता था।
बैलों की गर्दन के बज उठते, घुँघरू अनगिन थे।
संगत करता चाक कुम्हार का, वे भी क्या दिन थे।

कुल्फी, पानी-पूरी के हंडे गोल-मटोल मिलते थे।
इक आने के दो-दो लड्, बिना तोल मिलते थे।
मुट्ठी भर अनाज के बदले, रेवड़ियाँ मिल जाती थी।
बुढ़िया के मीठे बालों को, बूढ़ी दादी भी खाती थी।
फेरी वाले के अंगूर पर भौरें, करते भिन-भिन थे।
संगत करता चाक कुम्हार का, वे भी क्या दिन थे।

हाथों में मेहंदी की खुशबू, बालों में सरसों का तेल।
दो-दो चोटी कंधों पर, खेला करती थीं जब खेल।
आँखों में काजल की रेखा, मन-मोहक लगती थी।
सूती छींट की फ्रॉक पहन कर, वह जब सजती थी।
सात सुरों में गा उठते थे, जिनके मन कमसिन थे।
संगत करता चाक कुम्हार का, वे भी क्या दिन थे।

सुबह-सुबह ही लेकर लोटा , सब जंगल जाते थे।
वन की शुद्ध हवा श्वांसों-संग, उर में भर लाते थे।
तोड़ नीम की हरी डाल को, लेते थे दातुन का काम।
आते-जाते ही जंगल में, नित होता था प्राणायाम।
प्रकृति स्वयं स्वच्छ करती थी, धुलते दाग मलिन थे।
संगत करता चाक कुम्हार का, वे भी क्या दिन थे।

गज़ल

श्री धर्मेन्द्र गुप्त साहिल,
वाराणसी, भारत

(1)
किस तरह ये गुनाह कर लूँ मैं
अपने ज़ख्मों पे आह कर लूँ मैं

पीर से हो गई सगाई है
सोचता हूँ कि ब्याह कर लूँ मैं

सारे जग से निबाह कर लूँ मैं
यानी खुद को तबाह कर लूँ मैं

आपसे मशवरा है बाद की बात
पहले खुद से सलाह कर लूँ मैं

सोचता हूँ सफ़र की मुश्किलों का
रास्तों को गवाह कर लूँ मैं

तेरे अशआर पर बता 'साहिल'
आह कर लूँ कि वाह कर लूँ मैं

(2)
तिमिर को खल रहा हूँ
निरंतर जल रहा हूँ

न भटका कोई जिसमें
मैं वो जंगल रहा हूँ

वो दमयंती रही है
तो मैं भी नल रहा हूँ

मैं फागुन की हवा-सा
बहुत चंचल रहा हूँ

तपा हूँ धूप में मैं
तभी तो फल रहा हूँ

रहा कब आज 'साहिल'
हमेशा कल रहा हूँ

dharmendraguptsahil@gmail.com

लिखूँगा

रजनीश कुमार
त्रिपुरा, भारत

(1)
आओ कि चलें अब कोई शहर ढूँढिए
देखने वाले देखेंगे तो कोई नज़र ढूँढिए।

माना कि बेहिसाब शोहरतों का दौर है
कहीं मिट्टी से जुड़ी कोई नयी खबर ढूँढिए।

तख्ती पर चाँद बहुत देर तक लटका रहा
इस धरती पर हरियाली रहे कोई शज़र ढूँढिए।

आहिस्ता-आहिस्ता निकल रहा है सूरज
ठंड की दुबकी नींद से सुबह का पहर ढूँढिए।

बेलौस आदमी में देखी है मैंने बड़ी बेचैन आँखें
निगाहों में शोखी हो तो उनके मन की लहर ढूँढिए।

बड़ी ज़िद है कि समा लूँ आपको अपने भीतर
शाइस्ता की मुरौवत में रजनीश का असर ढूँढिए।

(2)
कितनी गज़ल और कितने अफ़साने हैं इसमें
आप सब की दुआओं से आज मसौदा होने वाला है

मेरी मुरौवत की शायरी सुनकर सब ढीठ हो गये
दर्द को पैरहन न देना मोहब्बत का सौदा होने वाला है

आ गया है नया साल मुबारक कहने का मौसम
देखना फिर कोई दिलचस्प झूठा वादा होने वाला है

उसने पूछा क्या मैं परेशान हूँ आजकल सर्द रातों से
देख लो आज फिर कोई तन्हा होने वाला है

आज शाम से ही टीवी चैनलों पर गहमागहमी है
दिल बेचैन है बहुत, शायद कोई दंगा होने वाला है

साज़िश की आहटें पहचान ली जाती हैं ज़माने में
झूठ का पर्दाफ़ाश हो गया कल वह नंगा होने वाला है

सच कहूँ तो दुनिया जानती है, बाज़ार की असलियत
ज़रा-सी तारीफ़ में उसका भाव महँगा होने वाला है

hirkjha@gmail.com

गज़ल

कविता विकास
धनबाद, झारखण्ड, भारत

(1)
ज़िद पर जब भी कभी अड़ी रोटी
आदमी को निगल गयी रोटी

कोई भूखा ही बस बताएगा
दूर कितनी है चाँद-सी रोटी

आपकी और मेरी ज़रूरत है
हम सभी की है ज़िंदगी रोटी

रखती है एक-सी नज़र सब पे
सबकी पकती है एक-सी रोटी

नाच लोगों को जो नचाती है
वह है क्या, बस दो जून की रोटी

आपको इल्म ही नहीं शायद
छीन लेती है नींद भी रोटी

सोचते हैं यह कभी-कभी हम
हम बड़े हैं या है बड़ी रोटी

(2)
जो नौ से पाँच वाली नौकरी है
हमें तो आज भी लगती भली है

नहीं पड़ती समय की मार उस पर
विचारों में रखे जो ताज़गी है

गला घुट जाए अरमानों का जिसमें
भला वो ज़िन्दगी-क्या-ज़िन्दगी है

ग़मों में भी ठहाके जो लगाए
हर इक में वो कहाँ ज़िंदादिली है

जहाँ उसने कभी छोड़ा था मुझको
वहीं ठहरी हुई यह ज़िन्दगी है

अगर मन आस का दीपक जला ले
लगेगा रोशनी-ही-रोशनी है

यही लगता है जीवन में हमेशा
कि हमसे तो ज़ियादा वह सुखी है

kavitavikas28@gmail.com

गज़ल

अभिनव अरुण
वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत

(1)

हर किसी की पालगी अच्छी नहीं।
गोया इतनी सादगी अच्छी नहीं।
मानवीय मूल्यों को रखकर ताक पर,
कह रहे हैं ज़िंदगी अच्छी नहीं।
सच को रखकर हाशिये पर मसखरी,
आपकी यह दिल्लगी अच्छी नहीं।
देखिए कुछ देवताओं के भी गुण,
हर चरण की बंदगी अच्छी नहीं।
आप शायर हैं तो रखिए हौसला,
आपकी बेचारगी अच्छी नहीं।
हर तरफ़ है कागज़ी फूलों की गंध,
इस हवा की ताज़गी अच्छी नहीं।
आप शायर हैं तो रखिए हौसला,
आपकी बेचारगी अच्छी नहीं।
मज़हबी चश्मे से देखा जाएगा,
दौर में दिल की लगी अच्छी नहीं।
आप यायावर हैं तो रचिए भी कुछ,
खामखा आवारगी अच्छी नहीं।

(2)

कहाँ मछलियों को निवाले मिलेंगे।
जिधर देखिये जालवाले मिलेंगे।
चमक जुगनुओं की बताती है हमको,
अगर हौसला हो उजाले मिलेंगे।
खुदा का भरा घर हमेशा खुला है,
यूँ खाली घरों में भी ताले मिलेंगे।
नहीं साँप-सीढ़ी हैं गाँवों में पहुँचे,
सरल रास्ते देखे भाले मिलेंगे।
बताओ न हमको हकीकत शहर की,
जो तन के हैं उजले वो काले मिलेंगे।
जहाँ फ़िक्र होगी ज़माने के गम की,
वहीं चाय के चार प्याले मिलेंगे।
सफ़र में दुआ माँ की तुम साथ रखना,
कई रस्ते ऊँचे खाले मिलेंगे।
फ़कीरों के बाज़ार में याद रखना,
जो धनवान हैं बैठे ठाले मिलेंगे।
बहुत लोग हैं नुक्ताचीनी में माहिर,
उन्हीं के हवाले फ़साने मिलेंगे।

arunkrpnd@gmail.com

गज़ल

विनीता तिवारी
भारत

(1)
न तुम अच्छे, न मैं अच्छी, गलतफ़हमी में मत रहना,
हुई ये बात अब नक्की, गलतफ़हमी में मत रहना।

सितारों पर घुमाने का मुझे सपना दिखाते हो,
बहुत भोले हो तुम सच्ची, गलतफ़हमी में मत रहना।
नहीं आता मुहब्बत को निभाना ठीक से जब तक,
समझ लो उम्र है कच्ची, गलतफ़हमी में मत रहना।
हमारी टीम कब मैदान में देखो उड़ा डाले,
तुम्हारी टीम की धज्जी, गलतफ़हमी में मत रहना।

फटे कपड़ों में अपने को बहुत सुंदर समझती हो,
सुधर भी जाओ अब बच्ची, गलतफ़हमी में मत रहना।
न समझे थे न समझोगे, भले कितना भी समझाओ,
कसम से हो बड़े झक्की, ग़लतफ़हमी में मत रहना।

(2)
तेरा मुझसे मुझको चुराना गज़ब है,
चुराना, फिर अपना बताना गज़ब है।
यूँ ही बेवजह मेरे ख्वाबों में आकर,
बिना बात लड़ना-मनाना गज़ब है।
मुझे कर गई दंग उसकी कहानी,
वह कहता है मेरा फ़साना गज़ब है।
बड़े ज़ोर- शोरों से अपना बताकर,
गज़ल दूसरों की सुनाना गज़ब है।
चलो तो कभी चाँद पे घूम आएँ,
सुना है वहाँ आना-जाना गज़ब है।

तेरा दूर से देखना इस बदन को,
निगाहों से छूकर सजाना गज़ब है।

नहीं बेख़बर मैं फ़रेबों से तेरे,
पर इस दिल का तुझ पर ही आना गज़ब है।

vinu_t@hotmail.com

तकनीकी गिरफ़्त में संवेदनाएँ

डॉ. कमलेश गोगिया
छत्तीसगढ़, भारत

डिजिटल युग ने पूरे विश्व को खीसे में डाल दिया है। ई-लाइफ़ में पलक झपकते ही हम अपने भावों और विचारों को अँगुलियों के स्पर्श मात्र से अभिव्यक्त कर दिया करते हैं। आज हम घर बैठे, राह चलते और काम करते हुए उन सारी सुविधाओं का लाभ प्राप्त करते हैं, जिनके लिए कई महीनों, दिनों और घंटों तक इंतज़ार करना पड़ता था। तकनीकी ने ज़िंदगी कितनी आसान कर दी है। पूरी दुनिया अब मुट्ठी में है, लेकिन संवेदनाएँ मुट्ठी से बाहर निकलती जा रही हैं। विरासत में मिले मानवीय-मूल्यों के प्राण निकलते जा रहे हैं। ऋतुओं की उलटती चक्रगति प्रकृति के साथ हुए अन्याय का संकेत देती आ रही है। स्मार्ट फ़ोन ने रिश्तों की जगह ले ली है। पलक झपकते ही एक टच से रिश्तों की आभासी दुनिया में लोग करीब आने की बजाय दूर होते जा रहे हैं। भूमिगत हो रही संवेदनाओं को संरक्षित करने में असफल तकनीकी ने सुविधाएँ तो दी हैं, लेकिन मनुष्य को दिमागी और मानसिक रूप से खोखला भी बनाते जा रही है।

तकनीकी क्रांति आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस के नए अवतार को जन्म दे रही है। आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस का आशय है कृत्रिम बुद्धि या कहें बनावटी तरीके से विकसित की गई बौद्धिक क्षमता, मानव की तरह सोचने वाला सॉफ़्टवेयर अथवा कम्प्यूटर नियंत्रित रोबोट। 27 साल पहले तत्कालीन विश्व चैम्पियन शतरंज खिलाड़ी गैरी कास्परोव को 'सुपर कंप्यूटर डिप ब्ल्यू' ने जब हराया था, तब इस घटना को आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस के इतिहास में मील का पत्थर माना गया था, क्योंकि इंसानों द्वारा बनाई गई मशीन ने इंसान को ही बुद्धिमता की दौड़ में पीछे छोड़ दिया था। मशीन की यह सफलता कोई सामान्य घटना नहीं थी, विश्वभर की मीडिया में सुर्खियाँ बनी थी। दशकों से इस पर कई देशों में निरंतर शोध होते आ रहे हैं। यह तकनीक ऑफ़लाइन ही इंसानी दिमाग को भी पीछे छोड़ रही है। ऑनलाइन होने के बाद अनुमान लगाया जा सकता है कि भावी पीढ़ी इसी आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस के बिना किसी भी काम को करने में सक्षम नहीं होगी। गूगल और अन्य सर्च इंजन से भी कहीं आगे, सर्च के बाद अनेक विकल्पों से भरी वेबसाइट्स पर जाने की बजाय मुँह से चंद शब्द निकलते ही सारे काम खुद-ब-खुद होने लगेंगे। यह भी हो सकता है कि विचार करते ही सारे कार्य अपने-आप होने लगे।

भविष्य में आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस जब सभी की ज़िंदगी का अहम हिस्सा बन जाएगी, तब हमारे विचारों, भावनाओं और संवेदनाओं की भी जगह पूरी तरह मशीन ले लेगी। मसलन सारी संवेदनाएँ तकनीकी गिरफ़्त में होंगी। जिस मशीन को इंसान ही बनाता है, वह मशीन इंसानी दिमाग से भी ज्यादा तेज़ी से डाटा की प्रोसेसिंग कर क्षण भर में परिणाम सामने रख देती है। जीवन का हर फ़ैसला आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस से होगा। इंसान अपनी सारी प्रतिभा, कौशल और शक्तियों को मशीन को सौंप रहा है। प्रश्न यह है कि अपनी सारी शक्ति मशीनों को देने वाला इंसान फिर क्या करेगा? आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस को लेकर विशेषज्ञों की यही मूल चिंता है कि कहीं यह मानव-जाति के लिए खतरा न बन जाए। आज ई-लाइफ़ से अनजान लोगों को पिछड़े की उपाधि से अलंकृत किया जाता है, लेकिन इस सत्य को भी स्वीकारना होगा कि यही कथित पिछड़े लोग संवेदनाओं और मानवता से परिपूर्ण रहते हैं। मशीनी दुनिया से दूर सही, वे भावनाओं की कद्र करना जानते हैं।

इसमें कोई दो मत नहीं कि हर नया आविष्कार इंसान के बेहतर भविष्य के लिए ही होता रहा है। नित-नए आविष्कारों ने आज हमारी पूरी जीवन-शैली को बदलकर रख दिया है। इन आविष्कारों का एक दूसरा पक्ष रिश्तों में दूरियाँ और प्रेम-भाव की संकीर्णता के रूप में भी देखने को मिलता है। अब तक जितना तकनीकी विकास हुआ है, उससे हर कोई

लाभान्वित भी हो रहा है, लेकिन प्रकृति में प्रत्येक क्रिया की समान और विपरीत प्रतिक्रिया का सनातन सिद्धांत भी लागू हो रहा है, कुचालक-सुचालक, सुख-दुख और दिन-रात की तरह। जितनी सुविधाएँ हैं, उतनी ही दिक्कतें और चुनौतियाँ भी हैं।

कुछ देर के लिए सही, याद कीजिए उन दिनों को जब खत हमारी ज़िंदगी का अहम हिस्सा हुआ करता था। खतों में लिखे जाने वाले वे अल्फाज़ अब न तो स्याही से भीगा करते हैं और न ही संवेदनाओं को सजीव बनाते हैं। तकनीकी आविष्कारों ने संदेश भेजने की दूरियाँ इतनी कम कर दी हैं कि सिर्फ़ मुँह से चंद अल्फाज़ बोलना ही काफ़ी है। लेकिन दिलों की दूरियाँ ज़रूर बढ़ गई हैं।

वे दिन भी कितने रोमांचक थे जब घर-घर जाकर हल्दी लगा शादी का कार्ड देने की परंपरा का पालन सख्ती से किया जाता था। निमंत्रण-कार्ड के साथ उपहार लेकर जाने और मेल-मुलाकात करने का अपना ही आनंद था। यह परंपरा अब ई-कार्ड में ऑडियो-वीडियो और एनिमेटेड ग्रॉफ़िक्स के रूप में बदल गई है। संवेदनाओं के इज़हार के लिए शब्दों की भी ज़रूरत नहीं, एक इमोजी ही काफ़ी है, अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए। प्रेरक विचार भी अपने नहीं, असंख्य लोगों को भेजा जा चुका कट-पेस्ट, गुडमॉर्निंग- कार्ड भी खुद की रचना नहीं, बल्कि फ़ारवर्डेड। सिर्फ़ आभासी संतुष्टि, "कम-से-कम याद तो किया।"

दशहरे में रावण-दहन के बाद बड़े-बुजुर्गों को सोन पत्ती देकर चरण-स्पर्श करने वाले दृश्य अब नदारद हैं। कौवों का छत की मुंडेर पर काँव-काँव करना, चिड़ियों की चहचहाहट, पड़ोसियों के सुख-दुख में अपने सुख-दुख की अनूभूति, बीते ज़माने की बातें हो चली हैं। फ़िलहाल स्मार्ट फ़ोन और एप्स की दुनिया का वर्चस्व है। स्वयं मोबाइल का आविष्कार करने वाले अमेरिका के महान् इंजीनियर मार्टिन कूपर दिन का सिर्फ़ पाँच प्रतिशत ही मोबाइल को देते हैं। वे अब लोगों के बेतहाशा इस्तेमाल से व्यथित हैं, जैसा कि मोबाइल के आविष्कार का आधा युग बीतने के मौके पर उन्होंने मीडिया को साक्षात्कार में बताया। क्या ऐसे में उम्मीद की जा सकती है कि आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस का स्मार्ट फ़ोन से भी ज्यादा प्रयोग और दुरुपयोग नहीं होगा? इसका जवाब सभी जानते हैं। आज ज़रूरत है तकनीकी गिरफ़्त से संवेदनाओं को मुक्त कराने की।

kamleshgogia@gmail.com

जंग-ए-आज़ादी के अज्ञात वीर 'ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव

सारिका ठाकुर'
वर्धा, महाराष्ट्र, भारत

जब भारतभूमि की समग्रता पर दृष्टि जाती है, तब उसका गौरवशाली अतीत, संघर्षशील वर्तमान और संभावनायुक्त भविष्य बिजली के समान कौंधता है, जिससे अंधेरों तक भी विद्युत का प्रकाश पहुँच सब दृश्यमान कर जाता है। यह समग्रता कई युगों की याद दिलाती है। जिनमें स्वतंत्रता के जयघोष का युग था, परतंत्रता की छटपटाहट का युग था, स्वतंत्रता-संग्राम का युग था, बनने और मिटने का युग था और अतीत से सीख लेकर आगे बढ़ने का युग था। इन युगों में तमाम योद्धा व महानायक अपनी देश-भक्ति, वीरता और साहस का परिचय देते हुए तत्कालीन समाज के लिए न केवल प्रेरणा-स्रोत बने, बल्कि देश को स्वतंत्रता की ओर बढ़ाने में सफल हुए। इनमें एक अविस्मरणीय नाम ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव का भी है।

मानव और समाज के विविधमुखी विकास में इतिहास की विशेष भूमिका होती है। युगीन घटनाओं का क्रमिक लेखन, आगामी समय में अतीत को जानने, वर्तमान का विश्लेषण करने और भविष्य की संभावनाओं को व्यक्त करने में इतिहास महती भूमिका निभाता है। वही विश्लेषण का ठोस

आधार होता है और विश्वसनीय भी होता है, किंतु वास्तविकता यह है कि वही अंतिम सत्य या यथार्थ नहीं होता। स्वयं की क्षमता, मान्यता और सीमाओं के कारणवश इतिहासविज्ञ उन पक्षों को नज़रअंदाज़ कर जाते हैं, जो समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। परिणामस्वरूप इतिहास वैधता व विश्वसनीयता की कसौटी पर खरी नहीं उतरता। कुछ नाम इतिहास के खण्डहरों में पड़े-पड़े धूल-धूसरित हो जाते हैं और गुमनामी का दंश झेलते हैं। आज विश्लेषण करने पर तमाम ऐसे नाम सामने आते हैं, जो वास्तव में इतिहास की नींव है, किंतु दुर्भाग्यवश वे अज्ञात हैं। भारत माता की बलिवेदी पर अपने-आप को समर्पित करने वाले झारखंड के छोटानागपुर के 'ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव' का नाम ऐसे में महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

'टूट रही थी आशा, टूट रहे थे किले
फिर भी जीवित वीरता, खनखनाती तलवारें मिलीं'

देश अंग्रेज़ों के पराधीन था। समूची कार्य-प्रणाली उनके अनुसार ही चलायमान थी। समूचे राष्ट्र पर अंग्रेज़ों का आधिपत्य एक गंभीर समस्या बन चुका था, जिसकी आग कईयों के हृदय में विद्रोह बनकर उभरी, कईयों के मानस में भय बनकर पली और कईयों के जहन में निराशा के रूप में पल्लवित-पुष्पित हुई। जहाँ एक ओर राजघराने टूट-बिखर रहे थे, वहीं दूसरी ओर वीर-योद्धा एकजुटता के अभाव में व अपने साहस का परिचय देते हुए उस युद्ध-कुंड में स्वयं को समर्पित कर रहे थे, जिनमें ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव का नाम मुक्तकंठ से लिया जा सकता है। हिंदी साहित्य का आदिकाल वीरता, ओज, साहस और पराक्रम की परंपरा का इतिहास भी कहलाता है। एक योद्धा ऐसे भी हुए, जिनके लिए राज्य ही नहीं, अपितु जनता और देश सर्वोपरि था। राजसिंहासन पर आसीन होकर अपने कर्तव्यों की ओर सदैव उन्मुख रहने वाले ये वीर तत्कालीन समाज के प्रेरणा-स्रोत बनकर उभरे।

अंग्रेज़ों की हुकूमत से मुक्ति और राष्ट्र-सुरक्षा व सम्मान का स्वप्न उन्होंने बाल्यावस्था में ही देखा था, जिसका संस्कार उन्हें अपने पिताजी से मिला था। पिता की मृत्यु पर वह संकल्प और दृढ़ हुआ। बारह अगस्त अट्ठारह सौ सत्रह (1817) को सतरंगी, बड़कागढ़, लोहरदगा, झारखंड (पूर्व राज्य बिहार) में जन्मे योद्धा 'ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव' मातृभूमि के उपासक थे। उनके कल्याण व विकास हेतु सदैव संघर्षशील रहे। उनके पिता श्री ठाकुर रघुनाथ शाहदेव और माता श्रीमती चानेश्वरी देवी थी। पिता की आकस्मिक मृत्यु पर उन्हें 23 वर्षीय अवस्था में ही राज्य-पाठ संभालना पड़ा।

व्यवस्था को संभालते ही सर्वप्रथम उन्होंने मुक्त वाहिनी सेना बनाना प्रारंभ किया और इतने लंबे वर्षों की संकल्पना को कार्य रूप देना प्रारंभ किया। स्वतंत्र राज्य का जयघोष और वीरता का परिचय देते हुए उन्होंने सर्वप्रथम स्वराज्य की घोषणा 1855 को की, जो वास्तव में एक अहम और साहस का निर्णय था। योजना बनाने के क्रम में ही वे अपनी राजधानी को सतरंजीगढ़ से हटिया ले आए और उसके बाद ही उन्होंने अंग्रेज़ों के आदेशों को मानने से इंकार कर दिया, जिससे अंग्रेज़ों ने अपना आपा खो दिया।

परिणामस्वरूप, अंग्रेज़ी हुकूमत का पालन करते हुए उनकी फ़ौज पहुँची। तत्कालीन समय में रामगढ़ बटालियन मुख्यालय 'डोरंडा' ही था, जहाँ से सैनिकों ने हटिया के गढ़ पर हमला कर दिया।

"फिर शुरू हुआ संघर्ष, भिड़ी दो विरोधी शक्तियाँ
हुए लहुलहान एक, उठी एक ओर विजय की लपटियाँ"

इस प्रकार एक वृहत संघर्ष हुआ, दो पक्षों के मध्य। अंग्रेज़ सैनिक भारी मात्रा में मृत्यु के शिकार हुए और उन्हें अपने पैर वापस पीछे ले जाने को बाध्य होना पड़ा। इस शौर्य के आगे अंग्रेज़ भी झुकने को विवश हुए और उन्होंने चुप्पी साध ली। यह थी उनकी पहली जीत! जो इतने बड़े फ़ौज के खिलाफ़ उनके संघ की थी, जिनसे अंग्रेज़ भी हार मानने को बाध्य हुए, क्योंकि परिणाम की संभावना का अंदेशा उन्हें लग गया था, किंतु यही सब समाप्त नहीं हुआ! उन्होंने जो स्वराज्य का सपना देखा था, वह एक नहीं अनेक राज्य के माले में गुँथा था।

अंग्रेज़ों ने इसकी परिकल्पना भी न की होगी कि एक छोटी-सी चिंगारी हर ओर आग लगाने की क्षमता रखती है। यह संभव था, क्योंकि एक पक्ष ने चुप्पी साध ली थी, दूसरा

पक्ष तो दुगुने उत्साह और गति से आगे बढ़ रहा था, जिसका प्रतिफल था 1857 की क्रांति। प्रत्यक्ष रूप से हजारीबाग में आठवीं पैदल सेना में 30 जुलाई 1857 के विद्रोह का झंडा फहराया गया। इस समय तक मुख्यालय डोरंडा की सेना भी भड़क उठी। इस समय तक संपूर्ण राँची 'ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव' के आधिपत्य में आ गई थी। छोटा नागपुर के कमिश्नर डाल्टन को प्राणों की रक्षा हेतु भागना ही उचित विकल्प जान पड़ा। रामगढ़ की सेना अंग्रेज़ सिपाहियों का कत्लेआम करते हुए राँची आ पहुँची और समूचे देशी सेनाओं की फ़ौज ने इस विद्रोह के नेता के रूप में 'ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव' का ऐलान कर दिया।

"क्रोध ही हथियार बनी, इरादा ही उनका शस्त्र
जिसे शस्त्रहीन फ़ौज में देख, हुई अंग्रेज़ी सत्ता पस्त"

राष्ट्र-मुक्ति ही उनकी नीति रही और राष्ट्र-हित ही उनका ध्येय। जिसके लिए एक लंबे संघर्ष के पश्चात् एक समूचा जनसैलाब उभरकर आया। ऐसे में अंग्रेज़ भला चुप कैसे रह सकते थे। वे जानते थे आगे से वार घातक होगा, क्योंकि शक्तिशाली राजा नहीं, प्रजा होती है और प्रजा की शक्ति से ही राजा शक्तिशाली होता है। ऐसे में उन्होंने कूटनीति का मार्ग अपनाना ही उचित समझा। तब तक इन तीन दिनों के संघर्ष ने अंग्रेज़ी सत्ता की जड़ें हिला डालीं और निर्पात बना डाला उस बहुव्यापी वृक्ष को, जिसकी छाँव में पड़ा-पड़ा एक बड़ा समुदाय छटपटा रहा था। चारों ओर आज़ादी का जुनून और विदेशी सत्ता के ध्वस्त का विद्रोह फूट पड़ा था। हर वर्ग ने भरपूर सहयोग दे इस आंदोलन को और व्यापक बनाया। योजनानुरूप रोहतास के कुंवर सिंह से मिल इसे कार्यरूप दिया। डाल्टन के कहे अनुसार हजारीबाग छावनी पर अंग्रेज़ सैनिकों ने आक्रमण किया, किंतु ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव व अन्य समस्त साथी हाथ न लगे। ठाकुर विश्वनाथ ने अवसर का लाभ उठाने के लिए लोहरदगा (वहाँ के अधिकारीगण व फ़ौज हजारीबाग जा चुके थे। विद्रोहियों को गिरफ़्तार करने हेतु) के सरकारी खज़ाने को लूटने 1100 सैनिकों के साथ जा पहुँचे, किंतु कुछ विश्वासघातियों (महेश नारायण साही व विश्वनाथ दुबे) के कारण पकड़ लिए गए। इस प्रकार विदेशियों के खिलाफ़ लड़ने वाले योद्धा को अपनों की कूटनीति का ही कोपभाजन बनना पड़ा और इतने लंबे दिनों की यात्रा ने विराम ले लिया। छोटे-छोटे रूपों में जीवित हुई आज़ादी पूर्ण परतंत्रता की ओर बढ़ चली। नि:संदेह ऐसा न हुआ होता, तो इतिहास कुछ और ही होता और निश्चित रूप से वर्तमान भी।

गिरफ़्तार हो जाने के पश्चात् भी उन्होंने हार नहीं मानी और लड़ाई जारी रखी। तब प्रत्यक्ष भागीदारी द्वारा, अब अप्रत्यक्ष भागीदारी द्वारा। उन्होंने जेल में एक वाडर्न की सहायता से पत्र-व्यवहार द्वारा उस आग को जलाए रखा। कहा जाता है कि मंजन के दौरान कोयले को चबाकर उसे स्याही के रूप में परिवर्तित कर, वे पत्र लिखा करते थे, किंतु दुर्भाग्यवश अंतिम पत्र पकड़ा गया और कमिश्नर द्वारा फाँसी का ऐलान कर दिया गया। अब अधिक देर तक उन्हें जीवित रखना विदेशी सत्ता के लिए भी खतरे की घंटी जान पड़ी। उसी दिन अप्रैल (1958) को कदम की डाल में लटकाकर उन्हें फाँसी दे दी गई (वर्तमान राँची ज़िला स्कूल के निकट)। आज़ादी की संभावनाओं का वह दीप सदा-सदा के लिए बुझ गया, किंतु जाते-जाते औरों को जला गया और उसने आगामी सौ वर्षों तक संघर्षशील बने रहने की शक्ति दी और उस वृहत समुदाय के लिए महानायक और महायोद्धा बनकर उभरे।

इस प्रकार स्वतंत्रता के इस राष्ट्रव्यापी संघर्ष में लाखों बलिदानों में एक बलिदान की गाथा यह भी है, जिसने वास्तविक रूप में अंग्रेज़ों से न केवल लोहा लिया, अपितु सही मायने में विजयी हो, विजय ध्वज फहराया भी। हाँ! समूचे राष्ट्र तक पहुँचने के पहले ही अपनों द्वारा उन पावों को काट दिया गया। दिनकर ने सत्य ही कहा था-

'जब नाश मनुष्य पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है'
रश्मिरथी-रामधारी सिंह दिनकर

इस प्रकार पिछड़ेपन की उपमा से सुशोभित और झाड़-जंगलों में अवस्थित एक छोटा-सा राज्य और उस राज्य की क्रांति का एक जीता-जागता प्रमाण है - 'ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव जी', जो न केवल समूचे भारतवासियों को मुक्त करने हेतु निरंतर प्रयत्नशील रहे, बल्कि उन्हें एकजुट करने और जन-शक्ति को पहचानने में भी अपनी अमिट भूमिका निभाई।

क्रांति के एक शहीद योद्धा के रूप में वे जाने जाते हैं। इनकी मृत्युस्थली आज भी वहाँ के लोगों के लिए किसी पूजनीय देव-स्थल से कम नहीं। उस दिवस पर अपार भावना, प्रेम और सम्मान का पुष्प अर्पित करते हुए उन्हें शत्-शत् नमन करते हैं व अपने जीवन को उन्हीं आदर्श के अनुरूप ढालने के लिए कृतसंकल्पित होते हैं। इनकी जीवनी को झारखंड पाठ्यपुस्तक में शामिल करने की माँग निरन्तर कुछ वर्षों से जारी थी। कुछ संशोधित पुस्तकों में शामिल किया भी गया, जैसे- झारखंड राज्य स्तरीय पुस्तकों में 1857 की क्रांति और झारखंड (जिनमें चार प्रमुख योद्धाओं में ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव जी का नाम प्रथम है)। इतना ही नहीं तमाम क्रांति वीरों पर स्वतंत्र पुस्तकों को भी समक्ष लाने का प्रयास जारी है। झारखंड के सेवानिवृत्त प्रोफ़ेसर टी.के.झा के अनुसार

"जागरण हर युग में आता है, चाहे वह समय के प्रति हो, साहित्य के प्रति या इतिहास के प्रति। यही कारण है कि झारखंड की सरकार भी नये सिरे से पुस्तकों को आकार दे रही है। अदृश्य को दृश्यमान करने का प्रयास कर रही है। तथ्यों को गंभीरतापूर्वक खोजने और सबके सामने लाने का प्रयास जारी है"

इस राष्ट्रव्यापी जन-संघर्ष में कई महान् योद्धाओं ने अपनी सराहनीय सूझ-बूझ, निश्छल सहयोग और एकता का प्रमाण देते हुए उनके इस विचार को क्रांति में परिवर्तित करने में अपनी भूमिका निभाई और वेसदा के लिए अमर हो गए। इनमें शेख भिखारी, भवानी वक्श राय, विश्रामपुर के चौरो सरदार, कुँवर सिंह, निलाम्बर-पिताम्बर, मंगल पांडे, टिकैत उमराव सिंह, सिद्धू व तिलका मांझी आदि की विशेष भूमिका रही। उन्होंने तत्कालीन समय में न केवल विदेशी शक्तियों के खिलाफ़ संघर्ष किया, अपितु अपनी वैयक्तिक व निजी जीवन, इच्छाओं और भोग-विलास को भी होम कर डाला और वे भारत की क्रांति के साझी रहे।

Sarikathakur406@gmail.com

दुनिया मेरे आगे : देशांतर अर्न्तदृष्टि

प्रो. कृष्ण कुमार रत्तू
जयपुर, भारत

आओ लौटें अब देश अपने।"

इन दिनों दुनिया सिकुड़ गयी है। आभासी दुनिया का एक नया जीवन कोलाज़ अब जीने का एक अभिन्न तरीका बन गया है। पिछले दो वर्ष के कोरोना काल में, जिस परिवर्तन से समूचा विश्व गुज़र रहा है, उसने जीने का नज़रिया ही बदल दिया है। इन दिनों वर्चुअल संसार का नया आभासी चेहरा स्वीकार्य हो गया है। तकनीक एवं नई सूचना प्रौद्योगिकी के क्रान्तिकारी विस्फ़ोट से चकाचौंध भरी छोटी स्क्रीन पर दुनिया का पूरा मंजर दिखाई देने लगा है। यह आभासी दुनिया अब जीवन का एक स्थाई हिस्सा बन चुका है। चूँकि अब आने वाले समय में कोरोना वायरस के साथ ही जीना होगा, इसलिए यह बदलाव अब ज़िंदगी का अहम हिस्सा बन गया है।

इस कालखंड में समूचे विश्व में एक नई देशांतर अर्न्तदृष्टि पैदा हुई है, जिसका बोध हर उम्र के बच्चों से वृद्धों तक दिखाई देता है। अब दुनिया में भौगोलिक सीमाओं का टूटना जारी है और एक नई आभासी दुनिया की बदलती जीवन-शैली विज्ञान की इलेक्ट्रानिक डिवाइस पर केंद्रित हो गई है। आज संवेदनाओं और प्रेम का पवित्र अहसास आभासी दुनिया की नई भाषिक शैली का परिवर्तित रूप दिखता है। फ़ेसबुक, व्हाट्सएप और ट्विटर से लेकर पॉडकॉस्ट तथा अन्य सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्मों पर इसे केंद्रित कर दिया गया है। अब इन दिनों ज़िंदगी का हर रंग और हर पहलू, इस नए प्लेटफ़ार्म पर देखा जा सकता है।

सूचना क्रांति के इस दौर में ज़िंदगी की डिजिटल आभासी छवि कुछ इस तरह की हो गई है कि सबकुछ ऑनलाइन

में निहित हो गया है। उदाहरण के तौर पर अब किसी के लिए चिट्ठियाँ लिखना और बाँचना इतिहास की चीज़ हो गई है। अब पोस्टमैन का इंतज़ार शायद ही कोई करता हो और पोस्टमैन भी अब प्यार से भरी चिट्ठियों के स्थान पर कंपनियों के पत्र एवं उपभोक्ता से जुड़े हुए बाज़ार के पत्र लेकर आपके पोस्ट बॉक्स में छोड़ देते हैं, क्योंकि सूचनाओं एवं संदेशों का आदान-प्रदान त्वरित गति से व्हाट्एप, फ़ेसबुक तथा अन्य संचार-माध्यमों में रच-बस गया है।

इस देशांतर अर्न्तदृष्टि की नई मानवीय प्रवृत्ति भी बदल गई है और भाषा का विशेषकर हिंदी के जिस तरह के नए रंग-ढंग संप्रेषण की इस नई दुनिया में दिखाई देते हैं, उनसे सोशल मीडिया में एक नए भाषा-संसार का प्रचलन हुआ है। अब उसमें हिंदी के साथ अंग्रेज़ी तथा अन्य देशी-विदेशी भाषाओं का समावेश हुआ है। यह हमारी मानवीय प्रवृत्तियों के नए मनोविज्ञान को दिखाता है, साथ ही मनुष्य के दिलो-दिमाग पर एक नई देशांतर अर्न्तदृष्टि की छाप भी छोड़ता है, यही तो है आज की इस आभासी नई ज़िंदगी का चौकाने वाला स्वरूप।

इस देशांतर मनोवैज्ञानिक अर्न्तदृष्टि में भाषा की अब कोई सीमा नहीं रही। मानवीय सरोकार उस तरह के उत्तेजना एवं उत्साह से भरे हुए नहीं रहे। सच तो यह है कि संवेदनाओं का एक नया शून्य संसार हमने अपने आस-पास रचा-बसा लिया है तथा हमारी तमाम संवेदनाएँ और रिश्ते आपके मोबाइल फ़ोन की छोटी-सी स्क्रीन पर ही समाहित होकर रह गए हैं। क्या हमारे पास कभी फ़ुरसत होगी कि हम अपने बहुत कुछ पाने एवं एक नई दुनिया बसाने के चक्कर में आदमी के मन-मस्तिष्क और रूह से संवाद करें।

देशांतर मनोविज्ञान हमें भौगोलिक सीमाओं से मुक्त करता है, परंतु यह सच है कि मानव की अर्न्तदृष्टि का कोई भी दूसरा रूप अभी तक सामने नहीं आया है। हालाँकि, रोबोट से लेकर आकाश-पाताल तक विज्ञान की नई सूचनाओं की तकनीक ने मानवीय प्रकृति का सम्पूर्ण कायाकल्प कर दिया है। अब 'हॉरर शो' तथा विचलित कर देने वाले दृश्य इस छोटी स्क्रीन पर भी आपकी संवेदनाओं को छूते नहीं और यह नई वर्चुअल तकनीक आज की पीढ़ी का सच है। अब यह एक आम प्रक्रिया का हिस्सा है।

देशांतर अर्न्तदृष्टि में बदलाव कुछ इस तरह का हो गया है कि समय से पहले बच्चे वे सब वर्जित कन्टेन्ट को पंसद करने लगे हैं, जो शायद आज से एक दशक पहले की पीढ़ी में परिवार में बात तो क्या इसके बारे में सोचना भी वर्जित था। यह समय की नई धारा है और कोरोना के इस कालखंड में नई ज़िंदगी का नया चेहरा है, जिसे हम सब जी रहे हैं और आगे भी जीते रहेंगे, क्योंकि यह अब हमारी ज़िंदगी का एक अभिन्न अंग बन चुका है।

क्या आप भी इस सच के आस-पास हैं? यदि हाँ, तो फिर अपनी अंर्न्तदृष्टि को अपने अर्न्तमन से जोड़कर भारतीयता का चेहरा तलाशने की कोशिश करें। शायद उसमें आपको पुराने फ़्रेम में जड़ी हुई आपके पुरखों की कोई तस्वीर एवं नसीहत का दृश्य मिल सके और आप अपनी विरासत की जड़ों की तरफ़, अपनी मिट्टी की तरफ़ एक बार लौटने की सोचें। ध्यान रहे कि भारतीयता के प्रेम का दृश्य आपके गाँव की मिट्टी की सोंधी महक में ही रचा-बसा है।

drkkrattu@gmail.com

महिमा-मंडन

दीपक दीक्षित
भारत

हम भारतीय महिमा-मंडन के आदि हैं। एक साधारण से इंसान के चरित्र को हम असाधारण बना डालते हैं। साथ ही, चुपचाप अपना काम करने के बजाय दूसरों की जिंदगी की कथा सुनने और उनकी ज़िंदगी में झाँकने में हमें ज्यादा रस आता है और अपनी अकर्मण्यता का ठीकरा हम दूसरों पर फोड़ना चाहते हैं ।

हमें महानायक या महानायिका चाहिए या फिर महा खलनायक अथवा महा खलनायिका चाहिए। इसीलिए हमारी सुपरहिट फ़िल्मों का नायक या नायिका एक हाथ के इशारे भर से कई दुश्मनों या गाड़ियों को उड़ा डालता है। नायक-नायिकाओं के साथ जो भी बुरा होता है उसके मूल में खलनायक ही होता है। अगर नायक या नायिका का छोटा भाई नकली दवाई से मर जाता है, तो नकली दवाइयों की वह फ़ैक्टरी खलनायक या खलनायिका का होना लाज़िमी है, वर्ना कहानी कैसे आगे बढ़ेगी और कौन उसे देखेगा? यही हाल मीडिया का भी है। अगर कोई कुत्ता आदमी को काट ले, तो वह कोई खबर नहीं बन सकती, पर अगर कोई आदमी कुत्ते को काट ले, तो वह खबर खूब बिकेगी चाहे वह झूठी ही क्यों न हो। होना तो यह चाहिए कि इस सच्ची खबर का विश्लेषण हो कि आखिर कुत्ते ने आदमी को क्यों काटा? उसके क्या कारण हैं और भविष्य में ऐसी दुर्घटनाओं से कैसे बच सकते हैं। पर होता कुछ और ही है। एक कपोल कल्पित महामानव जो कुत्ते को काट लेता हैं, उसे एक बिकने वाला महाचरित्र बनाकर कमाई की जाती है।

यह छद्म व्यापार बड़ी चालाकी से आयोजित होता है। आपके दिमाग में एक कपोल-कल्पित महामानव बैठा दिया जाता है, जो सत्य से अलग है। उसके चरित्र को उभारने के लिए महा खलनायक एवं महा नायिकाएँ तैयार किये जाते हैं। उसके लिए सभाएँ की जाती हैं और उसमें व्यापारियों और उनके संस्थानों के द्वारा खूब पैसा लगाकर तरह-तरह के शो किये जाते हैं, जो उसकी आड़ में अपना व्यापार करते हैं। इन सब में 'आम आदमी' का दोहन बड़ी चतुराई से होता है। वह तो अक्सर बिना कोई पैसे दिए टीवी पर अपना मनपसंद शो देख रहा होता है या रेडियो पर अपनी पसंद के गाने सुन रहा होता है। पर बड़ी चालाकी से विज्ञापन द्वारा अनर्गल और मूर्खतापूर्ण बातें उसके दिमाग में बैठा दी जाती हैं।

एक सुन्दर अभिनेत्री (जो इस काम के करोड़ों रुपये लेती है) के सुन्दर दाँत दिखाकर यह कहलवाया जाता है कि वह अमुक ब्रांड का टूथपेस्ट ही उपयोग करती है, जिससे उसके दाँत इतने सुन्दर बन गए। खुद से ही नहीं लगभग हर दर्शक को भी मालूम होता है कि वह झूठ बोल रही है, पर इस तरह का प्रचार बार-बार किया जाता है। यह प्रचार इस हद तक होता है कि एक 6/7 मिनट के टीवी सीरियल के बीच में विज्ञापन भर के उसे आधे घंटे का बना दिया जाता है और विज्ञापनों से टीवी चैनल वाले लाखों करोड़ों की कमाई करते हैं। विज्ञापनदाता भी अपना पाँच रुपये के तेल या साबुन के सैशे रोज़ करोड़ों लोगों को बेचकर इतना कमा लेते हैं कि वे विज्ञापन की कीमत आसानी से दे पाते हैं। और इन सब का आधार है मूर्ख जनता जो भेड़ की तरह मुड़ती रहती है। शायद उसे मुड़ने के लिए ही बनाया गया है।

आखिर उसे कोई साबुन या तेल ही तो लगाना है। अब वह ब्रांड का हो या न हो, इससे क्या फ़र्क पड़ जाना है? जब करोड़ों लोग किसी ब्रांड का तेल या साबुन रोज़-रोज़ थोड़ा-सा ही उपयोग करते हैं, तब साल भर में हर व्यक्ति हज़ारों रुपये उस कंपनी को दे जाता है। अब व्यापार में किसका ब्रांड चलेगा यह भी कम्पनियाँ आपस में लड़कर तय कर लेती हैं, जैसे किसी इलाके में हफ़्ता कौन लेगा, ये गुंडे आपस में ही लड़कर फ़ैसला कर लेते हैं। आम व्यापारी तो गुंडों के साथ-साथ पुलिस को भी हफ़्ता देकर अपना दो नंबर का धंधा भी ईमानदारी से करता है।

जिस दिन इस देश का मूर्ख आमजन 'अंध भक्त' की तरह व्यक्ति-पूजा के जाल से बाहर निकलकर कुछ लोगों को भगवान् और कुछ को शैतान समझना बंद कर देगा, उस दिन हमारा सच्चा विकास होना आरम्भ हो जाएगा। भगवान् कुछ चुने हुए लोगों को अपना एजेंट नहीं बनाता, बल्कि वह तो हर इंसान के अंदर ही छुपा रहता है। आवश्यकता है, तो इस सत्य को आत्मसात करने की।

deepak.dixit.dd@gmail.com

डगर कॉफ़ी हॉउसी पनघट की

प्रेम जनमेजय
नई दिल्ली, भारत

एक पुराना गाना है--गुज़रा हुआ ज़माना आता नहीं दोबारा....'

वैसे तो हर पल एक गुज़रा हुआ पल होता है। धीरे-धीरे गुज़रे हुए पल ज़माना बन जाते हैं। हर गुज़रा इस तरह गा-गाकर याद करने योग्य नहीं होता है। हमारे जीवन में भी तो गुज़रे हुए लोग होते हैं, पर सभी गुज़रे हुए याद करने योग्य नहीं होते हैं। कुछ गुज़रों के गुज़रने पर संतोष होता है कि अच्छा है कि गुज़र गए। यह दूसरी बात है कि ऐसे किसी के ज़िंदा होने पर उनके गुज़रने की तीव्र इच्छा होते हुए भी आप अपनी इच्छा फुसफुसा तक नहीं सकते। क्या रावण के प्रति अपनी इच्छा कोई लंका में फुसफुसा सकता था। आदमी अधिकांश ऐसे गुज़रे को याद रखता है, जो उसको सुख देता है। ऐसे गुज़रे पलों के भरोसे बुढ़ापा आसानी से कट जाता है।

सच कहा कि गुज़रा हुआ ज़माना आता नहीं दोबारा। कॉफ़ी हाउस भी ऐसा ही गुज़रा हुआ ज़माना है, जो गुज़र गया है, पर उसकी यादें नहीं गुज़री हैं, पर जब भी गुज़रे ज़माने की बात आती है, तब स्मृति क्षीण होने के बावजूद, मेरा हिस्सा बन चुकी, बहुत-सी ऐसी स्मृतियाँ उठा-पटक करने लगती हैं। अचानक यादों का, भ्रष्टाचार से भी गहन, समुद्र लहराने लगता है। एक-एक लहर सजीव होकर अपनी पूर्णता में, रोम-रोम के साथ ऐसे प्रकट होने लगती है, जैसे स्मृति का क्षीण होना एक भुलावा है। इन सारी स्मृतियों में बहुत सारे ऐसे चेहरे हैं, जो बहुत कुछ एक-दूसरे से मिलते-से लगते हैं। कॉफ़ी हाउस की स्मृति ने इस समुद्र में ऐसी कंकरी मारी है कि अतीत के सारे बंद दरवाज़े ऐसे खुल गए हैं कि वर्तमान के दरवाज़े पर कोई दस्तक सुनाई नहीं दे रही है।

नई दिल्ली में स्थित कनॉट प्लेस से मेरा परिचय, मेरी मसें भीगने के समय से आरंभ हो गया था। तब मैं, सरकारी नौकरी में कार्यरत अपने पिता के साथ रामकृष्ण पुरम के सेक्टर एक में सरकारी मकान में रहता था। पालिका बाज़ार बनने की शुरुआत से उसे बनने तक देखा है। उन दिनों यही मेरे लिए दर्शनीय होता था। हम पाँच-छह किशोर, डी. टी. सी की 45 नंबर की बस पकड़कर मस्ती करने आते थे। तब रीगल बिल्डिंग में एक टी-हाउस होता था और उसके पड़ोस में सैलर नामक तहखाना रेस्तराँ होता था। उम्र के उस दौर में सैलर जैसे रेस्तराँ आकर्षित करते थे, पर निम्न मध्यमवर्गीय परिवार की न केवल पहुँच से बाहर होते थे, अपितु साहस से भी बाहर होते थे। ऐश करने के लिए रीगल बिल्डिंग की पहली मंज़िल पर स्थित स्टैंडर्ड' रेस्तराँ में जाकर अपना स्टैंडर्ड बढ़ाते थे। स्टैंडर्ड के दो हिस्से थे - एक हिस्सा, हम जैसे अमीरी का सुख भोगने वाले गरीबों के लिए था और दूसरा संभ्रात जनों के लिए। गरीबों वाले भाग में ज्यूक बॉक्स भी लगा था। स्टैंडर्ड के दो आकर्षण थे - पहला यह ज्यूक बॉक्स था, जिसमें मुझको चवन्नी में, कभी-कभी दो पुराने गानों का सुख मिल जाता था। दूसरे यह कि वहाँ कॉफ़ी के साथ बिस्किट फ़्री मिलता था। हम चाहे टी-हाउस के ठीक सामने खड़े होते थे, पर उसे किसी निगाह से नहीं देखते थे-- देखते थे तो बस सैलर को हसरत-भरी निगाह से।

समय ने करवट ली और प्रेम प्रकाश कुन्द्रा प्रेम जनमेजय बन गया। प्रेम जनमेजय ने साहित्य के आँगन में घुटने-घुटने चलना आंरभ कर दिया। साहित्य की दुनिया ने उसे टी-हाउस का महत्त्व समझाया। इस महत्त्व को एक बार मुझे डॉ. शेरजंग गर्ग ने भी समझाया था। एक बार मैंने जब उनसे मोहन सिंह प्लेस के कॉफ़ी हाउस की प्रशंसा की, तब उन्होंने टी-हाउस की प्रशंसा में उसके इतिहास को समझाते हुए कहा - प्रेम जी! पाँच दशक पहले साहित्यकारों, कलाकारों, बुद्धिजीवियों और राजनेताओं का एक अड्डा टी-हाउस के नाम से हुआ करता था। मोहन राकेश, रामकिशोर द्विवेदी, रवींद्र कालिया, श्याममोहन श्रीवास्तव के छत-फाड़ ठहाके समूचे टी-हाउस को गुंजायमान कर दिया करते थे और आसपास की मेज़ों

पर बैठे हुए लोग चौंक जाया करते थे, तब मैनेजर किसी बैरे के हाथों चिट भिजवाकर थोड़ा शांत रहने का निवेदन अवश्य कर दिया करता था। अरविंद कुमार, राजेंद्र अंजुम, ईश्वर सिंह बैस, मनहर चौहान, राजीव सक्सेना, श्याम परमार, श्याम मोहन श्रीवास्तव, हरीश्वर प्रसाद सिन्हा आदि बहुतों के लिए यह हाउस सायंकालीन बैठकों का अड्डा था, तो कुछ के लिए बाकायदा संपर्क स्थल। कविवर देवराज दिनेश अपने समस्त अतिथियों को टी-हाउस बुला लिया करते थे। बड़ी खींच-खिंचाई चलती थी। बहुत जीवंत वातवारण था। सारिका कहानी 'प्रतियोगिता में मनहर चौहान को पहला और प्रभाकर माचवे को तीसरा स्थान मिला और इसके बावजूद भी उन्होंने हाइलाईट किया, तो मैंने एक तुक्तक लिखा था-

घटना है बड़ी एब्सर्ड एक
हैं हमारे मित्र लेखक फ़ारवर्ड
बरसों से लिखते हैं
सभी जगह दिखते हैं
गल्प प्रतियोगिता में प्राइज़ मिला थर्ड!
यह धर्मयुग में छपा और चर्चित हुआ।"

टी-हाउस वह स्थली थी, जो चाय के लिए मशहूर नहीं थी। टी-हाउस साहित्यकारों के लिए आकर्षण का केंद्र इसलिए भी था कि इसके प्रवेश द्वार पर घुसते ही दाईं हाथ पर उस समय की चर्चित पत्रिकाएँ सजी-धजी मिल जाती थीं। उस समय पत्रिकाएँ खरीदकर पढ़ने का रिवाज़ था, इसलिए बिक भी खूब जाती थीं। मुझे याद है कि 1975 में मेरे संपादन में 'सार्थक' का पहला अंक निकला था। उस अंक को टी-हाउस में रखने मैं और उसके प्रधान संपादक हरिमोहन शर्मा गए थे। 72 पेज की पत्रिका का मूल्य था - एक रुपया। हमने बीस प्रतियाँ रखी थीं। मैं और हरिमोहन शर्मा, अपनी पहली संतान-सी, पत्रिका रखकर पास की मेज़ पर बैठ गए। कुछ देर बाद विष्णु प्रभाकर जी ने अपने किसी साथी के साथ प्रवेश किया और सीधे दाएँ हाथ पड़ी पत्रिकाओं पर अपनी दृष्टि डाली। 'सार्थक' को देखते ही उठा लिया और साश्चर्य अपने साथी से कहा - देखा आपने, इस पत्रिका का आवरण कितना कलात्मक है और कितनी बड़ी है पर कीमत मात्र एक रुपया। उन्होंने एक रुपया देकर न केवल 'सार्थक' खरीदी, अपितु पत्र भी लिखा।

जैसे काशी के असी घाट पर पप्पू की रेहड़ी है, जिसका वर्णन काशीनाथ सिंह ने किया है, वैसी रेहड़ी पहले टी-हाउस था, फिर कॉफ़ी हाउस बना। धीरे-धीरे टी-हाउस की चाय फीकी पड़ने लगी और मोहन सिंह प्लेस के इंडियन कॉफ़ी हाउस की कड़वी कॉफ़ी मीठी। सस्ती कॉफ़ी और जितनी देर, जितनी ऊँची आवाज़ में बहस करो, कोई बेयरा टोकता नहीं था। उन दिनों हिंदी साहित्य में अनेक गुट विद्यमान थे, अनेक हट्टियाँ खुली हुई थीं, अज्ञेय जैसे रचनाकार महंत की मुद्रा में थे। पूरा हिंदी साहित्य अनेक रूपों में सक्रिय था। धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, सारिका, नवनीत, कल्पना, आधार, संचेतना जैसी पत्रिकाओं ने साहित्यिक माहौल को गर्म किया हुआ था। सेठीय पत्रिकाओं के विरुद्ध आंदोलन आरंभ हो चुका था।

मैं कहूँगा कि कॉफ़ी हाउस एक ऐसी विशाल छत थी, जिसके नीचे लेखकों का एक कुटुंब वास करता था। जब आप लेखकीय बिरादरी से जुड़ते हैं, तब कुछ अनाम और कुछ संज्ञायुक्त संबंध आपकी ज़िंदगी का अहम हिस्सा बन जाते हैं। मैं आभारी हूँ साहित्य की दुनिया का कि उसने मुझे अपने से जोड़कर, एक वृहद परिवार दिया। मैं साहित्य का आभारी हूँ कि उसने मुझ अकिंचन लेखक को एक साहित्यिक परिवार दिया। एक परिवार मेरे माता-पिता ने दिया, जिसे मैंने विकसित किया। इसमें कोई चुनाव नहीं। चाचा-मामा, भाई-भतीजे आदि आपको रक्त-संबंधों से मिलते हैं। प्रेमिका और मित्र सरे-राह चलते हुए मिलते हैं। कभी पहली दृष्टि में प्रेम से आप उनसे जुड़ते हैं और कभी कुछ सोच-समझ के साथ। साहित्यिक परिवार, आपको आपके लेखक होने के कारण मिलता है, जिसमें कुछ आपके इश्क के कारण मिलते हैं, कुछ आपको इश्क पर ज़ोर नहीं की शैली में मिलते हैं। कुछ संबंध इसलिए मिलते हैं कि आप अच्छा लिखते हैं और कुछ इसलिए मिलते हैं कि आप संपादक हैं और 'अच्छा' छापते हैं। कुछ इसलिए मिलते हैं कि आप महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन हैं और कुछ इसलिए मिलते हैं कि आप सम्मान देने

वाली समिति के सम्मानित सदस्य हैं। प्रकृति के जितने रंग हैं, उतने ही साहित्यिक परिवार के रंग हैं।

चलिए, आप कॉफ़ी हाउस को कुटुंब नहीं मानना चाहते मत मानिए। ...चलिए, मैं इसे चौपाल कह लेता हूँ। चौपाल में हुक्का गुड़गुड़ाते हैं, यहाँ कॉफ़ी सुड़कते थे। यह भी नहीं चलेगा। कॉफ़ी हाउस को पनघट कहूँ, तो चलेगा। आप गुज़रे ज़माने के गाँव में रहने वाले गँवार हैं, तो जानते ही होंगे की पनघट क्या होता था और क्यों होता था। सुंदरियाँ अपने-अपने घड़े लेकर आती थीं और पानी भरकर ले जाती थीं। पनघट पर बातों का आनंद लिया जाता था। पनघट पर नन्दलाल भी छेड़ते थे। आजकल छिड़ने-छेड़ने के लिए मॉल हैं।

बात सन् 1973 की है। जुलाई 1973 में मैंने और रमेश उपाध्याय ने एक साथ कॉलिज ऑफ़ वोकेशनल स्टडीज़ के हिंदी विभाग में अध्यपान आरंभ किया था। जो रमेश उपाध्याय कभी 'बोरीबंदर' के लाड़ले कथाकार हुआ करते थे और जिन्हें मैं 'धर्मयुग' में लगातार पढ़ रहा था, वहीं रमेश उपाध्याय सन् 1973 की जुलाई में, 7 डॉक्टर्स लेन गोल मार्केट में स्थित, दिल्ली विश्वविद्यालय के कॉलिज ऑफ़ वोकशनल स्टडीज़ में मेरे सहयोगी बने। मुझसे सात वर्ष बड़े रमेश उपाध्याय के पास विशाल अनुभव और संपर्क था। मित्र बनाने का उनमें अद्‌भूत कौशल था। आपके अंदर झाँकती उनकी आँखों में एक कशिश थी। देखने में सामान्य से मध्यवर्गीय परिवार के युवक लगते, पर जब संवाद करते, तब एक असाधारण व्यक्तित्व जो अपनी सार्थक और बौद्धिक सोच से आपको अंदर तक प्रभावित कर दे। उस समय हरीश नवल भी हमारे सहयोगी प्राध्यापक थे, पर वे वहाँ जाने में परहेज-सा करते, जहाँ रमेश जी जाते थे। हमारा कॉलिज उन दिनों गोल मार्केट में था। तीनों के पास बातें इतनी थीं कि घर जाने की कोई जल्दी न होती। क्लास खत्म हुई, तो गोल मार्केट में स्थित 'आर्को' दुकान में तीनों ने बैठक शुरू कर दी। इतनी बातें कि अचानक पता चलता कि बैठे-बैठे इतना टाइम हो गया। हरीश नवल को किसी से मिलने जाना होता था और मुझे तथा रमेश जी को कॉफ़ी हाउस की शोभा बढ़ानी होती थी। रमेश उपाध्याय उन दिनों दिल्ली, अजमेर, चंडीगढ़ आदि में बहुत सक्रिय थे। उनकी सहृदयता ने मुझे भी सक्रिय किया। वे जहाँ जाते मुझे ले चलते।

रमेश जी का साथी होने के कारण मैं उनके साथ प्रगतिशील टेबल पर बैठता था। हमारी मेज़ पर कोई किसी की कॉफ़ी नहीं पीता था, सब अपनी-अपनी पीते थे। जनवादी और प्रगतिशील टेबल में तो मुझे याद नहीं कि मैंने किसी के सौजन्य से कॉफ़ी पी हो। हाँ, महीपे की हट्टी या निर्दलीय टेबल में पी है। एक बार मैं कॉफ़ी के साथ वड़ा खा चुका था। बहस में मज़ा नहीं आ रहा था। मूत्रालय जाने का संकेत कर उठा। कुछ दूर गया कि एक दोस्त मिल गया, जो बाहर से आया था। मैंने उसे कहा - 'चल कॉफ़ी पीते हैं।' वह बोला - "मछली बाज़ार में कॉफ़ी पीने से अच्छा है..चल स्टैंडर्ड चलते हैं और फ़्री वाला बिस्किट खाते हैं।" मुझे बहस से खिसकने का विकल्प मिल गया। इतनी देर में मैंने देखा कि रमेश उपाध्याय हमारी दिशा में आ रहे हैं। मुझे देखा, तो बोले - "आप हो आए?"

मैंने कहा - "हो आया पर.. यह मेरे जिगरी दोस्त है.. इनके साथ निकल रहा हूँ.."

रमेश जी ने चिर-परिचित मुस्कान मेरे दोस्त की ओर फेंकी और गर्मजोशी से हाथ मिलाया। अगले दिन उसी गर्मजोशी से कहा कि प्रेम जी मैंने कल आपकी कॉफ़ी और चाय के पैसे दे दिए थे। अक्लमंद को इशारा बहुत था और कमअक्ल को...

अगला किस्सा उस प्रगतिशील का है, जो हनुमान मंदिर से सपरिवार निकलते पकड़े गए।

एक दिन मैं आकाशवाणी में रिकार्डिंग करवा, पाइयाँ-पाइयाँ कॉफ़ी होम के पनघट की ओर जा रहा था। दिवस का अवसान अभी समीप नहीं था। जल्दी का काम शैतान का माना जाता है, इसलिए मैं जल्दी में नहीं था। संसद मार्ग के पिछवाड़े में एक गली हनुमान मंदिर मोहनसिंह प्लेस की ओर ले जाती है। मंगलवार का दिन था, मुफ़्तिया बूंदी का मन हनुमान मंदिर की ओर ले गया। किसी भक्त ने लिफ़ाफ़े में से मुझे प्रसाद दिया, तो मैंने हाथ बढ़ा दिया। पर मेरी बूंदी खाने की इच्छा पूरी नहीं हुई, क्योंकि भक्त कोई अमीर था,

उसने मुझे बर्फ़ी का प्रसाद दिया। उन दिनों बर्फ़ी भी मेरी पसंदीदा मिठाई थी। मैंने खाई और आभार के लिए मंदिर की ओर नज़रें उठाकर शुक्रिया किया। तभी नज़रों ने देखा कि कॉफ़ी हाउस पनघट के बतरसी अपने परिवार सहित मंदिर की सीढ़ियाँ उतर रहे हैं। कॉफ़ी हाउस की टेबल पर धार्मिकों को गरियाने वाले प्रगतिशील क्रांतिकारी सीढ़ियों से उतर रहे थे। आज उनका नाम लेकर उन्हें इस उम्र में बदनाम नहीं करूँगा। जब नाम में क्या रखा है, तब उनके नाम में क्या रखा है, मैं अपने काम से ही मतलब रखूँ। वैसे भी वे अकेले कहाँ हैं, ऐसे दोहरे चरित्र आपको वहाँ भी मिलेंगे, जहाँ अमेरिका जैसे पूँजीपति देश को गाली देने वालों की ब्रिलियंट संतानें अमेरिका में पढ़ने जाती ही नहीं बसती भी हैं।

प्रगतिशील साथी को देखकर, पनघट की ओर गतिशील, मेरे कदम थम गए। मैंने थमकर उन्हें देखा, तो उन्होंने बिना थमे मुझे देखा। उन्होंने झट अपनी दिशा बदली। अँगुली थामे बच्चे को गोद में लिया और पत्नी को बदली दिशा की ओर हाँकते हुए निकल गए। मैं समझ गया कि पकड़ी गई चोरी से ग्लानि के कारण, उन्होंने दिशा बदल ली है। कुछ दिन वे पनघट से, बिना प्रार्थना-पत्र दिए, अवकाश में रहे। पनघट में, जिसके लिए प्राण बसते हों, उसके लिए बलात अवकाश लेना, बलात्कार के कष्ट जैसा ही होता है। उनके लिए यही जैसे प्रयाश्चित-सा था। मैंने भी कुछ दिन मिलने के बाद उन्हें शर्मिंदा नहीं किया।

वैसे तो इस कॉफ़ी हाउस के बहुत किस्से हैं-- 'हरि अनंत हरि कथा अनंता'। इस कॉफ़ी हाउस को भक्तों ने जाकि रही भावना, जैसी कॉफ़ी हाउस, मूरती देखि तिन तैसी ...। मैंने अपनी भावना से देखा है और आप अपनी से देखें।

premjanmejai@gmail.com

छोड़ आए हम वो गलियाँ

अरविंद कुमार
सूरत, भारत

बेटा पानी से बाहर निकलो, निकलते हो या नहीं! नहीं तो मैं जा रही हूँ। "माँ की चेतावनी भरी आवाज़ थी। परंतु मैं भी कहाँ सुनने वाला था। बच्चा था, परंतु इनता जानता था कि माँ मुझे छोड़कर नहीं जाएगी, क्योंकि जिस गंगा नदी में स्नान कर रहा था, वह खतरों से खाली नहीं थी। अक्सर इस घाट पर मस्ती-मस्ती में किसी-न-किसी के डूबने का खतरा बना रहता था। इसी मस्ती-मस्ती में कई हादसे घाट पर हो चुके थे।

बिहार की राजधानी पटना से मात्र 14 किलोमीटर दूर एक वार्ड था नासरीगंज। आज इस वार्ड में 6 वार्ड बन चुके हैं। गंगा नदी के समानान्तर बांकीपुर (गांधी मैदान) से दानापुर और आगे बिहटा तक जाने वाले राजधानी की उस समय की सबसे चौड़ी सड़क से हमारे वार्ड का विस्तार इस मुख्य सड़क से अंदर की ओर 100 से 125 मीटर तक ही होगा। इसके आगे खेत-ही-खेत और कई प्रकार के बगीचे थे। उस समय हमारे वार्ड का विस्तार राजधानी की इस मुख्य सड़क के समानान्तर 1 किलोमीटर के आस-पास होगा। उस वार्ड में दो निजी स्कूल (प्राथमिक स्तर का) और एक मिडिल सरकारी स्कूल था। जिस गली में मिडिल सरकारी स्कूल था, उस समय भी हम उस गली को सरकारी स्कूल वाली गली के नाम से जानते थे और आज भी वह इसी नाम से जानी जाती है। हाँ, हमारी गली का नाम उस समय दलित समुदाय के एक वर्ग समुदाय के नाम से जाना जाता था। फिर बदलते-बदलते आज वह गांधी जी रोड हो गया है। उस गली में मेरा परिवार था और आठ-दस भिन्न परिवार थे। इसके बावजूद, गली में कोई विद्रोह या झगड़ा नहीं था, जबकि उस समय वैचारिक धाराओं में भिन्नता समाज में कलह फैलाने का काम करती थी। कोई एक समुदाय, दूसरे समुदाय के कामों में दखलंदाज़ी नहीं करता था।

हाईस्कूल मेरे वार्ड से 4 किलोमीटर दूर था। मेरी

प्राथमिक पढ़ाई इन्हीं दो प्राथमिक स्कूलों में से एक सरस्वती विद्या मंदिर में हुई थी। इन दोनों स्कूलों में किसान और मज़दूर वर्ग के सामान्य परिवार के बच्चे पढ़ने जाते थे। जो परिवार आर्थिक रूप से समृद्ध थे, उनके बच्चे संत माइकेल, लोयला, डॉन बोस्को, हार्टमन जैसे स्कूलों में जाते थे। उस समय मैं पहली कक्षा में पढ़ता था। एक दिन मास्टर जी ने सबको भारत के प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के नाम याद करके आने को कहा। दूसरे दिन एक बच्चे से मास्टर जी ने पूछा, बताओ - "भारत के राष्ट्रपति कौन हैं?" गलत नाम बताने पर उस बच्चे की पिटाई हुई थी। एक विद्यार्थी ने उत्तर दिया – "ज्ञानी जैल सिंह"।

मैं घर में पाँच भाई-बहनों में सबसे छोटा था। पढ़ने-लिखने में थोड़ा होशियार था। इसलिए पिताजी मुझे किसी अच्छे स्कूल में पढ़ाना चाहते थे। बहुत छान-बीन कर घर से 2 किलोमीटर दूर एक निजी स्कूल था, जिसकी फ़ीस 50 रुपये महीना थी, पाँचवी पास करने के बाद छठी कक्षा में नाम लिखा दिया। मैं खुशी-खुशी स्कूल जाने लगा। किताबें और नोट बुक सब आ गई। परंतु मैंने देखा कि इस स्कूल और सरकारी स्कूल की पुस्तकें एक समान हैं। सरकारी स्कूल में पढ़ने वाला मेरा मित्र और मैं दोनों एक ही किताब पढ़ रहे हैं, तो मैंने वहाँ से अपना नाम कटवा लिया। नाम कटवा लेने के पीछे पिताजी की आर्थिक परेशानी तो थी ही, एक और बड़ा कारण था स्कूल फ़ीस के अलावा स्कूल द्वारा कई और तरह की फ़ीस भी लेना था। मैंने पिताजी से बोल दिया कि जब सरकारी पुस्तकें ही वहाँ पढ़नी हैं, तब मैं सरकारी स्कूल में जाकर भी पढ़ लूँगा। स्कूल के स्थान पर आप मुझे ट्यूशन लगा दीजिएगा। उस समय एक अच्छा मास्टर भी घर पर आकर 10 से 20 रुपये में पढ़ा देते थे और मैंने 6 महीने बाद ही वह स्कूल छोड़कर सरकारी स्कूल की 7वीं कक्षा में नाम लिखा लिया।

मैं अभी 7वीं कक्षा से बिहार बोर्ड 10वीं की परीक्षा देता कि माँ की तेज़ आवाज़ सुनाई दी। "पानी से बाहर निकलते हो या नहीं कि छोड़कर चली जाऊँ"। माँ के गुस्से को मैं भाँप गया था। अब यदि जल्दी नहीं निकले, तो पिटाई निश्चित है। यह सोचकर जल्दी से बाहर निकला ही था कि एक चटाक की आवाज़ आई। चटाक की यह आवाज़ और कुछ नहीं मेरे पीठ पर पड़ने वाली माँ के गुस्से का परिणाम था। पानी में दूसरे दोस्त मुझे मार पड़ने पर हँसने लगे। मैंने मन-ही-मन उन सबको देख लेने की निगाहों से देखा। दोस्तों की उस हँसी में माँ की पड़ने वाली चटाक की आवाज़ और उनका गुस्सा मैं भूल गया था। जबकि माँ लगातार डाँट रही थी।

नदी स्नान के बाद हम सभी वहीं पास के भगवान शिव के मंदिर में जाते थे। मंदिर के मुख्य चबूतरे पर चंदन और उसे घिसने की लकड़ी रखी रहती थी। श्रावण के महीने में हम वहीं से बेलपत्र तोड़कर उसके तीनों पत्तों पर 'ॐ नम: शिवाय' लिखकर भगवान शिव पर पाँच/ग्यारह पत्ते चढ़ाते थे। भगवान शिव का यह मंदिर गंगा नदी के समानांतर बने बाँध से सटे दूसरी तरफ़ था। लोग कहते हैं 1975 में पटना सहित हमारे वार्ड में भारी बाढ़ आई थी। इसके बाद ही यह बाँध बनाया गया था। ज़मीन से करीब 10 फ़ीट ऊँचा यह बाँध मंदिर की तरफ़ खड़ी ढलाव लिए हुए था, जो वार्ड और पूरे शहर विस्तार को अगामी बाढ़ के खतरों से बचाने में पर्याप्त था। उस समय बाँध की दूसरी तरफ़ ईंट के भट्टे हुआ करते थे।

एक-दो बार मैं मुंबई स्थित ऐसेल वर्ल्ड और वाटर किंग्डम गया हूँ। ऐसेल वर्ल्ड में, जहाँ विभिन्न प्रकार के झूलों/राइड्स आदि की भरमार है, तो वहीं वाटर किंग्डम में पानी की कृत्रिम ढेरों मस्तियाँ। अब तो पटना शहर में भी पानी की मस्तियों के वॉटर पार्क बन गए हैं, जहाँ पैसा दीजिए और मस्ती कीजिए। परंतु कृत्रिम मस्ती की यह दुनिया प्राकृतिक मस्ती की उस दुनिया से अब भी पीछे है। 1 किलोमीटर से अधिक चौड़ी और जहाँ तक नज़र जाती हो, वहाँ तक फैले इस गंगा नहर की मस्ती के आगे यह फीकी-सी जान पड़ती थी। गंगा नदी के किनारे नदी से बालू निकालने वाले और गंगा के इस किनारे से उस किनारे तक जाने के लिए ढेरों नावें लगी रहती थीं। इन पर चढ़कर हम अलग-अलग करतब से कभी कूदी मारते, तो कभी दोस्तों के कंधे पर चढ़ते। कभी-कभी घर से 1 रुपया मिल जाता, तो हम दो-चार दोस्त, उसी

नाव पर चढ़कर गंगा के उस पार जाकर फिर से वापस आ जाते थे। नाव की वह सैर समुद्री फेरी से कहीं आकर्षक और बेहतरीन थी। अब तो हमारी सभी नावें डीजल वाली मोटर से चलने लगी हैं, जो आनंद कम, शोर और प्रदूषण ज्यादा करती है।

अभी हम बाँध से सटे भगवान शिव के मंदिर आए ही थे कि माँ ने डाँटा – "चंदन ज्यादा नहीं घिसना"। लेकिन मैं भी कहाँ सुनने वाला था। गीले पीठ पर पड़ने वाले चटाक को भूलकर मस्ती की उस चंदन को पूरे ललाट पर और बाहों पर लगाकर पूरे साधु बनने का दिखावा करता था। इसी मंदिर से सटे बेर का एक बड़ा बगीचा था। बाँध से सटे भगवान शिव का यह मंदिर और करीब 200 मीटर लंबाई-चौड़ाई वाला बेर का यह बगीचा स्थानीय राजा की निजी संपत्ति था। राजा कहीं और रहते थे।

बेर के इस बगीचे में कम-से-कम 150 से 200 बेर के पेड़ होंगे। बेर के मौसम में कोई रखवाल इसकी रखवाली करता और बेरों को स्थानीय स्तर पर बेचा करता था। चूँकि बेर का बगीचा काफ़ी बड़ा था, इसलिए बेर के रखवाल ने समूचे बगीचे की रखवाली करने के लिए बगीचे के बीचों-बीच एक छोटा-सा मचान और ताड़-पत्री की एक झोपड़ी बना रखी थी। यूँ तो बेर का यह बगीचा चारों ओर से सुरक्षित था, परंतु बाँध से सटे होने के कारण बच्चों का ध्यान इसी बाँध से सटे छोर की ओर ज्यादा जाता था। अक्सर एक बच्चा 50 पैसे का बेर खरीदने के बहाने रखवाल के पास जाता और बाकी बच्चे दूसरी तरफ़ से बेर तोड़ने लगते। जैसे ही रखवाल को बच्चों द्वारा बेर झाड़ने की आहट होती, वह डंडा लेकर हमारी तरफ़ दौड़ता और जो बच्चा बेर लाने गया होता था, वह भी वहाँ से बेर भरकर आसानी से आ जाता था। एक-दो साल यह सिलसिला चलता रहा, परंतु जल्द ही रखवाल को यह बात समझ आ गई कि ये सारे बच्चे एक ही हैं। एक बार जब एक बच्चा बेर लाने गया, तब उसे वहीं बाँध दिया और फिर हमारी तरफ़ दौड़ लगाई। किसी तरह बचते-बचाते वहाँ से हम भागे और दो-चार डंडे लगाकर चेतावनी के साथ बंधे हुए बच्चे को भी छोड़ दिया।

अभी हम इन बगीचों से निकले ही थे कि पिंकी, बंटी, रोहित, कुछ बच्चे और मैं दोपहर का खाना खाने के बाद घर के पास बने दलान में गोली खेलने के लिए इकट्ठे हुए। परंतु घुच्ची (गोली के खेल का केंद्र बिन्द, जिसे ज़मीन पर छोटा छेद कर बनाया जाता है) के स्थान पर ही गली का प्यारा दुलारा वह सफ़ेद कुत्ता बैठा था। अब खेल कहाँ से होता? सभी ने उसे हटाने का प्रयास किया। पिंकी ने एक छोटा ठेला उठाया और उसे मारा। लेकिन गली का वह हमारा पालतू कुत्ता, शायद हमसे मस्ती के मूड में था। कुछ और बच्चों ने डर-डरकर उसे भगाने का प्रयास किया। परंतु वह टस-से-मस न हुआ। मैंने जोश में आकर कहा – 'ठहरो, इसे मैं भगाता हूँ। जाकर उसे मैंने ज़ोर से एक लात मारी। उसने मेरा पैर अपने दाँतों से पकड़ लिया। फिर क्या था, जो होना था वहीं हुआ। एक तो कुत्ते का काटा हुआ जख़्म और दोस्तों द्वारा माँ को नमक-मिर्च लगाकर बताई गई बात से माँ की डाँट और पिटाई अलग से हुई। खैर मुझे पास के क्लीनिक ले जाया गया, जहाँ बहते खून को साफ़ कर प्राथमिक उपचार और टिटनेस की सुई दे दी गई। माँ कंपाउंडर को बोल रही थी – "मोटका सूईया भोंक दीजिए। तभी शांत होगा।" लेकिन कुत्ते के काटे का इलाज इतना आसान कहाँ था – जितनी बातें, उतनी सलाह। कोई कहता काटने के बाद कुत्ता मर जाता है, तो कोई कहता, कुत्ता किसी को काटने के बाद यदि पागल हो जाता है, तो कुत्ता काटा हुआ आदमी बड़े होने के बाद पागल हो जाता है। इन सब बातों से डरे-सहमे मैं और माँ घर से 16 किलोमीटर दूर मुख्य पटना जिला अस्पताल पहुँचे। जहाँ कुत्ते काटने पर 14 सुई पेट में लेनी होती थीं। ज्यादातर माँ ही मुझे लेकर यहाँ-वहाँ जाती थी। वहाँ जाने पर डॉक्टर ने भी पूछा – " कुत्ता ज़िंदा है या मर गया?" माँ को कुछ लोगों ने बताया था - "बोलिएगा दूसरी जगह का था भाग गया, अब हमें मालूम नहीं है।" माँ ने वैसा ही बोल दिया। डॉक्टर ने सुई दी। मोटी–सी, बड़ी-सी वह सुई थी। बोला - "एक दिन बाद आकार 14 सुई ले लेना।" लेकिन सात सुई ली, फिर आगे गए ही नहीं। जिला अस्पताल में उस समय उतनी भीड़ नहीं हुआ करती थी, जबकि उस समय इतने सारे न तो डॉक्टर थे और

न ही इतने सारे निजी अस्पताल। परंतु न जाने अब क्यों हर जगह जहाँ देखो बस भीड़-ही-भीड़ है।

शरारतों की इसी ऊहापोह में अभी हम उलझे थे कि पत्नी ने आकर कहा - "आज ऑफ़िस नहीं जाना है क्या?" यादों की पंगड्डियों के बीच हज़ारों कहानियाँ – आलू, गेहूँ और प्याज की खेती के वे किस्से, आलू का वह औंधा, ईट्ट के भट्टे पर आलू पकाना और नाव पर जाकर दोस्तों के साथ बैठकर घंटों भट्टे पर पकी हुई आलू की सौंधी-सौंधी सुगंध और स्वाद को मज़े से खाना, जाड़े के दिनों में गाय-भैंस के गोबर से बनी गोइठा पर लिट्टी-चोखे की याद या फिर कड़ाके की ठंड में रजाई में दुबककर वो गप्पे-शप्पे और न जाने कितनी भूली-बिसरी सुनहरी यादों को छोड़, हम निकल पड़े सुनहरे सपनों को पूरा करने। परंतु यादों की हकीकत होती है और सपनों की यादें। और उन हकीकतों को छोड़, सुनहरे सपनों की तलाश में 'छोड़ आए हम वो गलियाँ'।

arvindedp@rediffmail.com

चाचा जी और चंदामामा

डॉ. अनिता सिंह
पुदुचेरी, भारत

ऐसा हर बार होता है, शायद सभी के साथ होता होगा। दिवाली की साफ़-सफ़ाई पर कुछ ऐसी पुरानी चीज़ें हाथ लगती हैं कि कहना ही क्या ! और वे अनायास हाथ लगी चीज़ें हमें उन जगहों और रास्तों पर ले जाती हैं, जहाँ का पता भूले भी हमें बरसों हो गए हो। कभी-कभी किसी ऐसे व्यक्ति की याद, जिन्हें याद करते ही चेहरे पर बरबस एक मुस्कान तैर जाए। इस बार भी यही हुआ था। स्टोर में रखे गत्ते के बड़े-बड़े डिब्बों को चेक करके साफ़ करने का सोचकर हाथ लगाया और हाथ लगी 'चंदामामा', 'नंदन', 'बालहंस', 'कादम्बिनी' और 'धर्मयुग' की बरसों पुरानी प्रतियाँ। कुछ बीस-पच्चीस साल तो कुछ लगभग दस–पंद्रह वर्ष पुरानी। बचपन में इन्हें पढ़ने का चस्का था, एक नशा जैसा, विशेषकर 'चंदामामा' के लिए। 'कादम्बिनी' और 'धर्मयुग' में साहित्य और दूसरे विषय होते, लिहाज़ा उस समय तो वे समझ में नहीं आते, उनका रस तो बहुत बाद में लेना शुरू किया। पर 'चंदामामा' और 'नंदन', इनमें तो जैसे हमारे प्राण बसते थे। घर में भी हम चार भाई-बहन में पढ़ने की होड़-सी लगी रहती। 'चंदामामा' की कहानियाँ', उसके पात्र, राजा विक्रम और उसके कंधे पर लदा हुआ बेताल क्या ये भूलने की चीज़ें हैं ? तब तक हमें यह भी पता नहीं था कि 'चंदामामा' मूलत: तेलुगू की पत्रिका है, जिसका दूसरी भाषाओं में अनुवाद होता है। उस समय तो हमें 'चंदामामा' अपनी हिंदी की सबसे प्रिय पत्रिका लगती। जब भी प्रिय पुस्तक पर निबंध लिखने का अवसर मिलता, तब मैं हर बार 'चंदामामा' और 'नंदन' पर ही निबंध लिखती। और ये पत्रिकाएँ लेकर आते हमारे बड़े चाचा जी। बड़े चाचा जी यानि पापा के ताऊ जी के बड़े बेटे। मेरे पापा विज्ञान वर्ग में थे, उनकी पी.एच.डी. प्राणी-विज्ञान में थी, तो वहीं चाचाजी ने हिंदी साहित्य में पी.एच.डी. की। मेरे दादा जी के छोटे भाई, जिन्हें हम छोटे बाबा कहते, उन्होंने भी हिंदी साहित्य में पी.एच.डी की थी, सन् 1960-65 के आसपास। उन दिनों कम ही लोग पी.एच.डी और अनुसंधान समझते थे। बहरहाल, चूँकि साहित्याकलश घर में पहले से ही स्थापित था, तो उस कलश से कुछ बूंदे मुझे भी विरासत के तौर पर मिली। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव यह हुआ कि घर में पत्र-पत्रिकाओं का भंडार भरा रहता। छुट्टियों में जब गाँव जाते, तब वहाँ भी पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने को मिलतीं। बड़े चाचा जी जब भी हमारे घर आते, तब उनके हाथ में 'चंदामामा', 'नंदन', 'बालहंस' और 'कादम्बिनी' आदि पत्रिकाएँ ज़रूर रहतीं। वास्तव में, इन पत्रिकाओं के लिए ही हम सब उनकी बाट जोहते। कई बार वे महीनों तक नहीं आते, तो हम सब भाई-बहन अनमने से हो जाते। स्कूली पुस्तकें पढ़कर बोर होते रहते। चाचाजी के आते ही हमारी नज़र उनके खादी के

झोले पर रहती, जिनमें पुस्तकों का ख़जाना होता। उन दिनों सरकार का एक विभाग हुआ करता, 'प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय' नाम से। वे उसी में कार्यरत थे, लिहाज़ा बहुत व्यस्त रहा करते थे। गाँव-गाँव पूरी टीम के साथ जाकर कभी सिनेमा के माध्यम से, कभी नुक्कड़ नाटक, तो कभी कठपुतली नाच के माध्यम से ग्रामीण जनता को शिक्षा के प्रति जागरूक करते थे। आज जो मै देखती हूँ, स्वच्छता-अभियान, कौशल-विकास और बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ, जैसे अभियान। वास्तव में, ये सब इसी निदेशालय के अंतर्गत आते हैं। चाचाजी को इसके पाठ्यक्रम-निर्माण की ज़िम्मेदारी भी दी गई थी और इसके लिए उन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना भी की थी। 'प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय' की एक लोकप्रिय पत्रिका थी - 'उजाला'। उसके हर अंक में चाचा जी का कोई-न-कोई आलेख, कहानी या कविता ज़रूर प्रकाशित होती, तो वह पत्रिका भी हम ज़रूर पढ़ते। उनके पास किस्सों का खज़ाना होता। उनके आते ही सभी उनको घेरकर बैठ जाते और वे सच्चे, जीवंत किरदारों की कहानियाँ सुनाने में तल्लीन हो जाते थे। वे भी पूरे ज़िंदादिल, हंसमुख और दूसरों की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहते थे। बाद में, जब 'प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय' को समाप्त कर दिया गया और संबंधित अधिकारियों को दूसरे संस्थानों में समायोजित किया गया, तब उस समय चाचा जी को भी अल्मोड़ा जाना पड़ा, हिंदी के प्राध्यापक के रूप में। वे लोगों के बीच जाकर काम करने वाले एक सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता थे। उन्हें विद्यालय की चहारदीवारी में बाँध दिया गया। खैर, वे शिक्षक तो थे ही बेहतर, पर समाज-सेवा के भूत ने उन्हें छोड़ा नहीं था। अक्सर साहित्य और समाजसेवी लोगों को अपने ही परिवार से उपेक्षा सहनी पड़ती है। इस समाजसेवी और साहित्यानुरागी अध्यापक को भी पारिवारिक प्रपंचों का शिकार बनना ही पड़ा। बाद में, उनका घर आना काफ़ी कम हो गया। और अब हमारी भी उम्र 'चंदामामा' पढ़ने की तो रही नहीं। पर उनसे हमारा संपर्क बना रहा। गोरखपुर जब भी आते, वे हमारे घर ही ठहरते। घर के शादी-ब्याह में वे हमेशा आते। मैं अपनी शादी के बाद उनसे बहुत कम मिल सकी। पर मम्मी-पापा से उनकी बराबर जानकारी मिलती रही। जब 2013 में चंदामामा के बंद होने की सूचना मिली, तब बहुत दुख हुआ। जो अंक इधर-उधर पड़े हुए थे, अब अचानक उन्हें सहेज लेने का मन हो उठा। 'चंदामामा' के ऐसे रूठने से मुझे आभास हुआ कि कहीं ऐसे ही 'नंदन' वन भी न सूख जाए। बहुत पहले 2008 में अपनी पी.एच.डी के समय मेरी एक मित्र अपर्णा जी ने बताया कि उन्हें 'चंदामामा' के हिंदी अनुवाद का काम मिला है। उनके पास अंग्रेज़ी की सामग्री आती और वे उसका हिंदी अनुवाद करती। एक बार जब वे अपने शोध-प्रबंध को लेकर अत्यधिक व्यस्त हो गई, तब उन्होंने मुझसे इस पत्रिका के दो अंको का अनुवाद करने को कहा, मै झट से तैयार हो गई, यह जानते हुए भी कि पत्रिका में अनुवादक के नाम का कहीं भी ज़िक्र नहीं होता। मैंने उनसे अपने चाचा जी का भी ज़िक्र किया कि उन्होंने ही इस पत्रिका का स्वाद चखाया था हमें। उन्होंने हँसकर कहा कि तब तो अच्छा काम करोगी। अनुवाद का काम कोई आसान काम नहीं है, मैंने भी यह बात उस काम को करके ही जाना। हालाँकि, बाद में मुझे मित्र का थोड़ा सहयोग लेना ही पड़ा। इस साल एक के बाद एक कई दुखद घटनाएँ आती ही जा रही हैं। कुछ बरस पूर्व जब 'नंदन' और 'कादम्बिनी' के प्रकाशन के बंद होने की सूचना मिली थी, तब मुझे फिर चाचा जी की बहुत याद आई थी। एक दिन अचानक घर (गोरखपुर) से फ़ोन आया था कि चाचा जी नहीं रहे। पता नहीं क्यों, इसी साल 'नंदन' और 'कादम्बिनी' पत्रिका का बंद हो जाना और बड़े चाचा जी का चले जाना मर्माहत कर गया। इन हिंदी पत्रिकाओं के समान बड़े चाचा जी भरा-पूरा परिवार होते हुए भी नितांत अकेले और उपेक्षित हो गए थे। बीमारी तो बस एक बहाना बनी, उनके गुज़र जाने का। 'चंदा मामा', 'नंदन' और 'कादम्बिनी' की तरह वे भी हमारी स्मृतियों में सदैव जीवित रहेंगे

pramodita2001@gmail.com

"घुँघराले बालों वाली लड़की"

रोचिका अरुण शर्मा
चेन्नई, भारत

बिटिया के काले घुँघराले बालों की लटें मानो गुन-गुन करते काले भँवरे मधु की तलाश में उसके गुलाबी गालों के पास मंडराते हुए कहीं उसके बालों में जा बैठे हों। हर रविवार जब दफ़्तर की छुट्टी होती है और मैं उसके बाल तेल मालिश कर शैम्पू से धोकर, उनके सूखने पर उनकी उलझन सुलझाती हूँ, तब उसके रूप-रंग को देख फूली नहीं समाती हूँ।

शारीरिक सुंदरता की बात करें, तो युवावस्था के समय से ही मेरी नज़र में घुँघराले बालों का विशेष महत्त्व रहा, क्योंकि स्वयं के बाल बिल्कुल सीधे, नर्म और मुलायम रहे और यह मनुष्य की व्यावहारिक प्रवृत्ति है कि जिसके पास जो है, उसे उसकी कद्र कम और उसके विपरीत की चाह ज्यादा होती है। उसपर भी जब हमारे ज़माने में फ़िल्म "तेज़ाब" के साथ ही अभिनेत्री "माधुरी दीक्षित" सुपर हिट हो गई थी, तब सभी सहेलियाँ उसे देखकर उसके रहन-सहन की नकल किया करती थीं। उसके जैसे कपड़े, जूते, हेयर स्टाइल रखने की कोशिश करती थीं। ऐसे में मैं "माधुरी दीक्षित" की फ़ैन बन गयी, लेकिन उसके जैसे बाल नहीं कर पाती थी। जी चाहता था कि बालों की "पर्मिंग" करवा लूँ, किंतु बालों में रसायनों के इस्तेमाल से डरती थी और नाही उस समय इतने रुपये मेरे पास हुआ करते कि वह खर्च उठा सकूँ। मैं रात को बालों में रोलर्स बाँधकर सोया करती और उन्हें घुँघराले बनाया करती।

हम मध्यम वर्गीय परिवार हाउसिंग बोर्ड की कॉलोनी में रहते थे। आस-पास के दो घरों में बीच की एक दीवार कॉमन हुआ करती थी। घर के आगे-पीछे बाहर की खुली जगह की चारदीवारी बस इतनी ऊँची थी कि हम कूदकर एक घर से दूसरे घर में जा सकते थे। हमारे घर से सटे हुए घर में एक पंजाबी परिवार रहा करता था। उनकी चार बेहद खूबसूरत लड़कियाँ थीं, जो मुझसे बड़ी थीं और एक लड़का था जो मेरी ही उम्र का था।

लड़कियों की खूबसूरती की बात करें, तो सुनहरा रंग, गुलाबी गाल और काले घुँघराले बाल, जो मुझे बेहद पसंद थे। लेकिन मैंने आंटी को हमेशा उनके दहेज की फ़िक्र में ही डूबे हुए देखा।

कुछ ही समय में पड़ोस की सबसे बड़ी लड़की, जिसे हम मीना दीदी कहते थे, का ब्याह उनकी खूबसूरती को देखकर ही हुआ। अब उनकी माँ कहते न थकती थी कि "मेरी बेटी को आगे से माँगकर ब्याह कर लिया है।" विवाह के बाद जब वह ससुराल गई, तब वहाँ भी उनकी सुंदरता के चर्चे फैल गए। उन्हीं के ससुराल के एक रिश्तेदार से उन्होंने अपनी छोटी बहन प्रियंका दीदी का ब्याह करवा दिया। पड़ोस की आंटी की चिंता तो मानो छू हो गई थी। अब वह अपने दोनों दामादों की तारीफ़ करते न थकती थी।

करीब एक वर्ष बीता और प्रियंका दीदी ने एक सुंदर-सी बिटिया को जन्म दिया। उसका नाम रखा निम्मी। निम्मी दूध-सी उजली थी, ऐसा महसूस होता, मानो छुआ तो दाग लग जाएगा। निम्मी थोड़ी बड़ी हुई, तो अपनी माँ की तरह ही काले-काले घुँघराले बालों के छल्ले उसके चेहरे पर बिखरे होते। जब वह अपने ननिहाल आती, मैं उसे गोद में उठाए खूब खेलती। उससे बातें करती और उसके बाल बनाती। कई बार तो उसे अपने घर ले आती और उसे कहानियाँ सुनाती। मेरे पास लेटी हुई वह कब सो जाती, यह मुझे मालूम ही न पड़ता और मेरी कहानी जारी रहती।

कुछ समय बीता एक बार प्रियंका दीदी और निम्मी आयी हुई थीं। निम्मी पाँच वर्ष की हो चुकी थी, मैं उसे देखते ही प्रसन्न हो गई, सोचा कल कॉलिज से आते ही उसे अपने घर ले आऊँगी। रात को मैं अपने कमरे में खिड़की के पास बैठकर पढ़ाई कर रही थी कि तभी मुझे पास ही में लगी उनके कमरे की खिड़की से प्रियंका दीदी के रोने-धोने की आवाज़ सुनाई दी। शायद उनके माता-पिता उन्हें कुछ समझा रहे थे

और प्रत्युत्तर में वे चीखकर बोलीं - "मैं किसी भी कोने में पड़ी-पड़ी सड़कर मर जाऊँगी, लेकिन उस घर में वापिस लौटकर नहीं जाऊँगी"

मुझे समझते देर नहीं लगी कि उन्हें ससुराल में कुछ परेशानी हुई है और वे लौटकर नहीं जाना चाहतीं। अगले दिन मैं निम्मी को अपने घर खेलने के लिए लेकर आ गई थी। उसकी मासूम बातें और शरारतें मेरा दिल छू लेती।

कुछ ही दिनों में प्रियंका दीदी ने एक प्राइवेट स्कूल में नौकरी शुरू कर दी थी। भारतीय परिवेश में यदि विवाहित बेटी मायके में आकर नौकरी करना शुरू कर दे, तो लोगों के मस्तिष्क की रेखाएँ सवालिया हो जाती हैं। उनकी पैनी नज़रें बगैर कुछ बताए ही लड़की की वैवाहिक स्थिति का जायज़ा ले लेती हैं ।

आस-पास की सभी महिलाएँ प्रियंका दीदी के बारे में काना-फूसी करने लगी थीं। "नौकरी क्यों कर रही है प्रियंका? क्या तलाक हो गया ? क्या छोड़ आई अपने ससुराल को? क्या निकाल दिया इसे ससुराल वालों ने?" - जितने मुँह, उतनी बातें।

करीब छः माह बाद प्रियंका दीदी अपने ससुराल लौट गई थी। मैं समझ गई थी कि शायद ससुराल वालों ने भी अपनी बहू को वापिस बुलाना चाहा होगा। भला कौन अपने बेटे का बसा-बसाया घर टूटते देखना पसंद करता है। खैर मैं खुश थी कि निम्मी को पुनः अपने पिता का साथ मिल गया था। लेकिन निम्मी के साथ बिताए छः माह मेरे मन में उसके प्रति मोह जगा गए थे।

कुछ समय बीता, मेरी पढ़ाई पूरी हो गई थी और मैं नौकरी करने लगी थी। अभी करीब तीन माह बीते और प्रियंका दीदी पुनः मायके लौट आयी थीं। लेकिन इस बार वह निम्मी को साथ नहीं लाई थीं। करीब तीन-चार दिन में ही प्रियंका दीदी फिर से नौकरी करने लगी थीं।

मोहल्ले में फिर से खुसर-फुसर शुरू हो गई थी। मुझे किसी और पंचायती से मतलब भी नहीं था, इतना तो मैं समझती थी कि ससुराल में ज़रूर कोई परेशानी होगी, तभी तो प्रियंका दीदी बार-बार मायके आ रही हैं।

बस मुझे तो निम्मी बहुत प्यारी लगती थी, सो उसके न आने का मलाल था। करीब दो वर्ष ऐसे ही बीत गए, हाँ, इस बीच एक बार निम्मी के पिता आए थे। उनके आने की खबर तो नहीं लगी, किंतु प्रियंका दीदी के पिता ने उन्हें डाँट-लताड़कर धक्के देकर घर से निकाल दिया था। ज़ोर से चीखने-चिल्लाने की आवाज़ सुनकर सभी पड़ोसी भी घरों से बाहर निकल आये थे। शायद निम्मी के पिता प्रियंका दीदी को लेने आए थे और वह जाना नहीं चाहती थीं।

अब प्रियंका दीदी सदा के लिए मायके में रह गई थीं। मोहल्ले के सभी लोग यह जानने को उत्सुक रहते कि आखिर हुआ क्या है। जब वह साईकिल-रिक्शे में बैठकर सुबह स्कूल पढ़ाने के लिए जाया करतीं, तब सभी की नज़रें उनके मन व मस्तिष्क का एक्स-रे कर लेने की फ़िराक में रहतीं। खैर, यदि उन्होंने ससुराल न लौटने का फ़ैसला किया था, तो उनमें लोगों की सवालिया नज़रों का सामना करने की हिम्मत भी होगी ही, यह मैं समझ चुकी थी।

करीब तीन वर्ष बीत गए और मेरे विवाह की बातें घर में होने लगीं और कुछ महीनों में मेरा रिश्ता पक्का हो गया। मेरी माँ ने पड़ोस के सभी घरों में खुशखबरी देते हुए मिठाई भिजवायी। शाम के समय प्रियंका दीदी ने मुझे बधाई दी और बोलीं - "ईश्वर करे तुम ससुराल में खूब सुखी रहो।"

उन दिनों मानो मुझे उड़ने के लिए पंख मिल गए थे, मैं जल्दी से ब्याह कर अपने प्रिय के घर जाने को आतुर थी। लगभग पंद्रह दिन बाद प्रियंका दीदी के पिताजी ने मेरे पिता को दबे स्वर में बताया कि उन्होंने भी प्रियंका दीदी का पुनर्विवाह करने के लिए रिश्ता तय कर दिया है।

"तो क्या प्रियंका का अपने पहले पति से तलाक हो गया?" मेरे पिताजी का सवाल था।

जी हाँ, शर्मा जी, बहुत ही अय्याश किस्म का पुरुष है, हमारा पहला दामाद। रात को घर में लड़कियाँ लेकर आता है। हमारी बेटी ज़मीन पर सोती और उसी कमरे में वह गैर-लड़कियों के साथ रंगरेलियाँ करता है। कई बार उसने हमारी बेटी को सिगरेट से जला भी दिया था। सो हमने अपनी बेटी का उससे तलाक करवा दिया।"

मैं कमरे में खिड़की के पास बैठी दोनों की बातें सुन रही थी। अचानक ही मेरा हृदय कराह उठा - "तो फिर निम्मी, उसका क्या ?"

सारी रात मुझे निम्मी की फ़िक्र में नींद न आयी और मैं करवटें बदलती रही ।

अगले दिन दफ़्तर में भी मन कुछ उदास-सा रहा।

शाम को जब दफ़्तर से घर लौटी, प्रियंका दीदी की माँ मेरी माँ को बता रही थीं - "लड़का सॉफ़्टवेयर कंपनी में उच्च पद पर कार्यरत है, अपनी कार से दफ़्तर जाता है।"

करीब तेईस वर्ष पूर्व उस ज़माने में छोटे शहरों में अपनी कार से दफ़्तर जाना मतलब परिवार साधन संपन्न है। उन दिनों हर मध्यम वर्गीय परिवार एक छोटी-सी कार का सपना देखा किया करता था। मैं मन-ही-मन सोच रही थी कि इतने उच्च पद पर कार्यरत पुरुष को एक तलाकशुदा महिला से ब्याह करने का क्या सूझा। हमारे यहाँ तो किसी महिला पर यदि विधवा, तलाकशुदा और परित्यक्ता का तमगा लग जाता, तो मानो महिला ही अशुद्ध हो गई।

कुछ ही दिनों में प्रियंका दीदी का ब्याह हो गया और उड़ती-उड़ती खबर मिली कि उनके दूसरे पति के दो बच्चे हैं और एक बूढ़ी माँ है, जिनकी सेवा के लिए उन्हें घर में एक महिला की आवश्यकता थी। मैंने मन-ही-मन सोचा कि शायद उन्हें एक आया की आवश्यकता थी। इसीलिए प्रियंका दीदी को पत्नी का दर्जा देकर ब्याह कर ले गए थे।

खैर, यह तो दुनिया की रीत है, किंतु दीदी का ब्याह होने से मेरा मन निम्मी के लिए तड़प गया था। उफ़! अब तो वह बिन माँ की बच्ची रह गई, न जाने किस हाल में होगी वह। हज़ारों सवाल मेरे मस्तिष्क में कौंध गए थे। क्या निम्मी के पिता भी दूसरा ब्याह कर लेंगे ? क्या निम्मी की सौतेली माँ उसे सगी माँ-सा प्यार दे सकेगी ? क्या प्रियंका दीदी दूसरे बच्चों की परवरिश करेंगी, तो उनका मन निम्मी के लिए तड़प नहीं उठेगा ? क्या वह निम्मी को भुला देगी?

उफ़! बेचारी निम्मी ..... न जाने कितनी बार उसे याद कर मेरी आँखें छलछला आतीं ।

खैर, अब किया भी क्या जा सकता था। कुछ समय बाद मेरा भी ब्याह हो गया। करीब दो वर्ष बाद जब मैं गर्भवती हुई, तब सुंदर-सी बिटिया पाने की मुराद मन में उमड़-घुमड़कर आ बैठी। बिटिया की जब कभी कल्पना करती, तब मुझे निम्मी ही याद आती। उसकी मासूम-सी सूरत और शरारतें मेरी निगाहों के समक्ष घूम जातीं और इसी प्रकार नौ माह बीत गए। मेरी नवजात बिटिया मेरी बाहों में थी। मोती-सा रंग और सर पर काले गहरे बाल। मैंने उसी समय उसका नाम "पर्ल" रख दिया था।

पर्ल धीरे-धीरे बड़ी हो रही थी। मैं जब उसके बाल सँवारती वे घूमकर ऊपर उठ जाते। मन-ही-मन मैं सोचती - "काश! इसके बाल घुँघराले हों, मेरे पति के बाल घुँघराले और घने हैं, सो मन्नत मनाती कि इसके बाल उन पर जाएँ, मुझ पर नहीं"

हुआ भी वही, जब पर्ल पाँच वर्ष की हो गई, उसके बालों में घुँघराले बालों के छल्ले बन जाते। जब वह स्वयं अपने बाल आईने में देखती, तो कहती - "मेरे बाल नूडल्स जैसे हैं।"

अब पर्ल बीस वर्ष की है, लेकिन न जाने क्यों अब भी जब कभी पर्ल के बाल सुलझाती हूँ, अनायास ही निम्मी याद आ जाती है। बार-बार एक ही ख्याल मन को झिंझोड़ देता है - "बड़ी हो गई होगी वह, न जाने किस हाल में होगी, कैसे बीता होगा उसका बचपन, बिन माँ के या शायद उसकी ज़िंदगी भी उलझकर रह गई होगी", सोचते-सोचते अक्सर नम हो जाती हैं मेरी आँखें, जब याद आती है वह घुँघराले बालों वाली लड़की।

sgtarochika@gmail.com

अनाम शिल्पकारों की सजीव कृति – खजुराहो

डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प'
नई दिल्ली, भारत

पति-पत्नी भले ही दो विभिन्न संस्कारों, रहन-सहन एवं वातावरण में पले-बढ़े होते हैं, किंतु यदि उनकी रुचि में समानता हो, तो उनका जीवन आनंद का सागर बन जाता है। ऐसे ही हैं हम पति-पत्नी। हम दोनों ही पर्यटन के शौकीन हैं। यदि पर्यटन हमारे देश भारत की कला, संस्कृति, इतिहास और धर्म से संबंधित हो, तो हमारा आनंद द्विगुणित हो जाता है। पिछले 35 वर्षों में हमने भारत की सभी दिशाओं में अधिकांश स्थलों का भ्रमण किया। भारत अत्यंत विशाल देश है। अतः अब भी अनेक स्थलों का भ्रमण शेष है। इस बार हमने खजुराहो जाने का विचार किया।

भोपाल में हमारे एक मित्र 'शिव महापुराण' का नवाह्न पाठ कर रहे थे। उनके आमंत्रण एवं आग्रह के कारण हमने नई दिल्ली से भोपाल होते हुए खजुराहो जाने की योजना बनाई। अत्यंत सरलता से उपलब्ध गूगल-गुरु से खजुराहो के बारे में जानकारी प्राप्त की।

भोपाल से प्रातः 6:30 बजे रेलगाड़ी से हमने खजुराहो के लिए प्रस्थान किया। रास्ते भर गेहूँ के तैयार खेत, खलिहान, कुछ परती ज़मीन, गाँव का दृश्य और छोटे-बड़े स्टेशन देखते हुए दोपहर लगभग 12:30 बजे हम खजुराहो स्टेशन पहुँच गए। कहाँ दिल्ली का भीड़ भरा, शोर-शराबा, प्रदूषण और दौड़-भागवाला रेलवे स्टेशन और कहाँ स्वच्छ, शांत, सुकून भरा खजुराहो का रेलवे स्टेशन! स्टेशन के बाहर दूर-दूर तक शांति, प्राकृतिक वातावरण और निर्जन प्रदेश देखकर हम अचंभित हो गए - 'यहाँ कोई रहता भी है कि नहीं! न दुकान, न घर, न लोग! दिल्ली के रेलवे स्टेशन के बाहर तो....।' थोड़ा और बाहर जाने पर दो-तीन ऑटो रिक्शावाले दिखे। हम एक ऑटो से होटल की ओर चल पड़े। लगभग 2 किलोमीटर तक कोई बसावट नहीं थी, किंतु सफ़ेद पट्टी वाली काली चमचमाती हुई बिल्कुल साफ़ सड़क ने हमारा मन मोह लिया। आगे चलकर हमें कुछ प्रसिद्ध बड़े होटल दिखे। 4-5 किलोमीटर के बाद कुछ लोग तथा कुछ घर दिखने शुरू हुए।

हमने उसी ऑटो रिक्शा को दो दिनों तक के लिए बुक कर लिया। होटल में सामान रखकर आसपास के मंदिरों को देखने के लिए चल पड़े। ऑटो वाले ने हमें थोड़ी देर आराम कर लेने के लिए कहा, किंतु प्रेमी दंपति और मनोभिलाषित यात्रा- थकान किसे थी!

जब होटल से चले थे, तब खिली धूप थी, किंतु भोजनालय पहुँचते ही झमाझम बारिश होने लगी। "मंदिर देखने कैसे जाएँगे" यह प्रश्न मेरे मन में उठ ही रहा था कि 'मन के मीत' ने उसे भाँप लिया और दिलासा देते हुए कहा- "चिंता मत करो, मैडम! ईश्वर को तुम्हारी भावनाओं की कद्र है। भोजन करने के बाद बारिश रुक जाएगी।" वही हुआ। हम जब ऑटो में होते, तब खूब बारिश होती और जब किसी मंदिर के निकट पहुँचते, तब बारिश रूक जाती। ऐसा लग रहा था मानो बेमौसम बरसात ने किसानों की मेहनत पर पानी फेरने और हमारी यात्रा की पूर्णता में व्यवधान उत्पन्न करने की ठान ली थी, किंतु उन मंदिरों के अनाम शिल्पकारों की आत्मा उससे याचना कर रही थी-

"ठहर जा-ठहर जा मेघा, कला प्रेमी आनेवाले हैं,
पर्यटक ही नहीं ये, हमारी कद्र करने वाले हैं।"

भोजन करके हमने जावरी मंदिर, ब्रह्मा मंदिर, घंटाई मंदिर, आदिनाथ मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, दुलादेव मंदिर, चतुर्भुज मंदिर और मतंगेश्वर महादेव मंदिर देखा। ब्रह्मा मंदिर में एक बड़ा-सा शिवलिंग है, जिसमें चारों दिशाओं में चार मुख बने हुए हैं। संभवत: यह मंदिर शिवजी के चतुर्मुख से संबंधित हो, किंतु 'चतुर्मुख' ब्रह्मा जी के लिए रूढ़ हो जाने के कारण लोग इस मंदिर को ब्रह्मा मंदिर कहते हैं। चतुर्भुज मंदिर दक्षिण मुखी है। इस मंदिर में विष्णु जी की प्रतिमा स्थापित है। सूर्यास्त के समय ढलते सूर्य की किरणें विष्णु

जी के चरणों को स्पर्श करती हैं। मतंगेश्वर मंदिर में लगभग 3 फ़ीट घेरे वाला और 9 फ़ीट ऊँचा शिवलिंग है, जिसकी पूजा सदियों से हो रही है। वहाँ के पुजारी ने बताया कि यह शिवलिंग 9 फ़ीट धरती के नीचे भी है, अर्थात् जितना ऊपर है, उतना ही नीचे भी! इसके नीचे मणि होने की मान्यता है। हमने भी हाथ जोड़कर शिवजी की आराधना की और परिक्रमा की।

शाम होने लगी थी। हनुमान जी की पूजा करने की इच्छा थी, अतः हम हनुमान मंदिर गए। हनुमान जी के दर्शन कर आराधना की। फिर कुछ खा-पीकर 'ध्वनि एवं प्रकाश (लाइट एंड साउंड)' देखने के लिए गए। वहाँ अंग्रेज़ी भाषा में कार्यक्रम चल रहा था। उसके बाद हिंदी भाषा में कार्यक्रम होना था। अतः हमने वहीं पास में तालाब के किनारे कुछ समय व्यतीत किया। जिज्ञासु स्वभाववश हमने खजुराहो से संबंधित जानकारी वाली कुछ पुस्तकें खरीद लीं। 8:30 बजे के शो की टिकट लेकर अंदर गए। उस कार्यक्रम में खजुराहो के मंदिरों का इतिहास इतने रोचक ढंग से बताया गया कि सचमुच आनंद आ गया! जिज्ञासु एवं लेखक – प्रवृत्ति के कारण मैंने अँधेरे में भी कुछ बातें नोट कर लीं।

हम 10:30 बजे होटल पहुँचे। बैठे-बैठे छह घंटों की रेल-यात्रा और उसके बाद पूरा दिन कई-कई सीढ़ियाँ चढ़कर अनेक मंदिर जाना, हमारे शरीर को थका सकता था, किंतु जैसा मन; वैसा तन! हमारा मन तो अपार आनंद से आप्लावित था। ऐसे में थकान कहाँ! किंतु पिछले दिनों की थकावट शरीर में छिपी बैठी थी। खजुराहो के बारे में दिमाग में हलचल-सी मची थी। अतः नींद और जिज्ञासा के रण में जिज्ञासा की विजय हुई। मैं खरीदी हुई पुस्तकें पढ़ने लगी। गूगल-गुरु से, लोगों के मुख से, 'लाइट एंड साउंड' से, साक्षात दर्शन तथा पुस्तक में वर्णित जानकारी के आधार पर हमने दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में भारत के उत्कृष्ट शिल्पकला, वास्तुकला तथा आज के समान अत्याधुनिक जीवन-शैली और दर्शन के बारे में जाना। हमारा मन-मस्तिष्क मानो उसी काल में विचरने लगा। न जाने कब आँख लग गई। रात भर मैं उन्हीं मंदिरों में और उन्हीं पाषाण प्रतिमाओं के सजीव स्वरूपों के संग सानंद विचरण करती रही।

अगले दिन हम शेष मंदिरों को देखने के लिए चल पड़े। उनके लिए ऑनलाइन टिकट ली और गाइड के साथ वराह मंदिर, 64 योगिनी मंदिर, लक्ष्मण मंदिर, कंदरिया महादेव मंदिर, देवी जगदंबी मंदिर, चित्रगुप्त मंदिर और विश्वनाथ मंदिर देखे। साथ ही, गाइड हमारी जानकारी में वृद्धि करता रहा।

खजुराहो खजूर के सघन वन का प्रदेश था। चंदेल वंश के राजा चंद्रबर्मन ने वहाँ विजन में यज्ञ करवाया था, जिसके लिए अलग-अलग पचासी वेदियाँ बनवाईं। आगे चलकर उनके वंशजों ने उनपर मंदिर बनवाए और मंदिरों के पास बड़े-बड़े तालाब एवं बाग बनवाए। ये मंदिर चौकोर शिलाओं पर लगभग एक समान शैली— रथ शैली में निर्मित हैं। ये सभी ऊँची जगतियों पर पर्वतों के समान उत्तरोत्तर उन्नत होते हुए शिखरों से सुसज्जित हैं। मंदिर के अंदर अनेक देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ शिलाओं पर उकेरी गई हैं। प्रवेश द्वार पर शिलाओं से बन्दनवार बने हैं। 'गर्भ गृह' में मंदिर के देवता की प्रतिमा है। बाहरी दीवारों पर वास्तु के अनुसार दिशाओं के स्वामी देवता - अग्नि देव, वरुण देव, यम, कुबेर आदि तथा शिवजी, शिव परिवार, विष्णु जी, लक्ष्मी जी, सरस्वती जी आदि की पाषाण प्रतिमाएँ दिखती हैं। मंदिर पर कुदृष्टि न पड़े, इसलिए आयताकार और वर्गाकार शिलाओं पर मंदिर के चारों ओर एक पंक्ति में नजरौटा बनाया गया है। तत्कालीन जनजीवन; विशेषकर महिलाओं के विभिन्न रूप, क्रियाकलाप, वस्त्र-आभूषण अत्यंत सजीवता से उकेरे गए हैं। महिलाओं की प्रतिमाओं में उनके भाव स्पष्ट झलक रहे हैं। महिला सुबह अंगड़ाई ले रही है। प्रसन्न होकर माँग में सिन्दर लगा रही है। आँख में काजल लगा रही है, होंठों पर लाली लगा रही है। आइना देखकर शृंगार कर रही है, सामने उसका पति कुछ कह रहा है, संभवतः जल्दी करने के लिए कह रहा हो, अतः दूसरी प्रतिमा में महिला रूठी हुई है। कहीं बिल्कुल झीनी साड़ी; तो कहीं चूड़ीदार पजामी पहनी है। हाथ में कागज़–कलम लेकर प्रसन्न चित्त संभवतः पत्र लिख रही है। बच्चे को गोद में लेकर प्यार कर रही है। कहीं हाथ में आम के

गुच्छे लिए; तो कहीं तोता लिए है। एक प्रतिमा में महिला अपने पाँव में लगा काँटा निकाल रही है, काँटे की चुभन उसके मुख के भाव बता रहे हैं। दूसरी प्रतिमा में वैद्य उसके पाँव का इलाज कर रहे हैं। पुरुष और महिलाएँ वाद्य यंत्र बजा रहे हैं; नृत्य कर रहे हैं। पुरुष शिकार कर रहे हैं।

उन मंदिरों में कई दीवारों पर अन्य पाषाण-चित्रों के साथ-साथ एक अद्‌भुत चित्र देखा। उसमें घोड़े से मिलता-जुलता एक विचित्र प्राणी अपनी गर्दन घुमाए हुए था। उसके ऊपर एक युवक प्रसन्न मुद्रा में बैठा था और एक युवक नीचे की ओर उस पशु की पूँछ पकड़कर मानो खींच रहा था। उसके हाथ में तलवार जैसा हथियार था। हमें कुछ समझ नहीं आया। गाइड से पूछने पर उसने बताया कि यह कल्पित पशु मानव की इच्छाओं का प्रतीक है। उस पर बैठा व्यक्ति उससे खेल रहा है। इच्छाएँ उसे मोहित कर रही हैं और नीचे पूँछ खींचता हुआ तथा तलवार से वार करता हुआ व्यक्ति उसे अपने वश में करने का प्रयास कर रहा है। यह एक गूढ़ जीवन-दर्शन है। मानव-मन में अनेक इच्छाएँ होती हैं। आरंभ में वह उसके वश में होता है। वे इच्छाएँ मानव को अपने अनुसार खेल कराती हैं। दूसरे शब्दों में, आरंभ में मानव अपनी इच्छाओं के वशीभूत होकर उससे खेलता रहता है; उसी के अनुसार आचरण करता रहता है, किंतु ज्ञान प्राप्त करने के लिए तथा ज्ञान प्राप्त करने के बाद भी अपनी इच्छाओं को अपने वश में करने का प्रयास करता है। जो मानव इस प्रयास में सफल हो जाता है, वहीं श्रेष्ठ मानव बन जाता है। छोटे-से पाषाण-चित्र में कितनी बड़ी बात बताई गई है- गागर में सागर!

सचमुच तत्कालीन समाज प्रत्येक दृष्टि से कितना उन्नत था! सृष्टि एवं गृहस्थ जीवन के लिए 'काम' भी अत्यावश्यक है। अतः अनेक मंदिरों में कामशास्त्र के कुछ सामान्य; तो कुछ अद्‌भुत दृश्य शिला-खंडों पर दर्शाए गए हैं। इन दृश्यों को व्याख्याकार अनहद नाद, कुण्डलिनी जागृति, 'भोग से योग' आदि से जोड़ते हैं। जो भी हो, ये मंदिर अद्‌भुत कला, शिल्प एवं जीवन-शैली के प्रतीक हैं। नमन है, कभी न याद किए जाने वाले उन अद्‌भुत कुशल शिल्पकारों को!

दुख इस बात का है कि चंदेल राजाओं के शासन के बाद मुस्लिम आक्रमणकारियों की विनाशकारी प्रवृत्ति, कुछ नासमझ स्थानीय लोगों की काम-प्रदर्शक मूर्तियों के प्रति आक्रोश भावना तथा प्राकृतिक आपदाओं के कारण अनेक मंदिर पूर्णतः ध्वस्त हो गए और कई क्षतिग्रस्त। वर्षों तक देख-रेख न होने तथा पूर्णतः उपेक्षित रहने के कारण ये मंदिर घने वन से आच्छादित हो गए। भला हो, उस अंग्रेज़ का, जिसने 1835 में इन्हें ढूँढ निकला और पुनर्जीवित किया। 85 में से 22 मंदिर ही बच पाए, उनमें भी अनेक मंदिरों में छोटी-बड़ी प्रतिमाएँ तथा शिलाखंडों पर उकेरी गईं आकृतियाँ खंडित हैं या पूर्णतः ध्वस्त हैं। इतना ही नहीं, मुख्य देव-प्रतिमाओं को भी मानो बलात तोड़ा गया। पुरातत्व-विभाग की ओर से मरम्मत के नाम पर पूर्णतः ध्वस्त प्रतिमाओं वाले शिला खंडों के स्थान पर चिकने तथा चित्रविहीन शिलाखंड लगाए जा रहे हैं। कितना अच्छा हो, यदि आधुनिक तकनीक उस वास्तु-शिल्प को दोबारा वैसा ही बना दे!

अगले दिन 7 बजे शाम को हमें दिल्ली के लिए रवाना होना था। अतः सुबह हमने आदिवासियों के लिए प्राकृतिक रूप से निर्मित एवं कला संस्कृति के दर्शन कराता मध्य-प्रदेश के आदिवासियों के गाँव– 'आदिवर्त' को देखा। विपरीत दिशाओं में होते हुए भी 'रेनेफाल' तथा 'पांडव फाल' देखा। रेने फॉल संभवतः 'रेन फॉल' रहा होगा, क्योंकि वहाँ ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों से वर्षा का गिरता जल झरने की तरह लगता था। 'रेन फॉल' बोलचाल की भाषा में बिगड़कर 'रेनेफाल'हो गया। यहाँ भी हमने टिकट ली। हमें गाइड भी मिला। उसने बताया कि करोड़ों वर्ष पूर्व यहाँ ज्वालामुखी फटा था। उससे अनेक प्रकार के खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में निकले थे, जिसके बड़े-बड़े पहाड़ बन गए। हमने देखा कि वहाँ अलग-अलग रंगों की चट्टानें थीं। उनके नीचे से वर्षा का जल तथा केन नदी का जल मिलकर छोटी नदी का आकार लेकर बह रहा था। ऊँचाई से देखने में भय लग रहा था। हम वहाँ से लगभग 15-20 किलोमीटर दूर पांडव फॉल की ओर चल पड़े। हमारे पास समय कम था। अतः ऑटोवाला छोटे-छोटे गाँवों के बीच से ले जा रहा था। सब ओर खेत-खलिहान और कुछ गाय-भैंस

दिख रही थीं। कहीं-कहीं लोगों के छोटे-छोटे मकान दिख रहे थे। चारों ओर प्रदूषण मुक्त वातावरण था। जी करता था कि किसी बोरे में भरकर शुद्ध प्राणवायु ले जाएँ। दिल्ली में यह कहाँ नसीब होगा! बोरे में न सही, हमने सीने में भरपूर शुद्ध प्राणवायु भर लिया था। आश्चर्य, वहाँ भी चमचमाती चिकनी सड़कें थीं! हमारे पूछने पर ऑटोवाले ने बताया- "ये तो 'अटल योजना' के अंतर्गत बनाई गई सड़कें हैं। इनसे यहाँ के किसानों की तथा इनके साथ-साथ हमारी भी ज़िंदगी सुधर गई! आप तो दिल्ली से आए हैं। हमारी बात केंद्र सरकार तक पहुँचा दीजिएगा। पहली बार किसी ने हम गरीबों का ख्याल किया है। उनकी कृपा से हम बहुत खुश हैं।"

हम पांडव फ़ॉल पहुँचे। वहाँ भी टिकट ली। अंदर जाने पर बहुत नीचे की ओर हृदय के आकार का एक छोटा-सा प्राकृतिक तालाब दिखा। उसके एक ओर वहाँ तक पहुँचने की सीढ़ियाँ थीं। वहाँ से तालाब के दूसरी ओर जाने का रास्ता था। सीढ़ियों के पास ही एक झरना था। दूसरी ओर बहुत ही छोट-छोटे कमरे की तरह कुछ गुफाएँ थीं। वहाँ कई गाइड थे। उन्होंने बताया कि अज्ञातवास के दौरान पांडव कुछ दिनों तक इन्हीं गुफ़ाओं में रहे थे। उस तालाब में पहाड़ों से झरनों की तरह लगातार पानी गिरता रहता है, इसीलिए इसे 'पांडव फ़ॉल' कहते हैं। यह पानी कहाँ से आता है और तालाब से होकर कहाँ जाता है, किसी को मालूम नहीं। पांडवों के कष्टमय जीवन को याद करके हमारा मन पीड़ा से भर गया।

पाँच बज गए थे। अब हमें वापसी की रेलगाड़ी पकड़ने की चिंता होने लगी। यात्रा समाप्त हो चुकी थी। अतः ऑटोवाले ने तेज़ी से शॉर्टकट रास्ते से हमें समय से रेलवे स्टेशन पहुँचा दिया। हमने अपनी वापसी की यात्रा आरंभ कर दी। मैं मन-ही-मन बार-बार उन अज्ञात-अनाम शिल्पकारों के प्रति नतमस्तक हो रही थी तथा जी-20 के बहाने ही सही इस विश्व-धरोहर के तथा इस लघु-प्रदेश के पुनरुथान के लिए केंद्र सरकार तथा मध्य-प्रदेश सरकार के प्रति आभार व्यक्त कर रही थी।

sudhapushp@gmail.com

लुम्बिनी यात्रा

स्नेह लता
उत्तर प्रदेश, भारत

मानवता के सबसे बड़े समर्थक देश-विदेश की सीमाओं से परे सत्य, अहिंसा, प्रेम के अग्रदूत महात्मा बुद्ध विश्व के सर्वाधिक पूजनीय ईश्वर के अवतार की जन्मस्थली लुम्बिनी देखने की प्रबल इच्छा थी। लुम्बिनी, जहाँ प्रत्येक वर्ष विश्व से लगभग 45 लाख यात्री दर्शन करने आते हैं। हमारे लिए सबसे सुखद संयोग था कि नेपाल हमारा पड़ोसी राष्ट्र है, जिसमें न आने-जाने का कोई प्रतिबंध, नाही आवागमन की कोई कठिनाई। कई बार विचार किया था पर प्रोग्राम बनते-बनते भी अचानक कार्यान्वित नहीं हो सका पर अबकी बार हमने दृढ़ निश्चय किया कि चाहे कुछ भी हो लुम्बिनी अवश्य जाएँगे, हाँ इसके लिए हमने पहले से कोई तैयारी नहीं की। बस प्रोग्राम की रूप-रेखा अवश्य बना ली।

दिनांक 07.11.14 को मैं, मेरे पतिदेव श्री रविकुमार शर्मा, मेरी सहेली लवली, उसकी मम्मी चारों लोग लोकमान्यतिलक-गोरखपुर एक्सप्रेस से दोपहर 12 बजे चलकर शाम 5.30 पर गोरखपुर पहुँच गए। गोरखपुर में हम लोग रेलवे स्टेशन पर बने अधिकारी विश्रामालय में रुके। नवंबर का महीना शाम जल्दी हो जाती है, पर हमने कमरों में सामान रखकर गोरखनाथ मंदिर के दर्शन का विचार किया। गोरखपुर स्टेशन जहाँ भारत का सबसे बड़ा प्लेटफ़ॉर्म है, बहुत-सी महत्त्वपूर्ण ट्रेनें, लगभग हर दिशा को यहाँ से जाती हैं। इस तरह से यह देश के सभी भागों से रेलमार्ग द्वारा जुड़ा हुआ है। स्टेशन के बाहर भी मेले जैसा माहौल था लोग प्लेटफ़ॉर्म पर ही अपने सामान रखकर लेटे बैठे थे।

स्टेशन से बाहर निकलकर हमने आटो रिक्शा किया। बाबा गोरखनाथ के दर्शन करने गए। बाबा गोरखनाथ का

मंदिर स्टेशन से लगभग 10 किमी० दूर है। गोरखपुर शहर पूर्व का महत्त्वपूर्ण शहर है, पर यह देखकर घोर निराशा हुई कि शहर में जगह-जगह कचरे के ढेर लगे थे। न ट्रैफ़िक की व्यवस्था, नाही सफ़ाई का इंतज़ाम। गोरखनाथ बाबा के मंदिर के भव्य प्रवेश द्वार पार करके हम गोरखनाथ मंदिर की ओर चले। रास्ते में दोनों ओर दुकानें सजी हुई थीं, जिनमें पूजा तथा मेले जैसी चीज़ें मिल रही थीं। यहाँ के परिसर में पूर्ण स्वच्छता थी, जिसे देखकर अच्छा लगा। मंदिर के अंदर जाकर बाबा गोरखनाथ के दर्शन किए। बड़ा सुहावना मौसम था। पास ही बनी छोटी झील में बच्चे बड़े बोटिंग कर रहे थे। मंदिर के अंदर बाबा गोरखनाथ के अलावा अन्य पूर्ववर्ती गुरुओं की भी लगभग साठ सत्तर मूर्तियाँ बड़े से हॉल में लगी थीं। श्रद्धा मंडप तो पुराने ज़माने में राजा के दरबार जैसा ही लगभग था, जिसके बीच में हॉल था। तीन तरफ़ ऋषि-मुनियों की आदमकद बैठी हुई मूर्तियाँ लगी थीं और सामने एक बड़ा-सा मंच था।

एक घंटे रूककर वापस स्टेशन आ गए। स्टेशन के सामने ही ट्रैवल एजेंसी वालों की दुकानें थीं। वहीं से हमने अगले दिन के लिए लुम्बिनी जाने के लिए टैक्सी बुक की। ट्रैवल एजेंसी वाले ने बताया कि लुम्बिनी यूँ तो नेपाल में पड़ता है, परंतु वहाँ जाने के किसी भी प्रकार के वीज़ा पासपोर्ट की आवश्यकता नहीं होती। भारत और नेपाल दोनों की सीमाएँ थलमार्ग से जुड़ी हुई हैं, दोनों की भौगोलिक परिस्थितियाँ भी लगभग एक जैसी हैं, इसलिए जैसा मौसम गोरखपुर भारत में, लगभग वैसा ही मौसम नेपाल के बार्डर पर रहता है।

यूँ तो गोरखपुर से 95 किमी० सोनौली बार्डर पड़ता है, जिसे पार करके नेपाल के भैरहवाँ शहर में प्रवेश करते हैं। भैरहवाँ से 25 किमी० दूर लुम्बिनी है, पर ट्रैवल एजेंसी वाले ने कहा कि उसे टैक्सी का टोल ही बहुत ज्यादा देना पड़ता है, आने-जाने में लगभग 10 घंटे लगते हैं। इस हिसाब से इंडिगो टैक्सी उसने रू० 4500 में बुक की। अपना कार्ड देकर कहा कि टैक्सी ड्राइवर सुबह सात बजे तक आपके पास पहुँच जाएगा।

स्टेशन के सामने ही बाज़ार था, जिसमें खाने-पीने के होटल से लेकर ठहरने तक की व्यवस्था थी। टैक्सी बुक कराकर हम स्टेशन पर बने अपने रैस्ट हाउस में वापस आ गए। सुबह 6.30 बजे रैस्ट हाउस के सामने की खुली छत से उगता हुआ सूरज बहुत ही सुंदर लग रहा था। छत से रेल की पटरियाँ और उस पर दौड़ता हाई टेंशन का तार सब कुछ सूरज की रोशनी में नहाए लग रहे थे। नाश्ता करके हम सुबह सात बजे टैक्सी से सोनौली के बार्डर की तरफ़ चले।

सड़क ज्यादा अच्छी नहीं थी। यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि यहाँ सड़कें बन नहीं पातीं, टूटने पहले लगती हैं। रास्ते में कुछ छोटे-छोटे गाँव और कस्बे पड़े। लगभग 2.30 घंटे बाद हम लोग सोनौली बार्डर पहुँचे। सोनौली बार्डर पर एक बहुत बड़ा-सा गेट लगा था, जिसपर भारत का तिरंगा लहरा रहा था। बीच में सड़क थी, उसको पार करके दूसरी ओर गेट बना था, जिस पर स्वागतम् नेपाल का झंडा लहरा रहा था। नेपाल के चेक पोस्ट पर नेपाल की पुलिस तैनात थी। चूँकि नेपाल और भारत मित्र राष्ट्र हैं, इसलिए किसी प्रकार का वीज़ा या पासपोर्ट नहीं माँगा गया। टैक्सी वाले ने टैक्सी एक किनारे खड़ी कर दी। वह कुछ परमिट वगैरा लेने चला गया। हम लोग नीचे उतरकर फ़ोटो खींचने लगे। पास ही बने एक छोटे से होटल में बैठकर चाय पीने लगे। लवली को बहुत अच्छा लग रहा था। यह उसके लिए विदेश-यात्रा का पहला अनुभव था। यूँ तो हम नेपाल को विदेश नहीं मानते पर कुछ भी कहें, वह एक अलग देश तो है ही। यह अलग बात है कि हमारी बोली, खान-पान, रहन-सहन सब एक जैसे हैं। यहाँ तक की नेपाली लिपि भी देवनागरी लिपि जैसी ही है। इसके काफ़ी अक्षर मिलते-जुलते हैं।

लगभग आधे घंटे बाद हम लुम्बिनी की ओर चले। लुम्बिनी भैरहवाँ से 25 कि०मी० दूर है। सड़क के दोनों ओर खेत थे, जिनमें मक्के की फ़सल खड़ी थी। छोटे-छोटे गाँव, जिनमें घर बिल्कुल हमारे गाँव के घर जैसे ही थे, बस एक बात खास थी कि यहाँ साफ़-सफ़ाई बहुत थी। सड़क साफ़-सुथरीं, घर के आसपास सड़क पर कहीं भी कूड़े के ढेर नहीं थे। हमारे टैक्सी वाले ने बताया कि यदि आप यहाँ कूड़ा इधर-उधर फ़ेकेंगे, तो यहाँ के लोग लड़ जाएँगे। कूड़ा कूड़ेदान में

ही डालिए, कूड़ेदान जगह-जगह रखे थे। यह देखकर बहुत अच्छा लगा और यह सोचकर बहुत कष्ट हुआ तथा शर्मिन्दगी भी हुई कि हमारे देश में सफ़ाई की तरफ़ ध्यान क्यों नहीं दिया जाता? क्यों लोग सड़क को घर की तरह साफ़ नहीं रखते?

किसी को कूड़ा फैलाते देखकर कब यह कहना सीखेंगे कि कृपया कूड़ा कूडेदान में डालिए। यही एक चीज़ ऐसी है, जो हमारे देश को शर्मिन्दा करती है। भारत के किसी भी शहर में चले जाइए, पॉलीथीन का कचरा, कूड़े के ढेर और पान की पीक हमारी सभ्यता के ऊपर बदनुमा दाग हैं। मैंने मन-ही-मन प्रार्थना की कि हे प्रभु हमारे देशवासियों को सद्‌बुद्धि दो, जिससे वे एक स्वच्छ भारत का निर्माण कर सकें।

लगभग साढ़े ग्यारह बजे हम लुम्बिनी पहुँच गए। बहुत अच्छा लग रहा था कि आज हम उस पवित्र धरती पर कदम रख रहे हैं, जहाँ लगभग ढाई हज़ार वर्ष पहले लुम्बिनी के जंगलों में एक ऐसे बालक का जन्म हुआ, जिसने जाति-पांति, धर्म, मज़हब, देश, विदेश की सीमाएँ लाँघकर मानव-धर्म को संसार में फैला दिया।

एक बड़ा-सा पार्किंग स्टैन्ड था, जिसमें नेपाल के विभिन्न शहरों से आई बसें तथा भारत से आई बसें, टैक्सी और कारें खड़ी थीं। बहुत सारे लोग तथा बच्चे थे, जो अपने स्कूल की तरफ़ से आए हुए थे। रंग-बिरंगे परिधान और अलग-अलग बोलियाँ, मगर उद्देश्य एक - अपने प्रभु के जन्म-स्थान के दर्शन का।

पार्किंग-स्थल पर बहुत से रिक्शे खड़े हुए थे। उन्होंने हमसे लुम्बिनी घुमाने के लिए कहा। मैंने कहा लुम्बिनी तो पास ही है, वहाँ जाने का क्या लोगे। रिक्शे वाला बोला 200 रुपए आई. सी (इंडियन करेंसी)। हमें आश्चर्य हुआ, इतनी पास के दो सौ रुपए। उसने बताया कि यहाँ पर लगभग बारह मंदिर हैं, जो काफ़ी दूर-दूर बने हैं, जिन्हें देखने में कम-से-कम दो से तीन घंटे लगते हैं। पूरा चक्कर लगभग पाँच किलोमीटर का पड़ता है। मेरे पतिदेव के पैरों में काफ़ी तकलीफ रहती है, खुद पाँच-छह किलोमीटर चलना हमें कठिन लगा, यही सोचकर हमने दो रिक्शे कर लिए। एक पर मैं और मेरे पतिदेव तथा दूसरे पर लवली और उसकी मम्मी बैठीं। पास में ही एक मार्केट पड़ा, जिसमें गौतम बुद्ध की तरह-तरह की मूर्तियाँ, फ़ोटो, मालाएँ, लॉफिंग बुद्धा वगैरा मिल रही थीं। वहीं अन्दर जाने के लिए टिकट खरीदना था। टिकट-घर पर जो रेट लिखे थे, उसमें अलग-अलग रेट थे- नेपाली 5 रु०, भारतीय 16 रु०, बंग्लादेश, भूटान, म्यांमार 100 रु०, पाकिस्तान, चीन 200 रु० आदि।

टिकट लेकर जैसे ही हम आगे बढ़े, सबसे पहले हमें एक बहुत बड़ी-सी लाल रंग की ईटों से बनी बिल्डिंग दिखाई दी, जिसका नाम था लुम्बिनी इंटरनेशनल रिसर्च इंस्टीट्यूट तथा म्यूज़ियम, इसमें गौतम बुद्ध के जीवन से संबंधित तरह-तरह की चीज़ें तथा दस्तावेज़ रखे हुए थे।

सड़क साफ़-सुथरी थी। हमारे साथ-साथ विभिन्न स्कूलों के बहुत सारे बच्चे थे, जो बड़े उमंग और उत्साह से आगे बढ़े जा रहे थे, पर हम लोगों में इतनी शक्ति नहीं थी कि पैदल चल सकें, इसलिए रिक्शे पर बैठे थे। रिक्शे वाला हमको जंगल के बीचों-बीच के कच्चे रास्ते से होते हुए मंदिर दिखाने के लिए जा रहे थे। बड़ा सुरम्य वातावरण था। ऊँचे-ऊँचे साल के वृक्ष थे और शांतिपूर्ण वातावरण था।

लुम्बिनी का अर्थ है - सुंदर। लुम्बिनी नेपाल के रूपनडीहा ज़िले में है। इतिहास के अनुसार बुद्ध के समय में लुम्बिनी कपिलवस्तु और देवदह के बीच में स्थित थी। यहाँ पर शाक्यवंश के राजा राज्य करते थे। लुम्बिनी वह स्थान है, जहाँ 623 ईसा पूर्व में गौतम बुद्ध का जन्म हुआ, जिन्हें लगभग 543 ईसा पूर्व में निर्वाण प्राप्त हुआ एवं ज्ञान की प्राप्ति हुई। उन्होंने बौद्ध धर्म की स्थापना की, जिसके द्वारा शांति के संदेश को बर्मा, चीन, जापान, मलाया, सिंगापुर, सुमात्रा, बोर्नियो, श्री लंका आदि देशों में फैलाया गया। इन देशों के अनुयायी प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में लुम्बिनी आते हैं।

लुम्बिनी में गौतम बुद्ध के जन्म की एक कथा प्रचलित है। लगभग ढाई हज़ार वर्ष पूर्व कपिलवस्तु में शाक्य राजा शुद्धोधन राज्य करते थे। इनकी गर्भवती पत्नी मायादेवी देवदह अपने मायके जा रही थीं। लुम्बिनी हिमालय के तराई क्षेत्र में है, जहाँ साल वृक्ष के हरे-भरे जंगल थे। 642 ईसा पूर्व

पूर्णिमा का दिन था। चारों ओर चाँदनी फैली थी। चारों ओर जंगल की असीम शांति थी। रानी चाँद के सौंदर्य को देखकर अभिभूत थीं। उसी समय उन्हें प्रसव पीड़ा हुई, उन्होंने पास ही साल वृक्ष की झुकी हुई टहनी को पकड़ लिया। उसी समय उनके एक सुंदर पुत्र का जन्म हुआ, जो संसार में गौतम बुद्ध के नाम से विख्यात हुआ।

कहते हैं सन् 249 ई पू० सम्राट अशोक लुम्बिनी आए। उन्होंने गौतम बुद्ध के जन्म-स्थान के पास ही चार स्तूप तथा एक पत्थर का स्तंभ लगवाया। स्तंभ के ऊपर यह अंकित करवाया कि देवताओं का प्रिय सम्राट अशोक अपने राज्याभिषेक के 20वें वर्ष में यहाँ आया। इस स्थान पर बुद्ध शाक्य मुनि का जन्म हुआ था।

वर्षों तक लुम्बिनी इतिहास की पर्तों में रहा। 1895 में फुहेए नामक एक पुरातत्व अन्वेषी ने धूरिया रनेज की तराई में घूमते समय एक बहुत बड़ा स्तंभ देखा। जब आसपास की खुदाई कराई, तब वहाँ ईटों का मंदिर तथा चूने पत्थर से निर्मित भग्नावशेषों को देखा, जिनके आधार पर बुद्ध के जन्म के सही स्थान की खोज तथा पुष्टि हुई। यूनेस्को ने लुम्बिनी को सन् 1997 में विश्व धरोहर का दर्जा दिया।

वर्तमान में गौतम बुद्ध की जन्म-स्थली लुम्बिनी 48 कि०मी० लम्बे तथा 1.6 कि०मी० चौड़ाई के विस्तृत दायरे में फैली है। इस चाहरदीवारी में केवल गौतम बुद्ध तीर्थ मठ (मोनैस्ट्री) ही बनाए जा सकते हैं। यहाँ किसी प्रकार की कोई दुकानें, होटल या रेस्टोरेन्ट नहीं बनाए जा सकते। इसके पूर्व के हिस्से में हीनयान बौद्ध मठ तथा पश्चिमी हिस्से में महायान तथा बज्रयान मठ बने हैं।

लुम्बिनी का सफ़ेद द्वार बहुत ही सुंदर गोलाकार आकृति में बना है। ऊपर दो सुंदर आँखें तथा शंकु के आकार का कलश है। द्वार पर बड़े सफ़ेद सुंदर अक्षरों में लिखा है -

लुम्बिनी विश्वशांति की मुहान

तथा दूसरे आधे हिस्से में लिखा है

लुम्बिनी : द फाउंटेन ऑफ़ वर्ल्ड पीस

फाटक के अंदर घुसते ही चौड़ी साफ़-सुथरी सड़क थी, जिसके दोनों ओर हरे-भरे पेड़ लगे थे। यह सीधी सड़क लगभग एक कि०मी० तक जाकर बुद्ध के जन्म-स्थली मायादेवी मंदिर तक जाती है। सड़क के बीचों-बीच में एक नहर जैसी बनी थी, जिसमें दो-तीन नावें भी पड़ी थीं, जिनमें बैठकर नहर के दोनों ओर बोटिंग की जा सकती थी। सड़क पर लाल रंग का सैंड स्टोन बिछा था। दोनों तरफ़ पेड़ों की हरियाली वातावरण में असीम सुख-शांति दे रही थी। इन सड़कों के दोनों ओर काफ़ी दूर-दूर विभिन्न देशों की बुद्ध मौनेस्ट्री बनी थीं। एक बहुत बड़ा घंटा लगा था तथा सड़क जहाँ पर समाप्त हुई, वहाँ एक बड़ा-सा चबूतरा बना था, जिस पर बड़े से पात्र में अमर शांति ज्योति जल रही थी। यह अमर शांति ज्योति 'यूनाइटेड नेशन्स के मुख्यालय न्यूयॉर्क' से विश्व शान्ति वर्ष 1986 में यहाँ लाई गई थी, तब से अब तक यह निरंतर प्रज्जवलित है।

गेट से घुसकर जैसे ही हम कुछ दूर चले, तभी किनारे बने कच्चे रास्ते पर चलने लगे, क्योंकि सभी मोनैस्ट्री सड़क के दाएँ-बाएँ किनारे पर बनी हैं। सबसे पहले एक बहुत बड़ा घेरा दिखाई पड़ा। रिक्शे वाला बड़े आराम से हमें वहाँ के बारे में बताता चल रहा था। उसने बताया कि यहाँ पर लगभग बीस से अधिक विभिन्न देशों की मोनैस्ट्री बनी हैं, जिनमें से कई में अभी निर्माण-कार्य चल रहा है। म्यांमार गोल्ड टैम्पल 1993 में बनकर तैयार हुआ। पीले और लाल रंग से पुते मंदिर में बौद्ध के जीवन से संबंधित चारों द्वारों पर मूर्तियाँ लगाई गई हैं। यह मोनैस्ट्री 1993 में बनकर तैयार हुई। नेपाल नन्स टैम्पी 1994 में बना। इसमें बुद्ध के जीवन-चरित्र को पेन्टिंस के रूप में दीवारों पर बनाया गया है। महाबोधि सोसायटी ऑफ़ इंडिया 1994 में बनकर तैयार हुआ।

भारत का नाम सुनते ही हमारे मन में अजीब उत्सुकता जागी। भारत द्वारा बनाया गया मंदिर ऐसा लग रहा था, जैसे बगीचे के बीच में कोई शांति दूत बैठा हो। सीढ़ियों से ऊपर चढ़कर मंदिर में बीचों-बीच में शांत मुद्रा में बैठी हुई बुद्ध की प्रतिमा तथा दीवारों पर चित्र अंकित थे। गहरे हरे रंग में कम्बोडिया की मोनैस्ट्री बन रही थी। म्यांमार द्वारा बनाया गया पंडित राना विपश्यना ध्यान-केन्द्र था, जो 1999 में बना था। सफ़ेद रंग की थाई रॉयल मौनेस्ट्री बहुत सुन्दर

थी। स्वयंभू महाचैत्य नेपाल काफ़ी बन चुका था, फिर भी अभी वह और बन रहा था तथा खोला नहीं गया था। कोरियन महाबोधि सोसायटी मौनेस्ट्री कोरिया भी हरे रंग के पत्थर से भव्य स्वरूप में बनाई जा रही थी।

इसी प्रकार बहुत-सी मौनेस्ट्री को देखते हुए हम एक ऊँचे सुंदर चबूतरे पर पहुँचे। चबूतरे के बीचों-बीच एक सुंदर घेरा बनाकर सुनहरे रंग से निर्मित एक खड़े हुए बुद्ध की प्रतिमा बनी थी। बहुत सुंदर दृश्य था। चबूतरे से उतरकर हम लोग सुंदर चौड़ी साफ़-सुथरी सड़क पर आगे बढ़े। इसी सड़क से सीधे मायादेवी टैम्पल जाते हैं, जोकि गौतम बुद्ध की असली जन्मस्थली है। सड़क के दोनों ओर दूर-दूर तक जंगल फैला था, जिसमें तरह-तरह के पेड़ लगे थे। इन जंगलों में हिरन भी रहते हैं। तालाब में कमल के फूल खिले थे। सड़क के दोनों ओर फूल लगे थे। बड़ा शांत रमणीय वातावरण था। विभिन्न देशों से आए हुए बच्चे, बड़े, स्त्री-पुरूष बड़ी प्रसन्न मुद्रा में दिखाई पड़ रहे थे। लगभग 200 मीटर चलने के बाद घास के बहुत बड़े-बड़े लॉन थे, जिनमें फूल खिले थे। इन्हीं के बीचों-बीच सफ़ेद रंग से पुता हुआ एक दो मंज़िला घर जैसा बना था, वहीं मायादेवी टैम्पल था।

मायादेवी टैम्पल की बाई ओर घास के बड़े-बड़े कार्पेट जैसे बिछे सुंदर लॉन थे, जिनके बीचों-बीच में चार स्तूप बने थे। स्तूप के अवशेष बाकी थे। लाइन बनाकर सभी लोग दरवाज़े से मायादेवी टैम्पल जा रहे थे।

मायादेवी टैम्पल में एक ऊँची रेलिंग बनाकर पटरे जैसे लगाकर रास्ता बनाया गया था, जिसपर चलकर सभी लोग शांति से बुद्ध की असली जन्मस्थली देखने जा रहे थे। पटरों के नीचे ककइया ईंट की बनी प्राचीन काल की एक इमारत जैसी दिखाई दे रही थी, जिसके अवशेष खंडहरों को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ पर कभी भव्य इमारत रही होगी। नीचे काफ़ी रुपए, डॉलर, नोट आदि पड़े थे, जिन्हें श्रद्धालुओं ने चढ़ाया होगा। मंदिर के अन्दर बहुत भीड़ थी। धीरे-धीरे करके हम लोग उस स्थान पर पहुँचे जहाँ से झाँकने पर शीशे के अन्दर पवित्र पत्थर रखा था। कहा जाता है कि इसी स्थान पर गौतम बुद्ध पैदा हुए थे। पीछे पुरानी दीवार पर एक पुरुष-स्त्री की नृत्य मुद्रा की आकृति बनी थी, जो काफ़ी टूट चुकी थी। बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए इस जगह के दर्शन करना साक्षात प्रभु के दर्शन करने जैसा है। इसीलिए प्रतिवर्ष यहाँ विश्वभर से साढ़े चार लाख श्रद्धालु आते हैं। विभिन्न स्कूलों के बच्चे यहाँ आए हुए थे। वे पिकनिक का पूरा आनन्द उठा रहे थे।

जैसे ही मायादेवी टैम्पल से हम लोग बाहर आए, वहाँ एक सुंदर-सा पक्की ईंटों से घिरा सीढ़ीदार तालाब था। पास ही एक बड़ा-सा वृक्ष था, जिसे बोधिवृक्ष कहते हैं। चारों तरफ़ रंग-बिरंगी झंड़ियाँ बँधी हुईं थीं। लोग तालाब के किनारे बैठे थे। फ़ोटो खिंचवा रहे थे। कुछ लोग थोड़ी दूर बैठकर झुंड बनाकर खाना भी खा रहे थे। वे लोग अपने घर से शायद खाना बनाकर लाए थे, क्योंकि इस पूरे परिक्षेत्र में किसी भी प्रकार की कोई दुकान, होटल, रेस्टोरेन्ट आदि प्रतिबन्धित है।

कहा जाता है कि यहीं वह तालाब है, जहाँ गौतम बुद्ध को जन्म के समय नहलाया गया था। इस तालाब का नाम पुष्पकरिणी है। तालाब से हटकर दूर-दूर तक घास के मैदान जंगल जैसे नज़र आ रहे थे।

मंदिर के बाहर जन्म के पवित्र पत्थर की दिशा में एक बड़ा ऊँचा स्तंभ लगा हुआ था। इसे अशोक स्तंभ कहते हैं। 249 ई० पू० में सम्राट अशोक यहाँ आया। उसने यह स्तंभ लगवाया, जिसके ऊपर उसके यहाँ आने की तिथि खुदी है। अशोक स्तंभ को चारों ओर से लोहे की जाली लगाकर घेरा हुआ था। पास ही एक दीप स्तंभ था, जहाँ लोगों ने श्रद्धा स्वरूप अगरबत्तियाँ तथा दीये जला रखे थे।

बहुत दूर तक लॉन तथा जंगल फैला हुआ था। उस समय उस स्थान पर कम-से-कम पाँच हज़ार श्रद्धालु उपस्थित थे। तीन घंटे रुककर हम वापस उसी नहर के किनारे-किनारे चलकर और बाईं ओर की सड़क के किनारे चलकर लुम्बिनी टैक्सी स्टैन्ड वापस आने लगे। रास्ते में चीन मौनेस्ट्री, जर्मन मौनेस्ट्री, ऑस्ट्रिया मौनेस्ट्री, फ्रांस मौनेस्ट्री, वियतनाम टैम्पल आदि थीं, जिनमें कम्बोडिया मौनेस्ट्री, स्वयंभू महाचैत्य नेपाल मौनेस्ट्री, कोरियन महाबोधि सोसाइटी मौनेस्ट्री, गेडेन इन्टरनेशनल टैम्पल ऑस्ट्रिया वियतनाम टैम्पल वियतनाम,

यूनाइटेड ट्रनग्राम बुद्ध टैम्पल नेपाल और लिन्ह सोन मौनेस्ट्री फ़्रांस, निर्माणाधीन थीं। इनमें तेज़ी से काम चल रहा था।

सड़कों के किनारे साल के वृक्षों से भरा जंगल था, जिसमें चिड़ियों के चहकने की आवाज़ें आ रही थीं। संपूर्ण दृश्य मनोरम था। कुछ ही देर में हम वापस टैक्सी स्टैंड तक आ गए। टैक्सी स्टैंड पहुँचकर, हमने वहाँ पर सजी-धजी दुकानें देखीं। वहाँ की दुकानों से हमने बुद्ध की मूर्ति, फ़ोटो पिक्चर, मालाएँ, खिलौने आदि खरीदे। दोपहर के तीन बज रहे थे। लगभग एक घंटे में वापस भैरहवाँ पहुँच गए ।

भैरहवाँ नेपाल का एक छोटा-सा साफ़-सुन्दर शहर है। भारत की सीमा से सटा होने के कारण यहाँ वर्ष भर टूरिस्ट का आना-जाना लगा रहता है। बाज़ार साफ़-सुथरा और सजा-धजा था, मगर उस दिन वहाँ साप्ताहिक बंदी होने के कारण आधी दुकानें बंद थीं। जो कुछ दुकानें खुली हुईं थीं, उन्हीं से हमने तीन - चार कम्बल, बच्चों के लिए जैकेट, खिलौने आदि खरीदे। वहाँ पर खरीदारी करना बड़ा अच्छा लग रहा था, क्योंकि नेपाल ही एक ऐसा देश है, जहाँ पर हमारा 1 रु. नेपाल के 1.25 रु. के लगभग बराबर है। इसलिए शापिंग का असली मज़ा भी यहीं है। नेपाल हमारा पड़ोसी देश है। वहाँ की भाषा, संस्कृति हमारे जैसी ही है। वहाँ के लोग भारतीयों का बहुत सम्मान करते हैं।

शाम होने लगी थी। हमें वापस लौटना भी था। रात के 10.30 बजे हम लोग वापस गोरखपुर रेलवे रैस्ट हाउस पहुँच गए। अगले दिन सुबह ट्रेन पकड़कर हम शाम तक लखनऊ अपने घर पहुँच गए। बड़ी प्रसन्नता थी कि हमने उस पुण्य भूमि के दर्शन किए, जहाँ एक ऐसी महान् विभूति का जन्म हुआ, जिसे विश्व ने शान्ति दूत के रूप में मान दिया।

sneh9july@gmail.com

विश्व हिंदी यज्ञ में मेरी पहली आहुति

सुरेश कुमार श्रीचंदानी
अजमेर, भारत

जुलाई 1999 में मीटरगेज रेल गाड़ी अजमेर-काचीगुड़ा से मेरी यात्रा रतलाम से इन्दौर के बीच चल रही थी। सुबह के नित्य कर्म सम्पन्न कर लेने के बाद जब मैं अपने आसन पर आकर बैठा था, तब मेरी दृष्टि राजस्थान पत्रिका में छपे इस समाचार पर ठहर गयी कि 14 से 18 सितंबर ब्रिटेन में छठे विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन होगा। विदेश मंत्रालय, भारत सरकार के हवाले से दिया गया समाचार यह था कि हिंदी समिति यू. के., गीतांजलि बहुभाषिक साहित्यक समुदाय, बर्मिंघम और भारतीय भाषा संगम, यॉर्क के सौजन्य से छठे विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया जाएगा। इस सम्मेलन का बोध वाक्य 'हिंदी एवं भावी पीढ़ी' है। इस समाचार ने मुझे इतना गम्भीर बना दिया कि मैं इस सम्मेलन में उपस्थिति देने के सकारात्मक और नकारात्मक बिन्दुओं पर विचार करने लग गया। भारत सरकार की सार्वजनिक बीमा कम्पनी 'दी ओरिएण्टल इंश्योरेंस' में हिंदी अनुवादक पद पर कार्य करते हुए मेरा 12वाँ वर्ष चल रहा था, जिससे राजभाषा हिंदी के प्रति मेरी निष्ठा और समर्पण-भाव की नींव मज़बूत हो चली थी। मैंने ऐसे ही समाचार चौथे और पाँचवें विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन के बारे क्रमशः 1993 और 1996 में भी जाने थे, जिनमें भाग नहीं ले पाने का खेद मुझे कई बार होता रहा और इस अवसर को नहीं चूकने की मेरी चाहत मेरे मन में ज़ोर मार रही थी। जब मैंने यह जाना कि यह सम्मेलन 14 सितंबर 1999 को हिंदी को राजभाषा बनाने के 50 वें वर्ष होने के कारण आयोजित किया जा रहा है, तब ऐसे ऐतिहासिक अवसर का साक्षी बनने की मेरी चाहत का पुनर्बलन भी होने लग गया। उसके बाद मैंने वहाँ पर मेरी ओर से पढ़े जाने वाले आलेख रचने की तैयारी आरम्भ कर दी तथा मेरे गन्तव्य स्थान अकोला (महाराष्ट्र) आने के पूर्व ही

मैंने उसकी रूपरेखा बना दी एवं दो दिन बाद वापसी यात्रा के दौरान ही उसे अन्तिम रूप भी दे दिया। मेरे निवास-स्थल और कर्म-स्थल अजमेर नगर में लौटने वाली रेल गाड़ी से अजमेर पहुँचकर, मैंने उस आलेख को ब्रिटेन की छठे विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन की समिति और हिंदी विभाग, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार को इसके अनुमोदनार्थ प्रेषित कर दिया। इस दौरान मेरे चेतन तथा अवचेतन मन में कई भाव और विचार उमड़न-घुमड़न करने लग गए। मेरे मन में आया कि पिछले कई वर्षों से जो देशभक्ति की मेरी सबसे बड़ी कृति 'भारत, भारतीयता, भारतीयनायक' पूरी नहीं हो पा रही थी, वह हो सकता है कि वहाँ पर आने वाले विद्वतजनों से मिलने वाले सान्निधिय एवं मार्गदर्शन से ही पूर्ण हो जाए।

मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा जब मुझे अगस्त 1999 के तीसरे सप्ताह में सम्मेलन की अकादमिक चयन समिति के अध्यक्ष महेन्द्र के. वर्मा के हस्ताक्षर के अधीन मेरे आलेख को अनुमोदित किये जाने का पत्र मिला। मेरी पहली विदेश-यात्रा, शैक्षणिक अनुसंधान, विदेश पर्यटन यात्रा और विश्व हिंदी यज्ञ में मेरी पहली आहुति का मार्ग प्रशस्त हो गया था। आजीवन शिक्षार्जन के अन्तर्गत जिस प्रकार मैं नई-नई डिग्री डिप्लोमा लेने के शैक्षणिक व्यय आदि प्रसन्नतापूर्वक वहन करने को उद्यत रहता हूँ, वैसे ही विश्व हिंदी अभियान में मेरी ओर से आहुति दे देने का मानस मैंने बना लिया और आगे की तैयारियों में जुट गया। भारत स्थित ब्रिटिश उच्चायोग में यद्यपि वीज़ा का मेरा पहला आवेदन अस्वीकार हो गया था, लेकिन मैंने हिम्मत नहीं हारी और वीज़ा के दूसरे आवेदन के दौरान मैंने ब्रिटिश उच्चायोग के अधिकारियों और विदेश-यात्रा व्यवसाय के परामर्शदाताओं से उच्चस्तरीय मार्गदर्शन लेकर दूसरा आवेदन दे दिया और साक्षात्कार की भी विधिपूर्वक तैयारी कर ली। फलतः वीज़ा मिल गया। इसी दौरान मुझे ज्ञात हुआ कि भारत सरकार ने इस सम्मेलन में जाने वालों के लिए एयर इंडिया की उड़ानों में यात्रा किराये में 50 प्रतिशत छूट की घोषणा की है। यह छूट स्वीकृति पाने के लिए मैंने तत्कालीन उपसचिव (हिंदी) श्री रतनलाल भगत, विदेश मंत्रालय के समक्ष आवेदन दिया, जिसे उन्होंने तत्काल ही इसलिए स्वीकार कर लिया कि मेरे पास लंदन से आया हुआ अनुमोदन-पत्र तथा निमंत्रण-पत्र मौजूद था और मैंने इस सम्मेलन में पंजीकरण कराने की कार्रवाई भी पहले ही सम्पन्न कर ली थी।

राजकीय सेवारत होने के कारण मुझे अपने नियोक्ता से इस सम्मेलन में जाने के लिए केवल अवकाश ही नहीं स्वीकार कराना था, अपितु विदेश-यात्रा के लिए विधिपूर्वक अनुमति भी प्राप्त कर लेनी थी। मैंने सम्मेलन आयोजकों से प्राप्त निमंत्रण सह अनुमोदन-पत्र संलग्न कर विदेश-यात्रा की अनुमति और अवकाश स्वीकृति चाहने का आवेदन उचित माध्यम से सक्षम प्राधिकारी के पास बिना देरी के भिजवा दिया था। सम्मेलन की कार्यक्रम पुस्तिका तथा प्रस्तावित आवास-स्थल के नक्शे को देखते-देखते मेरा मन इस मिशन के आगामी चरणों और बिन्दुओं के बारे में कल्पना की उड़ानें भरने लग गया था। इस सम्मेलन में मेरे प्रतिभागन की अर्थपूर्णता के लिए भी मैं गम्भीर रहने लग गया था एवं अपनी मानसिक तत्परता, मनोनुकूलता तथा इस सम्मेलन में अवश्यम्भावी रूप से भाग लेने के लिए आवश्यक सारी तैयारियाँ और कार्य करने लग गया था। मेरी माताजी ने भी इसके लिए परोक्ष रूप से 'जैसा देश वैसा भेष' की नीति अपनाने की सीख दी। मैं इतना अधिक उत्साहित था कि मैंने यह निर्णय ले लिया कि यदि मेरे नियोक्ता से मुझे समय रहते इस विदेश-यात्रा की अनुमति जारी नहीं भी की जाती है, तो भी मुझे अपने जोखिम पर लंदन जाना है और हुआ भी ऐसा ही। दिनांक 13 सितंबर 1999 को मेरी यात्रा शुरू होने तक मेरे नियोक्ता के द्वारा मुझे उस अनुमति देने या नहीं देने के बारे में कोई जानकारी नहीं दी गई, लेकिन मैं मानसिक रूप से दृढ़ था और यह उपधारणा कर आगे बढ़ना चाहता था कि मैं यह मानकर चलूँ कि मुझे यह अनुमति दे दी गयी है, क्योंकि अंतिम समय तक भी मेरे नियोक्ता ने मेरे उस आवेदन के प्रति किसी आपत्ति होने या मेरी ओर से कोई औपचारिकता अपूर्ण रह जाने के कोई निर्देश जारी नहीं किए थे। बहरहाल, मेरी यात्रा शुरू होने के पूर्व मुझे वह अनुमति जारी होने की कोई जानकारी नहीं दी गई तथा मेरे लंदन से लौटकर आने के कुछ दिनों के बाद ही मुझे वह अनुमति पत्र

मिल पाया। कई बार मेरे मन में यह ख्याल आता रहा कि यदि वह अनुमति नहीं आती, तो मेरे विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई करने का अवसर मेरे द्वारा मेरे नियोक्ता को उपलब्ध कराया जा रहा था। इस आशंका की छाया मेरी उस पूरी यात्रा पर पड़ी थी। दूसरी ओर इसके मूल में मैं यह आशा भी रखकर चल रहा था कि मेरी नियोक्ता कम्पनी के सक्षम प्राधिकारी हिंदी की सेवा के क्षेत्र में ऐसा अप्रिय कुछ नहीं करना चाहते होंगे।

लंदन की ओर जाने वाली यात्रा में असाधारण अनुभव था। एयर इंडिया के विमान में कवि सम्मेलन का आयोजन होना। सुप्रसिद्ध हास्य कवि अशोक चक्रधर तथा अन्य काव्य प्रतिभाओं ने विमान का वातावरण हिंदीमय बना दिया। धरती पर कई कवि सम्मेलन देखे सुने, किंतु धरती के ऊपर पहली बार कवि सम्मेलन का आनन्द मिल रहा था। हिंदी के लिए हिंदी के कवियों के द्वारा हिंदी में हिंदीमय कविताएँ सुनाई जा रहीं थीं। वैसे भी पूरा विमान कई विषयों के लेखकों, व्याख्याताओं, विद्वानों, शोधकर्ताओं, हिंदी पदाधिकारियों, हिंदी प्रचारकों और अन्यों से भरा हुआ था।

लंदन पहुँचते ही हीथ्रो हवाई अड्डे पर विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजकों ने स्वागत पटल की व्यवस्था की हुई थी। उनसे संपर्क साधते ही आयोजकों ने अन्य प्रतिभागियों के साथ मुझे भी आवास स्थल स्कूल ऑफ़ ओरिएण्टल एण्ड अफ़्रीकन स्टडीज यूनिवर्सिटी ऑफ़ लंदन के छात्रावास तक पहुँचाने के लिए परिवहन सुविधा उपलब्ध कराई, जिससे मुझे आवास आने में कोई कठिनाई नहीं हुई। यद्यपि अन्य कुछ प्रतिभागियों को इसमें कठिनाई आ रही थी। जिस समय सुप्रसिद्ध लेखिका शिवानी और आयोजकों के बीच विवाद चल रहा था, उस समय मैं भी उनके पास ही खड़ा था।

14 सितंबर 1999 यानी हिंदी को राजभाषा का दर्जा देने के स्वर्ण जयंती वर्ष की शुरुआत का दिन और इसी दिन छठे विश्व हिंदी सम्मेलन का उद्घाटन लंदन के वेम्बले सभागार में होने जा रहा था, जिसका साक्षी बनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। असल में, हिंदी कुम्भ जैसे भव्य आयोजन को देख-सुन पाने का अनुभव मेरे जैसे मध्यम वर्गीय हिंदी प्रेमी को पहली बार ही मिल रहा था। सभागार में भारत के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी की कविताओं को पार्वती खान के द्वारा गाए जाने का कैसेट बज रहा था। उद्घाटन-सत्र कलात्मक और सांस्कृतिक रंगों से सजा हुआ था। इसका प्रारंभ नृत्यांगना गौरी शर्मा त्रिपाठी की शिष्याओं ने कबीर की रचनाओं पर आधारित नृत्यगान से किया। इसी सम्मेलन के बोध वाक्य 'हिंदी एवं भावी पीढ़ी' को नृत्य गान जैसी प्रस्तुति में पिरोया गया था। भारत के बाहर किसी विदेशी धरती पर 'वन्देमातरम' और 'सारे जहाँ से अच्छा' की सजीव प्रस्तुति देखना-सुनना, मेरे जीवन का पहला अनुभव था। सुप्रसिद्ध नृत्यांगना शोभना नारायण के पारंपरिक एवं राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त की रचना पर आधारित कथक नृत्य उत्साहपूर्ण रहा। ब्रिटेन की नृत्यांगना गौरी शर्मा त्रिपाठी के निर्देशन में प्रस्तुत समूह नृत्य भी सम्मेलन की गरिमा के अनुकूल था। सुप्रसिद्ध गजल गायक जगजीत सिंह ने श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा लिखित एक गीत सुनाया। भारत के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी का इस सम्मेलन को संबोधित गरिमामय संदेश वीडियो रिकॉर्डिंग के रूप में सभागार के विशाल स्क्रीन पर दिखाया-सुनाया गया। उसमें उन्होंने अज्ञेय और धर्मवीर भारती का स्मरण किया। उसके बाद भारत की विदेश राज्य मंत्री श्रीमती वसुंधरा राजे ने अपना उद्घाटन-भाषण दिया, जिसमें श्री वाजपेयी की कविताओं के उद्धरण थे। अगले क्रम पर हिंदी के मनीषी विद्यानिवास मिश्र के द्वारा श्री अटल बिहारी वाजपेयी के भाषणों के संग्रह का विमोचन किया गया।

उद्घाटन-सत्र की मुख्य अतिथि ब्रिटेन की वाणिज्य मंत्री पेट्रीशिया हेविट का संक्षिप्त संबोधन प्रभावी था। इसमें उन्होंने अपने प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर का संदेश प्रस्तुत किया, जिसकी विशेषता थी भारतीयों की प्रशंसा। उसके बाद मॉरीशस और फ़िजी के भारतवंशी प्रधानमंत्रियों के संदेशों का पठन किया गया, जिसका ज़ोरदार तालियों से स्वागत हुआ और उनके द्वारा अगला सम्मेलन अपने यहाँ कराए जाने का खुला निमंत्रण दिया गया। इससे हिंदी की वैश्विक अनुभूति का होना स्वाभाविक था। दादा साहब फाल्के पुरस्कार पाने

वाले भूपेन हजारिका के द्वारा उनके अपने दो गीतों को नरेन्द्र शर्मा के द्वारा अनूदित रूप में गाया गया। हिंदी के इतिहास में यह समारोह अपनी अमिट छाप छोड़ गया। उद्घाटन-सत्र के बाद लंदन के स्वामीनारायण मंदिर के दर्शन का आयोजन किया गया था, जिसमें मन्दिर की परिक्रमा करते हुए भारतीयता की अनुभूति हो रही थी। उस दौरान एक वीडियो का प्रदर्शन भी किया गया था।

सम्मेलन के अगले दिनों में कबीर कक्ष, रसखान कक्ष, सूर कक्ष, मीरा कक्ष और तुलसी कक्ष नाम से पाँच समानान्तर सत्रों के आयोजन हुए। इन्हीं में से एक कक्ष में इस लेखक ने भी 'हिंदी एवं भावी पीढ़ी' विषय पर अपने शोध-आलेख का वाचन किया।

समानान्तर-सत्रों की अध्यक्षता सर्वश्री नरेन्द्र मोहन, तरुण विजय, लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, विद्यानिवास मिश्र, विष्णुकान्त शास्त्री, मृदुला सिन्हा और केसरीनाथ त्रिपाठी के द्वारा की गई। दूसरी ओर कबीर स्मृति व्याख्यान के अन्तर्गत डॉ. नामवरसिंह, नागार्जुन स्मृति व्याख्यान के अन्तर्गत स्टुअर्ट मेक्ग्रेगर (ब्रिटेन), पन्त स्मृति व्याख्यान के अन्तर्गत प्रोफ़ेसर केदारसिंह एवं अन्य संगोष्ठियों में हिमांशु जोशी, महातम सिंह (सूरीनाम) और मारिया नेग्येशी (हंगरी) के द्वारा दिए गए संबोधन सम्मेलन को सार्थकता प्रदान कर रहे थे।

गम्भीर चिंतन-मनन के अलावा सायंकाल में सांस्कृतिक गतिविधियाँ भी आयोजित की जाती रहीं। जापान के तोमियो मिज़ोकामी के द्वारा निर्देशित नाटक, जिसमें उन्होंने भविष्य वक्ता की भूमिका बखूबी निभायी थी, विचारों को उद्वेलित करने के साथ-साथ मनोरंजन करने में भी सफल था। जापान के प्रतिनिधिमंडल के साथ जापान के रंगमंच कलाकारों के द्वारा वह लोकप्रिय नाटक प्रस्तुत किया गया। बताया गया था कि इस नाटक ने इस सम्मेलन के बाद भी ब्रिटेन के विभिन्न नगरों में अपनी धूम मचा रखी थी। लंदन के वेस्ट मिनिस्टर सभागार में आधिकारिक रूप से कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ। उसमें अन्य कई स्थानीय कवियों के साथ-साथ कुंवर बेचैन, सरोजनी प्रीतम और अशोक चक्रधर आदि ने समा बाँधा।

सम्मेलन के प्रतिभागियों के लिए अलग-अलग बसों में लंदन की सैर की योजना भी बनाई गई थी। सौभाग्य से इस लेखक ने जिस बस में सैर की, उसमें उसे श्री केसरीनाथ त्रिपाठी और विष्णुकान्त शास्त्री के सान्निध्य का लाभ प्राप्त हुआ। उसी बस के पर्यटक सहयोगी जयपुर (भारत) के श्री मोहनसिंह राजावत थे, जो स्थानीय पर्यटन स्थलों का परिचय और संक्षिप्त जानकारी पूरी बस के यात्रियों को दे रहे थे। इस लेखक के स्मृति पटल पर श्री विष्णुकान्त शास्त्री जी के द्वारा कहा गया वह कथन दर्ज है कि जब किसी यात्री ने यात्रा के दौरान परदेस में कुछ तनाव हो जाने की बात की थी, तब उन्होंने उसे परामर्श के रूप में बताया था कि यह धरती भी तनाव के कारण ही चलती है। इस लेखक के साथ बस में बगल वाले आसन पर दलित साहित्य अकादमी, भारत से आए एक सदस्य भी विराजमान थे, जो दलित विमर्श पर कई बातें साझा कर रहे थे और उन्होंने 'हिमायती' शीर्षक वाली पत्रिका की एक प्रति भी दी।

सम्मेलन के दौरान ही एक शाम को भारतीय उच्चायोग में प्रतिभागियों के स्वागत-सम्मान का समारोह आयोजित किया गया था। संयोग से उस सम्मेलन में यह लेखक जल्द ही पहुँच गया, जिससे उसे प्रथम पंक्ति में ही भारतीय उच्चायुक्त श्री ललित मानसिंह से निकटतापूर्वक मुलाकात कर पाने का सुअवसर प्राप्त हो गया था।

विश्व हिंदी सम्मेलन के छठे संस्करण में भारत के प्रतिनिधि मंडल के समान ही मॉरीशस, फ़िजी, सूरीनाम, दक्षिण अफ़्रीका, त्रिनिदाद, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, जर्मनी और श्रीलंका के प्रतिनिधिमंडल ने प्रतिभागन किया था। इसके अलावा इटली, नेपाल, तुर्की और तज़ाकिस्तान आदि से भी कई गैर हिंदी भाषी विद्वानों ने शिरकत की। ऐसे कई विद्वान भारत में हिंदी की स्थिति को लेकर चिन्तित भी थे। उनका मानना था कि हिंदी की विकास-यात्रा का प्रस्थान बिन्दु भारत है। मॉरीशस, फ़िजी, त्रिनिदाद और सूरीनाम जैसे गिरिमिटिया देशों के हिंदी प्रेमियों और हिंदी विद्वानों के समर्पण-भाव के क्या कहने। इस लेखक को मॉरीशस के ही किसी अति उत्साही प्रतिनिधि के श्रीमुख से यह सुनने को

मिला कि हिंदी को विश्व भाषा बनाने में मॉरीशस ही अग्रणीय रहेगा भारत नहीं। इसका कारण है भारत पहले अपने ही देश में हिंदी को उचित दर्जा देकर दिखलाए। इन गिरिमिटिया देशों के प्रतिनिधियों का हिंदी के लिए ऐसा संघर्ष असाधारण और प्रेरणाप्रद था। इसलिए ही फ़िजी के प्रधानमंत्री के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया था और यह आखिरकार घोषणा भी की गयी थी कि सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन फ़िजी में आयोजित किया जाएगा।

16 सितंबर को एक अकादमिक सत्र का उद्घाटन सांसद लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने किया। इसकी अध्यक्षता महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के कुलपति श्री अशोक वाजपेयी ने की। इसमें लक्ष्मीमल्ल सिंघवी के द्वारा 51 मूर्धन्य हिंदी साहित्यकारों की चित्रावली का लोकार्पण किया गया। श्री अशोक वाजपेयी के द्वारा सम्पादित महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा (भारत) की पत्रिका 'बहुवचन' का लोकार्पण श्री विद्यानिवास मिश्र ने किया। इसके अतिरिक्त भारतीय सांस्कृतिक परिषद्, नई दिल्ली की त्रैमासिक पत्रिका 'गगनांचल' का हिंदी विशेषांक, केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा के द्वारा प्रकाशित 'विश्व भाषा हिंदी' और छठे विश्व हिंदी सम्मेलन पर हिंदी समिति, यू.के. के द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका 'पुरवाई' के विशेषांक भी लोकार्पित हुए।

इस सम्मेलन में 16 सितंबर को रात्रि भोज के पूर्व इस लेखक को मॉरीशस के राष्ट्रकवि श्री ब्रजेन्द्र (भगत) मधुकर से व्यक्तिगत बातचीत का सुअवसर प्राप्त हुआ, जिस दौरान राष्ट्रीय काव्य-धारा के अनेक पहलुओं पर उनके विचारों को जानने और किन्हीं बारीकियों पर मार्गदर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

मॉरीशस के ही एक प्रतिनिधि ने इस लेखक से जानना चाहा कि आप कहाँ से आए हैं, तो इस लेखक ने जैसे ही कहा 'अजमेर' वैसे ही उन्होंने कहा कि अजमेर पर उन्हें एक हास्य किस्सा याद आ रहा है। उन्होंने आगे बताया कि एक बार एक परिवार में एक बालक ने अपने परिवार के सदस्यों से कहा कि '' दादो आज मर गयो है ''। इससे परिवार में मातम छा गया और परिवार की महिलाओं ने रोना-धोना शुरू कर दिया। इस पर परिवार के किसी समझदार सदस्य ने उस बालक से कुरेदकर पूछा और उस सच्चाई का पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि वह मात्र जुबान की फिसलन (स्लिप ऑफ़ टंग) थी। बालक असल में यह सूचित करना चाहता था कि 'उसके दादाजी अजमेर गए हैं', जिसे 'आज मर गये हैं ' समझ लेने से ही वह उलटफेर हो रहा था। इस लेखक ने यही किस्सा अजमेर ब्यावर (भारत) के बीच 1984-85 में दैनिक अपडाऊन यात्रा करने के दौरान एक विदूषक यात्री से पहली बार सुना था और उसके बाद न जाने कितनी बार अन्य कई लोगों से सुना था। इस प्रकार यह लेखक भारतीय संस्कृति के सुदूर विस्तार को लंदन के इस सम्मेलन में चरितार्थ होते देखने का अनुभव प्राप्त कर रहा था।

इस सम्मेलन को सफल बनाने वाले विदेश मंत्रालय, भारत सरकार के दल के योगदान के साथ-साथ सम्मेलन के ब्रिटेन स्थित आयोजन मण्डल के अकादमिक अध्यक्ष श्री महेन्द्र के. वर्मा, अध्यक्ष श्री कृष्ण कुमार, उपाध्यक्ष, सुश्री उषा राजे, उपाध्यक्ष, सुश्री दिव्या माथुर, वित्त पदाधिकारी, श्री प्रफुल्ल अमीन, सांस्कृतिक पदाधिकारी, श्री प्याली रे, स्वागत और आतिथ्य पदाधिकारी श्री बृज गोयल, संयोजक श्री पदमेश गुप्त और प्रचार तथा विपणन महासचिव सुश्री तितिक्षा शाह की भूमिका तो सराहनीय थी ही, लेकिन सुबह-शाम उनके साथ रहने वाले प्रवासी भारतीयों के समर्पण की जितनी सराहना की जाए वह कम है।

सम्मेलन में मेरी जिन महानुभावों से जो मुलाकातें या बातें हुई थीं, वे मुझे अभी भी याद आती रहती हैं। वे हैं :- डॉ. प्रकाश बरतूनीया, दक्षिण अफ़्रीका के श्री कमल महाराज, तुर्की के डॉ. कैलाश नारायण तिवारी, न्यूयॉर्क के श्री राम चौधरी, कराची के श्री सुहैल मेमन, मध्य प्रदेश के श्री अनूप गुप्त और विदेश मंत्रालय के श्री तेजपाल जी एवं श्री श्रवण कुमार।

हिंदी का वट वृक्ष भारत है। अन्य देश चाहे वे गिरमिटिया हों या वृहत्तर भारत के अन्य देश, वहाँ हिंदी के इस वट वृक्ष की शाखाएँ फैली हैं। इस वट वृक्ष को सींचने से हिंदी का विकास हो सकता है। हिंदी के बढ़ते चरणों के समाचार तो

आए दिन आते ही रहते हैं और अब हिंदी बोलने वाले देशों में सूर्य अस्त नहीं होता है, लेकिन फिर भी हिंदी का योजनाबद्ध विकास अभी तक प्रश्नगत ही बना हुआ है।

सम्मेलन से लौटकर आने के बाद मैं मानसिक रूप से इतना तत्पर रहा कि मैं हिंदी के राजभाषा रूप के अलावा साहित्यक रूप की भी सेवा करना चाहता था। और तीन-चार महीनों में ही 6-7 वर्षों से चल रही 'भारत भारतीयता भारतीय नायक' – 3001 मनहरण मुक्तकों की कविता-पुस्तक को मैंने सम्पन्न कर दिया। मेरे लिए यही सम्मेलन आगे भी राजभाषा से विश्व भाषा के अभियान की ओर उन्मुखीकरण का बिन्दु सिद्ध होता रहा, जिसके कारण फ़रवरी 2023 तक मैं लंदन के अलावा अन्य पाँच सम्मेलन यथा- संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिण अफ़्रीका, भारत, मॉरीशस और फ़िजी में अपने शोध-पत्र प्रस्तुत कर पाया हूँ। यहीं सम्मेलन मेरे आरम्भिक अभिप्रेरण का आधार बना और मैं इसके कारण ही वर्ष 2007 में संयुक्त राष्ट्र संघ के सभागार में आयोजित सातवें सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्कालीन महासचिव श्री बान की मून के इस संबोधन कि नमस्ते ! क्या हाल-चाल हैं ? के प्रत्यक्ष श्रवण का लाभ उठा पाया।

shrichandani3@gmail.com

नहीं भूलती दक्षिण-द्वार चेन्नै की स्मृतियाँ

मंजुला वाधवा
उत्तर प्रदेश, भारत

15 वर्ष पूर्व किसी पत्रिका में पढ़ा था - 'चेन्नै शहर है, जबकि मद्रास मनोवेग'' उस समय इस उक्ति के निहितार्थ को नहीं समझ पाई थी। जुलाई 2015 में चेन्नै में तैनाती के 2 वर्ष पूरे होने और इस शहर की गलियों और चौबारों के प्राचीनतम भागों से लेकर जनसंकुल बाज़ारों, यहाँ की कला, संस्कृति, साहित्य और परंपराओं को निकट से देखने से लेकर आसपास के ग्रामीण अंचलों का अनुभव लेने के बाद इस कहावत का सही अर्थ मैं समझ पाई। आप कह सकते हैं कि यहाँ के सागर-किनारे, परम्पराएँ और बाशिंदे इस शहर को खास बनाते हैं। बेशक, 4 वर्षों की तैनाती के दौरान जब यहाँ की भीड़ और सघन यातायात से मैं घबरा जाती थी तब सी-बीच ही मुझे राहत पहुँचाते थे। शुरुआती 06 महीनों के दौरान यहाँ की भीषण गर्मी, जनाक्रांत सड़कों, ऑटो-रिक्शा के मनमाने दामों और साफ़-सफ़ाई की कमी आदि सभी कारणों से मेरे मन में इस महानगर के प्रति भीति मिश्रित उदासीनता का भाव भरने लगा था। लेकिन धीरे-धीरे मेरी टूटी-फूटी तमिल समझने की कोशिश करके, मदद का हाथ आगे बढ़ाते स्थानीय दुकानदार, ट्रैफ़िक पुलिसकर्मी, कार्यालय में मेरे सहकर्मी, जिन्होंने 'कुंजम-कुंजम' तमिल सीखने में मेरी सहायता की, मेरे कार्यालय के वरिष्ठ अधिकारी, जिन्होंने सुदूर दक्षिण स्थित इस शहर, जहाँ आज भी काफ़ी तबके न हिंदी बोलते हैं, न समझना चाहते हैं, मुझे राजभाषा कार्यान्वयन, (जिसके लिए मुझे यहाँ तैनात किया गया था), के लिए पग-पग पर न केवल मेरा मार्गदर्शन किया, बल्कि भरपूर सहयोग भी दिया। सभी के मधुर व्यवहार के कारण शनै: शनै: इस शहर और यहाँ के निवासियों के प्रति मेरे मन में स्नेह अंकुर पल्लवित होने लगा।

इस महानगरी को खोजने के मेरे प्रयासों में सबसे पहले ज़िक्र करना चाहूँगी, यहाँ के लज़ीज़ पेय फ़िल्टर कॉफ़ी का, कहीं तीक्ष्ण गंध, तो कहीं सौम्य महक वाली, कहीं मीठी तो कहीं कुछ कसैले स्वाद वाली, यहाँ की कॉफ़ी इस शहर और यहाँ के बाशिंदों को हर सुबह ऊर्जा देती है। मुझे भी भाने लगी और इतनी भायी कि तीन महीनों में कभी एक बार कॉफ़ी पीने वाली मैं उत्तर भारतीय, हर दिन अपने बैंक कैंटीन द्वारा सर्व किए जाते चाय और कॉफ़ी के विकल्पों में से कॉफ़ी ही चुनती। दक्षिण भारतीय भोजन मेरी और मेरे परिवार की स्वाद-ग्रंथियों को इतना पसन्द आने लगा कि आज चेन्नै छोड़ने पर छः वर्ष गुज़र जाने के बावजूद मेरे घर

में लगभग हर दिन एक वक्त का भोजन इडली, दोसा, सांबर ही बनता है। लेकिन दक्षिण भारत का खाना, धूप में सुखाए गए, घर के बने वट्टल, अपलम और सूरन चिप्स के बिना कैसे संपूर्ण हो सकता है। लिहाज़ा, मेरे अमृतसरी पापड़ अब उत्तर भारतीय दाल-चावल के साथ परोसे जाते हैं, जबकि दक्षिण के भोजन का स्वाद मेरा परिवार और मैं अब इन्हीं के साथ लेते हैं। हर सुबह की सैर पर जाते समय यहाँ की गलियों में चावल का मिश्रण मलमल की चादरों पर फैलाती महिलाओं की स्मृतियाँ आज भी मेरे मानसपटल पर अंकित हैं। नाश्ते में इडली-साम्भर मैं तो क्या यहाँ आने वाले विदेशी सैलानियों को भी सर्वाधिक स्वास्थ्यवर्धक नाश्ता लगता है।

स्मृति-वीथिकाओं से गुज़रते हुए, अब आपसे बाँटना चाहती हूँ, मेरे निवास-स्थान, तेनम्पेट (चेन्नै) के पास ही बसे 'मइलापुर' का मेरा 'लुज़ अनुभव' - स्पैनिश भाषा में 'लुज़' का अर्थ है 'प्रकाश'। माना जाता है कि बंगाल की खाड़ी में भीषण तूफ़ान आने पर जब एक जलपोत दिशा-ज्ञान खो बैठा, तब जिस दिशा से प्रकाश दिखा, उसी की ओर मुड़ गया। किनारे पर पहुँचकर उसी स्थल पर उन्होंने गिरजाघर का निर्माण किया, जिसे तमिल में 'कट् कोविल' और अंग्रेज़ी में 'Forest Temple' कहा गया। जंगल तो विलुप्त हो चुका है, परंतु इस चर्च को आज भी 'लुज़ चर्च' के नाम से पुकारा जाता है। चर्च के पास ही हाथ-गाड़ी पर उबली मूंगफली बेचते रेहड़ी वाले, हर दिन प्रातः 4 बजे से रात 12 बजे तक भीड़ से घिरे न्यूज़पेपर स्टैंड और पुरानी किताबों का सड़क पर लगाया अपना ढेर, बरसात से बचाते वेंडर्स की स्मृति, मेरे 'लुज़ अनुभव' को आज भी ताज़ा किए हुए हैं। 4 वर्षों के प्रवास में अपने सहकर्मियों के निमंत्रण पर मैं ने जितने भी दक्षिण भारतीय विवाह समारोहों में भाग लिया, सभी समारोहों की शोभा बढ़ाता पंचमुखी आदमकद दीप 'कुत्तुविल्कु' पाया। यहाँ के निवासियों की मान्यता है कि इस दीप का हर कोना विवाह वेदी पर बैठी कन्या के व्यक्तित्व के एक गुण का प्रतिनिधित्व करता है - स्नेह, बुद्धिमत्ता, धैर्य, साहस, दूरदर्शिता आदि। तेल भरने वाला स्थान नारी के मानस का प्रतीक है। दीप प्रज्वलित करते ही नारी-चरित्र की ये सभी विशेषताएँ मानो साकार हो उठती हैं। तमिल परिवारों के विवाहों में 'तविल' और 'नादस्वरम' नामक वाद्ययंत्र जिस पावन, माधुर्यपूर्ण परिवेश का सृजन करते हैं, यह देखते ही बनता है। इनके बिना तो समारोह संपूर्ण ही नहीं माने जाते, क्योंकि उनकी मान्यता है कि ये 'मंगल वाद्य' सुख समृद्धि के वाहक हैं।

अब आपको ले चलती हूँ, यहाँ के दर्शनीय स्थलों के भ्रमण पर' – सर्वप्रथम, विख्यात तमिल कवि, लेखक और संत तिरूवल्लुवर के नाम पर निर्मित 'वल्लुवर कोट्टम'। शहर के मध्य में कोडमबक्कम के कोने में स्थित 'वल्लुवर कोट्टम' की संरचना 39 मीटर ऊँचे रथनुमा मंदिर के रूप में है, जिसके अंदर विशालाकार प्रतिमा बनी है। संत तिरूवल्लुवर की एक उल्लेखनीय बात यह है कि इसे सहारा देने के लिए कोई स्तम्भ ही नहीं हैं। यदि आप प्रकृति प्रेमी है और सूर्योदय का अद्भुत नज़ारा देखना चाहते हैं, तो आपको मरीना बीच एक बार नहीं बार-बार जाना होगा। भारत का सबसे लंबा और एशिया महाद्वीप में दूसरा सबसे लंबा सागर-तट है, मरीना बीच। सुबह की सैर करने वालों की पसंदीदा जगह, जिनके प्रयासों के कारण अब यह बीच बेहद साफ़-सुथरा नज़र आने लगा है। 1883 में यहाँ निर्मित 'थियोसोफ़िकल सोसायटी' का वैश्विक मुख्यालय है। 260 एकड़ में फैले इस दर्शनीय स्थल के बाग-बगीचे, पक्षियों के कलरव और क्रीड़ा पसंद करने वालों से गुलज़ार रहते हैं। यहाँ अनेक प्रवासी दुर्लभ पक्षियों के किलोल देखे जा सकते हैं। यहाँ की एक और विशेषता है - मौन तपस्वी की भाँति राह दिखाता हुआ 450 वर्ष पुराना बरगद का पेड़।

इतिहास की घटनाएँ मुझे और मेरे परिवार की जिज्ञासा का सदैव से केन्द्र रही हैं। लिहाज़ा अगला अवकाश दिवस 'एगमोर स्थित राजकीय अजायबघर' के पुरातनता का नाम किया यह हमारे देश का दूसरे स्थान पर आने वाला सर्वाधिक प्राचीन अजायबघर है। कलाकृतियों, पुरातत्विक अवशेषों और भारत की समृद्ध विरासत के प्रतीकों से सुसज्जित इस म्यूज़ियम में कैसे 4 घंटे बीत गए, भान ही नहीं हुआ, प्रहरियों की याद दिलाने पर बाह्य द्वार की ओर कूच किया। 16 एकड़

में बने इस म्यूज़ियम के विशाल प्रांगण में संरक्षित कांस्य व पीतल की चोल और पल्लव काल की दुर्लभ कलाकृतियों ने संपूर्ण दक्षिण भारत की संस्कृति को हमारे समक्ष साकार करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। अगला स्थल जिसने मुझे आकर्षित किया, वह था मइलापुर, चेन्नै स्थित 7वीं सदी में निर्मित द्रविड़ वास्तुकला का प्रतीक 'कपालीश्वर मंदिर'। खोजा तो पाया कि देवी शक्ति यहाँ मयूर रूप में शिवजी को पाने के लिए तपस्या कर रही हैं। तमिल में 'मइल' का अर्थ है 'मोर' और यहाँ भगवान शिव की उपासना कपालीश्वर के रूप में होती है। इसीलिए इस स्थान का नाम मइलापुर पड़ा। इस मंदिर के दर्शन करके मुझे तमिल धार्मिक संस्कृति की झलक और दो शैलियों – द्रविड़ियन और विजयनगरी का सुंदर स्थापत्य संयोजन देखने को मिला।

हर रोज़ सुबह कार्यालय डयूटी पर जाने के लिए चेन्नै के 'समोज़ी पूंगा' के पास से गुज़रती थी, 20 एकड़ में फैला विशाल उद्यान जिसमें विश्व भर से लाए गए औषधीय और सुगंधित 500 किस्मों के विविध पेड़-पौधे मुझे अपनी ओर आमंत्रित करते प्रतीत होते थे। हर ओर लोगों की भीड़ से भरे चेन्नै में हरियाली से भरपूर यह उद्यान देखने का लोभ मैं कैसे संवरण कर सकती थी। इसलिए एक सुहानी शाम वहाँ जा पहुँची। यहाँ के दिलकश नज़ारे थे, तालाब में बतखें तैर रही थीं और दूसरी ओर बच्चों के मनोरंजन के लिए झूलों वाला पार्क था। 45 वर्ष पुराने चीनी बोनसाई पौधे और थाइलैंड के ऑर्किड उद्यान की शोभा में चार चाँद लगा रहे थे।

मरीना बीच तो बहुत बार गए, किंतु वहाँ स्थित 'विवेकानन्द हाऊस' (तमिल में विवेकानंद ईल्लम) के अंदर जाने का अवसर पहली बार चेन्नै प्रवास के चौथे साल में मिला। 1897 से रामकृष्ण मठ से जुड़े इस स्मारक में स्वामी विवेकानंद पश्चिमी दुनिया का भ्रमण करने के बाद 1900 में यहाँ 06 सप्ताह रूके। लिहाज़ा 1897 से 1906 तक यहाँ रामकृष्ण मठ चलता रहा। अब इसमें भारतीय संस्कृति और स्वामी विवेकानन्द से जुड़ी वस्तुओं की प्रदर्शनी लगी हुई है, जिसे देखने ज्ञान-पिपासु देश-विदेश से यहाँ आते हैं। 16वीं शताब्दी में पुर्तगाली व्यापारियों द्वारा निर्मित 'सेनथोम चर्च' का पुनर्निर्माण 1893 में अंग्रेज़ों ने चर्चित ब्रिटिश वास्तुशिल्प, नियो-गौथिक शैली में करवाया और इसे कैथेड्रल का दर्जा दिया। ईसाई पौराणिक कथाओं के अनुसार सैंट थामस ईसामसीह के 12 अनुयायियों में से एक थे।

वह 52 ईस्वी के आसपास सीधे केरल के समुद्र-तट पर पहुँचे थे और 72 ईस्वी तक यहाँ रुके थे। 72 ईस्वी में ही यहाँ की एक चोटी पर उनका निधन हुआ, जिसे आज सेंट थामस माउंट के नाम से जाना जाता है। रोमन कैथोलिक चर्च होने के कारण यह मद्रास-मलयापुर कैथोलिक आर्कडियोसिस के अंतर्गत आता है। भारत के ईसाई समुदाय के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थल है। चेन्नै का एक अन्य महत्त्वपूर्ण आकर्षण है; 1640 में ईस्ट इंडिया कंपनी के फ्रांसिंस डे द्वारा बनवाया गया 'सेंट जॉर्ज फ़ोर्ट'। उस समय ईस्ट इंडिया कंपनी का व्यापारिक केंद्र रहा यह चर्च अंग्रेज़ों द्वारा भारत में बनवाया गया सबसे पुराना चर्च माना जाता है। इस किले की सबसे अद्‌भुत और भव्य संरचना इसका संग्रहालय है, जिसे "फ़ोर्ट म्यूज़ियम" के नाम से भी जाना जाता है। इसका निर्माण वर्ष 1795 ई. में किया गया था, जिसमें ब्रिटिश शासन की कई वस्तुएँ और मद्रास में खोले गये पहले बैंक की चीज़ों को संभालकर रखा गया है। इस संग्रहालय के ऊपर नोबेल पुरस्कार विजेता "ओरहान पामुक" द्वारा एक उपन्यास लिखा गया था। आजकल इस किले का मुख्य भाग तमिलनाडु के मुख्यमंत्री और अन्य मंत्रियों के कार्यालयों के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इन सभी स्थानों का भ्रमण करने के बाद, मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची कि चेन्नई एक समृद्ध सांस्कृतिक इतिहास वाला शहर है, जो अपनी संपन्न आधुनिक जीवन-शैली के साथ अपनी विरासत को भी पूरी तरह संतुलित रखे हुए है।

वर्षों से महाबलीपुरम देखने की साध संजोयी हुई थी। यह इच्छा पूरी हुई जब हमारे बैंक के स्पोर्टस-क्लब ने एकदिवसीय पिकनिक का निमंत्रण दिया और हम जा पहुँचे, चेन्नै से 60 किलोमीटर दक्षिण में स्थित 7वीं सदी में निर्मित दक्षिण भारत के पल्लव वंश की पत्तन नगरी, 'महाबलीपुरम' में। प्राचीन भारत में व्यापारी दक्षिण पूर्व एशिया से व्यापार करने के

लिए इसी बंदरगाह से जाया करते थे। महाबलीपुरम मंदिर तमिलनाडु राज्य में बंगाल की खाड़ी के किनारे कोरोमंडल तट पर स्थित एक विशाल और भव्य मंदिर है। महाबलीपुरम अपने जटिल नक्काशीदार मंदिरों और रॉक-कट गुफ़ाओं के लिए जगत-प्रसिद्ध हैं। तमिलनाडु का यह ऐतिहासिक मल्लापुरम या महाबलीपुरम यहाँ आने वाले पर्यटकों के लिए एक शानदार पर्यटन-स्थल के रूप में जाना जाता है। इसे वर्ष 1984 में यूनेस्को के विश्व धरोहर स्थलों में शामिल किया जा चुका है। शहर की स्थापना का श्रेय 7 वीं शताब्दी ईस्वी के दौरान पल्लव राजा नरसिंहवर्मन प्रथम को जाता है। यहाँ का सबसे बड़ा आकर्षण है - 8 वीं शताब्दी ईस्वी पूर्व का 'शोर टेम्पल' -तीन तीर्थों का अद्भुत संयोजन। पल्लवों द्वारा ग्रेनाइट के ब्लॉकों का प्रयोग करके 60 फ़ीट ऊँचे और 50 फ़ीट चौकोर मंच पर विश्राम करते हुए पिरामिड शैली में एक शानदार संरचना का निर्माण द्रविड़ शैली में किया गया है। पंच रथ मंदिर 7 वीं शताब्दी के अंत में पल्लवों द्वारा निर्मित किया गया एक रॉक-कट मंदिर है। महाबलीपुरम के रथ मंदिर का परिचय पांडवों और महाभारत के अन्य पात्रों के नाम के अनुसार रखा गया है। महाबलीपुरम बीच लगभग 20 किमी लंबा समुद्र- तट है, जो 20 वीं शताब्दी के बाद से ही अस्तित्व में आया था। यह समुद्र-तट धूप सेंकने, गोताखोरी, विंड सर्फ़िंग और मोटर बोटिंग जैसी समुद्री गतिविधियों के लिए पर्यटकों के बीच लोकप्रिय है। महाबलीपुरम समुद्र-तट पर स्थित दक्षिण भारतीय शिल्प उद्योग को कलात्मक और पारंपरिक रूप में दर्शाते विरासत गाँव दक्षिणाचित्र का भ्रमण किए बिना कैसे वापस लौट सकते थे। महाबलीपुरम में वेस्टराजा स्ट्रीट पर स्थित विशाल शैल स्मारक - गंगा उद्गम को देखकर मन अत्यंत उल्लसित हो उठा। चट्टानों पर की गई नक्काशी पवित्र गंगा नदी के स्वर्ग से पृथ्वी लोक पर आने की कहानी को बयां करती हैं।

निकट भविष्य में होने वाले पारिवारिक विवाह समारोह में साउथ-सिल्क साड़ी पहनने का शौक मुझे और मेरे परिवार को ले जा पहुँचा- 'कांचीपुरम'। सहकर्मियों से बहुत सुना था - एक हज़ार मंदिरों के 'सुनहरे शहर' के रूप में, मशहूर कांचीपुरम के बारे में, जो केवल मंदिरों और ऐतिहासिक स्थानों तक सीमित नहीं हैं, यहाँ आप रामाराजा स्ट्रीट पर पैरासेलिंग, कोवलॉन्ग पॉइंट पर स्कूबा डाइविंग, थिरकनारायण एवेन्यू में रॉकिंग और रॉक क्लाइम्बिंग जैसे कई साहसिक खेलों के लिए भी जा सकते हैं। किंवदंती के अनुसार, कांचीपुरम नाम 'कै' और 'अनची' शब्द से लिया गया है। "कै" हिंदू भगवान ब्रह्मा को संदर्भित करता है और "अनची" भगवान विष्णु की पूजा के लिए संदर्भित करता है। सबसे सुखद लगा कि कांचीपुरम की संस्कृति में जैन, बौद्ध, हिंदू और मुस्लिम जैसे सभी धर्मों का मिश्रण शामिल है और सभी धर्मों को पूर्ण श्रद्धा-भाव से अपनाया जाता है। भारत में स्थापित 51 शक्ति-पीठों में से 'कामाक्षी अम्मन मन्दिर' के दर्शन करने गये, तो ज्ञात हुआ कि इस स्थान पर देवी सती की नाभि गिरी थी। कामाक्षी नाम में, 'का' अक्षर सरस्वती का प्रतिनिधित्व करता है, 'माँ' लक्ष्मी का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि 'अक्षी' का अर्थ है आँखों को देखना। अर्थात् तीन हिंदू देवियाँ ब्रह्मांड की पारलौकिक महिला ऊर्जा की पवित्र त्रिमूर्ति का निर्माण करती हैं। 1053 में चोल वंश द्वारा निर्मित "वरदराजा पेरुमल मंदिर" जाने पर, यकीन माने, आप भगवान विष्णु के दर्शन के साथ-साथ मंदिर परिसर की भव्य वास्तुकला और जटिल नक्काशी देखकर मंत्रमुग्ध हो जाएँगे। सीमित समय में सभी दर्शनीय स्थलों को देखना तो सम्भव होता नहीं, अत: पूरे भारत में विशिष्ट पहचान और लोकप्रियता प्राप्त रेशम की साड़ियाँ खरीदने के लिए बाज़ार गए।

सप्ताह का अंत, अवकाश के 3 दिन और मेरी यायावरी प्रवृत्ति मुझे खींचकर ले गयी - चेन्नै से लगभग 162 किलोमीटर दक्षिण पूर्व में बंगाल की खाड़ी के कोरोमंडल तट पर स्थित 'पुडुच्चेरी'। निश्चय ही, यहाँ की पत्थर की गलियाँ, नीला पानी और प्रचुर रूप में मिलने वाली प्राकृतिक सुंदरता आपको चकित कर देगी। यहाँ घूमने के लिए दिलचस्प स्थानों की पूरी श्रृंखला मौजूद है, जिसमें प्राचीन मंदिर और चर्च, ऑरोविले, कई संग्रहालय, धार्मिक केन्द्र और कुछ खूबसूरत सागर-तट शामिल है। परंतु मैं तो गयी थी आध्यात्म की खोज करने और शांत आत्मनिरीक्षण के लिए मानव एकता को समर्पित

ऑरोविले के पड़ोस के गाँव में स्थित, ऑरोविले ("द सिटी ऑफ़ डॉन") से बेहतर स्थान हो ही नहीं सकता। पुडुच्चेरी से 8 किमी उत्तर-पश्चिम में स्थित 20 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल में फैली एक्सपेरिमेंटल टाउनशिप ऑरोविले, जो सामुदायिक रहन-सहन के साथ दीर्घकालीन रहने के अंदाज़ को सिखाती है। आप गतानुगतिकता के परिवेश से निजात पाकर यहाँ एक अलग अनुभव को पाने के लिए जा सकते हैं। किसी एक एनजीओ में स्वंयसेवक बन सकते हैं या जैविक खेती, हस्तकला उत्पादन केन्द्र, पुस्तकालय, समुदायिक रसोई में योगदान दे सकते हैं। बड़े शहरों की हलचल से दूर यह भारत के दक्षिणी तट पर स्थित एक शांत-सा शहर है। अचूक फ्रेंच कनेक्शन, पेड़ों की कतार से सुसज्जित प्रमुख मार्ग, विचित्र औपनिवेशिक इमारतों की विरासत, आध्यात्मिक प्राकृतिक दृश्य, अंतहीन विशुद्ध और खूबसूरत समुद्र-तट और व्यंजनों के आश्चर्यजनक विकल्प के साथ विविध रेस्तरां यात्रियों को अनुभव का एक आकर्षक मिश्रण प्रदान करते हैं। पांडिचेरी के व्हाइट टाउन में स्थित श्री अरबिंदो आश्रम का नाम अरबिंदो घोष के नाम पर पड़ा, जिसकी नींव उनके द्वारा वर्ष 1926 में 24 नवंबर को रखी गई थी, जब वह राजनीति से सेवानिवृत्त हो गए थे और तत्कालीन पांडिचेरी में रहने लगे थे।

सच पूछिए, तो पर्यटन से सिर्फ़ ज़हन की गिरहें ही नहीं खुलतीं, बल्कि सामाजिक विस्तार भी होता है। सबसे खास, संस्कृति का आदान-प्रदान होता है। इसी सैर-सपाटे और घूमने के बारे में उर्दू, हिंदी और अंग्रेज़ी में गज़ल लिखने वाले मशहूर शायर जमील मलिक की निम्नलिखित पंक्तियाँ याद करते हुए, मैंने शाम के धुँधलके में वापस चेन्नै की ओर प्रस्थान किया -

"यूं तो घर ही में सिमट आई है दुनिया सारी
हो मयस्सर तो कभी घूम के दुनिया देखो"

m.wadhwa@nabard.org

एक गायब हुआ द्वीप -सेंटोरिनी

शिखा वार्ष्णेय
लंदन

The lost Atlantis – एक ऐसा द्वीप जो एक रात में गायब हो गया। इसके पीछे कई किंवदंतियाँ हैं, जिन्हें कोई साबित तो नहीं कर सका, परंतु कुछ ऐतिहासिक तथ्यों से उनके संबंध के बारे में पूरी तरह से इंकार भी नहीं किया जा सकता।

'द लॉस्ट अटलांटिस' का रहस्य दुनिया के सबसे लोकप्रिय मिथकों में से एक है। हालाँकि, कोई भी यह सिद्ध नहीं कर सका कि अटलांटिस, वास्तव में, अस्तित्व में था कि नहीं। कुछ लोग इस बात को मानते हैं कि मिनोअन सभ्यता और प्राचीन थेरा (सेंटोरिनी) की तबाही और खोए हुए अटलांटिस के बीच गहरा संबंध है। परंतु इस सिद्धांत के समर्थन में भी साक्ष्य बहुत कम हैं।

अटलांटिस के बारे में सबसे पहले यूनानी दार्शनिक प्लेटो (427-437 ईसा पूर्व) के कथन मिलते हैं। उनके अनुसार अटलांटिस के लोग हरक्यूलिस के स्तंभों (आज का जिब्राल्टर जलडमरूमध्य) से दूर एक समृद्ध द्वीप पर शांति से रहते थे, इसलिए यह माना जाता है कि अटलांटिस शायद यूरोप और अमेरिका के बीच कहीं स्थित था, शायद अटलांटिक महासागर में। हालाँकि, इस बात पर भी संदेह किया जाता है कि प्लेटो द्वारा वर्णित ऐसी उन्नत सभ्यता कभी अतीत में थी भी।

जैसा कि प्लेटो कहते हैं, अटलांटिस की कहानी मिस्र के पुजारियों द्वारा, मिस्र की अपनी एक यात्रा के दौरान सोलन को बताई गई थी। इस कहानी के अनुसार अटलांटिस के पास मूल रूप से दैवीय शक्तियाँ थीं, लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने उन्हें खो दीं। जब उनके पास केवल मानव शक्तियाँ रह गईं, तब उन्होंने अन्य समृद्ध द्वीपों से लड़कर वापस शक्ति पाने का फ़ैसला किया। उन्होंने भूमध्य सागर के चारों ओर यात्रा

की और एथेंस वासियों द्वारा पराजित होने तक कई स्थानों पर विजय भी प्राप्त की। आखिरकार, अटलांटिस के इस अहंकार पर देवता नाराज़ हो गए और उनकी सज़ा के तौर पर ओलंपियनों (ग्रीस के देवताओं) ने अटलांटिस को एक रात में नष्ट कर दिया और पीछे केवल मिट्टी का ढेर रह गया। (यह कहानी अपनी भारतीय दंत कथाओं से कितनी मिलती है न ?)

जैसा कि इतिहासकारों ने देखा है, सेंटोरिनी द्वीप पर खोजी गई अक्रोटिरी की मिनोअन बस्ती, एक विकसित बस्ती थी, जो सेंटोरिनी ज्वालामुखी के भयानक विस्फ़ोट के कारण लगभग 1,500 ईसा पूर्व नष्ट हो गई थी। इस ज्वालामुखी विस्फ़ोट की तीव्रता इतनी शक्तिशाली थी कि ईजियन सागर की सूनामी लहरें उत्तरी क्रेते के मिनोअन बस्तियों तक पहुँच गईं और नष्ट हो गईं। पौराणिक अटलांटिस के विनाश के प्लेटो के विवरण और मिनोअन अक्रोटिरी की कहानी में कई समान बिंदु हैं।

अक्रोटिरी, जो सेंटोरिनी के ज्वालामुखीय राख से ढका हुआ था, यह खोया हुआ अटलांटिस हो सकता है, जो एक रात में गायब हो गया। इसके अलावा, पुरातत्वविद् इस तथ्य को इंगित करते हैं कि प्राचीन थेरा (सेंटोरिनी) में एक समृद्ध अर्थव्यवस्था थी और मिनोअंस महान् नाविक थे, जो अन्य भूमध्यसागरीय देशों के साथ व्यापार और वाणिज्य करते थे।

इन सबके बावजूद वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला कि अटलांटिस द्वीप का रहस्य केवल एक मिथक है, जिसमें अनगिनत अनुत्तरित प्रश्न हैं। इसलिए, यह संभव है कि अटलांटिस कभी अस्तित्व में ही नहीं था।

इस खोए हुए द्वीप की कहानी कुछ-कुछ भारत की द्वारका नगरी जैसी नहीं लगती? यही नहीं ग्रीस के लगभग सभी मिथक एवं किंवदंतियाँ भारतीय मिथोलोजी और साहित्य से काफ़ी मिलती-जुलती हैं।

कुछ इसकी ऐतिहासिक विशेषताएँ थीं और कुछ इस द्वीप की बनावट और सुंदरता थी कि जब से इसके बारे में पढ़ना शुरू किया और इसकी तस्वीरें देखीं, तब से मन में, इससे रू-ब-रू होने का सपना पलने लगा था। आखिरकार वह पल आया, जब यह सपना साकार होने को व्याकुल होने लगा। बुजुर्ग कह गए हैं कि सपने ज़रूर देखने चाहिए, तभी तो उनके पूरे होने के अवसर और प्रयास बनेंगे।

सैंटारिनी आज के समय में दुनिया का सबसे रोमानी गंतव्य है। इसे 'हनीमून डेस्टिनेशन' भी कहा जाता है। परंतु मेरा उद्देश्य इसकी खूबसूरती को आत्मसात करने के अलावा इसके इतिहास में से समान कहानियाँ ढूँढने का भी था। इन कहानियों और इस द्वीप की खूबसूरती को तलाशने हम निकल पड़े। यह सैंटोरिनी था इसलिए यह यात्रा चाहे-अनचाहे कुछ विलासितापूर्ण होने ही वाली थी। मुख्यत: यह जगह आराम और आनंद के लिए ही है। अत: हमने भी सात दिनों की छुट्टियाँ लीं, एक पाँच सितारा होटल बुक किया और इसके हर्जाने स्वरूप रेयान एयर की सबसे सस्ती उड़ान से सफ़र करने का और इसका सीज़न शुरू होने से कुछ समय पहले जाने का निश्चय किया।

लंदन से सीधी सेंटोरिनी की चार घंटे की उड़ान है। इस जगह पर जहाज़ उतरने के लिए हवा में तैरने लगता है। ऊपर से ऐसा लगता है, मानो नीचे बादलों की बस्ती है जिसमें से कहीं-कहीं आसमान झाँक रहा है। सिर्फ़ सफ़ेद मकान और उनके नीले दरवाज़े और गुम्बद जैसी छत।

जहाज़ के सेंटोरिनी हवाई अड्डे पर उतरते ही एक तरफ़ समुद्र दिखता है, एक तरफ़ पहाड़ और एक तरफ़ मकान। पूरी कायनात इस कुल 76 किलोमीटर के द्वीप में सिमट आई है। पूरे सेंटोरिनी की इमारतें सफ़ेद हैं। लगता है जैसे किसी ने इस द्वीप पर चूना उड़ेल दिया है। इस सफ़ेद और नीले रंग के बारे में भी कई कहानियाँ प्रचलित हैं, जिनमें सबसे वैज्ञानिक है कि इस द्वीप पर होने वाली सूखी गर्मी से राहत के लिए मकानों को सफ़ेद रंग से पोता जाता था, क्योंकि सफ़ेद रंग ऊष्मा प्रतिरोधी होता है। बाद में, यहाँ की सत्ता ने अपने राजनीतिक एजेंडे के तहत यहाँ के सभी मकानों को सफ़ेद और नीले रंग से पोतने के लिए लोगों को विवश किया। यहाँ के झंडे में भी यही सफ़ेद और नीली पट्टियाँ हैं। हालाँकि अब इनसे इतर कुछ इमारतें हल्की गुलाबी, बादामी आदि रंगों की दिखाई देती हैं, परंतु 99% इमारतें अब भी सफ़ेद और

नीली ही हैं। कालांतर में नीले सागर के मध्य ये सफ़ेद, नीली इमारतें सुंदरता का ऐसा पर्याय बनीं कि आज इस द्वीप का मुख्य आकर्षण ही इन इमारतों की बनावट है।

हमारा होटल कमारी नाम के गाँव में था और वहाँ तक ले जाने के लिए होटल की गाड़ी हवाई अड्डे पर आ चुकी थी, जिसने बड़े आदर के साथ कुल 10 मिनट में हमें हमारे होटल पहुँचा दिया।

सेंटोरिनी पाँच द्वीपों के परिसर का एक हिस्सा है। सबसे बड़ा द्वीप सेंटोरिनी या थेरा है, उसके बाद थिरसिया एवं एस्प्रोनिसी और फिर नेआ कमेनी (नया कमेनी) और पालेया कमेनी (पुराना कमेनी) हैं। पालेया और नेआ कमेनी ज्वालामुखीय द्वीप हैं और वे निर्जन हैं। बाकि सेंटोरिनी/ थेरा और थिरसिया में छोटे-छोटे गाँव हैं। इन्हीं में से एक गाँव कमारी में हमारा होटल था। यहाँ पहुँचते ही मेरी नज़रों और मस्तिष्क ने ग्रीक और भारतीय इतिहास और संस्कृति में समानताएँ ढूँढना आरम्भ कर दिया था। इसलिए पहले ही दिन इसके सबसे पुराने शहर और सेंटोरिनी की राजधानी फिरा, जिसका पुराना नाम थेरा है, जाने का निर्णय किया गया। इसके लिए हमें स्थानीय ट्रांसपोर्ट का इस्तेमाल करना था। हालाँकि इस छोटे-से द्वीप पर घूमने के लिए टैक्सी के अलावा स्कूटर या कार किराए पर लेने का भी खास रिवाज़ है। परंतु पहले दिन हमने बस से कुछ अंदाज़ा लेने का निर्णय किया। फिर बाद में कोई और माध्यम आज़माने का। पूरे सेंटोरिनी में बस डिपो सिर्फ़ फिरा में है। कहीं भी जाना हो, तो पहले फिरा आना होगा। फिरा से ही बस मिलेगी। इसलिए कमारी से फिरा आना सबसे आसान था।

अब बस का समय पूछकर हम बस-स्टॉप पर आकर खड़े हो गए थे। यहाँ मिली अपनी संस्कृति से पहली समानता। समय की कोई पाबंदी नहीं। जैसे कहते हैं "भारतीय समयनुसार" उसी तरह यहाँ कहा जाता है "ईट्स आयरलैंड टाइम।(इट गेट्स यू, व्हेन इट गेट्स यू)। हर 15 मिनट में बस को आना चाहिए। 1 घंटा हो गया था इंतज़ार करते। आखिर बस आई और लगभग दो छोटे-छोटे गाँवों में रूकती हुई बीस मिनट में फिरा पहुँचा गई।

फिरा यानि थेरा इस द्वीप का सबसे बड़ा कस्बा है और इसकी राजधानी भी। अत: यहाँ देखने के लिए एक बहुत बड़े बाज़ार और वही सफ़ेद नीली इमारतों के अलावा एक संग्रहालय भी है। इसमें प्राचीन थेरा के अवशेषों से मिली वस्तुएँ रखी गई हैं, जो इस द्वीप का इतिहास बयान करती हैं। 15 वीं ईसा पूर्व के इस नगर की व्यवस्था और समृद्धि प्राचीन थेरा की खुदाई से निकली इन वस्तुओं से, सहज ही समझी जा सकती है। नगरीय व्यवस्था, मकानों की बनावट, बर्तन, औज़ार, संस्कृति आदि को दर्शाती हुई ये वस्तुएँ आपको उसी काल में ले जाकर बैठा देती हैं। यहाँ फिर मुझे भारतीय संस्कृति से एक समानता दिखाई देती है। इसके घरों और इमारतों की दीवारों पर बने चित्र। जहाँ उन पर स्त्रियों, उनके आभूषणों आदि के चित्र उकेरे जाते थे, वहीं 'ब्लू मंकीज' (नीले बन्दर) नामक चित्र भी बहुत प्रमुख माना जाता है। दीवार पर बने इस चित्र में नीले रंग के कुछ बंदरों को उछलते-कूदते, विभिन्न अवस्थाओं में चित्रित किया गया है। कहा जाता है कि प्राचीन थेरा के निवासी इन्हें देवता तुल्य मानते थे और इस तरह चित्रित करके व्यक्तिगत स्वतंत्रता को चित्रित करते थे। उन चित्रों को देख मुझे अपने हनुमान जी और उनकी वानर सेना याद हो आए। संग्रहालयों में रखे बर्तनों, आभूषणों आदि में भी समानता दिखाई पड़ रही थी। यह एहसास तब और भी अधिक मज़बूत हो जाता है, जब हम इस नए थेरा से कुछ दूर प्राचीन थेरा के पुरातात्विक स्थल पर जाते हैं, जहाँ इस नगर के अवशेषों को एक खँडहर के तौर पर सहेजकर रखा गया है। यह एक आर्कियोलॉजिकल साईट है। इसी से आधा किलोमीटर की दूरी पर रेड बीच एवं व्हाईट बीच हैं। इन्हें वहाँ पर मिलने वाले पत्थरों के रंग पर यह नाम दिया गया है।

दूसरा दिन हमने समुद्री यात्रा से कुछ ऐसे आकर्षणों को देखने के लिए रखा था, जहाँ समुद्री मार्ग से ही जाना संभव है। अत: इसके लिए सुबह 10 बजे हम समुद्री जहाज़ में सवार हो गए। यह जहाज़ सबसे पहले हमें एक सक्रिय ज्वालामुखी तक ले गया। वहाँ पहुँचकर हमसे कहा गया कि यहाँ से लगभग 1 घंटे की सीधी पहाड़ की चढ़ाई के बाद उस ज्वालामुखी को देखा जा सकता है। अतः जिसे जाना है, वह

जा सकता है, परंतु ठीक 2 घंटे बाद यह जहाज़ आगे की यात्रा करेगा। तब तक वापस आना है। काले पत्थरों से युक्त पहाड़ रूपी रास्ते से इस ज्वालामुखी तक जाने का और उसे देखने का मेरा मन तो बहुत था, परंतु मुझे अपने घुटनों पर तनिक भी भरोसा नहीं था। अत: अपने मन को समझाकर मैंने लावे वाले उन काले पहाड़ों की तस्वीरें लीं और उसी जहाज़ पर धूप में लेटकर इंतज़ार करने का फ़ैसला किया।

ज्वालामुखी से निकलकर अगला स्टॉप था - "हॉट स्प्रिंग"। समुन्द्र के बीच ही एक छोटा-सा कोना, जहाँ का पानी अचानक से बेहद गर्म और कत्थई रंग का है और कहा जाता है इसमें स्नान करने से काफ़ी तरह की बीमारियाँ ठीक हो जाती हैं। मुझे फिर देहरादून के पास की सहस्त्र धाराएँ याद आने लगती हैं। जहाज़ का गाइड फिर घोषणा करता है कि जहाज़ से निकलकर उस स्प्रिंग तक तैरकर (लगभग 100 मीटर की दूरी) जाना होगा। परंतु सिर्फ़ वही लोग जाएँ, जो बहुत ही अच्छे तैराक हैं। एक बार फिर मुझे अपने आप को इस आकर्षण के लिए भी खारिज करना पड़ा। यूँ यह भी बहुत अजीब-सी बात थी कि उस जहाज़ में उपस्थित किसी भी भारतीय ने इसका सहास या प्रयास नहीं किया था। बहुत-से यात्री, यहाँ तक कि कुछ बच्चे भी बिंदास तैरते हुए वहाँ तक गए और उस सल्फ़र युक्त सागर के छोटे-से अंश में दो-चार डुबकियाँ लगाकर लौट आए। अब यहाँ से इस जहाज़ ने मछुआरों के एक गाँव, थिरिसा की तरफ़ प्रस्थान किया। इस गाँव में कुल 300 नागरिक रहते हैं और वे सभी नाविक या मछुआरे हैं। परंतु समुद्री किनारे से ऊपर टापू पर, उनकी बस्ती तक जाने के लिए भी एक सौ पचास सीढ़ियाँ थीं। मन के बहुत ठेलने के बावजूद भी दिमाग ने फिर एक बार घुटनों की हालत याद दिलाई। मन को मनाया कि नहीं बेटा, तुम्हारी यह जिद ठीक नहीं। इस तरह एक बार फिर मैंने सिर्फ़ तस्वीरों से काम चलाया।

इसके बाद यह जहाज़ हमें समुद्री रास्ते से लावे पर बने द्वीप के गाँवों के दर्शन कराता हुआ वापस अपने स्थान पर छोड़ गया।

ज्वालामुखी के लावे से बने आयरलैंड को कैसे एक मुख्य रोमांटिक डेस्टिनेशन बनाया जा सकता है और कैसे सौ प्रतिशत टूरिज़्म पर रहा जा सकता है, यह सेंटोरिनी से सीखना चाहिए। कुल 13000 की आबादी, यात्रियों के आने से 2 मिलियन हो जाती है और उनके लिए इस लावे से बने द्वीप पर भी अच्छे-खासे आकर्षण बना दिए गए हैं। प्रकृति के जो चमत्कार हैं, वे अद्‌भुत हैं। मानव के दिमाग का भी कोई सानी नहीं है। जहाँ लावे से बने पहाड़ रूपी द्वीप आपको हतप्रभ छोड़ते हैं, वहीं मानव द्वारा उनपर इतना खूबसूरत निर्माण और व्यवस्था आपको बेचैन कर देती है। कवि दिनकर ने ठीक ही तो कहा है -

"रात यूँ कहने लगा मुझसे गगन का चाँद,
आदमी भी क्या अनोखी चीज़ होता है...
मनु नहीं, मनु-पुत्र है यह सामने, जिसकी
कल्पना की जीभ में भी धार होती है,
बाण ही होते विचारों के नहीं केवल,
स्वप्न के भी हाथ में तलवार होती है।
स्वर्ग के सम्राट को जाकर खबर कर दे,
रोज़ ही आकाश चढ़ते जा रहे हैं वे
रोकिए, जैसे बने इन स्वप्नवालों को,
स्वर्ग की ही ओर बढ़ते आ रहे हैं वे।"

'विपदा में से भी अवसर खोजने' और 'नींबू मिला, तो उससे शिकंजी बनाकर पी जाने' जैसी कहावतों का साकार रूप है- यह द्वीप।

यह तय है कि भूकंप और ज्वालामुखी के फटने से और समुद्री तूफ़ानों से एक दिन ये द्वीप फिर से ध्वस्त हो जाएँगे, जैसे कि पूर्व में भी हो चुके हैं। उसके बावजूद वर्तमान में इस कदर खूबसूरत दुनिया का निर्माण कर देना, सिर्फ़ स्वप्न देखने वाले मानवों के बस की ही बात है।

सेंटोरिनी में यात्रियों के आने का मुख्य समय मई से सितंबर तक का है। इस दौरान सूर्य भी अपनी पूरी कृपा यहाँ बरसाए रखता है। अक्टूबर से मार्च तक यहाँ नए सीज़न की तैयारी हेतु निर्माण-कार्य चलता रहता है। अत: यहाँ काम करने वाले अधिकतर लोग भी यहाँ सीज़न में ही, बाहर देशों से आते हैं और 6-7 महीने काम करके अपने-अपने देश

वापस लौट जाते हैं। ज्वालामुखी और यहाँ के मौसम की वजह से यहाँ की मिट्टी भी अनोखी है। अंगूर और एक अलग किस्म के चेरी टमाटर यहाँ की मुख्य पैदावार है और फ़ावा बीन्स की बेहतरीन किस्म यहाँ पाई जाती है। यह कहावत सत्य है कि इस द्वीप में पानी से अधिक वाइन है। वाइन का यहाँ एक पूरा म्यूज़ियम भी है। यह वाइन बेहद क्रिस्प और स्वादिष्ट है।

सेंटोरिनी, ग्रीस में बाकी यूरोप की अपेक्षा अधिक शाकाहारी व्यंजन उपलब्ध हैं। इसकी वजह इसका सौ प्रतिशत टूरिस्ट बेस्ड होना एवं आजकल वीगनिस्म का फ़ैशन में होना भी हो सकता है।

इसमें सबसे सुलभ, स्वादिष्ट और सस्ता है ग्रीक सलाद - टमाटर, खीरा, रंग-बिरंगी शिमलामिर्च, लैट्यूस, फ़ेटा चीज़, क्रूटन्स और जैतून के तेल के साथ कुछ स्थानीय हर्ब डालकर बनाया जाने वाला यह सलाद अपने आपमें ही पूरा एक समय का भोजन है। फिर भी भारतीय मन को रोटी की तलब हो, तो ताज़ा ग्रीक ब्रेड ली जा सकती है। उसके साथ फ़ावा, तजीकी और भुने हुए बैगन की चटनी जैसे डिप, चटनी और चोखा दोनों की आस पूरी कर सकते हैं। और तो और प्याज और टमाटर के पकोड़े भी स्थानीय डेलिकेसी हैं, जिन्हें टोमेटो बॉल या टोमेटो फ़्रिट्स कहा जाता है।

इसके अलावा पास्ता, पिज़्ज़ा, बर्गर आदि में भी शाकाहारी विकल्प हर जगह मिल रहे हैं। पेय, आइसक्रीम और फ़्रोजन योगर्ट की तो भरमार है ही, उनके फ़्लेवर भी बहुत अलग और स्वादिष्ट हैं। आइसक्रीम में ब्लैक लावा और बकलावा जैसे फ़्लेवर मैंने पहली बार यहाँ देखे।

हालाँकि इनका राष्ट्रीय व्यंजन है- 'सौवल्कि' जिसे 'गायरोस' भी कहा जाता है। पित्ता ब्रेड के अंदर आग पर भुने हुए पोर्क/बीफ़/चिकन के टुकड़े, सलाद, तजीकी और आलू के चिप्स डालकर उसका रोल बनाकर दिया जाता है। एक रोल में ही सम्पूर्ण भोज्य तत्त्वों से पूर्ण यह व्यंजन यहाँ सबसे अधिक सुलभ और लोकप्रिय है, जो हर छोटी दुकान और बड़े-से-बड़े रेस्टॉरेंट में हर समय मिलता है।

कहने का आशय यह है कि मीट और समुद्री व्यंजन खाने वालों के लिए बेशक यह जगह किसी पैराडाइज़ से कम नहीं, परंतु शाकाहारी यात्रियों के लिए भी यहाँ काफ़ी कुछ हैं, जो पसंद किया जा सकता है। फिरा के एक रेस्टॉरेंट में खाने के बाद हमें एक छोटे-से क्रिस्टल के गिलास में एक पेय निःशुल्क परोसा गया। कहा गया कि यह खास पेय पाचन के लिए है और मस्तिखा नामक एक खास पेड़ से बनाया जाता है। बहुत थोड़े अल्कोहॉल की मात्रा के साथ बनाए गए इस पेय का स्वाद मुझे कुछ-कुछ सौंफ से मिलता-जुलता लगा। मुझे फिर भारत में खाने के बाद सौंफ या पान देने के रिवाज़ की याद आई।

यहाँ ज्यादातर रेस्टॉरेंट्स के बाहर एक व्यक्ति खड़ा रहता है, जो आवाज़ लगा-लगाकर और यात्रियों को रोक-रोककर अपने रेस्टॉरेंट की खासियत बताता है और वहाँ आने का निमंत्रण देता है।

हम रात के खाने के लिए जगह तलाश रहे थे, ऐसे ही एक बड़े अच्छे से रेस्टॉरेंट के आगे खड़े एक व्यक्ति ने बुलाया - "यह हमारे अपने परिवार का रेस्टॉरेंट है, यहाँ मेरी बीवी ही खाना बनाती है, आइए"

हमने उनका मेन्यू देखा। हमें कुछ बहुत हल्का और शाकाहारी खाना था। यह सोचकर कि और कुछ नहीं, तो ताज़ी ब्रेड तो मिल ही जाएगी, हम उसी 'ब्लैक स्टोन' नामक रेस्टॉरेंट में खाना खाने बैठ गए।

बैठते ही एक युवक आया - "मेन्यू यह है, आप आराम से देखिए, बस मैं एक बात कहना चाहता हूँ कि यह 'टोमेटो फ़्रिटर्स' मेरी माँ दुनिया में सबसे अच्छे बनाती हैं। मैं वादा करता हूँ, इससे अच्छे आपको कहीं नहीं मिलेंगे, मेरे फ़ेवरिट हैं, बहुत-बहुत स्वादिष्ट" बड़े ही जोश में यह कह कर और मेन्यू पकड़ाकर वह चला गया।

हम तीन दिन से टमाटर के पकोड़े खा रहे थे, अब खाने के मूड में नहीं थे। हमें कुछ सलाद और आलू के चिप्स मँगवाने थे, परंतु उसकी आँखों में अपनी माँ के लिए वे गर्व के भाव देखकर मैंने कहा - "चलो ठीक है, टमाटर के पकोड़े भी ले आओ।" सुनते ही वह एकदम छोटे बच्चे की तरह उछलते हुए रसोई की तरफ़ भागा और चिल्लाकर बोला - "ममा,

टोमेटो फ़्रिटर्स" - उसकी आवाज़ में खुशी और उत्साह मैं सुन सकती थी।

वह खाना लाया और मेज़ पर रखकर दूर जाकर खड़ा हो गया और टुकुर-टुकुर उत्सुकता और बेचैनी भरी नज़रों से हमें देखने लगा। मैंने इशारे से उसे कहा - 'बहुत अच्छे हैं, अपनी माँ को बता दो।' उसने अपने दिल पर हाथ रखकर संतोष की गहरी साँस ली और "अभी ममा को बताता हूँ" कहकर तुरंत फिर रसोई में जाकर बड़ी जोश भरी आवाज़ में हमारी बात बोल आया।

मुझे नहीं पता कि वह खाना वाकई इतना अच्छा था या नहीं। वे पकोड़े वाकई दुनिया के सबसे स्वादिष्ट टोमेटो फ्रिटर्स थे या नहीं। परंतु अपनेपन का छौंक लगा वह खाना आत्मा को तृप्त करने वाला अवश्य ही था।

उस युवक का व्यवहार, उस परिवार की एकता और वह पारिवारिक प्रेम से भरा वातावरण, आप कहीं भी चले जाएँ, मनुष्य इस एहसास से हमेशा जुड़ा हुआ महसूस करता है।

यह परिवार अल्बानिया से ग्रीस काम करने आया है और माता, पिता और बेटा मिलकर यह रेस्टॉरेंट चलाते हैं। सीज़न के 6-7 महीने वे काम करते हैं और तीन महीने अपना वक्त परिवार के साथ या बाकी कामों में बिताते हैं और फिर नए सीज़न की तैयारी में जुट जाते हैं। मैंने एक फ़ोटो के लिए उससे पूछा, तो वह तुरंत अपनी माँ को बुला लाया और दोनों ने निहाल होते हुए तस्वीर खिंचवाई।

चौथा दिन हमें कमारी में ही आराम करने के लिए रख लिया। असल में, मौसम विभाग ने भी बारिश का ऐलान किया था और दो दिन काफ़ी पैदल चलने के कारण पाँवों को भी राहत की आवश्यकता महसूस होने लगी थी। अत: अगले दिन सेंटोरिनी का मुख्य आकर्षण – इआ की तरफ़ रुख करने से पहले हमने थोड़ा-बहुत कमारी के काले बीच पर चहल कदमी करने और अपने पाँवों की मरम्मत करने का फ़ैसला किया।

और यह है इआ - रोमांटिक जोड़ियों का स्वर्ग।

सफ़ेद गुफ़ा जैसे आलिशान मकान, कमरे का दरवाज़ा खोलते ही, छज्जे पर अपना व्यक्तिगत, छोटा-सा, फ़िरोजी रंग से झलकता तरणताल और सामने से निहारता, गहरा नीला एजियन सागर।

सेंटोरिनी द्वीप का यह सबसे खूबसूरत गाँव है। कुल डेढ़ हज़ार निवासियों वाले इस गाँव में सुंदरता जैसे बिखरी हुई है। आप कहीं भी खड़े हो जाइए, वहाँ से आपको एक खूबसूरत नज़ारा देखने को मिल जाएगा।

प्रकृति मंत्रमुग्ध करती है और मानवीय मस्तिष्क की कल्पना और उसका क्रियान्वयन अचम्भित करता है। 1956 के एक भूकंप में इसका एक हिस्सा खत्म हो गया था। परंतु आज भी ज्वालामुखी के लावे से बने पहाड़ों पर गुफ़ा रूपी होटल और मकान उसी तरह खड़े हैं। पहाड़ के कोने तक बने मकान और बस नीचे सागर और इन्हीं किनारों से अस्त होता हुआ सूर्य, यही आकर्षण हैं इस गाँव के। सीढ़ियाँ-ही-सीढ़ियाँ और इनके दोनों तरफ़ बने खूबसूरत कैफ़े, रेस्टॉरेंट्स और दुकानें। जहाँ ग्रीक संस्कृति से जुड़े हुए व्यंजन, परिधान, आभूषण, सजावट की वस्तुएँ आदि मिलती हैं और रास्तों पर सिर्फ़ फ़ोटो खींचते, खिंचवाते, यात्री होते हैं। कहीं भी और कुछ भी इतर नहीं मिलता। न ही मैक डोनाल्स, पिज़्ज़ा हट जैसे चैन जॉइंट्स, न ही समुद्री किनारों पर बने हुए बड़े-बड़े वाटर पार्क। शायद इसलिए यह जगह दुनिया में सबसे अलग है और सबसे प्रसिद्ध और खूबसूरत।

सेंटोरिनी द्वीपसमूह में पाँच द्वीप हैं, जिनमें से सबसे बड़ा थेरा, जिसे आजकल फिरा कहा जाता है, जिसका क्षेत्रफल 73 किमी है और इसकी जनसंख्या लगभग 15,500 है।

प्राचीन ग्रीक इआ, प्राचीन थेरा/ फिरा के दो बंदरगाहों में से एक था और यह द्वीप के दक्षिण पूर्व में स्थित था, जहाँ अब कमारी है, जहाँ हमने अपना अड्डा बनाया हुआ था। वर्तमान इआ से पूर्व इआ (कमारी) अब बीस किलोमीटर है।

पूरा सेंटोरिनी, सड़क मार्ग द्वारा, बस, कार या स्कूटर से आप ढाई घंटे में कवर कर सकते हैं।

एक ज्वालामुखी के लावे से बने द्वीप पर एक आधुनिक और सबसे खूबसूरत गंतव्य बनाना आसान कार्य नहीं। आज भी यहाँ सामान ढोने के लिए गधों का इस्तेमाल किया जाता है और पूरे ग्रीस में इन गधों के सुविनियर हर दुकान में मिल

जाते हैं। इसके अलावा भी बहुत-सी समस्याएँ हैं। पूरे द्वीप पर सिर्फ़ एक अस्पताल है और हर गाँव में सिर्फ़ एक स्कूल। स्कूल के बाद की पढ़ाई के लिए पूरे द्वीप पर एक भी कॉलिज नहीं है। शायद इसलिए यहाँ की रिहायशी आबादी बहुत कम है। बच्चे तो इक्का-दुक्का ही दिखते हैं। यहाँ तक कि अधिकांश होटल सिर्फ़ वयस्कों के लिए हैं, जहाँ बच्चे लाने की अनुमति ही नहीं है। ड्रेनेज सिस्टम और पानी की समस्या भी है। कुछ अति आधुनिक जगहों को छोड़कर बाकी सभी जगह टॉयलेट ब्लाक हो जाने की वजह से इनमें टॉयलेट पेपर डालना भी मना है। इसके लिए वहाँ एक बंद डिब्बा रखा होता है, जिसे रोज़ सुबह शाम खाली करके साफ़ किया जाता है। इस सबके बावजूद भी यात्रियों को कहीं कोई असुविधा और समस्या नहीं होती। स्थानीय लोग हों या वहाँ काम करने वाले, सभी बेहद प्यारे, मददगार और विलक्षण हास्य-बोध से भरे लोग हैं। यह द्वीप बेहद खूबसूरत और विस्मयकारी है।

shikha.v20@gmail.com

तारीफ़-पे-तारीफ़

अशोक व्यास
मध्य प्रदेश, भारत

आज मेरी प्रकाशित रचना मैंने सोशल मीडिया और कई ग्रुपों में डाली। साथ ही, यूट्यूब चैनल को भी चालू कर दिया, लेकिन तारीफ़ के तूफ़ान को छोड़ो लाइक का एक पत्ता भी नहीं हिला। शेयर की हल्की-सी सुरसुराहट भी नहीं हुई। सब्सक्राईब्स की सुनामी नहीं आई और बधाई की वाही-तबाही नहीं मची। कुल मिलकर बड़ी सूनी-सूनी सी ज़िंदगी है। कलाकार हो, साहित्यकार हो, खिलाड़ी हो या नेता हो, उन सबको तारीफ़ चाहिए, बिना नागा चाहिए और इतनी चाहिए कि बार-बार हो, लगातार हो तारीफ़-पे-तारीफ़ नहीं हुई, तो एक्स्पोज़र का क्या फ़ायदा। तारीफ़ 'आई सी यू' में भर्ती मरीज़ की ऑक्सीजन है, च्यवनप्राश है, गिज़ा है। हर व्यक्ति ध्यान चाहता है कि उस पर ध्यान दिया जाए, जिसके लिए वह कई जतन करता है, उल-जलूल हरकतें करता है और इन हरकतों के कारण कभी-कभी गिनिज वाले रिकॉर्ड भी बन जाते हैं, जिसके लिए वह अपनी जान तक को दाँव पर लगाता है। जनता-दर्शक-पाठक तालियाँ बजाकर उत्साह बढ़ाते हैं, तारीफ़ करते हैं, तब जाकर उसे चैन मिलता है। लेकिन कई बार कुछ भी कर लो, लोग ध्यान ही नहीं देते हैं। तब वह उटपटांग हरकतें करता है। नाक में भौंहों में और चीभ पर बाली पहनता है। शरीर के विशिष्ट अंग पर टैटू बनवाता है और जाने क्या-क्या करता है। मंच पर कविता पढ़ने वाला तारीफ़ के लिए स्टेंडअप कामेडीयन की तरह बोल्ड एंड ब्यूटीफ़ुल चुटकुले सुनाने लगता है। जनता भी ज़ोर-शोर से ताली बजाती है, तब उसकी साँस-में-साँस आती है।

कलाकार और रचनाकार के लिए तारीफ़ की कोई सीमा तय नहीं होती, जितनी मिले कम पड़ती है। कई बार तो झूठी प्रशंसा में भी मज़ा आने लगता है। प्रशंसा करने वाले की मंशा क्या है, ऐसी छोटी-छोटी बातों पर तारीफ़ के इच्छाचारी को ध्यान नहीं देना चाहिए। तारीफ़ वह स्टेरॉयड है, जो किसी कमज़ोर में भी शक्ति का संचार कर सकती है, मुर्दों में भी जान डाल सकती है। तारीफ़ वह हवा है, जिसे भरने पर कोई भी फूलकर कुप्पा हो सकता है। उसके बाद वह फूला-फूला और खिला-खिला फिरता है। जब तक उसके फूलेपन पर आलोचना की अगरबत्ती न लगा दे। हालाँकि कई लोग इस मामले में बड़े पॉज़िटिव होते हैं। वे बदनामी को भी सकारात्मक लेते हैं। उनका मानना है कि बदनाम हुए, तो क्या हुआ हमारे नाम को आगे बढ़ाने में कुछ सहयोग ही दिया है, इसलिए वह भी धन्यवाद का पात्र है। कई होते हैं, जो बेशर्मी से चमड़ी को इतनी मोटी बना लेते हैं कि किसी भी आलोचना का असर उनपर नहीं होता है या यूँ कह लें कि वे अपमान जैसी टुच्ची बातों से ऊपर ऊठ चुके हैं। बल्कि उसे भी सकारात्मक रूप से लेते हैं कि बस नाम होना चाहिए, भले ही बदनाम हो जाए, क्योंकि उसमें भी नाम जुड़ा हुआ है।

हमारे शहर के एक अख्यात वार्ड प्रतिनिधि थे, जो पार्टी के हर कार्यक्रम में बढ़चढ़ कर हिस्सा लेते थे ज़रूरत पड़ने पर गला फाड़कर ज़िंदाबाद-मुर्दाबाद के नारे भी लगाते थे। लेकिन पार्टी नेताओं में उनकी पूछ-परख नहीं थी, क्योंकि पार्टी में उनका कोई गॉडफ़ादर नहीं था। पहले कैंडिडेट का फ़ॉर्म रद्द होने से डमी केंडीडेट के कारण जीत गए। इस मामले में वे किस्मत के धनी थे। इसलिए पार्टी में इतनी सक्रिय भूमिका होने के बावजूद भी वे कहते रहते थे कि यार कुछ भी कर लूँ, लेकिन अगले चुनाव में टिकट मिलना मुश्किल है। तब वह अपने राजनीतिक गुरु के पास गए और उन्हें गुरु ने गुरु-ज्ञान दिया। इसके कुछ ही दिनों बाद एक महिला ने उन पर बलात्कार का आरोप लगा दिया। पुलिस में रिपोर्ट डाल दी, फिर तो पेपरों में और टीवी में छा गए। बच्चे से लेकर पार्टी के बड़े-बूढ़ों की ज़ुबान पर बस उनका ही नाम था। पूरी पार्टी उनके बचाव में आ गई और यह तय हो गया कि इतने लोकप्रिय जनप्रतिनिधि का अगले चुनाव में

टिकट पक्का है, तो कई बार बदनामी भी तारीफ़ का कारण बन जाती है। इसी प्रकार जब हम कोई रचना सुनते हैं, खेल या फ़िल्म देखते हैं, उनको देखकर उनके रचना-कर्म को, कलाकारी को और खेल को देखकर जब तालियाँ बजाती हैं, वहीं तालियाँ उनके लिए अगली फ़िल्म या टीम में सिलेक्शन का और रचनाकार को पुरस्कार मिलने का द्वार खोल देती हैं। तालियाँ वह गरजता-बरसता तेज़ पानी है, जिसके ऊपर तारीफ़ों का पुल बनता है। जिसपर चलकर बंदे को एवरेस्ट फ़तेह करने जैसा कुछ-कुछ एहसास होने लगता है। अपनी श्रेष्ठता पर उसका भरोसा बढ़ने लगता है। जो थोड़ा-बहुत शक अंतरात्मा-शुबहा की आवाज़ सुनने के कारण होता भी है, तो वह भी तालियों और तारीफ़ों के शोर में डूब जाती है। तारीफ़-पे-तारीफ़ ऐसे बरसनी चाहिए जैसे सावन की झड़ी लगती है। यह बात अलग है कि आजकल प्रत्येक मौसम बेईमान हो गया है, इसलिए सावन की झड़ी कम ही लगती है। इसी प्रकार तारीफ़ करने में भी लोग कंजूस हो गए हैं, जैसे उनकी जेब से पैसे खर्च हो रहे हैं और करेंगे भी तो बदले में वह भी आपसे तारीफ़ चाहेंगे जैसे तारीफ़ कोई खुजली है कि तू मेरी पीठ खुजा मैं तेरी पीठ खुजाऊँ। यार यह क्या बात हुई तारीफ़ कोई एक्सचेंज ऑफ़र है क्या? हवा के बदले क्या हवा करने लगे? पानी के बदले पानी बरसाए? यह सब तो प्रकृति प्रदत्त हैं? इसी प्रकार तारीफ़ भी प्रकृति प्रदत्त है? बस आपको ज़बान हिलाना है। तारीफ़ के बदले में आप भी तारीफ़-पे-तारीफ़ चाहते हैं, तो ठीक है कर देंगे हम भी, जब ज़रूरत होगी। लेकिन वैसी कुव्वत तो पैदा करों। आप यदि कोई यू ट्यूबर हैं, चैनल पर बैठकर किसी को भी गाली देने का हुनर आपमें है, बिग बॉस में जाने की हैसियत है, धर्म और राष्ट्र को कोस सकते हैं, कोई ब्लॉगर हैं, उलजलूल शब्दों का उपयोग करने वाले रैपर हैं या इसी टाइप की योग्यता रखने वाले सेलिब्रिटी हैं, तो आपको तारीफ़-पे-तारीफ़ मिल सकती है। वरना आप भी मामूली आम आदमी कहलाएँगे, जिसके लिए तारीफ़ करने से किसी की भी ज़बान घिस सकती है। आम आदमी की तारीफ़ तो सिर्फ़ चुनाव के समय याद आती है। इसलिए तुम्हारी तारीफ़-पे-तारीफ़ हम चुनाव आने पर करेंगे और भैया आम आदमी तुम बिल्कुल मत घबराना। हिंदुस्तान में चुनाव का मौसम सदा जवान रहता है। अतः तुम्हारे हिस्से की तारीफ़ तुम्हें मिलती रहेगी।

akvyas1404@gmail.com

गिद्धों का गुस्सा

डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'
दिल्ली, भारत

एक हिंदी मीडिया न्यूज़ चैनल की रिपोर्ट को देखकर गिद्धों में बहुत आक्रोश छा गया। गिद्धों का एक प्रतिनिधिमंडल वयोवृद्ध गिद्धराज के पास पहुँचा। गिद्धराज ने उनका स्वागत किया। नाश्ता-पानी करवाने के बाद पूछा - "कहिए, आपका कैसे आना हुआ?" प्रतिनिधिमंडल के एक युवा गिद्ध ने आक्रोश भरे स्वर में कहा - "महाराज! मर्यादाहीन मनुष्य ने अपनी सारी नैतिकता, शर्म-हया, संस्कार सब बेच खाए हैं। आज तो उसने सारी सीमाएँ पार कर दीं। हमने अभी-अभी टीवी पर हिंदी न्यूज़ चैनल की एंकर को चिल्लाते हुए सुना। महाराज, वह कह रही थी कि कालाबाज़ारी करने वाले गिद्धों को जेल की सलाखों के पीछे पहुँचा कर ही दम लेंगे।" अभी पहले की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि दूसरा गिद्ध अवरुद्ध गले से बोल उठा - "महाराज, हमें प्रकृति ने मरे हुए जीवों का माँस खाने का काम सौंपा है। हम ऐसा करके धरती पर मरे हुए जीवों से फैलने वाली बीमारियों को रोकते हैं। हमारे इस पुण्य-कार्य को इन दुष्ट मानवों ने गलत तरीके से पेश किया है।" वयोवृद्ध गिद्धराज की समझ में कुछ नहीं आया। उन्होंने कहा - "साफ़-साफ़ शब्दों में कहो कि हुआ क्या है। यह गोल-मोल पहेलियाँ मत बुझाओ।" प्रतिनिधिमंडल का एक और सदस्य कहने लगा -

"महाराज सुनिए! इन दिनों भारत में मनुष्य द्वारा प्रकृति पर किए जा रहे अत्याचारों के परिणामस्वरूप कोरोना वायरस की एक महामारी फैली हुई है। धरती के और भी कई देश इससे प्रभावित हुए हैं, परंतु भारत में तो पिछले दिनों इस महामारी ने हाहाकार मचा दिया। इस कारण जान बचाने वाली बहुत-सी दवाइयों, ऑक्सीजन सिलेंडरों, अस्पताल में बिस्तरों और खानपान में ज़रूरी चीज़ों की भारी माँग पैदा हुई। संकट के इस दौर में अपने आप को नैतिकतावादी, मानवतावादी, परोपकारी, दयालु और संवेदनशील कहने वाले भारतीयों ने एक-दूसरे की सहायता करने की बजाए इन चीज़ों की कालाबाज़ारी शुरू कर दी। इन सभी ज़रूरी चीज़ों के दाम दुगने-तिगुने नहीं, बल्कि सौ-दो सौ गुना तक बढ़ा दिए। चारों तरफ़ धोखाधड़ी, लूटपाट और नोच-खसोट शुरू हो गई। इंसानियत के नाम पर हैवानियत करने वाले इन दुष्टों को हिंदी मीडिया न्यूज़ चैनल ने गिद्ध कहकर हम सबका अपमान किया है। आप तो जानते ही हैं महाराज कि हम गिद्ध किसी जीवित प्राणी का माँस नहीं नोचते, कभी किसी ज़िंदा प्राणी को नहीं मारते, केवल मरे हुए प्राणियों को ही खाते हैं।...." उसकी बात को बीच में काटते हुए एक युवा गिद्ध गुस्से से चिल्लाया - "महाराज, हमें आदेश दीजिए कि हम इन इंसानों से अपने अपमान का बदला ले सकें। अपने आप को बहुत बुद्धिमान, समझदार और विवेकशील कहलाने वाले ये इंसान तो गिद्ध कहलाने के भी लायक नहीं हैं।"

वयोवृद्ध गिद्धराज महाराज को अब सारी बात समझ में आ गई। उन्होंने प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों का क्रोध शांत करते हुए उन्हें समझाया - "मैं आप सबकी बातों से पूरी तरह सहमत हूँ। हम गिद्धों के भी कुछ सिद्धांत हैं। हम प्रकृति के नियम-कानून को मानते हैं। लाखों सालों से हम मरे हुए प्राणियों का माँस खाकर धरती के पर्यावरण को शुद्ध करने के लिए सफ़ाई कर्मचारी की भूमिका निभा रहे हैं। हमारे इस महत्त्वपूर्ण कार्य को यह कृतघ्न मनुष्य कभी नहीं समझ सके। हमारा ही क्या, इन दुष्ट और बर्बर मनुष्यों ने तो कुत्ते, गाय, गधे, बैल जैसे सीधे-सादे, परिश्रमी सच्चे जीवों का भी महत्त्व नहीं समझा और उन सबको अपमानजनक गाली या बेकार प्राणी के रूप में प्रयोग किया। और-तो-और नदी, वृक्ष, पर्वत, मिट्टी, हवा तक को भी प्रदूषित और नष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। आज मनुष्यों की जो दुर्दशा हो रही है, वह उन्हीं के कुकर्मों का परिणाम है। मनुष्य यह जानते हैं कि वे जो बीजेंगे, वही काटेंगे, फिर भी उन्हें छोटी-छोटी बातें समझ नहीं आ रही हैं। हमारी प्रकृति माँ उन्हें अपने बच्चों की तरह पालती-पोसती है, किंतु जब ये मनुष्य उसके साथ ही अति करने लगते हैं, तब प्रकृति माँ उन्हें समझाने के लिए भूकंप, बाढ़, सुनामी, भूस्खलन, आँधी, तूफ़ान, बवंडर आदि के रूप में हल्की-सी चपत लगा देती है। अगर यह महामूर्ख मनुष्य प्रकृति की चेतावनी को अभी भी नहीं समझा, तो शीघ्र ही इसे बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ेगी। तब इसके पास पश्चाताप के अलावा कोई रास्ता नहीं बचेगा। आप लोग धैर्य बनाए रखें। मैं आपकी शिकायत प्रकृति माँ तक पहुँचा दूँगा, वहीं इन दुष्टों को कोई दंड देंगी।" यह कहकर वयोवृद्ध गिद्धराज शांत हो गए। प्रतिनिधिमंडल ने उनकी बातों की सहमति में सिर हिलाया और सभा समाप्त हो गई।

drrvshrma@gmail.com

कथा बुड्ढी भटियारिन व काग-मंजरी की

यशवंत कोठारी
जयपुर, भारत

एक गाँव था। गाँव के बाहर थी, एक धर्मशाला याने कि सराय रोहिल्ला, जो काले खाँ के बगल में थी। जहाँ आते-जाते बटोही रात को ठहरते और सुबह उठकर चले जाते। धंधा चौखा चल रहा था।

ऐसे ही एक दिन भटका हुआ एक यात्री आया। भटियारिन ने उसे खिला-पिलाकर ठहराया। जातरू सोने से पहले हुक्का पीने भटियरिन के पास आया। हुक्के का कश खींचा और बोला -

"हे शहर की मल्लिका, कोई ताज़ा किस्सा बयान कर, ताकि रात कटे, कुछ थकान मिटे।"

भटियारिन खूब खेली खाई हुई थी, वह बोली -

"हे राजा, आज मैं तुम्हें काग-मंजरी की कथा सुनाती हूँ। समय पर हुंकारा भरना। तुमने हुंकारा बंद किया, तो किस्सा, कथा, कहानी सब बंद। सो प्रेम से सुन और गुन।"

फिर शुरू हुई कथा काग-मंजरी की, जो सब को बहुत पसंद आई।

काग-मंजरी अत्यंत महत्वाकांक्षी औरत थी। उसका मन था कि किसी अति-महत्वाकांक्षी पुरुष रूपी घोड़े की वल्गाएँ पकड़ में आ जाए, तो मज़ा आ जाए। लेकिन इस शहर में घोड़े कम और गधे ज्यादा थे। किसी एक की होकर काग-मंजरी का जीवन कटना मुश्किल था। वैसे भी, दिल्ली तो बेवफ़ा प्रेमिका की तरह है। हर बार उजड़ती है, हर बार बस्ती है। कभी किसी एक की होकर नहीं रहती है। सो, उसने अपने घर-परिवार को छोड़ा और माया नगरी का रुख किया। माया नगरी में सब सियार शेर की खाल ओढ़े घूमते पाए गए, कई दिनों तक तो काग-मंजरी को यह खेल समझ ही नहीं आया। नशे-पते के जीव न मरे, न जीवे। जातरू ने हुक्के का कश ज़ोर से खींचा, उसे खाँसी आई, भटियारिन ने उसे पानी पिलाया और बाकी का किस्सा कल पर छोड़ दिया। जातरू सोने चला गया। भटियारिन ने एक लंबी साँस खींची और अपने पुराने भूगोल और इतिहास को याद किया और सर तकिये पर टिका दिया। नींद अभी दूर थी।

उसे मुगल सल्तनत के दिन याद आए। उसकी नानी और दादी चावड़ी बाज़ार में राज करती थीं। समय बदला, हिंदुस्तान आज़ाद हुआ और लाल किले पर तिरंगा फहराने लगा। लेकिन ज़िंदगी में कुछ भी खास नहीं बदला। गरीब, गरीब ही रहा और अमीर और भी ज्यादा अमीर होता चला गया। बादशाहों और बेगमों का राज गया, ब्रितानी हुकूमत आई और अब ये देसी हुकूमत, कहीं कुछ नहीं बदला। गालिब की गली और भी ज्यादा तंग और भीड़-भरी हो गई। मगर ज़िंदगी हसीन होने के बजाय और भी कमतर होती चली गई। पुराने किस्से हों या नए सब का नतीजा यह कि रोटी के लिए पाप किए जाओ। औरत का वजूद किसी को पसंद नहीं आया, देह के परे कोई उपयोग नहीं। पति हो या प्रेमी या बाज़ार, बस एक ही उपयोग।

उसे नींद आ गई। मुर्गे की बांग से नींद खुली। सुबह का मंजर सुहाना था, मगर जल्दी ही शहर जग गया और दौड़ने लगा। जातरू अपने काम पर चला गया।

शाम को फिर महफ़िल जमी। भटियारिन ने काग-मंजरी के किस्से को आगे बढ़ाया।

"कहो बांके! कैसा रहा दिन?"

"क्या बताएँ बाज़ार और सियासत में तो आग लगी हुई है। शराब-शबाब और नकदी तीनों लगते हैं, तो कुछ काम होता है, बाकि तो सब लाल-किला का भाषण है। हर सरकार पिछले वाली को गाली देकर काम चला रही है।"

"छोड़ो यह सब! तुम तो काग-मंजरी का किस्सा आगे बढ़ाओ और हाँ! ज़रा यह हुक्का इधर दो, आग तेज़ करो, सुनने वालो, कान धरकर सुनो। हुंकारा भरते रहना, हुंकारा बंद, किस्सा बंद।

भटियारिन ने हुक्के को आग दी। किस्से को आवाज़।

यारों वे भी क्या दिन थे, जब काग-मंजरी के पेशाब में दीये जलते थे। साउथ ब्लॉक और नार्थ ब्लॉक तक उसका जलवा था। मगर कलमुहीं अपना मुँह बंद रखना न सीखी। सो, एक रात एक अरबपतियों की पार्टी में फँस गई। गोली चली, वह तो बच गई, मगर चलाने वाले ने साफ़ कह दिया – "शहर छोड़ दो, नहीं तो दुनिया छोड़नी पड़ेगी।" वैसे भी रात के अँधेरे में अरबपति किसी पर भी गाड़ी चढ़ा सकता है। कोई सुनने वाला नहीं, अखबार और चैनल वाले रो-पीटकर चुप हो जाते हैं। पुलिस की अपनी मजबूरियाँ होती हैं, सो काग-मंजरी ने अपना जमा-जमाया रुतबा छोड़ा और माया नगरी की राह पकड़ी। जातरू ने लंबा हुंकारा भरा, मगर खर्राटे की आवाज़ आई, भटियारिन ने किस्सा बंद कर दिया।

पूरब की ओर लालिमा से शहर की भोर हुई। दिन ढला, फिर महफ़िल जमी, इस बार किस्सा काग-मंजरी के मुंबई दरबार से शुरू हुआ।

काग-मंजरी जवान थी, शातिर थी और महत्वाकांक्षी थी। बस करना यह था कि कुछ अच्छे घोड़े ढूँढना और उनकी सवारी करनी थी। उसे विश्वास था सब ठीक होगा।

काग-मंजरी ने एक बड़े हीरो के सचिव को पटाया और वह महलनुमा बंगले में घुस गई। हीरो तक पहुँच हो गई, बाकी का काम हुस्न ने कर दिया, दोनों तरफ़ से लटकों-झटकों का आदान-प्रदान हुआ। दोनों ने जाल फेंके, दोनों एक-दूसरे के जाल में फँस गए। हीरो की पत्नी को सब कुछ दिखा, मगर यहीं सब तो वह भी करके यहाँ तक पहुँची थी।

प्रेम-वासना, पैसा-शोहरत सब कुछ ऐसे ही नहीं मिलता, त्याग और समझौते सब करने पड़ते हैं। सफलता का रास्ता बेडरूम से ही होकर निकलता है।

हीरो के सहारे काग-मंजरी ने एक प्रोडूसर और एक फ़ाइनेंसर को भी फाँस लिया। अब उसका सर कढ़ाही में व चारों अँगुलियाँ व एक अंगूठा घी में। मुहावरा उल्टा इसलिए लिखा कि वहाँ सब काम उल्टे तरीके से ही होते हैं।

भटियारिन ने एक ठंडी साँस खींची। जातरू ने हुक्का पकड़ा और लंबा हुंकारा भरा, फिर क्या हुआ अम्मा?

वहीं हुआ जो खुदा को मंज़ूर था। हीरो के घर ड्रग्स मिली। वह पकड़ा गया। एक रायफ़ल मिली। हीरो के कनेक्शन गजब के थे, उसने सब अपराध का ज़िम्मेदार काग-मंजरी को बताया। काग-मंजरी के पास हुस्न के सिवाय क्या था, नहीं चला। केस चला और काग-मंजरी चक्की पिसिंग, पिसिंग एंड पिस्सिंग।

रात बहुत हो गई, जाओ सो जाओ।

भटियारिन की आँखों से आज भी नींद दूर थी, क्योंकि काग-मंजरी उसकी ही बेटी थी, लेकिन सियासत के गलियारों में कोई सुई तक न गिरी। कहते हैं कि काग-मंजरी जेल में ही सड़-सड़कर मर गई। ऐसे बुरे दिन किसी के न आए प्रभु। करम का लेखा मिटे ना रे। भटियारिन ने एक लंबी साँस खींची और खुद से बोली -

यारों! जब महफ़िल में हम न होंगे तब हमारे अफ़साने होंगे। कल फिर शाम होगी, कल फिर महफ़िल सजेगी, मगर अफ़सोस आपकी महफ़िल में हम न होंगे, हमारे अफ़साने होंगे, आमीन।

काके लागूं पाय

शर्मिला चौहान
महाराष्ट्र, भारत

अपनी इकलौती सफ़ेद कमीज़ पहने, कंघी से बालों को लच्छेदार बनाते हुए अच्छे लाल ने पत्नी से कहा - "आज का दिन शुभ है, हमारे सितारों का भाग्यांक प्रतिशत बहुत बढ़िया है। लाओ नाश्ता करके चलूँ, देखें कुछ काम आज बन भी जाए।" उनका बोलना खत्म होने के पहले ही पत्नी उमा ने दो रोटियाँ गुड़ की डली के साथ प्लेट में धर, सामने पटक दिया।

"काम से तो तुम्हारा नाता नहीं है, नाता तो बस हमारे से जोड़ लिया। माथा खराब था हमारे बाप का, जो तुम्हारे टूटे-फूटे बड़े घर को देख ब्याह गए।" छिली फटी दीवारें, बोझ से दबी कराहती दिखतीं ईंटों की ओर अँगुली दिखाती हुई उमा बिफर पड़ी।

"अरे, अब जा ही तो रहे हैं। तुम भी बस भरी पड़ी रहती हो, शत्रु दिखा नहीं कि तोप बरसाने को तैयार।" सूखी रोटी और गुड़ देखकर अच्छे लाल ने बिना खाए जाने में ही भलाई समझी।

"पाय लागूं अम्माँ।" आँगन में बैठी, धूप का आनंद लेती अम्माँ के चरणों को अच्छे लाल छूने लगा।

"हमाए पाय काहे लग रहे बेटवा, जाओ उसके लगो, जिसे ब्याह कर हमाए सिर मढ़ गए तुमहाए बापू।" अम्माँ ने बुरा-सा मुँह बनाया और अपने पैर सिकोड़ लिये।

अच्छे लाल ने बरामदे में लटकी बड़ी दीवार घड़ी को देखा, चम्मच-सा काँटा दोनों कोनों के बीच नाच रहा था। कमरे की चौखट से उमा घूर रही थी और आँगन में अम्माँ।

बात ऐसी है कि घरवालों की कद्र नहीं थी, अच्छे लाल की अच्छाइयों की। उनकी साख तो बाहर वालों में ज़बर्दस्त थी। उनके बिना तो पूरा मोहल्ला निष्प्राण रहता।

चाय की टपरी पर अच्छे लाल की बिरादरी का मजमा लगा हुआ था।

"आओ-आओ, अच्छे भैया। अरे, बड़ी देर से निकले आज। हम सब आप ही का रास्ता देख रहे हैं।" किशोर बोलने लगा।

"दे भाई, सबको चाय पिला और अच्छे भैया का हुकूम हो, तो गरम समोसे भी चलेंगे।" गोविन्दा ने टपरी वाले मुन्ना से कहा।

"अच्छे भैया आ जाते हैं, तो हमारी टपरी में बहार आ जाती है।" खींसे निपोरता मुन्ना, सुबह से सैकड़ों बार खौली चाय को फिर से खौलने के लिए चढ़ा दिया।

"समोसा भी दे मुन्ना और भजिया भी, आज हमने नाश्ता नहीं किया है।" खाली की हुई कुर्सी पर बैठते हुए अच्छे लाल ने कहा।

कुर्सी के लिए पागल दुनिया में अच्छे लाल की अच्छाई का प्रताप था कि आज भी उनके ये दोस्त कुर्सी खाली कर देते हैं।

"लखनवा नहीं दिख रहा, कहाँ है रे।" अच्छे ने चारों ओर नज़र घुमाई। अपनी बिरादरी का ध्यान रखना हर लीडर का दायित्व है।

"भैया आपको नहीं मालूम, लखन की नौकरी लग गई है। मुंबई जाएगा आज रात, कोई कंपनी में काम मिला है।" आँखें चमकाते हुए गोविन्दा कह पड़ा।

"हमको नहीं बताया लखनवा, चलो भली करें रामजी।" अच्छे ने चाय सुड़कते हुए कहा।

कल ही तीनों किराएदारों से किराया ले लिया था, सो आज जेब भी भरी है। अरे भाई, जब भाग्य का प्रतिशत बढ़िया हो, तो फिर क्या पूछना।

"आज वकील से मिल आते हैं। बरसों से थोड़ा किराया देने वालों से निजात पाना ही होगा। नए किरायेदार रहेंगे, तो दोगुना किराया तय कर देंगे।" अपने मित्रमंडली से कहते हुए, अच्छे लाल की आँखों में भविष्य के सुनहरे सपने तरंगित हो रहे थे।

"जब रेंट ज्यादा है, तो खर्च भी तो बढ़ ही जाएगा न! तब एक दर्जन सफ़ेद कमीज़, दो-चार जोड़ी नए जूते, एक घड़ी और अम्माँ के लिए रेशमी साड़ी भी ले लेंगे। उमा को सोने की चूड़ियाँ पहनने का बड़ा मन है, बस बढ़े किराए से एक-एक चीज़ें खरीद लेंगे।" अंतहीन लिस्ट के बीच में दोस्तों ने झिंझोड़कर कहा - "चलो भैया, हम तो चले, ज़रा कुछ काम है।" सब निकल गए और टेबल पर रखा बिल फड़फड़ा रहा था।

अच्छे लाल ने अच्छे मन से, अच्छे लोगों के खाने का, अच्छा-सा बिल पटा दिया।

टपरी वाले मुन्ना ने एक बड़ी-सी सलामी ठोक दी।

"इसके आने से धंधे में बरकत है, भाई। बाप-दादा के बनाए घर के किराए पर ऐश करता और कराता है।" पलटकर उसने अच्छे को हाथ दिखाया, "भैया फिर आइएगा।"

सामने सड़क के उस पार मंगल काका अपनी दुपहिया को चालू करने की पुरज़ोर कोशिश कर रहे थे।

लपककर अच्छे लाल सामने पहुँच गए।

"पाय लागूं काका।"

मंगल काका एक क्षण घूरते रहे, फिर उसने अपने पैर पीछे हटा लिये।

"हमारे पैर न छुओ अच्छे! ज़रा अपनी महतारी और मेहरारू का सोचो। दिन-रात बेकार के दोस्तों को भिनकाए रखते हो।" काका ने स्टार्ट किया और एक बार में ही स्कूटर चल पड़ी।

"आज तो हम जिनके पाँव पकड़ रहे हैं, वहीं दिल तोड़कर निकल जाते हैं।" आशीर्वाद की इच्छा को रुमाल में बाँध अपनी जेब में रख लिया। सामने मंदिर की घंटी बजी और अच्छे ने सामने देखा, पुजारी जी को देखकर उधर ही लपक लिए।

"जय राम जी की पुजारी जी।" अच्छे लाल तपाक से पुजारी जी के चरणों में झुक गए।

पुजारी जी ऐसे छिटककर दूर हट गए, मानो बिजली का नंगा तार छू लिया हो।

"दूर हटो! अभी-अभी स्नान करके चले आ रहे हैं। भोग लगाना है, भगवान को। हमारे पैर न छुओ, जाओ भगवान का मंदिर है, उन्हीं के पाँव पकड़ो।"

हाथ को जस-का-तस धरे अच्छे ने सिर ऊपर उठाया, तब तक तो पुजारी जी गर्भ गृह में प्रवेश कर चुके थे।

उठकर अच्छे ने इधर-उधर देखा, किसी ने कुछ देखा नहीं था। अपनी कमीज़ की सिलवटों को हथेली से झटककर ठीक किया और मंदिर के अंदर चले गए।

नंदलाल पीले रेशमी वस्त्रों में, मुकुट बैजयंती माला का शृंगार किए हुए चैन की बंसी बजा रहे थे। पुजारी जी ने माखन मिसरी, फल और मिठाई उनके सामने सजा दी।

"हे भगवान! आप तो अंतर्यामी हैं। हमें कुछ ऐसा आइडिया दे दें कि हम आराम से जीवन बिता सकें। आपकी तरह फल और मेवा खाते रहें और चैन का जीवन जीएँ।" अच्छे लाल इधर-उधर देखकर बुदबुदाए, "अम्माँ और उमा को सिद्ध दें प्रभु, उन्हें लगता है कि हम काम ही नहीं करते।" हाथ जोड़कर और आँख बंद करके अच्छे लाल ने गोपाल के सामने दिल खोलकर रख दिया।

"भगवन, मित्र मंडली तो आपकी भी थी। मित्रों के लिए क्या-क्या करना पड़ता है, आपसे बेहतर कौन जानेगा प्रभु।" खंखारकर गला साफ़ किया, ताकि स्पष्ट आवाज़ प्रभु तक पहुँचे।

"आपने दही-माखन चुराया, खेल-खेल में आप जमुना में कूद पड़े, रास रचाया, सब दोस्तों के साथ न। हमने किराए का आधा पैसा मित्रों पर खर्च किया, तो कौन-सा जुल्म हो गया।" ईश्वर से आशीर्वाद लेने के लिए अच्छे लाल जैसे ही फ़र्श पर टिके, घंटी बजने लगी। सामने देखा, तो पुजारी जी ने परदा खींचकर कन्हैया को छुपा दिया था।

"हे भगवान! हम साष्टांग दंडवत करते कि पहले ही आप अंतर्धान हो गए। और यह क्या, आपको भी लोगों से छिपकर खाना पड़ रहा है।" अपने कदम पीछे लेते हुए अच्छे लाल मंदिर से बाहर आ गए।

देखा तो सामने वकील साहब थे।

"नमस्कार वकील साहब, आप ही की तरफ़ आ रहे थे।" वकील साहब का गर्मजोशी से अभिवादन करते हुए अच्छे

लाल ने कहा।

"क्या खाक आ रहे थे, फ़ालतू केस ले आते हो। दो केस हार गए तुम्हारे चक्कर में, फटीचरों की टोली लिए घूमते हो और फ़ीस के नाम पर उस टपरी में चाय पिलाते हो।" वकील साहब आग बबूला हो रहे थे।

"तुम्हारे पिताजी की साख थी, जो तुम्हारे केस ले लिया करते थे। अब नहीं होगा हमसे। हमारा भी घर-परिवार है, तुम्हारे जैसे निठल्ले घूमने के दिन आ जाएँगे।" कहते हुए वे झटके से मंदिर में घुस गए।

अब तो अच्छे लाल के सपनों का महल चूर-चूर हो गया।

न यह वकील केस लेगा, न किराएदार घर खाली करेंगे और नाहीं नया रेट मिलेगा..। दर्जन भर लटकती कमीज़ें, जूतों की जोड़ियाँ सब आँखों के सामने नाचने लगीं।

आज तो हमारा भाग्यांक प्रतिशत बढ़िया था, सुबह से किसी का आशीर्वाद तक न मिला। दुखी होकर अच्छे लाल ने हारे-थके अपने कदम आगे बढ़ाए कि कोने में बैठे एक वृद्ध व्यक्ति के गीत ने उसे रोक लिया।

तंबूरा पकड़े वह गा रहा था - "गुरु गोविंद दोउ खड़े, काके लागूं पाय..।"

अच्छे लाल लपककर उसके सामने चले गए। आव देखा न ताव, चरण धरकर वे प्रणाम करने लगे।

वृद्ध भिखारी ने पैर सिकोड़ते हुए कहा - "कुछ दान-दक्षिणा हो, तो डालो। पाँव छू लोगे, तो मेरा पेट नहीं भरेगा।"

अच्छे लाल को दिन में तारे नज़र आने लगे। क्रम में जमे वे सभी, मुस्कुराकर अच्छे लाल के भाग्यांक का प्रतिशत बना रहे थे।

प्रधान जी

श्री रोहित कुमार 'हैप्पी'
न्यूज़ीलैंड

वर्तमान समय में चारों ओर प्रधान ही प्रधान दिखाई दे रहे हैं। गली में प्रधान, मोहल्ले में प्रधान, बस्ती में प्रधान, नगर में प्रधान, राज्य में प्रधान। आप कहीं की भी बात कीजिए, प्रधान जी 'अत्र तत्र सर्वत्र' विद्यमान हैं। ये देश-विदेश सब जगह उपस्थित हैं। हमें एक प्रधान जी ने सुझाया कि हम 'प्रधान और प्रधानी' पर शोध क्यों नहीं करते? प्रधान तो हमारे समाज में बहुमत से हैं और 'प्रधानी' हमारी मूल सामाजिक आवश्यकता है, इसपर तो शोध बनता ही है।

हमें लगा, इससे पहले कि कोई और इस विषय पर अपनी प्रधानी ठोक दे, हमें कार्य आरंभ कर देना चाहिए। हमने इसपर शोध करना आरंभ कर दिया। अभी यह शोध संपूर्ण तो नहीं कहा जा सकता लेकिन प्रधान जी ने कहा है कि अभी तक जो किया है, उसे जारी कर दिया जाए। अब 'प्रधान जी' का कहा भला कौन मोड़ सकता है?

लीजिए, आप भी पढ़िए। यदि आपने भी इस विषय पर कुछ काम किया हो या आपके पास इसकी कोई अतिरिक्त जानकारी हो, तो कृपया मुझसे संपर्क करें।

प्रधान और प्रधानी की परिभाषा : जो किसी भी क्षेत्र का मुखिया हो, उसे 'प्रधान' कहा जाता है। वह जो क्रियाकलाप भी करे, उसे ही 'प्रधानी' समझना चाहिए। प्रधान कई प्रकार के होते हैं, जैसे—

चयनित प्रधान : ये बाकायदा चयनित होकर आते हैं, जैसे पंचायत का सरपंच 'प्रधान जी' हुआ। महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों में भी छात्र प्रधान हुआ करते हैं। संगठनों, समितियों और कमेटियों में भी प्रधान होते हैं। इनकी उत्पत्ति चुनावों से होती है और ये राजनीतिज्ञों के करीबी और उनकी पसंदीदा प्रजाति हैं। ज़मीन उर्वरक हो और राजनीतिक खाद-पानी मिलता रहे तो ये नेता का रूप धारण करने में भी देर नहीं लगाते।

स्वयंभू प्रधान : ये स्वयं ही अपने मनोरथवश स्वसम्मति

से प्रगट हो जाते हैं। आपको इनकी ज़रूरत हो या न हो, ये अपनी ज़रूरत को देखते हुए आप पर पड़ जाएँगे। इन्हें अन्य प्रधान प्रजातियाँ पसंद नहीं करतीं, क्योंकि ये उनके लिए खतरा हो सकते हैं, लेकिन इनपर नियंत्रण कर पाना असंभव नहीं तो मुश्किल अवश्य है।

मौसमी प्रधान : ये प्रधान मौसम के अनुसार पैदा होते हैं और मौसम बीतते ही मौसमी फल-फूल और सब्ज़ियों की तरह गायब हो जाते हैं। उदाहरण के लिए हिंदी में इनकी फ़सल सितंबर और जनवरी के महीने में खूब फैलती है। 14 सितंबर (हिंदी दिवस) और 10 जनवरी (विश्व हिंदी दिवस) को ये खूब लहलहाते हैं और इनमें से निकलने वाली एक विशेष स्नेह-ध्वनि विश्वभर में सुनी जा सकती है। कभी-कभी यह तीन-चार वर्ष के अंतराल के पश्चात् देश-विदेश में 'विश्व दंगल सम्मेलन' के समय भी उपजते हैं।

घुसपैठिए प्रधान : यह प्रजाति किसी भी आयोजन में घुसपैठ करके प्रधानी हासिल करने का प्रयास करती है। कुर्सी इनको बड़ी प्रिय है। कुर्सी कितनी भी दूर या ऊँची हो, ये 'लाँग जंप' और 'हाई जंप' लगाकर उस तक पहुँचने की कोशिश करते रहते हैं। 'ट्राइ ट्राइ अगेन' के मूलमंत्र को अपना आदर्श मानकर ये कभी भी हार नहीं मानते और प्रधानी पाने के लिए आजीवन लाँग जंप - हाई जंप लगाते रहते हैं।

सदाबहार प्रधान : जैसा कि इनके नाम से ही परिभाषित होता है, ये सदाबहार प्रजाति है। ये खरपतवार की भांति उगते हैं। ये आपदा को अवसर बनाने में माहिर होते हैं। जन्म-मरण कोई भी अवसर हो, ये प्रधानी करते रहते हैं। ये मौसम को बेमौसम और बेमौसम को मौसम में तबदील करने की क्षमता रखते हैं।

देश में उत्सव हो या समाज में कोई भी समस्या उभरे, ये 'भाषण' देने लगते हैं। इन्हें लगता है कि हर समस्या का समाधान इनका 'भाषण' ही है।

आभासी मंचीय प्रधान : इनकी उत्पत्ति यूं तो इंटरनेट के साथ ही आरंभ हो गई, लेकिन इनका सर्वांगीण विकास 'कोरोना काल' में हुआ। यह प्रजाति ज़ूम, गूगलमीट इत्यादि पर खूब फल-फूल रही है। कई इंटरनेट पंडितों ने भविष्यवाणी की है कि कोरोनाकाल बीत जाने पर भी इनकी प्रजाति सशक्त रूप से विश्वव्यापी रहेगी। ये छुट्टियों और सप्ताहांत में प्रगट होते रहेंगे। इस प्रधान प्रजाति की यह विशेषता है कि यह अमिट है। कोरोनाकाल में उत्पति के कारण संक्रमण इनमें स्वाभाविक रूप से पाया जाता है। एक प्रधान के संपर्क में आने वाला भी प्रधान बनने लगता है। इस प्रकार एक प्रधान से अनगिनत प्रधान उपजने लगते हैं। हिंदी और साहित्य के क्षेत्र में इनका विकास नए कीर्तिमान स्थापित कर चुका है। ये एक ही समय में अनेक ऑनलाइन गोष्ठियों में पाए जाते हैं। एक जगह भाषण दे रहे होते हैं तो दूसरी जगह कविता पढ़ते दिखाई देंगे। अपनी बारी लेते ही एक स्थान से अंतर्धान होकर अन्य गोष्ठी में प्रगट हो जाते हैं।

हालांकि प्रधान और प्रधानी विभिन्न प्रकार की होती है, तथापि इनमें एक विशेष समानता है। सभी प्रकार के प्रधान साम-दाम-दंड-भेद किसी भी कीमत पर प्रधानी को वरीयता देते हैं और भाषण इनको प्रिय होता है। इन्हें अधिक बोलने वाले लोग बिलकुल पसंद नहीं होते, ये केवल सुनने वाले लोगों को पसंद करते हैं। हाँ में हाँ मिलाने वाले और पूँछधारी इनकी पहली पसंद हैं।

हाल ही में हुए एक सर्वेक्षण में पाया गया है कि प्रधान प्रजाति बड़ी तेज़ी से विकास कर रही है। कई प्रधान इसे संकट का संकेत बता रहे हैं, चूँकि सब प्रधान हो जाएँगे, तो प्रधानी किसपर की जाएगी? इस विषय पर एक ऑनलाइन संगोष्ठी का प्रस्ताव पारित हुआ है, लेकिन इसकी प्रधानी कौन करेगा, इसको लेकर कुछ संघर्ष की स्थिति बनी हुई है। कोई भी प्रधान पीछे हटने को तैयार नहीं है।

editor@bharatdarshan.co.nz

अस्सी किलो कविता के आलोचना-सिद्धांत

श्री धर्मपाल महेंद्र जैन
टोरंटो, कनाडा

कवि असंतोषजी मेरे पास आए। सधे कदम, मुस्कुराते अधर, उन्नत मस्तक और मेरी नाक पर केंद्रित उनकी आँखें। कविताएँ अधकचरी हों या छरहरी हों, तो कवि में गज़ब का बाँकपन आ जाता है। वे बोले – "आचार्यजी, इन कविताओं में से श्रेष्ठ छाँट दीजिए।" अप्रकाशित कविताओं का गठ्ठर चार किलो का था। भारतेंदु काल में कविताएँ सेर में तोली जाती थीं, तो छँटाक भर ठीक निकल आती थीं। आधुनिक काल की किलोग्राम भर कविताओं में कवित्त मिलीग्राम में बैठता है। मैं ठहरा आचार्य कुल का। कवि असंतोषीजी को मना कर दूँ, तो हिंदी साहित्य का निरादर हो जाए और कविताएँ छाँटने लगूँ, तो मैं ही छँट जाऊँ। न केवल मेरी आँखें पढ़ने के तनाव से फट जाएँ, पर दिमाग भी समझने के चक्कर में बठ्ठर हो जाए। इसलिए मैंने उनसे एक प्रसिद्ध आलोचक की तरह पूछा – "आपका वज़न कितना है?" वे बोले – "लगभग अस्सी किलो।" तब मैंने गंभीर मुद्रा में कहा - कविवर कविताओं में वज़न हो या न हो, कविताओं के समग्र पुलिदों का वज़न भी लगभग अस्सी किलो होना चाहिए। कवि को अपने भार के बराबर कविताओं का भार ढोना आना चाहिए। इस सिद्धांत को हम कहते हैं - समभार का सिद्धांत।

वे मुदित होकर बोले -आप सही के आचार्य हैं। मैं पहली बार किसी विद्वान आलोचक से मिला हूँ, जो मुझे कविताएँ लिखने के लिए प्रोत्साहित कर रहा है और आलोचना के सिद्धांत समझा रहा है। आप मुझे एक महीना दीजिए, मैं अस्सी किलो कविताएँ लिखकर आपके श्रीचरणों में डाल दूँगा। इन दिनों अधिकांश साहित्यकार यही करते हैं, श्रीचरण खोजते हैं और उनपर अपनी रचनाएँ चढ़ा आते हैं। कविता ने तुलसी को राममय कर दिया था, अब कविता आधुनिक तुलसी को आराममय कर रही है। असंतोषजी अपना गठ्ठर उठाकर निकल लिये। कविवर गए तो मैं सोचता रहा कि आज बला टली। वे एक जीवंत प्रश्न छोड़ गए थे कि बला कौन। मैंने सारा भाषाविज्ञान ठिकाने लगा दिया और निष्कर्ष में पाया कि कविवर बला थे, कविता तो केवल अबला थी।

वे अब एक महीने बाद आएँगे। जब आएँगे तब तक आलोचना शास्त्र में मेरे नए सिद्धांत आ जाएँगे। आपसे क्या छुपाना, मैं खुद ही "आलोचना शास्त्र के आधुनिक सिद्धांत" विषय पर ग्रंथ लिख रहा हूँ। मेरी औकात ग्रंथावली लिखने की थी, पर प्रकाशक एक ही ग्रंथ की सेंटिंग कर पाए थे, इसलिए मुझे इतने पर ही संतुष्ट होना पड़ा। आलोचना के सिद्धांत विषय पर लिखना बहुत आवश्यक लग रहा था। मैंने अपने कई कविता-संकलन आलोचकों को भारी अनुनय-विनय करके भेजे थे, पर उन्हें समुचित लिखना नहीं आया। नब्बे प्रतिशत आलोचक बधाई के आगे नहीं लिख पाए, उन्हें शुभकामना तक लिखना नहीं आया। शेष आलोचकों ने इस तरह समीक्षा की, जैसे किसी राजनीतिक दल के प्रवक्ता राष्ट्रीय टीवी पर दबाव के मारे घिसे-पिटे जुमले बोलते हैं। मैंने तभी तय कर लिया था कि मुझे आलोचना के क्षेत्र में कुछ नया करना पड़ेगा। मेरे बाद की पीढ़ी को उचित मूल्यांकन के अभाव का दर्द नहीं सहना पड़े, इसलिए साहित्य समीक्षा के नए सिद्धांत मुझे घड़ने होंगे।

बिना सिद्धांत के आलोचना व्यर्थ है। इसलिए अपना पहला सिद्धांत, "समभार का सिद्धांत" बनाकर मुझे संतुष्टि मिली। साहित्यकार अपने भार के बराबर साहित्य रच डाले, तो उसका मूल्यांकन अवश्य हो। उस क्षण मुझे समझ आया कि सिद्धांत बनाए नहीं जाते, प्रतिपादित किए जाते हैं। तो मैंने दूसरा सिद्धांत प्रतिपादित किया – 'समलंब का सिद्धांत'। अर्थात् यदि किसी रचनाकार के प्रकाशित संकलनों के ढेर की ऊँचाई, उसकी जूते रहित ऊँचाई से अधिक हो जाए, तो साहित्य अकादमियों का कर्तव्य बनता है कि वे उसकी ओर भी देखें और उसके अवसादग्रस्त चेहरे पर किसी पुरस्कार

का क्रीम लगा दें।

अब मुझे सिद्धांत प्रतिपादित करने में आनंद आने लगा था। न्यूटन तीन सिद्धांत प्रतिपादित करके अमर हुए थे, मैं उनसे एक कदम आगे निकलना चाहता था। मैंने तीसरा सिद्धांत प्रतिपादित किया 'सम-धन का सिद्धांत'। जो भी प्रख्यात साहित्यकार सम-धन निवेश कर पाए, उसे अवश्य पुरस्कृत किया जाए। प्रवासी साहित्यकारों के द्वारा डॉलर और पौंड के निवेश की तुलना में रुपया भी कम नहीं पड़ता है। भौतिक अर्थ जुड़ जाए, तो आलोचना के आभासी प्रतिमान फटाफट बदल जाते हैं। आलोचना में अर्थशास्त्र का तड़का लग जाए, तो निष्कर्ष चमक उठते हैं। आलोचना में सौंदर्यशास्त्र का अनुपम योगदान है। इससे मुझे चौथे सिद्धांत का विचार आया – 'समतन का सिद्धांत'। मैं इसकी विवेचना करने लगा, तो मुझे इसमें अभद्र और अश्लील रंग दिखाई दिए। साहित्यकार का जो रूप परोक्ष हो, वह आलोचना का विषय नहीं बनना चाहिए। इसलिए इस सिद्धांत को मैं शास्त्रसम्मत नहीं मानूँगा और हर साहित्यकार को संदेह का लाभ दूँगा। अब मैं हर प्रकार की आलोचना करने के लिए तैयार हूँ। इन तीनों सिद्धांतों पर खरे उतरने वाले विभूति साहित्यकारों की मुझे प्रतीक्षा है। आप मेरा अता-पता उन तक ज़रूर पहुँचा दें। हिंदी के प्रति आपकी यह नि:स्वार्थ सेवा आलोच्य साहित्यकार याद रखेंगे।

dharmtoronto@gmail.com

श्री अनूप भार्गव से साक्षात्कार

अरुणिमा
नई दिल्ली, भारत

मीलों चलने के बाद
जब मुड़कर देखता हूँ
तो तुम्हें
उतना ही करीब पाता हूँ।

तुम्हारे इर्द-गिर्द
वृत्त की
परिधि बनकर
रह गया हूँ मैं।

हिंदी के लिए ऐसे ही संबंधों से जुड़े, वृत्त की परिधि की तरह केंद्र में स्थित हिंदी के इर्द-गिर्द घूमते अमेरिका के प्रवासी भारतीय कवि श्री अनूप भार्गव एक लोकप्रिय साहित्यकार होने के साथ-साथ एक प्रौद्योगिकीविद् भी हैं। उनका जन्म राजस्थान में हुआ। स्नातक की उपाधि 'बिरला तकनीकी और विज्ञान संस्थान' (B.I.T.S.), पिलानी से और स्नातकोत्तर उपाधि 'भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (I.I.T.), दिल्ली से प्राप्त की। 1983 में वे अमेरिका आए। अमेरिका आने के बाद से हिंदी को एक वैश्विक मंच प्रदान करने हेतु वे सतत प्रयासरत हैं। 2007 में 'उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान' द्वारा उन्हें भारत से बाहर हिंदी के विकास में योगदान देने के लिए 'विदेश प्रसार सम्मान' से सम्मानित किया गया। 2015 में भोपाल में संपन्न 'दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन' में उन्हें प्रधानमंत्री की उपस्थिति में 'विश्व हिंदी सम्मान' से नवाज़ा गया। 2018 में मॉरीशस में हुए 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन में उन्हें भारत सरकार की ओर से आमंत्रित किया गया और उन्होंने 'प्रौद्योगिकी का भविष्य' विषय पर अपना लेख पढ़ा। वे स्वयं एक अच्छे साहित्यकार हैं, लेकिन उन्होंने अपने मौलिक लेखन को यह कहकर थोड़ा गौण रखा है कि हिंदी में अच्छा लिखने वालों की कमी नहीं हैं, लेकिन साहित्य-भंडार के प्रसार और संरक्षण और भावी पीढ़ी को साहित्यिक विधाओं में प्रशिक्षित करने हेतु मंच तैयार करने वाले लोग ज्यादा नहीं हैं। ऐसी ही कुछ सोच के साथ अनूप भार्गव जी ने हिंदी के भौगोलिक विस्तार और वैश्विक प्रसार को एक जनांदोलन का रूप दे दिया है।

साक्षात्कारकर्ता : **नमस्कार अनूप जी।**

साक्षात्कारदाता : नमस्कार अरुणिमा जी।

साक्षात्कारकर्ता : **इस साक्षात्कार में सबसे पहले मैं उस सवाल पर जाऊँगी, जिससे मैं आपको विशेष रूप से जुड़ा हुआ समझती हूँ। क्या आज के समय में आप हिंदी को तकनीकी रूप से समर्थ मानते हैं?**

साक्षात्कारदाता : जी बिल्कुल। जहाँ तक हिंदी के तकनीकी पक्ष का सवाल है, हिंदी के प्रयोग के लिए तकनीक पूरी तरह उपलब्ध है। पहले दो बिल्कुल अलग-अलग वर्ग हुआ करते थे, जिनको हिंदी आती थी, उन्होंने तकनीक से जुड़ने की कभी कोशिश भी नहीं की। दूसरी तरफ़ केवल तकनीक से जुड़े लोग थे, जिनकी हिंदी साहित्य में रुचि नहीं थी। जब मैंने देखा कि हिंदी तकनीक से जुड़ रही है, तब मैंने अपने तकनीकी ज्ञान को हिंदी के प्रयोग में लगाने की कोशिश की। इसी संदर्भ में मेरे कुछ प्रयास रहे.. 2003 के आसपास हमने ई-कविता से शुरुआत की, जब यूनिकोड भी ठीक से उपलब्ध नहीं था। हमने शुरू से ही ई-कविता में यह बात रखी कि साझा की जाने वाली कविताएँ देवनागरी में ही लिखी होनी चाहिए। मुझे याद है कि उस समूह के हज़ार सदस्यों में से कम-से-कम 200-250 लोगों को व्यक्तिगत रूप से मैंने हिंदी टाइपिंग सिखाई। कविता कोश से भी मैं 2008 से 2011 तक जुड़ा रहा।

साक्षात्कारकर्ता : **अपनी कविता की पाठशाला के बारे में भी हमें बताएँ। क्या कोई भी इसका विद्यार्थी होकर कविता लिखना सीख सकता है?**

साक्षात्कारदाता : कविता की पाठशाला की पृष्ठभूमि में भी ई-कविता ही थी, जहाँ ईमेल के माध्यम से कविताओं का आदान-प्रदान होता था और फिर उस पर टिप्पणी कर सुधारने का प्रयास किया जाता था। यहीं से ख्याल आया कि क्यों न एक मंच तैयार किया जाए, जहाँ हम सीखें-सिखाएँ कि कविता कैसे लिखी जाती है, और तब कविता की पाठशाला का जन्म हुआ। हर विधा का एक व्याकरण होता है और कुछ नियम होते हैं। भाव तो आपके अंदर से ही आएँगे, लेकिन विधा विशेष के शिल्प को सीखकर अच्छा लिखने में उनकी मदद की जा सकती है। कविता में विधाएँ भी कई होती हैं, जैसे हाइकु, नवगीत, गज़ल, कुंडलियाँ, माहिया और भी कई। हम लोगों ने कविता की पाठशाला के माध्यम से उन विधाओं के नियमों को सिखाने की शुरुआत की। हमने इसकी एक वेबसाइट बनाई, https://kavitakipathshala.wordpress.com/ ; हर विधा में हमने जो भी नियम सीखे, वह आपको वहाँ पर मिल जाएँगे। हमें अलग-अलग विधाओं में बहुत से अच्छे लोगों का सहयोग मिला, जगदीश व्योम जी हमारे साथ जुड़े, कमलेश भट्ट कमल जी, नीरज गोस्वामी, अनिल कुलश्रेष्ठ, अमिताभ त्रिपाठी आदि।

साक्षात्कारकर्ता : **हिंदी से प्यार है.. और उसकी बहुत ही प्यारी टैग लाइन हिंदी में मुस्कुराइए, जो आपकी एक बहुत ही विशेष परियोजना है, के बारे में हमें बताएँ।**

साक्षात्कारदाता : 'हिंदी से प्यार है', की परिकल्पना इस आवश्यकता पर आधारित थी कि हिंदी में कुछ ऐसे ज़रूरी काम हैं, जो होने चाहिए। अगर हमारे पास स्वयंसेवी हैं, जोकि अपने कुछ घंटे देने को तैयार हैं, तो बहुत से काम हम स्वयं कर सकते हैं। इसलिए हमने रखा कि इस समूह से जुड़ने के लिए आपको हिंदी का विद्वान होने की आवश्यकता नहीं, बस हिंदी से प्यार होना चाहिए। आप साइट पर जाइए, http://hindisepyarhai.com/, उस पर आपको परियोजनाएँ मिलेंगी, जिसमें साहित्यकार तिथिवार भी एक है, जो हमारी सबसे पहली परियोजना थी। नवंबर 2021 में यह शुरू हुई, जिसमें हम लोग हर रोज़ एक साहित्यकार पर एक रोचक आलेख निकाल रहे हैं। अब तक करीब 300 से अधिक आलेख आ चुके हैं। इन रचनाओं को पुस्तक के रूप में भी निकालने की हमारी योजना है।

यहाँ मैं एक बात और जोड़ना चाहूँगा कि कुछ परियोजनाओं पर मेरा नाम दिखाई देता है, लेकिन ये सभी परियोजनाएँ मेरे अकेले का प्रयास नहीं है। हर परियोजना की अलग टीम है, जो उसे पूरी स्वतंत्रता के साथ संभालती है। 'साहित्यकार तिथिवार' को ही लें, इसके तीन कर्णधार हैं, जो इसे संभाल रहे हैं, शार्दुला नौगजा, जो सिंगापुर में रहती हैं, दीपा लाभ, जो बेंगलुरु में रहती हैं और सृष्टि भार्गव जो दिल्ली में रहती हैं और एक संपादकीय टीम भी कार्य कर रही है। साथ ही, हमारे पास करीब कम-से-कम 30- 40 लेखकों की एक टीम भी है।

ठीक इसी तरह 'हिंदी से प्यार है' समूह की एक 'कोर टीम' भी है, जिसमें मेरे अतिरिक्त भारत से बालेंदु दाधीच, सिंगापुर से शार्दुला नौगजा और चीन से हरप्रीत सिंह पुरी हैं। हम चारों मिलकर नई परियोजनाओं की कल्पना करते हैं और उन्हें मूर्त रूप देते हैं।

साक्षात्कारकर्ता : **फिर भी इन सबके सूत्रधार आप बने हुए हैं और टीम को एक सही दिशा देने का कार्य कर रहे हैं, इसलिए इसका श्रेय आपको भी जाता है।**

साक्षात्कारदाता : ऐसा नहीं है। हम पूरी पारदर्शिता के साथ, काम करने वाले को पूरा-पूरा श्रेय देते हैं, साथ ही, पूरी स्वतंत्रता भी। 'हिंदी से प्यार' है के अंतर्गत हमारी एक परियोजना चल रही है - साहित्यकारों की वेबसाइट बनाने की। हम लोगों ने शुरुआत धूमिल से की, जिसमें उनके पुत्र ने सहयोग किया। फिर हमने नरेन्द्र कोहली जी पर वेबसाइट बनाई, जिसमें उनकी पत्नी मधुरिमा जी और उनके पुत्र अगस्त्य कोहली ने बहुत सहयोग किया। अगस्त्य अमेरिका में ही रहते हैं और मेरे अच्छे मित्र हैं। अब हम लोग धर्मवीर भारती जी की वेबसाइट पर काम कर रहे हैं, जिसमें उनकी पत्नी पुष्पा भारती जी हमें सहयोग दे रही हैं। अमेरिका की जो सबसे बड़ी कहानीकार, उपन्यासकार डॉ. सुषम बेदी हैं, उनकी हम लोगों ने वेबसाइट बनाई, जिसमें उनके पति श्री राहुल बेदी जी ने सहयोग दिया। कम-से-कम सात-आठ

परियोजनाएँ हैं, जो अभी चल रही हैं।

साक्षात्कारकर्ता : **अब मैं विश्व भर में हिंदी का परचम लहराते आपके नवीनतम पहल 'अनन्य' पत्रिका के बारे में बात करना चाहूँगी। कब-कैसे सोचा आपने इस वैश्विक पत्रिका के बारे में।**

साक्षात्कारदाता : जी बिल्कुल। 'अनन्य' भारत से बाहर किसी आधिकारिक वेबसाइट से निकलने वाली पहली हिंदी पत्रिका है। पिछले तीन महीनों में ही इस पत्रिका ने कई देशों में अपने पंख फैलाए और अब इस पत्रिका का स्थानीय संस्करण 12 देशों से निकल रहा है। जून 2022 में भारतीय कौंसलावास न्यूयॉर्क की आधिकारिक वेबसाइट पर 'अनन्य' हिंदी पत्रिका की शुरुआत हुई और बहुत जल्दी हम लोगों ने इसके स्थानीय संस्करणों की शुरुआत कर दी, जिसमें ब्रिटेन, रूस, ऑस्ट्रेलिया, यूएई, सिंगापुर, जर्मनी, कनाडा, न्यूजीलैंड है; साथ ही तंजानिया और केन्या भी। इस प्रयास के माध्यम से हिंदी का भौगोलिक विस्तार भी करना है और विभिन्न देशों के ज्ञान, कला और संस्कृति को हिंदी में परोसकर हम हिंदी को वह ज़िम्मेदारी दें, जो काम आज अंग्रेज़ी भाषा कर रही है, तो हिंदी सही मायने में वैश्विक भाषा बन सकती है।

साक्षात्कारकर्ता : **आप ने 2007 में न्यूयॉर्क में आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। आप 'केंद्रीय आयोजन समिति' के सदस्य रहे। क्या अनुभव रहे?**

साक्षात्कारदाता : बहुत ही सुखद अनुभव रहा। इतने बड़े स्तर पर कार्यक्रम के आयोजन का यह मेरा पहला अनुभव था। यह सम्मेलन मूलतः न्यूयॉर्क में स्थित भारतीय विद्या भवन ने आयोजित किया था और मैं भारतीय विद्या भवन से काफ़ी लंबे समय से जुड़ा हुआ हूँ। इसमें मुझे काम करने का अवसर मिला। इसके अतिरिक्त 2019 में लिस्बन विश्वविद्यालय द्वारा लिस्बन, पुर्तगाल में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में मेरी प्रतिभागिता रही, जिसमें 'हिंदी के प्रसार में तकनीकी का प्रयोग' पर मैंने शोध पत्र प्रस्तुत किया। इन सम्मेलनों का बड़ा लाभ हुआ करता है कि आप एक ही स्थान पर इतने अधिक विद्वानों से मिल सकते हैं, नए विचार जन्म लेते हैं, आपस में सहयोग स्थापित होता है और हम समृद्ध होते हैं

साक्षात्कारकर्ता : आप ने एक लंबे समय तक भारत से प्रतिष्ठित कवियों को बुलाकर अमेरिका में कवि सम्मेलन आयोजित किए। उनके बारे में भी बताएँ?

साक्षात्कारदाता : हाँ, यह मेरा शौक है। 2014 में मैंने 'झिलमिल-अमेरिका' संस्था की स्थापना की। झिलमिल 'संगीत', नृत्य, नाटक, कवि सम्मेलन और कला की अन्य विधाओं में अमेरिका के विभिन्न शहरों में कार्यक्रम आयोजित करती है। मैंने करीब 20 वर्षों तक नियमित रूप से कवि सम्मेलन आयोजित किए। जितने भी मंच के बड़े कवि रहे, उन सभी को मुझे बुलाने का सौभाग्य मिला, जिसमें गोपालदास नीरज, सोम ठाकुर, उदय प्रताप सिंह, अशोक चक्रधर, सुरेंद्र शर्मा, संपत सरल, अरुण जैमिनी, कीर्ति काले, सरिता शर्मा जैसे बड़े नाम शामिल हैं। कुछ साल पहले हमने अशोक चक्रधर जी को और उनकी बिटिया स्नेहा चक्रधर, जो भरतनाट्यम की अच्छी नृत्यांगना है, को बुलाकर हमने नृत्य और कविता का मिलाजुला कार्यक्रम रखा। मेरी हमेशा कोशिश रहती है कि भारत के साहित्य के साथ-साथ भारत की संस्कृति और कला का भी प्रसार हो सके।

साक्षात्कारकर्ता : **हम भारत में आज़ादी की 75वीं वर्षगाँठ के अवसर पर अमृत महोत्सव मना रहे हैं। आपकी नज़र में भारत ने कितनी प्रगति की है?**

साक्षात्कारदाता : संक्षेप में कहूँ, तो भारत की प्रगति से बहुत खुश हूँ। 30-35 वर्ष पहले जब मैं यहाँ आया था, तब भारतीयों को जिस नज़र से देखा जाता था और आज में बहुत बड़ा अंतर है। अमेरिका की बड़ी-बड़ी कंपनियों में.. अब चाहे वह गूगल के सुंदर पिचाई हो, आईबीएम के अरविंद कृष्णा हो या माइक्रोसॉफ़्ट के सत्य नडेला, भारतीय दिखाई देते हैं, तो निश्चित रूप से एक बड़ा अंतर आया है।

साक्षात्कारकर्ता : **विश्व हिंदी सचिवालय के लिए यह साक्षात्कार मैंने लिया है। इस साक्षात्कार के माध्यम से उनके लिए कुछ संदेश।**

साक्षात्कारकर्ता : विभिन्न देशों में हिंदी के लिए काम

करने वालों को एक अच्छा प्लेटफ़ॉर्म दे सकता है सचिवालय, उन्हें जोड़ने का काम कर सकता है और उनको कुछ बुनियादी सुविधाएँ देकर, हिंदी के विस्तार को और व्यापक बना सकता है। दुनिया भर में बहुत-से लोग हिंदी के लिए समय निकालने और कुछ करने की इच्छा रखते हैं, लेकिन उनके पास बहुत सारे कामों के लिए संपर्क सूत्र उपलब्ध नहीं हो पाते, यह काम विश्व हिंदी सचिवालय कर सकता है।

इस साक्षात्कर का समापन मैं श्री अनूप भार्गव जी की 16 शब्दों की कविता के साथ करना चाहूँगीः

जज़्बातों की उठती आँधी, हम किस को दोषी ठहराते
लम्हें भर का कर्ज़ लिया था, सदियाँ बीत गईं लौटाते

सच तो यह है कि बिना किसी के कर्ज़ के वे लगातार अपनी भाषा को बहुत कुछ देते जा रहे हैं, और हिंदी भाषा सदा ही ऋणी बनी रहेगी श्री अनूप भार्गव जी की। श्री अनूप भार्गव की कविताएँ 'अनुभूति', कृत्या, 'काव्यालय', 'कविता कोश' और उन के स्वयं के ब्लॉग www.anoopbhargava.blogspot.com पर पढ़ी जा सकती हैं।

अनूप जी, बहुत धन्यवाद और आभार आपका, आपने अपना अमूल्य समय मुझे दिया।

arunkamal40@gmail.com

कवयित्री श्रीमती कमला वेदी के साथ साक्षात्कार

डॉ. सोमदत्त काशीनाथ
मॉरीशस

(श्रीमती कमला वेदी जी शिक्षण-क्षेत्र में पूरी निष्ठा से कार्यरत है। वे हिंदी के साथ-साथ कुमाऊँनी भाषा में भी कविताएँ लिख रही हैं। उनके कई काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और कुछ प्रकाशनाधीन हैं। आइए हम उत्तराखंड की इस पुत्री से मिलते हैं - 5 अक्तूबर 2022 को व्हाट्सएप पर किया गया एक साक्षात्कार।)

साक्षात्कारकर्ता : श्रीमती कमला वेदी जी, नमस्कार!

साक्षात्कारदाता : नमस्कार, मनोज जी !

साक्षात्कारकर्ता : मैं आपका आभारी हूँ कि आपने इस साक्षात्कार हेतु, अपनी व्यस्त समय-सारणी से, थोड़ा-सा समय निकाला। क्या आप अपना एक लघु परिचय दे सकती हैं?

साक्षात्कारदाता : मेरे नाम से आप परिचित हैं ही। मैं श्रीमती कमला वेदी हूँ। मेरा जन्म 07 दिसंबर 1976 में, उत्तराखंड के अल्मोड़ा ज़िले में हुआ। मेरे पिताजी का नाम श्री मोहनराम जी था, जो अब नहीं रहे। मेरी माताजी का नाम श्रीमती सावित्री देवी है। मेरे पिताजी प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक के रूप में आजीवन कार्यरत रहे और इसी पद से वे सेवा-निवृत्त भी हुए। माँ ने परिवार की ज़िम्मेदारियाँ निभाने में अपना पूरा जीवन न्योछावर कर दिया। मेरी और मेरे दो अनुजों की देखभाल में उन्होंने कभी कोई कसर नहीं छोड़ी। माता-पिता के साथ-साथ अपने दोनों भाइयों से मुझे इतना लाड़-प्यार मिला कि वे मेरे अस्तित्त्व की इमारत के चार मज़बूत स्तंभ बने रहे। आजकल मेरी माताजी और मेरे भाई हल्द्वानी ज़िला नैनीताल में स्थाई रूप से रहते हैं।

मेरा विवाह पिथौरागढ़ ज़िले के ग्राम गणकोट में श्री बहादुर जी के सबसे बड़े पुत्र श्री पंकज कुमार जी के साथ हुआ। मेरे पति भी मेरी ही तरह शिक्षक हैं। उनके स्नेह ने उन चार खंभों पर लगकर मेरे लिए छत का काम किया। पति की प्रेरणा, अपनी दो बहुमूल्य निधियों के समान प्रिय पुत्रियों और अनन्य स्नेहपात्रों के सहयोग से मुझे जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती रही है। इसके लिए मैं इन सबका आभारी हूँ।

साक्षात्कारकर्ता : कमला जी, क्या आप हमें अपनी शिक्षा-दीक्षा के विषय में बता सकती हैं ?

साक्षात्कारदाता : वैसे तो मैंने अमोड़ी की एक पाठशाला से प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की। स्नातक स्तर तथा

स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई, मैंने चम्पावत और लोहाघाट से पूरी की है।

साक्षात्कारकर्ता : हाँ आपने बताया कि आप शिक्षिका है। आजकल आप किस स्थान पर कार्यरत हैं?

साक्षात्कारदाता : एम. ए. की पढ़ाई जब पूरी हुई, तब मेरी नियुक्ति चम्पावत के एक स्कूल में हुई है। वर्तमान समय में, मैं खेतीखान ज़िला चम्पावत में शिक्षिका के पद पर कार्यरत हूँ।

साक्षात्कारकर्ता : यह तो बहुत अच्छी बात है कि आपने अपने पिता और पति की ही भाँति ज्ञान-दान को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। इन दोनों में से किसने आपको शिक्षिका बनने के लिए प्रेरित किया?

साक्षात्कारदाता : देखिए, प्रेरणा एक निरन्तर प्रवाहित होने वाली सरिता के समान होती है। एक ही प्रेरणा- स्रोत से आगे बढ़ने की ऊर्जा एकत्रित करके जीवन भर चलते रहना यह बहुत कम लोगों के लिए संभव होता है। कम-से-कम मेरे लिए तो यह कठिन ही है। जहाँ बचपन में, या फिर मेरे जीवन के आरम्भिक दौर में, मेरे पिताजी ने मुझे शिक्षण की ओर जाने के लिए प्रेरित किया, वहीं विवाहित जीवन में पति ने मेरी अभिलाषाओं को सींचा और मेरी जिज्ञासा भरे प्रश्नों को सुलझाने में मेरा साथ दिया। मुझे बनाने में, मेरे अनन्य शिक्षकों के साथ-साथ मेरे पिता और पति का, समान रूप से, महत्त्वपूर्ण योगदान है।

साक्षात्कारकर्ता : कमला जी, मूल रूप से आप एक कवयित्री हैं। आपने साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा कविता को अपनी साहित्यिक-यात्रा की सहचरी के रूप में क्यों चुना?

साक्षात्कारदाता : मनोज जी, इस प्रश्न का उत्तर देना किसी भी साहित्यकार के लिए आसान नहीं होता है कि उसने अन्य विधाओं की अपेक्षा इस विधि को क्यों चुना। कोई क्रिकेटर ही क्यों बनता है, धावक या तैराक क्यों नहीं! स्कूल में देखें, तो बच्चे किसी एक विषय की अपेक्षा दूसरे विषयों को क्यों पसंद करते हैं। सब व्यक्ति की रुचि और प्रेरणा देने वालों पर निर्भर करता है।

साक्षात्कारकर्ता : यह आपने बहुत ठीक कहा है। जीवन की गति और दिशा निर्धारित करने वाले निर्णायकों में रुचि, संस्कार और प्रेरणा-स्रोत महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। ये व्यक्ति के अतीत, वर्तमान और भविष्य को एक-सूत्र में बाँधते हैं। जैसे कि आपने संकेत किया है, ये तीनों स्थाई भी होते हैं और परिस्थिति के अनुसार बदलते भी रहते हैं। फिर यह बताइए कि कविता विधा में आपकी विशेष रुचि कैसे अंकुरित हुई। काव्य-रचना के लिए आपका प्रथम प्रेरणा-स्रोत कौन बना?

साक्षात्कारदाता : मेरे पिताजी की काव्य-पाठ में विशेष अभिरुचि थी। बचपन में जब वह अपने कमरे में बैठकर घंटों कविता-पाठ करते थे, तब मैं उनके पास बैठकर, उनके काव्य-पाठ का आनन्द लेती थी।

हाँ, कभी-कभी उनकी कविताएँ सुनते-सुनते मैं सो भी जाती थी और मेरे कानों में गूँजती उनकी आवाज़ मेरे मस्तिष्क में एक कल्पना-लोक का सृजन करती थी। मैं अपने मधुर सपनों में, उनके शब्दों के साथ झूमती-गाती थी। कालान्तर में, उसी कल्पना-लोक ने मेरी काव्य-कौशल को जन्म दिया।

यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि मुझे बचपन में ही कई कविताएँ और दोहे कंठस्थ हो गए थे। मैं अपने अध्यापकों और सहपाठियों को जब वे छन्दोबद्ध और छन्दमुक्त कविताएँ सुनातीं, तब वे मुझसे कहते नहीं थकते थे कि - "तुम बड़ी होकर एक अच्छी कवयित्री बनोगी।" शायद ये शब्द उनके दिल की गहराई से निकलते थे, इसीलिए ये मेरे लिए देवताओं द्वारा दिए वरदान के रूप में परिणत हो गए।

साक्षात्कारकर्ता : वाह ! ऐसा आभास होता है कि कविता-रचना आपके लिए दैवी वरदान के साथ-साथ नैसर्गिक प्रतिभा बनकर स्वतः प्रस्फुटित हुई। आपकी बातों से मुझे पन्त जी के उन शब्दों का स्मरण हो रहा है, जहाँ उन्होंने महर्षि वाल्मीकि के मुख से निःसृत 'मा निषाद त्वामगमः सास्वति समाः'- प्रथम छन्द पर चिन्तन करते हुए लिखा था, 'वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान, निकलकर आँखों से बही होगी कविता अनजान।' शायद सुमित्रानन्दन पन्त जी आप ही की

जन्म-स्थली से थे न?

साक्षात्कारदाता : भाई कहाँ आप मुझ जैसी छोटी-सी कवयित्री की तुलना महान् छायावादी कवि सुमित्रानन्दन पन्त जी से कर रहे हैं। उनकी सूर्य के समान देदीप्यमान आभा के सामने मैं दीपक के लौ के समान भी नहीं।

साक्षात्कारकर्ता : यह आपकी महानता ही है कमला जी कि आप अपने-आपको कविवर सुमित्रानन्दन पन्त जी के समक्ष नगण्य बता रही है। अन्यथा दो रचनाएँ इधर-उधर से लेकर कतिपय लोग यह घोषणा करने में बिल्कुल नहीं हिचकिचाते हैं कि उनके समान महान कवि अथवा साहित्यकार संसार में है ही नहीं। कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी एक कविता में लिखा है कि अस्ताचल की ओर बढ़ते हुए सूरज ने पूछा कि इस अंधेरी रात में कौन मेरी ज़िम्मेदारी लेकर इस संसार में प्रकाश पहुँचाएगा ? यह सुनकर संसार में सन्नाटा छा गया। कोई सामने नहीं आया। वहीं एक मिट्टी का दीया था। उसने कहा - 'हे स्वामी, जहाँ तक मेरा सामर्थ्य होगा, मैं आपके द्वारा दिए उत्तरदायित्व को पूरा करूँगा।' यदि पन्त जी वह सूरज है, तो आप उस अकेले दीये की भाँति है, जो निःस्वार्थ भाव से अग्रज- साहित्यकारों के द्वारा छोड़े गए कार्यभार को अपने कँधों पर वहन कर रही हैं।

मैं कहूँगा कि जितने भी नए साहित्यकार या कवि इस साहित्य-सेवा रूपी महायज्ञ में अपने स्व की आहुति दे रहे हैं, वे उसी दीये के समान हैं। वे उतने ही सराहनीय हैं, जितना कि उनका सूर्य। ऐसे दीये न तो समाज से तेल की अपेक्षा रखते हैं और न ही बाती की। बस हवा के झोंके से बचाने के लिए उन्हें हथेलियों के सहारे की आवश्यकता होती है।

साक्षात्कारकर्ता : साहित्य की सेवा में किसी का योगदान चाहे कितना ही छोटा हो, उसे नगण्य नहीं माना जा सकता। फिर भी आप तो इतने दिनों से हिंदी के साथ-साथ कुमाऊँनी भाषा के साहित्य को समृद्ध कर रही हैं। आप तो हम जैसे साधारण दीयों से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। कृपया आप हमें यह बताएँ कि आपकी साहित्यिक-यात्रा कब और कैसे आरम्भ हुई?

साक्षात्कारदाता : दसवीं बोर्ड की विदाई में मैंने अपनी शिक्षिकाओं और साथियों के लिए अपनी पहली मौलिक रचना गढ़ी थी। मैंने उस विदाई के अवसर पर वही रचना सुनाई थी। वाहवाही गूँजी, तालियाँ बजीं और मेरी काव्य-यात्रा शुरू हो गई। तब से निरन्तर लिख रही हूँ।

हाँ यह एक कड़वा सत्य है कि ज़माने में कुछ प्रोत्साहित करने वाले लोग होते हैं, तो कुछ हतोत्साहित करने से कभी नहीं चूकते हैं। लेकिन किसी भी परिस्थिति में, मैंने लिखना नहीं छोड़ा। हर परिस्थिति में, मैं लिखती रही, क्योंकि अब कविता लिखना मेरी प्रवृत्ति बन चुकी है। मैं भोजन के बिना तो रह सकती हूँ, किंतु कागज़, कलम और कविता से अलग होकर नहीं जी सकती हूँ। सच पूछिए, तो मेरे दुख-सुख के सच्चे साथी मेरी कविताएँ ही हैं। किंतु यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं जहाँ हूँ यह क्षेत्र ग्रामीण और अविकसित है। इसी कारण मैं अपनी कविताओं को उनके सही मुकाम तक नहीं पहुँचा पा रही हूँ। पता नहीं कि समाज द्वारा मेरे साथ उचित न्याय नहीं हो पाया है या फिर कारण ... (कहती-कहती रुक जाती हैं।)

साक्षात्कारकर्ता : कमला बहन, निराश होने की बात नहीं ! कहते हैं न - 'भगवान के घर में देर है, पर अंधेर नहीं!' आपने जो रचनाएँ की हैं और जिन पुस्तकों का आपने प्रकाशन किया है, वे शायद उस भव्य भवन की नींव होंगी। विश्वास रखिए साहित्य-सेवा को ऐसे ही साधना कहकर अभिहित नहीं किया गया है। साहित्य उस तपस्या के समान है, जिसमें तपकर रचनाकार का विनाश नहीं, उसका परिष्कार होता है। उसी परिष्कार ने आपको भावों से समृद्ध करने के साथ-साथ भाषा की धनी भी बनाया है। क्या आप बता सकती हैं कि आप किन-किन विषयों पर कविता लिखती हैं?

साक्षात्कारदाता : मैंने प्रकृति को अपनी कतिपय रचनाओं में विशेष स्थान दिया है। समसामयिक समस्याएँ, नारी-विषयक चिन्ताएँ नारी-विमर्श, युवा समाज की दुश्चिन्ताएँ, तथा राजनीति आदि विषय हमारे जीवन के अभिन्न अंग हैं। ये स्वतः मेरी कविताओं के विषय बने, तो आश्चर्य की कोई बात नहीं। इन विषयों के अतिरिक्त मैंने भारतीय दर्शन,

सामाजिक चेतना और सौन्दर्याभिव्यक्ति पर अनेक कविताएँ लिखी हैं। कुछ कविताएँ प्रकृति-चित्रण से उद्‌त हुई हैं, किंतु उनमें समस्या-विशेष का उद्‌घाटन करने के लिए प्रकृति का सहारा लिया गया है। यह कवि-विशेष पर निर्भर करता है कि वह किस शैली का प्रयोग करके अपने लक्ष्य की सिद्धि करना चाहता है। मेरे लिए काव्य-सृजन भावनाओं की अभिव्यंजना का प्रबल माध्यम है। मैं लेखनी पकड़कर बैठती हूँ, शब्द भावों के साथ स्वतः जुड़ते जाते हैं। वे नदी की धारा के समान अपने-आप ही अपनी दिशा का निर्धारण कर लेते हैं। कभी-कभी मैं भावों के पीछे चलती हूँ, तो कभी भावनाएँ मेरे पीछे चलती हैं।

साक्षात्कारकर्ता : अच्छा आपने अपनी नारी-विषयक कविताओं में वर्तमान नारी के संघर्षशील रूप पर अधिक ध्यान केंद्रित किया है या फिर प्राचीन युग की आदर्श नारियों के चित्र अधिक आँके हैं।

साक्षात्कारदाता : ऐसा नहीं है कि आधुनिक नारी आदर्श नहीं है। समाज में आदर्शों के रूप भी धीरे-धीरे बदलते हैं। उनमें थोड़ा लचीलापन आए, तो ठीक है, किंतु उनमें सामूल परिवर्तन नहीं आना चाहिए। मैं आपको एक उदाहरण देती हूँ। वर्तमान नारी की चिन्ता करते हुए मैंने एक कविता लिखी है। कविता का शीर्षक है - 'कामकाजी महिला' । उसी कविता से दो पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -

"मैं एक कामकाजी महिला हूँ
समझते हैं लोग
मैं कितनी भाग्यशाली हूँ....
बच्चों को कभी
रोता-बिलखता छोड़कर
एक कदम देहरी से बाहर
एक अंदर रखकर आँसू अश्कों में भरकर
देखकर लोगों के चेहरे
ज़हर अंदर गटककर
मैं चली जाती हूँ
काम पर, क्योंकि मैं कामकाजी हूँ..."

इस कविता में, मैंने आधुनिक दौर की कामकाजी स्त्रियों के संघर्षों तथा उनके त्यागों को ध्यान में रखकर अपने मन के उद्‌गारों को स्वच्छन्द रूप से बहने दिया है। मैंने अपनी अनेक रचनाओं में नारी के उत्पीड़न तथा उसकी भावनाओं पर विविध प्रकार से चिन्तन किया है।

आज के बदलते हुए सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश पर लिखी मेरी 'आत्मीयता की खुशबू' कविता में मैंने मूल्यों के ह्रास के साथ संस्कारों में संकोच की स्थिति पर प्रकाश डाला है। हाँ, शिष्टाचार का, हमारे प्रायः युवकों के आचरण से, पूर्णतया लोप हो चुका है, कभी-कभी ऐसा भी प्रतीत होता है। 'आत्मीयता की खुशबू' कविता से ली गई कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

"नहीं लगती अब वो
बड़े-बूढ़ों की चौपालें
न ही बच्चे खेलते-कूदते
बेगानी अपनी ही आँगन राहें
घर आँगन नहीं रहे
न रही माटी की खुशबू
न लाज रही न अदब बड़ों का
सब जल गई घू- घू- घू।"

साक्षात्कारकर्ता : कमला जी, क्या आपकी उक्त रचनाएँ प्रकाशित हो गई हैं, या फिर अभी आप इनके प्रकाशन पर विचार कर रही हैं ? साथ ही यदि आप अपनी प्रकाशित रचनाओं पर कुछ प्रकाश डालेंगी, तो आपके प्रति आभारी रहूँगा।

साक्षात्कारदाता : 2011 में मेरे प्रथम काव्य-संग्रह 'मुझे वो दीप बना दो' का प्रकाशन हुआ। हिंदी भाषा में मेरा दूसरा काव्य-संग्रह 'कब आओगे मेरे द्वार' नाम से छपा। इसके बाद कुमाऊँनी भाषा में, मेरे 'लाख टकै बात' पुस्तक आई तथा हिंदी भाषा में लिखा 'बसंत से पतछड़ तक' काव्य-संग्रह अभी प्रकाशनाधीन है। इनके अतिरिक्त मैंने कई साझा कविता-संग्रहों में - जैसे कि 'हिमगिरि की निर्झरिणी', 'काव्य-वाटिका' 'यह देश है वीर किसानों का' आदि काव्य-संग्रहों में अपना योगदान दिया है। जिन दो कविताओं के अंश मैंने पढ़े हैं, वे 'बसंत से पतझड़ तक' काव्य-संग्रह में ही संकलित हैं।

साक्षात्कारकर्ता : आप अपने और कविता के बीच विकसित रागात्मक संबंध को किस प्रकार सूत्रबद्ध करना चाहेंगी ?

साक्षात्कारदाता : कविता मेरे शांत स्वरों के झंकार बनकर गूंजने वाले संगीत की तरह है। इसी के माध्यम से मैं संसार के सामने अपनी अनुभूतियों को मूर्त रूप प्रदान करती हूँ।

साक्षात्कारकर्ता : श्रीमती कमला वेदी जी, फिर से आपको धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ कि आपने मुझे अपना बहुमूल्य समय दिया। मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि उनकी कृपा से आप और आपकी साहित्यिक-यात्रा दीर्घायु हो। धन्यवाद, नमस्कार!

साक्षात्कारदाता : धन्यवाद, मनोज जी !

mskashinath@gmail.com

प्रो. दलपत सिंह राजपुरोहित से अशोक ओझा की बातचीत

श्री अशोक ओझा
न्यू जर्सी, अमेरिका

हाल ही में प्रकाशित पुस्तक 'सुन्दर के स्वप्न' टेक्सास विश्वविद्यालय के प्राध्यापक प्रो. दलपत राजपुरोहित द्वारा रचित उनके शोध पर आधारित ग्रंथ है, जो हिंदी साहित्य के 'स्वर्णिम काल', जिसे भक्ति-काल के रूप में जाना जाता है, के व्यापक परिदृश्य को प्रस्तुत करती है। इस ग्रंथ में हिंदी भाषा और साहित्य की आरंभिक आधुनिकता के तत्त्वों की विवेचना करते हुए कहा गया है कि भक्ति-कवियों ने मनुष्य को जाति और धर्म की परिभाषा से ऊपर रखकर देखने की कोशिश की। लेखक ने मुगल काल के चरित्र और उसकी संस्कृति का भी विश्लेषण करते हुए यह दिखाने की कोशिश भी की है कि भक्ति-कविता को मज़बूत आधार देने में उस युग की शासन-व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान था, जिसमें मुस्लिम और राजपूत राजाओं ने मिलकर कार्य किया। भक्ति-काव्य का विकास गुलामी से जकड़े समाज में नहीं हुआ वरन् यह दरबारी, वाणिज्य और प्रशासनिक संस्कृति की परस्पर सहिष्णुता के परिणामस्वरूप संभव हुआ।

राजपुरोहित ने दादू पंथ को अपने शोध का विषय रखा है। दादूदयाल कबीर की निर्गुण धारा के प्रमुख कवि थे, जो कबीर की अवधारणा के विपरीत एक पंथ की स्थापना करना चाहते थे। कबीर का ऐसा कोई इरादा नहीं था। उनकी भाषा ब्रज थी, जिसकी लोकप्रियता संस्कृत और फ़ारसी की दो परंपराओं के बीच होती रही। राजपुरोहित इसे महत्त्वपूर्ण इसलिए मानते हैं कि भक्ति-कवियों की काव्य-रचना देश भाषा में होने के कारण जन-सामान्य द्वारा स्वीकार की गई।

दादू पंथ को अपने शोध का विषय राजपुरोहित ने क्यों चुना? प्रस्तुत है उनसे अशोक ओझा की गहन बातचीत -

साक्षात्कारकर्ता : भक्ति-काल में आपकी रुचि के पीछे ज़रूर आपकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा और परिवेश कारण रहा होगा। क्या आप आपने प्रारम्भिक जीवन के बारे में बताएँगे?

साक्षात्कारदाता : मेरा जन्म राजस्थान के पाली ज़िले में सोकड़ा नामक ग्राम में 1982 में हुआ। मेरी प्रारम्भिक शिक्षा भी वहीं हुई। गाँव के पास पालना शहर में उच्च विद्यालय में पढ़ाई करने गया, बाद में जोधपुर विश्वविद्यालय से स्नातक की शिक्षा प्राप्त की। मुझे साहित्य पढ़ने का बहुत शौक था, इसलिए हिंदी और अंग्रेज़ी के साथ संस्कृत साहित्य भी लेना चाह रहा था। लेकिन वहाँ ऐसा नियम था कि तीनों साहित्य के विषय नहीं ले सकते थे। इसलिए मैंने इतिहास लिया। वहीं जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के बारे में बहुत तारीफ़ सुनी। मैं भी जोधपुर से बाहर जाना चाहता था। बड़े भाई ने कुछ पाठ्यक्रम सामग्री लाकर दी, जिसके सहारे मैं जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा में शामिल हुआ और सफल हुआ। वह मेरे अकादमिक जीवन और व्यक्तिगत विकास की दृष्टि से मेरे जीवन का नया क्षण था।

वहाँ मैंने किताबें खरीदकर पढ़ना सीखा। मेरा पूरा विश्वास है कि यदि आपके पास आर्थिक संसाधन हैं, तो उसका सही निवेश पुस्तकें खरीदने के लिए करना चाहिए। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से मैंने एम. ए. और एम. फ़िल किया।

मेरे पिताजी भजन गाते थे, उनको सुनता हुआ मैं बड़ा हुआ। अक्सर भजन-मंडलियों में जाते थे, उनके साथ मैं भी जाता रहा। मुझे महसूस हुआ कि भक्ति-काल हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग माना जाता है, भजन सिर्फ़ पाठ्यक्रम की वस्तु नहीं, यह तो जन-जन में बसा हुआ है, जिसमें जन-सामान्य की आशाएँ और आकाँक्षाएँ बोलती हैं। उनको गाकर आदर्श मानव कैसे बना जाए, उसके तत्त्व भक्ति-काल में मिलते हैं। भक्ति-काल देश भाषा का साहित्य है। उसमें मनुष्य एक-दूसरे से जुड़ता है, संवाद कर सकता है। उनमें दार्शनिक बातों को भी बड़े साधारण ढंग से कहा जाता है। उसमें विद्वता का आवरण नहीं। उसमें समाज और राष्ट्र के निर्माण में भक्ति-काल का योगदान है, उसमें जन-सामान्य को उद्वेलित करने और विकसित करने की क्षमता है, जिसे मैंने अपने व्यक्तिगत जीवन में डाला। इसलिए मैं भक्ति-काल की तरफ़ मुड़ा। भक्ति-काल एक ऐतिहासिक काल में विकसित हुआ आंदोलन था, उसे ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अकादमिक ढंग से जानना ज़रूरी है।

साक्षात्कारकर्ता : कह सकते हैं कि यहीं से आप अध्यापन की ओर मुड़े!

साक्षात्कारदाता : मैं शोध-कार्य कर ही रहा था कि पता चला 'अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑफ़ इंडियन स्टडीज़' को हिंदी शिक्षक की ज़रूरत है, मैंने आवेदन किया और चुना गया। कहना चाहूँगा कि अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑफ़ इंडियन स्टडीज़ में कार्य करते हुए मेरे लिए बड़ा द्वार खुल गया था, वहीं पता चला कि विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। न्यूयॉर्क के कोलम्बिया विश्वविद्यालय में हिंदी शिक्षक की ज़रूरत थी। अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑफ़ इंडियन स्टडीज़ में कोलम्बिया के कुछ छात्र थे, जिन्हें मेरी भाषा-शिक्षण पद्धति अच्छी लगी, उन्होंने सलाह दी कि मुझे आवेदन करना चाहिए। मुझे साक्षात्कार के लिए अमेरिका बुलाया गया। मेरे लिए यह अनहोनी बात थी। इंटरव्यू के लिए मैं अमेरिका आया। इंटरव्यू के दिन एक साथी ने कहा कि आप नर्वस हैं? मैंने कहा कि नर्वस होने की तो कोई बात नहीं, क्योंकि अगर नौकरी नहीं भी मिली, तो चलो अमेरिका तो देख लेंगे। सौभाग्य से मुझे कोलम्बिया में नौकरी मिल गई।

साक्षात्कारकर्ता : आपके शोध का क्या हुआ?

साक्षात्कारदाता : मेरा शोध कलकत्ता के प्रेज़िडेन्सी विश्वविद्यालय में चलता रहा, जहाँ कुछ शिक्षक जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से गए थे। 2014 में कोलम्बिया ने एक साल की छुट्टी दी और मैं कलकत्ता चला गया अपना शोध पूरा करने। वहाँ ग्रेजुएट लेवल का एक कोर्स पढ़ाया, और पी.एच.डी. लिखता रहा। वापस कोलम्बिया आकर बीच-बीच में जाता रहा। प्रेज़िडेन्सी यूनिवर्सिटी में 2019 में अपनी पी.एच.डी. पूरी की। मार्च 2008 में कोलम्बिया में मेरा चुनाव हुआ था, उसी वर्ष अगस्त महीने में वहाँ पढ़ाना शुरू किया। उसके पूर्व एम. फ़िल कर चुका था, इसलिए सारे कोर्सवर्क के लिए मुझे कलकत्ता जाना नहीं पड़ा। कोलम्बिया में 10 साल पूरा कर टेक्सस-ऑस्टिन आ गया। प्राध्यापक रूपर्ट श्रेल सेवानिवृत्त हो गए थे, वे जो हिंदी पढ़ते थे, यानी आधुनिक हिंदी के साथ क्लासिकल हिंदी, मध्यकालीन हिंदी या ब्रज भाषा, वहीं योग्यता मुझमें देखकर ही मुझे वहाँ सहायक प्राध्यापक का काम मिला। पिछले चार सालों से ऑस्टिन में पढ़ा रहा हूँ। अच्छा लग रहा है।

साक्षात्कारकर्ता : 'सुन्दर की कविता' पुस्तक के मूल तत्त्व क्या हैं? आपने भक्ति-काल पर शोध-कार्य किया, इस काल के बाद से काफ़ी कुछ बदल चुका है। आज के सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में उन दिनों राम और कृष्ण के बारे में साहित्य रचना शायद सुगम रहा होगा। हालाँकि सगुण और निर्गुण धारा का एक पक्ष महत्त्वपूर्ण पक्ष सामाजिक एकता स्थापित करने और धार्मिक भेदभाव दूर करने का भी है। सामाजिक रूढ़ियों को दूर करने के लिए संत कवियों ने कार्य किया, उस कार्य का कौन-सा पहलू आपकी पुस्तक में परिलक्षित हो रहा है?

साक्षात्कारदाता : 'भक्ति और रीति काव्य-धाराओं का

संवाद और दादू पंथी सुंदर दास की कविता' पुस्तक का 60 प्रतिशत हिस्सा मेरा पी.एच.डी. है और 40 प्रतिशत बाद में लिखा हुआ है। पंद्रहवीं सदी से बीसवीं सदी तक मेरा अध्ययन दादू पंथ को केंद्र में रखकर हुआ। यह पुस्तक भक्ति की तरफ़ मेरे आकर्षण की, दादू पंथ के प्रति आकर्षण की कहानी है। मैंने हिंदी साहित्य के विकास का भी अध्ययन किया। केवल भक्ति-काल का अध्ययन नहीं, यह हिंदी साहित्य के इतिहास का अध्ययन है। विभिन्न धाराओं का अध्ययन है, उनके केंद्र में है दादू पंथ। मुझे आधुनिक साहित्य आकर्षित करता रहा है, उसका सजग पाठक रहा हूँ। जीवनी, कथा, उपन्यास या अस्मिता को लेकर दलित, आदिवासी, वृद्ध, तीसरी लिंग और हाशिए के समुदायों को नई आवाज़ मिल रही है। उनका साहित्य सामने आ रहा है, जिसमें मेरी काफ़ी दिलचस्पी है।

भक्ति-काल एक ऐसा दौर था, जिसमें न केवल साहित्य रचा गया, बल्कि देश और भाषा का भी विकास हुआ। गुजरात के आदि कवि के रूप में नरसिंह मेहता, एक कृष्ण-भक्त कवि का नाम आता है। महाराष्ट्र का कालजयी साहित्य में ज्ञानदेव से तुकाराम तक के नाम आते हैं। तमिल में आंदालवासन का नाम लेंगे। भक्ति-काल के द्वारा भारत को भक्ति से जोड़ा गया। भक्ति भारत का एक विचार प्रस्तुत करती है। इसीलिए भक्ति ने मुझे प्रभावित किया, जिसे मैंने ऐतिहासिक दृष्टिकोण से जानना चाहा।

निर्गुण और सगुण धारा में दादू पंथ ने आकर्षित किया, क्योंकि उन्होंने जाति-धर्म से ऊपर उठकर मानवीय पक्ष को प्रस्तुत किया।

दादू धुनिया थे, रुई धुनने का काम करते थे, जो मुसलमान लोग करते हैं। उनके लिए कबीर की शिक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण थी। सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कबीर की बड़ी प्रतिष्ठा थी, भारत में, खास तौर पर पश्चिमी भाग में। कबीर का उल्लेख तो सिख धर्म और वैष्णव धर्म की परम्परा में भी उल्लेख था। अबुल फ़ज़ल के ग्रंथों में भी उनका था। दादू के लिए कबीर आदर्श संत थे। उनकी एक साखी है : ''जेथा पंथ कबीर का, तोई वर वरे हूँ, मन ता भाषा कर्मणआ और ना करे हूँ।''

(मैं उसी प्रियतम का वरण करना चाहता हूँ, जो कबीर का प्रियतम है।)

उसी पंथ को लेकर दादू आगे बढ़े, जिसमें खास बात यह थी कि दादू से जुड़ने वाले संतों की कोई एक भूमिका नहीं थी, उनमें राजपूत, बनिया, ब्राह्मण, मुसलमान और स्त्रियाँ सभी थे। दादू को व्यापक पृष्ठभूमि के शिष्य मिले, लेकिन दादू और कबीर में एक मुख्य बात यह थी कि कबीर अपना पंथ स्थापित करना नहीं चाहते थे, जब कि दादू ने विधिवत् पंथ स्थापित किया। उनके जीवन में एक खाका बन गया था, उनकी जीवनी लिखी गयी, उनकी यात्राओं को दिखाया गया। दादू दयाल एक पंथ का निर्माण करना चाहते थे, जिसके लिए उनके शिष्य काव्य की रचना करते थे। व्यापक दृष्टि से देखें, तो हिंदू, मुसलमान एक आधुनिक विचार है, उन्नीसवी-बीसवीं सदी में पैदा हुए विचार हैं, उसके पहले लोग अपने आपको पंथों और धाराओं के अनुयायी के रूप में देखते थे- जैसे वैष्णव, निर्गुण, दादू पंथी और उनकी अलग-अलग धाराएँ। ये परिकल्पनाएँ सनातन धर्म की परिकल्पना के पहले की हैं। खास बात उनमें यह थी कि अनेक जाति के संत मिले। दादू के 52 शिष्य थे, सबने अपनी-अपनी शाखाएँ खोलीं, जिनसे दादू पंथ पश्चिमी भारत का प्रधान संप्रदाय बन गया था।

साक्षात्कारकर्ता : सूफ़ी परम्परा के आविर्भाव के पूर्व के भारतीय कवियों ने विदेशी आक्रमणकारियों से पराजित हो रहे अपने राजाओं की स्तुति में काव्य-रचनाएँ कीं। वे विदेशी शासकों का विरोध करते थे। क्या आपको लगता है कि संत परम्परा के समय शासन से दूर रहते हुए भी शासन का सम्मान पाने वाले संत कवियों में यह भावना आ गयी थी कि मुस्लिम शासक राज कर रहे हैं, उन्हें स्वीकार किया जाए! आप इसे किस रूप में देखते हैं?

साक्षात्कारदाता : देश में जब इस्लाम एक राजनीतिक शक्ति के रूप में अपना साम्राज्य स्थापित करता है तब दरबारी कवि राजपूत शासकों के संघर्ष की गाथा कहते थे। चंदबरदायी का काव्य बारहवीं सदी का भले ही हो, उनकी पांडुलिपियाँ अकबर के काल की मिलती हैं। उनका ग्रंथ

अकबर के समय का मिलता है-सोलहवीं सदी का। तीन सौ साल का फ़र्क। स्वाधीनता के आंदोलन में एक धारा यह थी कि ब्रिटिश हमारे शत्रु नहीं, उसी प्रकार भक्ति-काल में यह भाव ज़रूर था कि मुस्लिम हमारे शत्रु नहीं। मुस्लिम शासक को आक्रांत के रूप में प्रचारित किया गया, बीसवीं सदी में। दरबारी साहित्य में तो संघर्ष का वर्णन है, लेकिन मुगल काल तक आते-आते एक सह-अस्तित्व की बात आ गयी थी। ठोस उदाहरण हैं - वृंदावन। सोलहवीं सदी के उत्तरार्ध में कृष्ण-भक्त कवियों का बड़ा केंद्र वृंदावन था। वल्लभ सम्प्रदाय विकसित होता है वृंदावन और आसपास के इलाके में, कृष्ण के बाल्य-काल के स्थान के रूप में। कृष्ण-भक्ति के प्रधान केंद्र के रूप में वृंदावन को विकसित करने में मुगल और राजपूत दोनों के गठजोड़ का बड़ा योगदान है। अकबर वृंदावन के हिंदू पुजारियों को भूमि अनुदान देता था। राजपूतों के साथ विवाह की उसकी नीति के कारण राजपूत उनके साथ जुड़ते हैं, मुगलों के सहयोग से राजपूत भी कृष्ण-भक्ति को विकसित करने में जुट जाते हैं। अकबर सूफ़ी धारा से जुड़े थे। ख़्वाजा चिश्ती के दरगाह जाते थे। उनकी धर्म-चर्चा में जैन, ईसाई आदि सभी धर्मों के लोग जुड़ते थे। परिणामस्वरूप, इस्लाम एक राज्य का धर्म न रहकर एक धारा बन जाती है, अन्य पंथ की धाराओं की तरह, जो हिंदू भी हैं, मुसलमान भी। धर्म-चर्चा का नतीजा यह हुआ कि साम्राज्य किसी एक धर्म का प्रतिनिधि न रहकर उससे ऊपर चला गया, इस्लाम पूरे भारत पर शासन करने वाला एक धर्म न रहकर एक धारा बन गया और अकबर शासन की नई शैली विकसित हुई। दादू के शिष्य यह मानते हैं कि अकबर की नीतियों को विकसित करने में दादू का बड़ा योगदान था। हालाँकि यह दादू पंथियों की कल्पना है, फ़ारसी स्रोतों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। मुगल काल तक आते-आते मुस्लिम-हिंदू का विभाजन नहीं दिखता, मुगल एक ऐसी संस्कृति विकसित करते हैं, जो भारत की विविधता में एकता लाने का सिलसिला बन जाता है। संस्कृत और फ़ारसी के शिष्ट वर्ग के बीचों-बीच एक ऐसा वर्ग पैदा हुआ, जो देश की भाषा में लिख रहा था, काव्य-रचना कर रहा था। इसी समय ब्रज भाषा को बड़ी प्रतिष्ठा मिलती है, उसमें भक्ति-काव्य लिखा जाता है, वह विद्वानों की भाषा, कृष्ण-भक्ति और दरबार की भाषा बन जाती है। हिमालय से महाराष्ट्र और गुजरात तक, पूरे भारत में ब्रजभाषा पहुँची है।

यदि हम हिंदू और मुस्लिम धाराओं के चश्मे से भारत को देखें, तो उन जटिलताओं को नहीं समझ पाएँगे, क्योंकि हिंदू-मुस्लिम धाराएँ कुछ नया कर रही थीं, मुगल साम्राज्य सिर्फ़ मुगलों का नहीं था, वह राजपूतों का भी था। हम देख सकते हैं, मुगलों के साथ आमेर, जोधपुर, यहाँ तक कि बंगाल भी जुड़ा हुआ था। यह हिंदू-मुस्लिम साम्राज्य था। भक्ति उसी समय फैली। मेरी पुस्तक में इन सब विषयों का अध्ययन किया गया है।

साक्षात्कारकर्ता : अकबर के बाद हिंदू-मुस्लिम विभाजन को बढ़ावा मिला। संत कवियों की परम्परा के बावजूद, भारत की सामाजिक परंपरा इतनी मज़बूत नहीं हो सकी कि एक भारतीय शासन कायम हो सके, बल्कि आत्म-सम्मान की ताकत औरंगज़ेब तक आते-आते क्षीण हो चुकी थी। नतीजे के तौर पर एक नया शासन, अंग्रेज़ों का शासन हमारे ऊपर राज करने लगा। उनकी गुलामी सहनी पड़ी। ऐसा क्यों हुआ? संत कवि वह सामाजिक ताकत पैदा क्यों नहीं कर सके? राजपूतों का विरोधी स्वर भी उभरा। विवाह के माध्यम से विरोधियों को जीतना बहुत सराहनीय नहीं कहा जा सकता। आप एक जागरूक और आधुनिक लेखक के रूप में इस पूरे काल को किस रूप में देखते हैं?

साक्षात्कारदाता : संत कवियों धर्म, जाति में बँटे समाज को एक करने पर बहुत काम किया। वे ऐसे मूल्यों पर सबको एक जगह लाने का प्रयास कर रहे थे, जो सबको स्वीकार्य हो। इसमें वे कई मायनों में सफल हुए और कुछ मायनों में सफल नहीं हुए। इसके पीछे एक कारण यह है कि, जैसे गांधी और अंबेडकर में विवाद था, जिसमें अंबेडकर शास्त्रों की आलोचना करते हुए कहते हैं कि हिंदू धर्म में भेद-भाव के लिए शास्त्र ही ज़िम्मेदार हैं, इस पर गांधी का कहना था कि हिंदू धर्म को संतों के नज़रिए से देखना चाहिए, संतों ने समाज को एक किया है। अंबेडकर का कहना था कि संत कहते हैं

कि मनुष्य एक है, भगवान की नज़रों में, कोई धर्म भगवान से ऊपर नहीं, लेकिन संत यह नहीं समझा सके कि मनुष्य एक यथार्थ है, भगवान की नज़रों में। यह विमर्श तो संतों ने दिया है कि जाति के ऊपर भी मनुष्य की पहचान है। यह विचार यदि किसी ने सैकड़ों वर्षों तक जीवित रखा है, तो वे हैं संत। उनसे आधुनिक भारत बहुत कुछ सीख सकता है।

मैं यह नहीं कह सकता कि भक्ति-काल में हिंदू-मुस्लिम संघर्ष हो रहा था। मैं यह बताना चाहूँगा कि भारत में जब मुगल साम्राज्य कमज़ोर होने लगा और ब्रिटिश साम्राज्य विकसित होने लगा उसके दौरान एक और साम्राज्य पनपा। वह था, मराठा साम्राज्य। शिवाजी के राज्य अभिषेक के बाद सौ साल तक मराठों का शक्तिशाली साम्राज्य फला-फूला, यह सर्वविदित है कि मराठा साम्राज्य के दौरान राष्ट्रीय एकता का काम किसी ने यदि किया, तो वे थे मराठी संत। एक नाथ से लेकर तुकाराम, सबने इस मराठी पहचान को सशक्त किया। संतों ने मराठी अस्मिता की बात की। अपने धार्मिक विश्वासों में मराठी पहचान कायम किया, पंढरपुर यात्रा जैसे कार्यक्रमों से एकता फैलाई। संतों की शिक्षा के माध्यम से मराठी एकता कायम हुई। तो संतों ने जो ज़मीन तैयार की थी उसी पर शिवाजी ने अपना साम्राज्य खड़ा किया, जो कि सौ सालों तक चला। शिवाजी क्षत्रिय नहीं थे, लेकिन उनके कार्य क्षत्रिय के हैं। वे क्षत्रियत्व अपनाते हैं। क्षत्रिय धर्म निभाते हैं, जिसकी नींव महाराष्ट्र के संतों ने पहले से ही तैयार कर दी थी। वे साबित करते हैं कि नीची जाति का व्यक्ति भी क्षत्रित्व अपना सकता है। अठारहवीं सदी के नक्शे में मराठा राज्य की बड़ी पहचान दिखायी देती है, जब कि ब्रिटिश शासन उन दिनों बहुत क्षीण अवस्था में था। इस प्रकार हिंदू जाति हमेशा गुलामी सहती आई, ऐसा नहीं था, क्योंकि मराठों का शासन बहुत शक्तिशाली था, जिसमें संतों का भारी योगदान देखा जा सकता है।

भक्ति-काल का साहित्य, ब्रजभाषा का साहित्य, हमको यह बताता है कि मुगलों के समय राजपूत उनकी गुलामी नहीं करते थे। वे राजा थे, कहीं चक्रवर्ती राज के रूप में तो कहीं राम और कृष्ण के समकक्ष। उस समय का हिंदी-काव्य गुलामी का काव्य नहीं है।

साक्षात्कारकर्ता : लेखक के रूप में आप अध्यापन और लेखन के बीच तारतम्य कैसे बैठाते हैं?

साक्षात्कारदाता : मेरी कई भूमिकाएँ हैं। एक शिक्षक के रूप में मैं हिंदी भाषा के विद्यार्थियों को साहित्य सिखाता हूँ। उन्हें साहित्य की तरफ़ ले जाना मेरी ज़िम्मेदारी है। दूसरी भूमिका है विद्यार्थियों को शोध करने के लिए मार्गदर्शन देना। उसके लिए ज़रूरी नहीं कि पाठ्यक्रम बनाऊँ। उनके लिए ऐसे क्षेत्रों की जानकारी रखनी है, जिनपर वे शोध कर सकें या विश्व में जो शोध हो रहे हैं, उनकी जानकारी मुझे रखनी है, ताकि ऐसे क्षेत्रों का परिचय अपने छात्रों को दे सकूँ, जिनमें शोध होना बाकी है। हिंदी में आज क्या लिखा जा रहा है, उसके बारे में जानकारी रखने वाला जागरूक पाठक भी हूँ।

जब मैं ने हिंदी-शिक्षण की शुरुआत की थी, तब सामग्री कम थी। तकनीक से हिंदी जुड़े यह प्रयास करना है। आज प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षा की तरफ़ ध्यान कम गया है, उन पर काम होना चाहिए। शोधकर्ता और निदेशक के रूप में 17 से 19 वीं सदी के दौरान जैन, मुस्लिम और हिंदी लेखक क्या कर रहे थे? क्या उनमें परस्पर कोई संवाद था? आपसी वार्तालाप था? इस पर कार्यक्रम बना रहा हूँ। इस क्षेत्र में विद्यार्थी यदि मिले, तो मुझे खुशी होगी।

साक्षात्कारकर्ता : क्या आप मानते हैं कि अमेरिका में हमारे शिक्षण की सफलता भारत में हो रहे कार्यों से जुड़ी है। वहाँ काम हो रहा है, तो यहाँ भी होगा। शायद भारत में हिंदी के लिए संगठित प्रयास नहीं हो रहा है। हिंदी को सक्षम वैश्विक भाषा के रूप में स्थापित करने के लिए क्या सुझाव हैं?

साक्षात्कारदाता : साहित्य की हिंदी और बोलचाल की हिंदी में विभाजन करने की ज़रूरत है। हिंदी भाषा अपने शब्द-भंडार के लिए, आसपास की बोलियों से जुड़े, यह ज़रूरी है। इसके लिए संस्कृत की तरफ़ ही हम न देखते रहें। भारत के अलग राज्यों से आ रहे हेरिटिज विद्यार्थियों को आपस में जोड़ना चाहिए।

aojha2008@gmail.com

बाल-साहित्यकार और हिंदी कवि श्री दिविक रमेश शर्मा जी का साक्षात्कार

शालिनी वर्मा
दोहा, क़तर

अपने पहले ही कविता-संग्रह 'रास्ते के बीच' से चर्चित हो जाने वाले और 'सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड' जैसा अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार पाने वाले आज के समय के वरिष्ठ बाल-साहित्यकार और सुपरिचित हिंदी कवि श्री दिविक रमेश जी को हम सभी 'दिविक जी' के नाम से जानते हैं। उनसे इस बातचीत में उन्होंने अपने 'दिविक' नाम का अर्थ बताया, जोकि बहुत ही रोचक है। इसी के साथ बहुमुखी प्रतिभा के धनी दिविक जी ने उनकी साहित्यिक यात्रा के साथ-साथ अपने अनेक संस्मरण भी साझा किए। दिविक जी को कविता, अनुवाद , बाल-साहित्य आदि के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर के अनेक सम्मान दिए गए हैं। उन्हें केंद्रीय साहित्य अकादमी का पुरस्कार, हिंदी अकादमी, दिल्ली के साहित्यकार सम्मान, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का सर्वोच्च बाल-साहित्य पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरू सम्मान, गिरिजाकुमार माथुर स्मृति सम्मान, जवाहरलाल नेहरू बाल-साहित्य अकादमी, राजस्थान का सर्वोच्च पुरस्कार, एनसीईआरटी का पुरस्कार, भारतीय अनुवाद परिषद् का द्विवागीश पुरस्कार, कोरियाई दूतावास का सम्मान, रसियन कल्चरल सेंटर का सम्मान और एशियन अकेडमी ऑफ़ आर्ट्स का लाइफ़ टाइम अचीवमेंट अवार्ड से सम्मानित किया गया है। अपने प्रारंभिक संघर्षमय जीवन में आशावाद और सकारात्मक विचारधारा से जीत हासिल करने वाले दिविक जी ने बाल-साहित्य लेखन के बारे में कई बातें इस बातचीत में स्पष्ट कीं।

साक्षात्कारकर्ता : प्रणाम आदरणीय, मैं आपको आभार व्यक्त करती हूँ कि आपने इस साक्षात्कार के लिए अपना बहुमूल्य समय निकाला और आशा करती हूँ कि यह साक्षात्कारो नए साहित्यकारों व बाल-पाठकों के लिए बहुत ही लाभदायक होगा। सबसे पहले हम जानना चाहेंगे कि आपका जन्म कब और कहाँ हुआ?

साक्षात्कारदाता : दिल्ली के ग्रामीण क्षेत्र में एक गाँव है किराड़ी, जो कि हरियाणा की सीमा पर स्थित है, उसमें 28 अगस्त 1946 को मेरा जन्म हुआ। हालाँकि जैसा कि उस ज़माने में होता था, पिताजी जब मेरा दाखिला करवाने गए, तब वहाँ अंदाज़े से मेरी जन्मतिथि 6 फ़रवरी 1946 लिख ली गई और फिर तब से वहीं मेरी कागज़ी जन्मतिथि है, परंतु वास्तविक जन्मतिथि 28 अगस्त 1946 ही है।

साक्षात्कारकर्ता : महोदय , कृपया आप अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि और शैक्षणिक योग्यताओं के बारे में हमारे पाठकों को कुछ जानकारी दें।

साक्षात्कारदाता : मेरा जन्म एक पारंपरिक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। मेरे दादाजी एक ज्योतिषी थे और मेरे पिताजी हरियाणवी लोक गायक थे। मेरे पिताजी सांग (स्वांग) से भी जुड़े हुए थे। उस नाते जो छुआछूत या अन्य भेदभाव की बातें होती हैं, वे मेरे पिता जी के मन में नहीं थीं और उसी तरह के संस्कार मुझमें भी आए। मेरी माताजी दिल्ली के शहरी इलाके देव नगर, करोलबाग से आती थी। ग्रामीण और शहरी मिलन का प्रभाव मुझे बाल्यकाल से मिला, क्योंकि मेरे पिताजी गाँव के थे और माताजी शहर की। पर मेरी माताजी ने ग्रामीण जीवन को पूरी तरह से अपना लिया था। वह बाकायदा दूर कुओं से पानी लाती थी, सुबह उठकर चक्की आदि चलाती थी। उस समय चूल्हे भी जलते थे, उन्हीं पर खाना बनता था, तो इस तरह के ग्रामीण वातावरण में बचपन गुज़रा था। हम अपने पिताजी को चाचा कहते थे। लोक गायिकी का जो वातावरण था, उसको मैं देखता था पर एक बात मुझे पसंद नहीं आती, वह यह थी कि मेरे पिताजी साड़ी बाँधकर नृत्य-गान करते थे। शुरू-शुरू में अजीब लगता था, लेकिन बाद में मुझे समझ आ गई। मुझे लगता है कला के कुछ संस्कार, पिताजी के इस गुण के कारण मुझमें आए होंगे। मेरे पिताजी बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे, उन्हें उर्दू का ज्ञान था। श्रुति परंपरा से जितना भी उनको ज्ञान था, उसके कारण वह किसी भी विषय

पर, किसी के भी साथ अच्छी-खासी बहस कर सकते थे।

उस समय गाँव में, गाँव जैसा ही वातावरण था। आज तो गाँव का स्वरूप बदल गया है, अगर आज आप दिल्ली के आस-पास के गाँवों को जाकर देखे, तो वे न गाँव हैं न ही शहर। यानी गाँव का जो पूरा चरित्र होता था, वह तो गायब हो गया, पर वह बचपन का गाँव मेरी याददाश्त में तो है, लेकिन साक्षात नहीं है।

अब आपने मुझसे शैक्षणिक योग्यता के विषय में पूछा था, तो हमारे गाँव में पाँचवीं कक्षा तक का एक विद्यालय था और मेरी प्राथमिक शिक्षा वहाँ हुई। पाँचवीं कक्षा तक पढ़ने के बाद मुझे आगे की शिक्षा के लिए मेरे ननिहाल यानि मामा-नाना के घर में भेज दिया गया था, जोकि दिल्ली शहर में था - देवनगर। उसका कारण यह था कि मेरे पिताजी मुझे एक प्रकार का संरक्षण देना चाहते थे। वे चाहते थे कि गाँव की पगडंडियों से और जंगली इलाके से निकलकर मैं नाना के यहाँ जाकर पढ़ूँ, तो सब बातों को ध्यान में रखकर मुझे वहाँ भेज दिया गया। छठी क्लास से आगे मेरी सारी पढ़ाई दिल्ली शहर में हुई। देवनगर में मेरा स्कूल था, उस समय 11वीं कक्षा होती थी, बारहवीं नहीं होती थी, वहीं मैंने 11वीं कक्षा तक पढ़ाई की। उसमें मैंने साइंस विषय लिया था। हालाँकि हिंदी भी मैं पढ़ रहा था। फिर कुछ ऐसी आर्थिक स्थितियाँ बनीं कि मुझे नौकरी करनी पड़ी और नौकरी करते हुए मैं विज्ञान की शिक्षा आगे नहीं बढ़ा सकता था। तो मैंने कॉमर्स लिया और दिल्ली विश्वविद्यालय से इकोनॉमिक्स इंग्लिश और हिंदी से बी.ए. किया और उसके बाद हिंदी में एम.ए. किया। मैंने नौकरी करते हुए अपनी पूरी शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद एम.ए. में मेरी प्रथम श्रेणी आ गई थी और मैं संस्थान में प्रथम आया था, तो मुझे दिल्ली विश्वविद्यालय के ही कॉलिज में नौकरी मिल गई और फिर मैंने पी.एच.डी भी पूरी की। मैं वहाँ प्राचार्य बन गया और मेरी जो सेवानिवृत्ति हुई, प्राचार्य के पद से हुई। मेरा कार्य-क्षेत्र दिल्ली विश्वविद्यालय ही रहा, भारत सरकार आई.सी.सी.आर. की ओर से कुछ वर्ष के लिए हिंदी का अतिथि आचार्य बनकर मैं साउथ कोरिया गया, तीन वर्ष तक मैंने वहाँ हिंदी पढ़ाने का कार्य किया और फिर मैं वापस आ गया और तब से अब तक लेखन में सक्रिय हूँ।

साक्षात्कारकर्ता : एक बात मैं जानना चाहूँगी कि क्या बचपन से ही लेखन में आपकी रुचि थी और लेखन से आपका लगाव किस प्रकार हुआ?

साक्षात्कारदाता : छठी कक्षा से मैं दिल्ली में अपने नानाजी के यहाँ था और मेरे नाना जी साहित्य प्रेमी थे। उनका एक छोटा-सा पुस्तकालय भी था, जिसमें प्रेमचंद, बिहारी, सूरदास, तुलसीदास, मैथिलीशरण गुप्त आदि की पुस्तकें होती थीं। उनमें से कुछ पुस्तकें आज भी मेरे पास हैं। नानाजी कुछ ऐसी संस्थाओं में भी जाते थे, जिनका संबंध साहित्य से था। मैं जब दिल्ली ननिहाल आ गया था, बच्चा ही था, तो मुझे अपनी माँ बहुत याद आती थी, मुझे अपनी दोनों बहनें, जो छोटी थीं वे बहुत ही याद आती थीं। हमारे घर में गाय थी, वह भी मुझे बहुत याद आती थी। तालाब की याद आती थी, जिसमें मैं नहा लेता था, खेत-खलिहान सभी की याद आती थी। मैं पुलिया पर जाकर बैठ जाता था और याद करता रहता था और उदास होता था। अकेलापन भी महसूस करता था, लेकिन मेरी नानी मुझे बहुत प्यार करती थी। सभी लोग प्यार करते थे। शुरू-शुरू में मुझे यहाँ के बच्चों ने स्वीकार भी नहीं किया था। उसका कारण शायद मेरी भाषा बोली रही होगी, लेकिन धीरे-धीरे परिस्थितियाँ बदलीं। उसी समय मैंने एक कहानी लिखी। मुझे तो उस समय पता ही नहीं था कि कहानी क्या होती है, लेकिन अपने आस-पास जो कुछ भी था, उसी से प्रेरित यह कहानी लिखी थी। पात्र भी सचमुच के रख दिए थे। मैंने डायरी में कहानी लिखी थी और अपने दो करीबी दोस्तों को बड़े शौक से दिखाई। उससे पहले मैंने किसी को बताया नहीं था कि मैं लिखता भी हूँ। उस समय का माहौल भी ऐसा था कि पढ़ो-लिखो, बाकी चीज़ों में ज्यादा ध्यान मत दो। पर मज़ेदार बात यह रही कि जब मैंने दोस्तों को कहानी दिखाई, तब उन दोस्तों ने मुझे धमकी दे दी कि बच्चू, तो तुम चुपके-चुपके यह काम करते हो, कहानी लिखते हो। हम तुम्हारे नाना जी से शिकायत करेंगे और उन्होंने मेरी कहानी नानाजी तक पहुँचा दी। नानाजी ने मुझे बुलाया और पूछा कि यह कहानी तुमने लिखी है? मेरी माँ इस बात की बड़ी कायल

थी कि चाहे कुछ भी हो झूठ नहीं बोलना चाहिए। मुझे यह गुण अपनी माँ से प्राप्त हुआ। मैंने सच कहा, हाँ मैंने लिखी है। नानाजी ने तीन बार पूछा। उन्होंने यह भी पूछा कि तुमने कहीं से नकल तो नहीं की? मैंने कहा नहीं, मैंने स्वयं ही लिखी है। अचानक नानाजी ने पीठ पर शाबाशी देते हुए कहा, शाबाश! अगर तुमने लिखी है, तो बहुत अच्छा, तुम लिखते रहो। अब सोचिए कि मेरी क्या स्थिति रही होगी। मैंने अपने आप को बड़ा गौरवान्वित महसूस किया और उन लड़कों के पास पहुँच गया कि तुम मुझे पिटवाना चाहते थे, पर नानाजी ने तो कहा कि लिखते रहो। इस प्रकार लेखन का आरंभ हो गया।

साक्षात्कारकर्ता : महोदय, अपनी लेखन-यात्रा के बारे में आगे कुछ और बताइए।

साक्षात्कारदाता : करीब 12 वर्ष की आयु से जो लेखन-यात्रा आरंभ हुई तब से अनवरत चल रही है शुरुआत कहानियों से हुई, कविताएँ भी लिखीं, पर ये कविताएँ बालक के द्वारा लिखी हुई थीं, जैसे जब मुझे अपनी गाय या छोटे भाई या माँ की याद आई, तो मैंने उन पर लिख दिया, इस प्रकार लेखन चलता रहा। उस समय कवि सम्मेलन चौक पर हुआ करते थे। तो वहाँ भी मैं चला जाता था उसका भी प्रभाव रहा होगा। बाद में, जो भी मुझे अच्छा लगता था, आसपास जो घट रहा होता था उसके ऊपर लिखने लगा।

यहाँ एक चीज़ एक और बताना चाहता हूँ। आरंभ में नानाजी से मुझे इतना तगड़ा प्रोत्साहन मिला, जिससे मेरा उत्साह बढ़ गया। मैं यही बताना चाहता हूँ कि जिन घरों में बच्चे किसी भी कला में रुचि रखते हों, तो उनको प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। एक और घटना बताना चाहूँगा कि मेरे स्कूल में शिक्षा के निदेशक को आना था, तो उसके लिए एक वक्तव्य का आयोजन किया गया। उस समय तक मेरे अध्यापक जान चुके थे कि मैं खुद भी लिखता हूँ, तो मुझसे कहा गया कि अन्य बच्चे तो औरों की कविता पढ़ेंगे, परंतु तुम अपनी स्वरचित कविता पढ़ना। एक छोटे बालक के लिए यह अवसर कितना महत्त्वपूर्ण रहा होगा , मेरे लिए भी बहुत बड़ी बात थी। उस समय आयु ऐसी थी कि अपने आप को अन्य से ज्यादा सक्रिय समझकर या अलग दिखाने की ललक से सभी को इस अवसर के बारे में बता दिया। आगे की घटना बड़ी रोचक है, पूरा कार्यक्रम समाप्त हो गया और मुझे बुलाया ही नहीं गया। मुझे इस बात का दुख तो अधिक नहीं था कि मुझे बुलाया नहीं गया, बल्कि इस बात का दुख था कि अब मैं औरों को क्या बताऊँगा ? उन लोगों का सामना कैसे करूँगा? यहाँ पर फिर मेरे नाना जी ने मेरा साथ दिया था। उस समय तो मुझे शायद उतनी समझ नहीं आई, पर आज समझ में आती है। उन्होंने उस समय कहा था कि "जो भी काम करते हैं, ऐसी अनेक बाधाएँ उनके जीवन में आती हैं और उन्हीं को चुनौती समझकर आगे बढ़ो।" बस तो आगे बढ़ता गया और लिखता चला गया।

बी. ए. के दौरान मेरे दो शिक्षकों ने मेरा बड़ा साथ दिया और मेरे लेखन को प्रोत्साहित किया। वे थे श्री कमल किशोर गोयनका जी और श्री गंगा प्रसाद जी। वे मेरे हिंदी के शिक्षक थे। कमल किशोर गोयनका जी इस बात से भी बहुत खुश थे कि मैं नौकरी करते हुए पढ़ रहा हूँ, क्योंकि उन्होंने भी नौकरी करते हुए शिक्षा पूरी की थी। तब तक मैं गीत लिखता था। उन्होंने मुझे छात्र संपादक बना दिया। मेरे अन्य सहपाठी भी थे, उनके साथ हमने दिल्ली में ही साहित्य से जुड़ी जगहों पर जाना आरंभ कर दिया था। गंगा प्रसाद विमल जी ने जब मेरी रचनाएँ देखी, तब कहा कि आजकल ज़माना छन्दबद्ध रचनाओं का नहीं है, आप मुक्त छन्द में लिखो। वे मेरी रचनाओं को ठीक-ठाक भी कर दिया करते थे। ऐसी ही एक रचना कलकत्ता की मणि मैगज़ीन में छपी थी। वह मेरी दृष्टि में मेरी ठीक-ठाक प्रकाशित कविता थी।

साक्षात्कारकर्ता : तो क्या यही आपकी पहली प्रकाशित रचना थी?

साक्षात्कारदाता : नहीं, उससे पहले भी कुछ रचनाएँ छप गई थीं, लेकिन यह कविता मुझे लगा कि अच्छी रचना थी। तब तक मुझे साहित्य की समझ आनी शुरू हो गई थी।

साक्षात्कारकर्ता : आप अपने नाम 'दिविक' के संदर्भ में कुछ बताइए।

साक्षात्कारदाता : जी अवश्य, उस समय दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग का वातावरण बहुत शानदार

था। स्वर्णिम युग कह सकते हैं और उस समय एम. ए. पास जो नए छात्र थे और जो नए अध्यापक थे, उन सभी का अच्छा-खासा गतिशील समूह था। कॉलिज की प्रतियोगिताओं में जाते थे और हमारे सामने अज्ञेय जी जैसे वरिष्ठ लेखक थे। उस समय हम सभी ने और वरिष्ठ साथियों ने मिलकर एक योजना बनाई कि जो लिखने-पढ़ने वाले छात्र और युवा अध्यापक हैं, उनकी कविताओं और कहानियों का संग्रह निकाला जाए। यह 1970 के आसपास की बात है। उस समय कविताओं का एक संकलन निकाला गया 'दिविक' यानि दिल्ली विश्वविद्यालय की कविता। तब तक मैं जो रचना लिख रहा था और जो प्रकाशित भी हुई थीं, वे रमेश शर्मा के नाम से प्रकाशित हुई थीं। तो मेरा असली नाम दिविक नहीं है, मेरा पूरा नाम है रमेश चंद्र शर्मा। रमेश शर्मा बड़ा ही आम नाम था। उस समय कुछ ऐसा भी देखने में आया कि कोई अन्य महोदय भी रमेश शर्मा के नाम से लिखते थे। कभी उनकी कोई अच्छी रचना आने पर मुझे भी प्रशंसा मिल जाती थी और जब खराब आ जाए, तब मुझे निंदा भी मिलती थी, तो मेरे मित्रों ने मुझसे कहा कि तुम अपना यह नाम बदलो, रमेश दिविक रख लो। बस, समय भी ऐसा था कि कुछ नया करना चाहता था, नया प्रयोग करना चाहता था, तो मैंने कहा कि रमेश दिविक नहीं, दिविक रमेश। बस फिर मैं दिविक रमेश के नाम से लिखने लगा। तो यह 'दिविक' नाम के पीछे की कहानी है। मेरे एक मित्र हैं, जिन्होंने आदिवासी क्षेत्र में काफ़ी काम किया है, उन्होंने एक बार मुझसे कहा कि वे अपने बेटे का नाम दिविक रखना चाहते हैं। इस नाम को प्रसिद्ध करने में धर्मयुग का भी बहुत बड़ा हाथ है। श्री धर्मवीर भारती जी ने छह महीने तक मेरी कविता और लेखों को धर्मयुग में छापा था। इस तरह से दिविक रमेश सबकी ज़बान पर आ गया। तब श्री बालभूषण अग्रवाल जी ने भी दिविक रमेश को प्रकाशित किया था और मैं विभिन्न पत्रिकाओं में छपना शुरू हो गया था।

साक्षात्कारकर्ता : मेरा अगला प्रश्न है कि आपने किन-किन विषयों में और किन विधाओं में अपना लेखन किया है ?

साक्षात्कारदाता : मैंने आरंभ में कहानियाँ ही लिखी हैं और मैंने बड़ों के साहित्य से ही शुरुआत की थी। मेरा बाल-साहित्य तो बाद में आया। मेरी कहानियाँ बड़ी-बड़ी पत्रिकाओं में छपने लगी थीं। अभी वे कहानियाँ 'कवि की कहानियाँ' शीर्षक से इंडिया नेटबुक से प्रकाशित भी हो गई है, लेकिन बाद में मेरा कहानियाँ लिखना छूट गया। कविता ही मेरी मुख्य विधा रही। कहानियाँ और कविता के अलावा मैंने अनुवाद में भी कार्य किया। मैं एक अध्यापक रहा हूँ और लेखन-क्षेत्र में भी अब काफ़ी आयु हो गई है। समय-समय पर मैं कुछ समीक्षात्मक-आलोचनात्मक चिंतनपरक लेख भी लिखे हैं। जब मैं साउथ कोरिया गया, तब मेरा मन हुआ कि साउथ कोरिया के साहित्य का अनुवाद किया जाए। इस प्रकार अनुवाद में रुचि हुई, तो कह सकता हूँ कि अनुवाद भी मेरी एक विधा बन गई।

साक्षात्कारकर्ता : जी आप अनुवाद में किए गए अपने कार्यों के अनुभव साझा कीजिए।

साक्षात्कारदाता : अनुवाद मैंने शौकिया किया है, वैसे उससे पहले भी बल्गारियन या चाइनीज़ में जो मुझे पसंद आता था, उसका अनुवाद मैं कर लेता था। लेकिन रचना में अनुवाद एक भाषा से, दूसरी भाषा में बदलना मात्र नहीं होता है। अगर आपके पास तथ्यपरक कुछ सामग्री है, तो उसका दूसरी भाषा में आप अनुवाद कर सकते हैं। मशीनी अनुवाद भी आजकल चलता है, परंतु रचना में मशीनी अनुवाद नहीं चलता। सांस्कृतिक और भौगोलिक जो अन्य आयाम होते हैं, साथ जुड़े हुए होते हैं। वे जब तक ट्रांसलेट नहीं होंगे, तब तक सही अनुवाद नहीं माना जाएगा। इसलिए कभी-कभी मैं कहता हूँ कि दो भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान भी अनुवाद के लिए पर्याप्त नहीं होता, जब तक जिस भाषा से अनुवाद कर रहे हैं, उसकी संस्कृति को, उसके भौगोलिक वातावरण को और उसके सामाजिक वातावरण को जान न लें। वहाँ जो तमाम स्थितियाँ हैं, उनमें आपकी गहरी पैठ होनी आवश्यक है।

साउथ कोरिया में रहते हुए मुझे इस बात का लाभ मिला कि मैं उनको करीब से जान सका। जिस शब्द का वे प्रयोग कर रहे हैं, उस शब्द से जुड़ी हुई बातें मैं जान सका।

मैंने कोरियाई भाषा भी सीख ली थी और मेरे जो विद्यार्थी थे, उनसे भी मैं सहायता ले सकता था। इस प्रकार कोरियाई अनुवाद हुए। मैंने अफ़्रीकी कवि 'टिमोथी वांगुसा' जो युगांडा के कवि हैं, उनकी रचनाओं का भी अनुवाद किया। साहित्य अकादेमी ने उसे छापा है - "सुनो अफ़्रीका"। वहाँ की भी सांस्कृतिक जड़ों को जब तक मैंने नहीं जान लिया, तब तक मैंने अनुवाद नहीं किया, क्योंकि उसके बिना अनुवाद नहीं हो सकता। अनुवाद बहुत चुनौतीपूर्ण होता है। अनुवाद आत्मा का होता है, जब तक आपके पास गहन जानकारी नहीं है, आप अनुवाद नहीं कर सकते। मैं एक किताब पढ़ रहा था, जिसमें तोते के बोलने का अनुवाद किया गया। उन्होंने लिखा तोता बोला - 'राम-राम', क्योंकि हमारे यहाँ जब तक तोता राम-राम नहीं बोलता, तब तक वह तोता नहीं माना जाता। मैंने कोरियाई, अफ़्रीकी, बल्गेरियाई, चीनी के अलावा भारत की अन्य भाषाओं से भी कुछ अनुवाद किए हैं। चीनी कविताओं के अनुवाद किए हैं और एक चीनी कवि 'ऐई किंग' की कविता 'अम्ब्रेला' जो मुझे बहुत अच्छी लगी थी, उसका अनुवाद किया, जो फ़रवरी 1978 में 'छाता' नाम से 'आजकल' में छपी थी।

साक्षात्कारकर्ता : आपने अब तक कितनी पुस्तकें लिखीं हैं और आपकी रचनाएँ किन पाठ्यक्रम में शामिल हैं?

साक्षात्कारदाता : देश-विदेश के स्कूलों और विश्वविद्यालयों की अनेक कक्षाओं में मेरी रचनाएँ शामिल हैं और अनेक पाठ्यक्रमों में पढ़ाई जाती हैं। मेरे साहित्य पर अनेक विश्वविद्यालयों ने शोध भी कराए हैं। पुस्तकों की कुल संख्या 85 से ऊपर ही है।

साक्षात्कारकर्ता : आप बाल-साहित्य और बाल-लेखन के बारे में कुछ बताइए।

साक्षात्कारदाता : जैसा मैंने बताया कि बड़ों के साहित्य-लेखन से मैं चर्चित हो चुका था। मेरे पहले दो कविता-संग्रह 'रास्ते के बीच' और 'खुली आँखों में आकाश' के लिए मुझे उस समय का बहुत बड़ा पुरस्कार 'सोवियतलेंड अवार्ड' मिला था। यह एक संयोग था कि प्रकाशन के जो सर्वोच्च अधिकारी थे - 'श्यामसिंह शशि' उनके कार्यालय में किसी काम से मेरा जाना हुआ, वहाँ एक सज्जन मुझे मिले। उन्होंने कहा कि आप तो बहुत चर्चित कवि हैं और आपकी रचनाएँ तमाम पत्रिकाओं में छप रही हैं और काफ़ी ख्याति आपको मिल रही है, लेकिन हम चाहते हैं कि आपको और ख्याति मिले। मैं चौंका कि वे क्या कह रहे हैं। मैंने पूछा कि इसके लिए मुझे क्या करना होगा? उन्होंने कहा, इसके लिए आपको बाल-साहित्य-सृजन करना होगा। वैसे मैं थोड़ा बाल-साहित्य पढ़ता भी था, पर लिखता नहीं था। उस समय अखबारों में बराबर बाल-साहित्य छपता था। उन सज्जन ने मुझे बताया कि वह 'नंदन पत्रिका' में उप-संपादक हैं और मुझसे अनुरोध किया कि अब आप बाल-साहित्य लिखें और हमें नंदन में छापने के लिए दें। मैंने हामी भरी, पर जब लिखने की बारी आयी, तब पता चला कि बाल-साहित्य लिखना इतना आसान भी नहीं है। मैं तो सोच रहा था कि लिख लूँगा। मेरे बच्चे तब बहुत छोटे थे, मैंने जब अपनी चार-पाँच रचनाएँ उनको सुनाईं, तब बच्चों ने कहा - ये बेकार का क्या लिखा है, उनको पसंद ही नहीं आईं। पर मैं लिखता रहा और अंत में दो-तीन कविता ऐसी निकल आई, जो उन्होंने पसंद भी कीं। मैंने साहस करके वे कविताएँ 'धर्मयुग' और 'नंदन' दोनों को भेज दीं। धर्मयुग तो साप्ताहिक था, इसलिए वहाँ वह कविता छप गई। उसका शीर्षक था 'मुन्ना बन बैठा दादा जब' धर्मयुग के बाद वह नंदन में छपी। इसी कविता को पंजाब एजुकेशन बोर्ड ने अपने पाठ्यक्रम में लगा दिया और मुझे ₹200 का पारिश्रमिक भी भेजा। 'अगर पेड़ भी चलते होते' कविता 'बाल भारती' में छपी और आज भी अनेक पाठ्यक्रम में है। उस समय 'नंदन' के संपादक बहुत वरिष्ठ बाल-साहित्यकार श्री जयप्रकाश भारती थे। उन्हें यह कविता बहुत पसंद थी और वे जगह-जगह इसका जिक्र करते थे। जब मैं उनसे मिला, उन्होंने मेरा बहुत स्वागत किया और बड़ा स्नेह व सम्मान दिया। उन्होंने कहा कि आप लिखते रहो और मैं लगातार लिखता रहा। मुझे उनसे बड़ा प्रोत्साहन मिला। एक प्रतिनिधिमंडल के साथ मुझे पूर्व जर्मनी की यात्रा करने का अवसर मिला था। उस समय जर्मनी दो भागों में बँटा हुआ

था। वहाँ पर मैंने अपनी इच्छा ज़ाहिर की कि मैं किसी लेखक से मिलना चाहता हूँ। वहाँ एक बाल-साहित्यकार से मुझे मिलवाया गया था, उन्होंने कहा कि मैं एक बाल-साहित्यकार हूँ। मैंने पूछा और इसके अलावा? तो उनका उत्तर था मैं बाल-साहित्य ही लिखता हूँ। तब मैं चौंका कि यह तो बहुत बड़ी बात है कि एक लेखक मात्र बाल-साहित्य लिखकर उस देश का बहुत बड़ा साहित्यकार माना जा सकता है। उसके बाद मैंने बाल-साहित्य को पूरी गंभीरता से लिया और उसके बारे में गहन अध्ययन करने लगा। बांग्ला और मराठी में तो बहुत पहले से ही बाल-साहित्य की कद्र रही है, हिंदी में भी अब होने लगी। अभी भी अनेक चुनौतियाँ हैं। मेरा तो सबसे कहना है कि बाल-साहित्य सभी को लिखना चाहिए। किसी को भी बाल-साहित्य को कमतर नहीं समझना चाहिए और न ही बाल-साहित्यकार को और न ही बालक को।

साक्षात्कारकर्ता : अब मैं आपसे पूछना चाहूँगी कि आप तो बाल-साहित्य के क्षेत्र में बहुत वर्षों से है और आपने इतना लेखन किया है, पर आज के समय में जो बाल-साहित्य लेखन हो रहा है, क्या आप उससे संतुष्ट हैं?

साक्षात्कारदाता : मैं अध्यापक रहा हूँ और मैं जानता हूँ कि किसी भी दौर में उत्कृष्ट भी लिखा गया है, औसत भी लिखा गया है और बेकार भी लिखा गया है। उदाहरण के लिए जब हम छायावाद की बात करते हैं, तब हमारे ज़हन में चार नाम आते हैं - निराला, महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद और पंत। तो क्या छायावाद में केवल इन चारों ने ही लिखा था? क्या और लिखने वाले सैकड़ों लोग नहीं थे? इसका मतलब अंत में जो बचता है, वह श्रेष्ठ ही बचता है। जो लोग आज जुड़े हुए हैं और निरंतर जो लिखा जा रहा है, अगर उससे परिचित हैं, तो निश्चित रूप से मानेंगे कि हिंदी के पास आज उत्कृष्ट बाल-साहित्य उपलब्ध हो चुका है। सही बात है कि जो निरंतर छप रहा है, उनमें बहुत सारा ऐसा भी है, जो औसत दर्जे का है, पर बचेगा श्रेष्ठ ही। बस उसकी पहचान ज़रूरी है। जब तक आप पढ़ेंगे नहीं, तब तक आप समझ ही नहीं पाएँगे। अभी पिछले दिनों दिशा ग्रोवर की एक पुस्तक आई 'बाघों के किस्से' जो नाटक विधा में है। इसे लेखकों और विद्वानों ने सराहा भी है, लेकिन अगर हमें उसकी जानकारी नहीं है, तो हम यही मानेंगे कि नाटक में तो कुछ लिखा नहीं जा रहा है। अभी भी लोरी और प्रभाती लिखी जा रही है, कविता, नाटक, उपन्यास तो है ही, पर बाल-साहित्य की आलोचना की अभी कमी है। बाल-साहित्य का इतिहास तो आ गया, पर आलोचना की कमी है। साहित्य के इतिहासकार हुए, चाहे वे रामचन्द्र शुक्ल हो या अन्य। बाल-साहित्य को जितना महत्त्व मिलना चाहिए था, वह उनके द्वारा नहीं दिया गया। इसलिए बाल-साहित्य उपेक्षित भी रहा। पर अब लोगों का ध्यान बाल-साहित्य की ओर जा रहा है। वे उसमें जो अच्छा है, उसको यदि रेखांकित करेंगे, तो सब लोग उसको पढ़ेंगे और फिर उससे आनंद भी ले पाएँगे। मूल्यांकन की अभी बहुत कमी है। कुछ लोग हैं, जो थोड़ा ठीक-ठाक ढंग से आलोचना का काम कर रहे हैं, जैसे नागेश, अशोक कालरा, जाकिर अली आदि। परंतु अभी भी आलोचना की बहुत कमी है। यदि सही मूल्यांकन हो जाए, तो यह प्रश्न नगण्य हो जाएगा कि क्या आप आज के साहित्य से संतुष्ट हैं या नहीं? लेकिन यह भी संतुष्टि की बात है कि बाल-साहित्य में आज बहुत लोग सक्रिय हैं। मैं साहित्य अकादेमी के लिए एक किताब तैयार कर रहा था, उस दौरान मैंने पाया कि देश में ही नहीं, विदेशों में भी प्रवासी साहित्यकारों के रूप में भी कई हैं, जो बाल-साहित्य से जुड़े हुए हैं आज बाल-साहित्य को महत्त्व देने और उसका मूल्यांकन करने की ज़रूरत है। जब मुझे केंद्रीय साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला, तब मैंने कहा कि बाल-साहित्य भी रचना है और मैं दोनों ही करता हूँ। पुरस्कार राशि के रूप में आप भेद क्यों करते हैं? क्या बाल-साहित्य कमतर चीज़ है? यदि आप बड़ों का साहित्य लिखने वालों को 1,00,000 देंगे, तो बाल-साहित्य लिखने वालों को 50000 क्यों देंगे? दिमाग में फिर वही जर्मनी लेखक आता है, जो बाल-साहित्य ही लिखकर अत्यधिक प्रसिद्ध हुआ। मेरा प्रश्न है बाल-साहित्य लेखक को नोबल पुरस्कार क्यों नहीं मिलना चाहिए? उसे ज्ञान पुरस्कार क्यों नहीं मिलना चाहिए? बड़े साहित्यकारों ने भी बाल-साहित्य लिखा है। प्रेमचंद ने भी जंगल की कहानियाँ नाम से बच्चों के लिए कहानियाँ लिखी हैं, अमृतलाल नागर

ने भी बहुत कहानियाँ लिखी हैं, जिनकी बहुत मोटी पुस्तक राजकमल प्रकाशन से छपी भी है। सर्वेश्वरनाथ सक्सेना, प्रयाग शुक्ल, नासिरा शर्मा, चित्रा मुद्गल, ममता कालिया, भारत भूषण अग्रवाल, बच्चन जी आदि ने बाल-साहित्य लिखा है। अगर कोई बाल-साहित्य में ज्यादा समर्पित होकर लिख रहा है, तो वह प्रेमचंद और अमृतलाल नागर से कमतर नहीं है। उनको भी इतना ही महत्त्व दिया जाना चाहिए। मुझे विश्वास है कि धीरे-धीरे यह कमी पूरी होगी, तो फिर बाल-साहित्य में प्रश्न वैसे ही पूछे जाएँगे जैसे कि बड़ों के साहित्य के बारे में पूछे जाते हैं।

रचना-प्रक्रिया की दृष्टि से बाल-साहित्य-सृजन हो, या बड़ों के लिए सृजन हो, दोनों बराबर होते हैं। रचना विषय नहीं होती है। मौलिक रचना जो होती है, वह विषय पर नहीं लिखी जाती है। जो विषय होता है, उसे रचनाकार ने किस रूप में देखा और किस रूप में अनुभव किया, उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति रचना होती है। पेड़ पर अगर आप तथ्यात्मक ढंग से लिखेंगे, तो पेड़ की टहनी, पत्ते, फूल, जड़ें आदि के बारे में अपनी भाषा-शैली में बताएँगे, लेकिन जब कविता होगी, तब वह "अगर पेड़ भी चलते होते" हो जाएगी। यह अनुभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति है। तभी उसमें मौलिकता और नयापन आएगा। इतिहास या पौराणिक संदर्भों को लेकर जो रचनाएँ होती हैं, उनको हम तब तक रचना नहीं कहेंगे, जब तक उनमें कुछ नई चीज़, मौलिकता, नई उद्भावना, नई सोच और नया ट्रीटमेंट नहीं मिलेगा। वरना वाल्मिकी 'रामायण' और तुलसीदास की 'रामचरित मानस' या मैथिलीशरण गुप्त की 'साकेत' या नरेश मेहता की 'संशय की एक तरह रात' सब एक जैसी दिखनी चाहिए थी। बाल-साहित्य हो या बड़ों का साहित्य, रचना-प्रक्रिया की दृष्टि से एक होता है। अब एक सवाल कभी-कभी लोग पूछ लेते हैं कि बाल-साहित्य में तो भाषा बच्चों के अनुकूल होनी चाहिए। अगर मैं एम.ए के विद्यार्थियों को पढ़ाऊँगा, तो मेरी भाषा अलग हो जाएगी और कक्षा आठ के बच्चों को पढ़ाऊँगा, तो भाषा अलग होगी। बाल-साहित्य जिस आयु के लिए लिखा जा रहा हो, उसी के मुताबिक भाषा-शैली हो जाती है। बाल-साहित्य और बड़ों के साहित्य में रचना-प्रक्रिया की दृष्टि से अंतर नहीं होता। ये हमारे आलोचकों को, विद्वानों को, इतिहासकारों को समझना चाहिए। जब तक नहीं समझेंगे, तब तक बाल-साहित्य को जो महत्त्व मिलना चाहिए, वह महत्त्व नहीं मिल पाएगा। मुझे खुशी है कि मॉरीशस के लेखक हेमराज सुन्दर जी ने बाल-कविता भी लिखी है, वहाँ से तो बच्चों की पत्रिका 'रिमझिम' भी निकलती हैं। इसी प्रकार इंग्लैंड से दिव्या माथुर जी लिख रही हैं। अब बाल-साहित्य की ओर ध्यान जा रहा है, जितना लिखा जा रहा है वह भी स्वागत योग्य है। मुझे लगता है कि अभी गर्व से कह सकते हैं कि हम बाल-साहित्य लिखते हैं या बाल-साहित्यकार हैं, जबकि पहले ऐसी सोच नहीं थी। लोगों की सोच होती है कि व्यक्ति एक ही विधा में लिख सकता है। अज्ञेय जी के उपन्यास भी अच्छे हैं, तो कविताएँ भी अच्छी हैं, प्रसाद की कहानियाँ भी अच्छी हैं, तो कविताएँ भी अच्छी हैं। दोनों क्षेत्रों में आप लिख सकते हैं। आप में इतनी सामर्थ्य होनी चाहिए। हाँ, यह ज़रूर है कि आप जिस भी विधा में लिखें, उसमें पूरी तरह समर्पित होकर, उसके प्रति प्रतिबद्ध होकर लिखें। मेरे पास पी.एच.डी के शोधग्रंथ देखने के लिए आते हैं, तो मैं एक-एक शब्द पढ़ता हूँ। आज भी कोई मुझसे भूमिका लिखने के लिए कहता है, तो मैं पूरा पढ़ने के बाद ही भूमिका लिखता हूँ। बिना समर्पण के वह बात नहीं आती, बाल-साहित्य से लेकर बड़ों के लिए जो भी लिखें, अनुवाद करें, समर्पित होकर करें। बंगाल में कहा जाता है - कोई भी लेखक बड़ा लेखक हो ही नहीं सकता जब तक बाल-साहित्य नहीं लिखता। हमारे पास पंचतंत्र और जातक कथाओं के रूप में बड़ी विरासत है। लेकिन आधुनिक काल में 20वीं सदी से कुछ पहले बाल-साहित्य लेखन का आरंभ होता है बाल-साहित्य को लिखने का यह उद्देश्य बना था कि बच्चों को कुछ शिक्षा देनी है। 1891 में जोगेंद्र नाथ सरकार की एक किताब आई - 'खांसी और खेला'। उस पुस्तक को पढ़ने के बाद रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा था "यह पुस्तक छोटे बच्चों के लिए है, बच्चों का ऐसी पुस्तकों की ज़रूरत है। हमारी सभी बाल-पुस्तकें कक्षा में पढ़ाने के लिए होती है। उनमें कोमलता और सुंदरता का कोई निशान नहीं होता।" यह

बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। आज का बाल-साहित्य उपदेश नहीं देता, वह शिक्षा पर उतना ज़ोर नहीं देता। वह यह मानकर चलता है कि सबसे पहले यह साहित्य बच्चे के आनंद के लिए है और जो हम देना चाहते हैं वह शिक्षा या उद्देश्य नहीं है, अपितु वह समझ है, जिसे आज का बाल-साहित्यकार अपने पाठकों के साथ साझा करता है। जब हम किसी को अपने से छोटा या कमतर समझते हैं, तब तो हम साझा नहीं करते, उस पर लाद देते हैं। जिसे हम मित्र और साथी समझते हैं, तो उनसे हम साझा करते हैं। कोरिया के बहुत बड़े लेखक हुए हैं - सोपा बंग जूंग बंग, जिनके कारण वहाँ पर बाल-दिवस मनाया जाता है। उन्होंने कहा – "बच्चों का आदर करो, बच्चों को साथी समझो।" आज भारत में भी बच्चों को साथी या मित्र समझने की प्रवृत्ति आ रही है और बच्चों पर सीधा-सीधा अपने-आप को लादने की बजाय उनके साथ संवाद करके समझ को साझा करने की शैली में बात कही जाती है। आज का बाल-साहित्यकार बच्चों के लिए नहीं लिखता, बच्चों का लिखता है। इसका अर्थ है, बाल-साहित्यकार स्वयं बालक बनकर लिख रहा है। तो आज बच्चों का साहित्य लिखा जा रहा है। बच्चों के मनोविज्ञान को समझते हुए आज का साहित्य लिखा जा रहा है। जैसे बच्चे सोच सकते हैं और जिज्ञासु हो सकते हैं, पहले बाल-साहित्यकार उनको जीता है । इस रूप में समाधान देता है, जो बच्चे स्वीकार करें। आप बेबुनियाद कल्पना की बातें करना शुरू कर दीजिए, बच्चा उड़ा देगा उनको। कल्पना के बगैर कोई साहित्य नहीं होता, लेकिन कल्पना की अभिव्यक्ति ऐसी शैली में होनी चाहिए कि बच्चा उसे स्वीकार करे। ये तमाम चीज़ें उत्कृष्ट बाल-साहित्य की पहचान हैं। आज वैज्ञानिक बाल-साहित्य भी लिखा जा रहा है। लेकिन साहित्य पहले रचना है, केवल जानकारी परोस देना रचना नहीं है। आप बहुत अच्छे छन्द में किसी साबुन का विज्ञापन दे सकते हैं। उसे आप विज्ञापन ही कहेंगे रचना नहीं कह सकते। इसलिए रचना की जो अपनी शर्तें हैं, उस पर अगर जानकारी आ जाती है, तो सही रचना है। बहुत सारे साहित्यकार लिख रहे हैं - देवेन्द्र मेवाड़ी जी, रोचिका शर्मा जी, दिशा ग्रोवर आदि और भी नाम हैं।

साक्षात्कारकर्ता : जो नए साहित्यकार हैं, उनको कुछ सुझाव देना चाहेंगे?

साक्षात्कारदाता : मैं एक ही बता कहना चाहता हूँ कि आज के भारत का बालक बहुत ही अजीबोगरीब चुनौतियों में पल रहा है। आज तमाम बाँटने वाली शक्तियों के बीच में पलने वाले बच्चों के लिए लिखना साहित्यकारों की ज़िम्मेदारी है। इसलिए आजकल के जो अच्छे साहित्यकार हैं, वे अपने-अपने क्षेत्र की परिस्थितियों को जानने-परखने की कोशिश करते हैं। आज आदिवासी इलाकों से, आदिवासी संवेदनाओं को लेकर भी बाल-साहित्य आने लगा है। जो जहाँ रह रहा है, उसे वहाँ के बच्चों की चुनौतियों को समझते हुए लिखना चाहिए। यह नए साहित्यकारों का भी दायित्व है। यदि सिर्फ़ ऊपरी तौर पर पढ़ लिया और उसको सधी लय में लिख दिया, तो यह बाल-साहित्य नहीं है। प्रयोगों से नहीं घबराना चाहिए। जब प्रयोग होंगे, तभी तो नई चीजें सामने आएँगी। हो सकता है शुरू में कोई स्वीकार नहीं करेगा, पर यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है। आज के बाल-साहित्यकारों के सामने बहुत तरह की चुनौतियाँ और बाधाएँ आएँगी। अगर कोई यह चाहे कि वह एकदम से रातों-रात प्रसिद्ध हो जाए और रातों-रात पुरस्कार मिल जाए, तो यह संभव नहीं है, बल्कि उनको यह चाहिए कि बस उनकी रचनाशीलता बनी रहे।

मैं तो हमेशा यही कहता हूँ कि मेरी रचनाशीलता बनी रहे, मेरा साहित्य एम. ए. से लेकर विभिन्न कक्षाओं में छोटी से बड़ी कक्षा तक पढ़ाया जा रहा है और बच्चे आनंद लेकर पढ़ते हैं, तो रचनाओं में आनंद बना रहना चाहिए। जिस भी कार्य से जुड़ें पूरी प्रतिबद्धता से जुड़ें, पूरे समर्पण भाव के साथ जुड़ें।

साक्षात्कारकर्ता : आपनी ओर से आप नन्हे बाल-पाठकों को क्या संदेश देना चाहेंगे।

साक्षात्कारदाता : बच्चों से मैं यही कहना चाहता हूँ कि जो आदत बचपन में पड़ जाती है वह ज़िंदगी भर छाप छोड़ती है। आज का बाल-साहित्य एक और बड़ा काम यह कर रहा है कि हिंदी के बच्चों की आवाज़ बन रहा है। आज बच्चा जो कहना चाहता है, जो सुनाना चाहता है, उसके लिए भी जगह

आज का बाल-साहित्य बना रहा है। मैं हमेशा कहता हूँ कि सबको बाल-साहित्य को पढ़ना चाहिए। हर आयु के व्यक्ति को पढ़ना चाहिए। एक कहानी में अगर बच्चा अपनी मम्मी से कहता है कि 'माँ आप छोटी-छोटी बातों में गुस्सा मत किया करो। मैंने पढ़ा है, गुस्सा करने से सेहत खराब हो जाती है।' तो यह समझ बच्चे के साथ बड़ों के लिए भी आवश्यक है। यदि बच्चा पिता से कहता है – 'पापा, मैंने देखा कि आप लालबत्ती पार करके चले गए, आपको रुकना चाहिए था' और पिता कहता है – 'सॉरी बेटा, आगे से ऐसा नहीं करूँगा।' बाल-साहित्य बड़ों को भी संस्कार देता है। उसे पढ़िए, उसे जानिए। बाल-साहित्य सबके लिए है। बाल पाठकों से मैं कहना चाहूँगा कि आप को मोबाइल इसलिए नहीं दिया गया है कि व्यर्थ की चीज़ों में समय, अपनी सेहत और अपनी आँखों को बर्बाद करें। तकनीक का सही उपयोग करें। आप उसमें पुस्तकें खोजकर पढ़िए, पत्र-पत्रिकाओं को आप मँगवाइए। अपने माता-पिता को पुस्तकें मँगवाने को कहिए। मुझे विश्वास है कि अगर ऐसा वातावरण बनेगा, तो निश्चित रूप से बालक ज़िम्मेदार नागरिक बनेगा। आशा करता हूँ कि अच्छे साहित्य पढ़ने वाले आज के बच्चों में मनुष्यता भी बची रहेगी और वह एक बेहतर मनुष्य बनेगा।

साक्षात्कारकर्ता : महोदय अपने जीवन के बारे में बताने के लिए और बाल-साहित्य से संबंधित अपने अनुभव और जानकारी साझा करने के लिए मैं आपका हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ और आपके अच्छे स्वास्थ्य की कामना करती हूँ। धन्यवाद।

shln.verma2@gmail.com

'रखवाला' और 'तिमार श्ज़ोफ़ी का वैधव्य' कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. अनीता शुक्ल
बड़ौदा, भारत

अगर हम दुनिया के नक्शे पर नज़र डालें, तो हमारी आँखों के सामने विश्व के अनेक देश प्रकाशित होते हैं। ये देश भौगोलिक दृष्टि से कभी-कभी एक-दूसरे से चाहे बहुत दूर स्थित हों, परंतु मानवीय भावनाएँ और सर्वप्रिय विचारधाराएँ पूरी दुनिया को एक परिवार में जोड़ती हैं।

इन विचारों के आलोक में जब हम दक्षिण एशिया में स्थित भारत और मध्य यूरोप में स्थित हंगरी के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर दृष्टिपात करते हैं, तब हमें दोनों देशों की संस्कृति में अनोखी समानता देखने को मिलती है। भौगोलिक दृष्टि से ये दोनों देश बहुत दूर हैं तथा दुनिया-भर में अपनी विशेष संस्कृति के लिए प्रसिद्ध हैं। यह रेखांकित होना चाहिए कि भारत और हंगरी का संबंध राजनीति या संस्कृति के क्षेत्र में बहुत सशक्त है। भारत के राष्ट्रकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर या भारतीय चित्रकला की प्रमुख प्रतिनिधि अमृता शेरगिल भी हंगरी से गहरा संबंध रखते थे। आधुनिक युग में भारतीय सांस्कृतिक तत्त्व हंगरी में आसानी से उपलब्ध हैं तथा भारत में भी हंगरी की शानदार पैठ फैल चुकी है। भारत में जी-20 सम्मेलन का उद्घोष वाक्यांश 'वसुधैव कुटुम्बकम्' दुनिया को बिल्कुल सही संदेश देता है।

साहित्य के अध्ययन से मनुष्य की सृजनात्मकता और मानवीय भावनाएँ दूरियाँ पार कर जाती हैं। भारत और हंगरी के साहित्य में ग्रामीण जीवन और रीति-रिवाज़ तथा जीवन-दृष्टि महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में प्रकाशित हैं। आधुनिक हिंदी साहित्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर फणीश्वरनाथ रेणु ने भी भारतीय देहात, विशेषतः बिहार की ग्रामीण दुनिया का बेजोड़ चित्रण करके हिंदी जगत् में अपना स्थान बनाया है। ग्राम-कथा के सन्दर्भ में हंगेरियन साहित्य की उन्नीसवीं सदी बेहद महत्त्वपूर्ण है। कालमान मिकसात ने उस समय के उत्तर हंगरी के '*तोत*' और '*पालोत्स*' इलाके का चित्रण विस्तार से किया है।

भारत और हंगरी के चुने हुए लेखकों की अलग ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि के कारण यह प्रश्न स्वाभाविक लगता है कि इन दो देशों के रचनाकारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है या नहीं। इस लेख में फणीश्वरनाथ रेणु की 'रखवाला' और कालमान मिकसात की 'तिमार श्ज़ोफ़ी का वैधव्य' कहानियों के विश्लेषण के माध्यम से दोनों लेखकों की शैली एवं दोनों देशों की साहित्यिक परंपरा की समानताओं और अन्तरों पर प्रकाश डाला गया है।

मिकसात और रेणु : अलग दुनिया, पर एक ही भावना

उन्नीसवीं सदी के सशक्त और प्रभावशाली हंगेरियन लेखक, कालमान मिकसात का जन्म उत्तरी-हंगरी के छोटे '*तोत*' गाँव, स्क्लबोञा में हुआ था और पड़ोसी गाँव में '*पालोत्स*' समुदाय रहता था। आजकल लेखक के नाम पर इस गाँव का नाम 'मिकसात का गाँव' (Mikszáthfalva) है। मिकसात ने बचपन से ही *तोत* और *पालोत्स* समुदाय का जीवन करीब से देखा था। उनकी सबसे बहुचर्चित रचनाओं इसका यह असर स्पष्टता से दिखाई देता है। हंगेरियन साहित्य के इतिहास में मिकसात के दो कहानी-संग्रह सर्वप्रसिद्ध हैं, इनके शीर्षक 'Tót atyafiak' ['तोत अत्यफ़िअक'] और 'A jó palócok' ['अ यो पालोत्सोक'] हैं। दोनों उस समय के उत्तरी हंगेरियन '*तोत*' एवं '*पालोत्स*' समुदाय की ज़िंदगी के अच्छे प्रमाण हैं। रेणु की तरह मिकसात के साहित्य में भी जन्मभूमि विषय बनकर सामने आती है। इसके अतिरिक्त दोनों रचनाकारों के लिए अपने युग की राजनीति तथा ग्रामीण एवं शहरी जीवन भी प्रिय विषय हैं।

मिकसात की सबसे लोकप्रिय और विशिष्ट रचनाएँ उनकी कहानियाँ हैं। लैवैंते ते० सबो के अनुसार इस सफलता के पीछे कारण है - मिकसात की कहानियों में कथानक भौगोलिक स्थान के आधार पर बुना जाता है। मिकसात के साहित्य में एक तरह का स्थान-बोध उपस्थित है। '*तोत*' और

'*पालोत्स*' का चित्रण मिकसात की कहानियों में उभरकर आता है और इन रचनाओं में *स्थानीय रंग* झलकता है। परंतु इन सबके बावजूद मिकसात का साहित्य प्रादेशिकता के क्षेत्र में ही रहता है, अर्थात् मिकसात का गद्य *आँचलिकता* की ओर नहीं मुड़ता, क्योंकि इन कथाओं में ध्यान प्रदेश या अंचल पर नहीं, बल्कि कथानक या पात्रों पर रखा जाता है।

फणीश्वरनाथ रेणु हिंदी जगत् में मुख्यतः अपने आँचलिक साहित्य के लिए प्रसिद्ध हैं। 'आँचलिकता का प्रणेता' यह विशेषण उनके नाम से जुड़ा हुआ है। चुनी हुई कहानी, 'रखवाला' के संबंध में यह कहना उचित होगा कि चाहे इसमें ग्रामीण जीवन और किसी अनोखे अंचल का चित्रण किया गया है, फिर भी आँचलिक कथा नहीं है। रेणु की यह कहानी विधा की दृष्टि से प्रादेशिक है, क्योंकि रचना में ध्यान अंचल पर नहीं, किन्तु मुख्य रूप से नायिका, पूनो के आन्तरिक तनाव, दुविधाओं और विचारों पर रखा गया है। फिर भी 'रखवाला' देहाती जीवन की विशेषताएँ अच्छी तरह दिखाता है। उदाहरण के लिए रेणु स्थानीय भाषाओं और शब्दों का प्रयोग करते हैं तथा पाठक गाँव का जीवन नज़दीक से देख पाते हैं।

मिकसात के उल्लिखित दो कहानी-संग्रहों में उस समय के उत्तरी हंगरी का एक खास इलाका चित्रित है। यह प्रवृत्ति विशेष रूप से 'A jó palócok' संग्रह में सशक्त है। लैवैंतै ते० सबो लिखते हैं कि मिकसात की *पालोत्स* कथाएँ एक ही प्रदेश का सामाजिक और ऐतिहासिक पहलू सामने रखती हैं। यही प्रवृत्ति रेणु-साहित्य में भी उपस्थित है। कथाकार अपनी रचनाओं में अनेक स्थानों के नाम लेते हैं और बिहार राज्य, मुख्य रूप से, अपनी प्रिय जन्मभूमि पूर्णिया ज़िले का परिचय विस्तार से देते हैं। मिकसात की तरह रेणु की कथाएँ भी तो मानचित्र में देखी जा सकती हैं। हालाँकि यह भी उल्लेखनीय है कि दोनों लेखक असली भौगोलिक स्थानों के साथ काल्पनिक स्थानों का भी ज़िक्र करते हैं।

कालमान मिकसात का अद्‌भुत स्वर हंगेरियन साहित्य में विशेष और अनोखा माना जाता है। बेला पोमोगात्श मिकसात की गिनती उन बड़े हंगेरियन कथाकारों में करते हैं, जो साहित्य के मंच पर हंगेरियन दुनिया खड़ी करते हैं। इश्तवान शोतेर रेखांकित करते हैं कि उपाख्यानों का प्रयोग मिकसात के साहित्य को नए स्तर पर पहुँचाता है। इसके पीछे शायद पाठक के मन में *किस्सागोई* परंपरा झलक उठती है। यह छोटा-सा परिचय पढ़कर स्वाभाविक लग सकता है कि मिकसात की साहित्यिक शैली की एक विशेषता बोलचाल की भाषा का प्रयोग है। इस विषय पर सबोलच तहिन ने एक शोध-आलेख लिखा, जिससे दो बिन्द उल्लेखनीय हैं। एक, इस तरह की भाषा विशेषतः मिकसात की '*तोत*' और '*पालोत्स*' कहानियों में सशक्त रूप लेकर सामने आती है, इसलिए सन्दर्भित कहानी के संबंध में इसका विश्लेषण भी करना है। दूसरे, बोलचाल की भाषा तथा उपाख्यानों का प्रयोग करके रचनाओं में ऐसा कथावाचक उपस्थित किया गया है, जो चित्रित वातावरण जीवन्त हो जाता है। इसके माध्यम से लेखक और पाठक के बीच एक तरह का आत्मीय रिश्ता पनपता है।

रेणु की गिनती हिंदी साहित्य के बहुचर्चित लेखकों में होती है। उनकी नई, आँचलिक शैली, साहित्यिक विविधता के साथ कथा सुनाने का बेजोड़ तरीका लेखक की लोकप्रियता हैं। रेणु की भाषा बहुआयामी और संश्लिष्ट होकर पाठक के सामने देहाती दुनिया की असली तस्वीर सृजनात्मकता से रखती है। रेणु उस समय का भारतीय समाज अपनी साहित्यिक भाषा के माध्यम से जीवन्त बनाते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि आँचलिक लेखक होने के बावजूद रेणु अपनी अधिकतर रचनाएँ हिंदी में लिखते हैं, पर इस भाषा को शुद्ध हिंदी कहना मुश्किल होगा। रेणु के साहित्य में, मुख्य रूप से उनकी आँचलिक कथाओं में अनेक भाषाओं और बोलियों का प्रयोग हुआ है, जैसे मैथिली, भोजपुरी, नेपाली, बांग्ला और अंग्रेज़ी। यह भी उल्लेखनीय है कि रेणु की हिंदी *खड़ी बोली* नहीं मानी जाती; उनके पात्र एक तरह की ग्रामीण हिंदी बोलते हैं, जो व्याकरण और शब्दावली की दृष्टि से मानक हिंदी से कभी-कभी दूर है। रेणु के पूर्णिया वाले पात्र शुद्ध मैथिली का प्रयोग बहुत कम करते हैं, वे आम तौर से ऊपर लिखित भाषाओं के शब्द हिंदी से मिश्रित करके

बोलते हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि मिकसात की तरह रेणु बोलचाल की भाषा के माध्यम से अपना साहित्यिक जगत् विस्तृत करते हैं। वे उपाख्यान, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, अभिनंदन या गालियाँ प्रकट करते हुए शब्दों और विभिन्न तरह के गीतों का प्रयोग करते हैं।

दोनों लेखकों की शैली में एक बड़ा अंतर यह है कि रेणु के साहित्य में स्थानीय भाषाओं और बोलियों का प्रयोग बार-बार किया जाता है एवं विभिन्न लोकतत्त्वों का समावेश करके लोकसंस्कृति प्रकट की जाती है। मिकसात की रचनाओं में लोकजीवन और '*पालोत्स*' बोली पर कम प्रकाश डाला गया है। मिकसात लोकतत्त्वों की अपेक्षा पात्रों की आत्मीय और व्यक्तिगत दुविधाएँ रेखांकित करते हैं।

कहानियों का परिचय

मिकसात कालमान की कहानी, 'तिमार श्ज़ोफ़ी का वैधव्य' 1881 में, 'A jó palócok' कहानी-संग्रह में छपी थी। कथा का शीर्षक बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह पढ़कर पता चलता है कि कथा के केंद्र में तिमार श्ज़ोफ़ी और उनके पति का रिश्ता है। पाठक पत्नी की आँखों से घटनाएँ देखता है।

कहानी की शुरुआत में लेखक नायिका, तिमार श्ज़ोफ़ी का परिचय संक्षेप में देते हैं – "उसा स्वभाव अच्छा है, वह जीवन की सभी कठिनाइयाँ चुपचाप सहती है और अपनी ज़िंदगी का बोझ दूसरों पर नहीं रखती।" पाठक को जल्दी ही पता चलता है कि श्ज़ोफ़ी 'परित्यक्ता' है – पर यह उसका अपराध नहीं है। श्ज़ोफ़ी का पति, पीटर ने बेवफ़ाई करके एक साल पहले बिना विदा लिए गाँव छोड़ा। इस असह्य विरह में श्ज़ोफ़ी जीवन की कठिनाइयों पर ध्यान न देकर अपने पति का स्मरण करती है और उपयोग में आने वाली वस्तुओं की खेती करती है। इसी तरह नायिका अपने पति का इंतज़ार किया करती है। दुविधाओं से भरे समय में पति की स्मृति ही उसका एक सहारा है – श्ज़ोफ़ी को भरोसा है कि पीटर वापस आएगा।

एक दिन अचानक पीटर श्ज़ोफ़ी के पास एक बुढ़िया को भेजता है। उसे अपने किए पर पछतावा है, इसलिए वह स्वयं साक्षात क्षमा माँगने नहीं आ पाता। श्ज़ोफ़ी का मन हुलस उठता है और वह अपने पति से मिलने निकलती है। अभी ऐसा लगता है कि नायिका की किस्मत ठीक हो जाएगी। पीटर तो स्वाभाविक रूप से अपनी ज़िंदगी की सबसे बड़ी गलती, यानी बेवफ़ाई पर पछताता है, जिसके परिणामस्वरूप वह क्षमा प्राप्त करने के लिए तपने वाला नायक बन जाता है। श्ज़ोफ़ी की प्रतीक्षा में वह किसी ऊँची मीनार पर चढ़ता है, जहाँ से खुशी से चमकती हुई, सुन्दर पत्नी को देखकर उसे चक्कर आने लगता है। दुर्भाग्यवश दुर्घटना घटती है – मीनार से गिरकर पीटर की मृत्यु हो जाती है। श्ज़ोफ़ी का दुख सशक्त वाक्य में प्रकट होता है – "लम्बे विरह के पश्चात् नायिका अपने पति से केवल मौत के बाद मिल पाती है।" अंत में, श्ज़ोफ़ी आशा खो देती है और उसका विरह उसकी आत्मा को सताता हुआ वैधव्य बन जाता है।

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी, 'रखवाला' 1945 में लिखी गई थी। दोनों रचनाओं में कुछ महत्त्वपूर्ण समानताएँ उपस्थित हैं : दोनों नायिका की दृष्टि रेखांकित करती हैं। दोनों का विषय विरह है और दोनों में ग्रामीण ज़िंदगी के कुछ पहलू प्रकाशित हैं। लेकिन इन सभी के बावजूद कहानियों का अंत अलग है। दोनों कथाएँ एक-दूसरे से विपरीत हैं, जिसके पीछे कृतियों की अलग सांस्कृतिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि है।

'रखवाला' के आरंभ में रेणु प्रकृति का चित्रण विस्तार से करते हैं, जिसके माध्यम से पाठक हिमालय के वातावरण से परिचित हो जाता है। इस पद्धति की मदद से कहानीकार पाठक के मन में अपने प्रेमी का इन्तज़ार करती हुई नायिका, पूनो के प्रति सहानुभूति जागृत करते हैं। नायक और नायिका की भावपूर्ण विदाई का चित्रण करते हुए रेणु भावनाओं पर अधिक ध्यान रखते हैं।

पूनो के प्रेमी हिरण्य, गाँव के 'आवारे' और 'लफ़ंगे' बलबहादुर के साथ पैसे कमाने के लिए शहर जाते हैं। वे पूनो को वापस लौटने का वादा करते हैं। बाद में पता चलता है कि हिरण्य सेना में दाखिल हो हए हैं और कभी नहीं लौटते हैं। कुछ सालों के बाद केवल बलबहादुर आते हैं, जिनसे पूनो बचपन से ही नफ़रत करती है। बेचारी नारी को उम्मीद है कि उसका प्रेमी वापस आएगा, परंतु यह आशा धीरे-धीरे फीकी

होती जाती है। कलकत्ता और हिरण्य के बारे में बलबहादुर से अनेक कथाएँ सुनकर पूनो के हृदय में बलबहादुर के प्रति एक तरह का प्रेम पनपने लगता है। अंत में पूनो की इच्छा पूरी करने के लिए बलबहादुर अपना व्यवहार बदलते हैं और वे साथ रहने लगते हैं। इसी नाटकीय मोड़ से बलबहादुर खलनायक की नहीं, बल्कि नायक की भूमिका निभाते हैं, जो पूनो के लिए अच्छी और अभावों से रिक्त ज़िंदगी का बन्दोबस्त करते हैं। इस सुखान्तता के बावजूद कहानी पढ़ते हुए पाठक को प्रायः ऐसा लगता है कि पूनो अभी तक हिरण्य के इन्तज़ार में हैं।

सब से पहले रेखांकित करना है कि कहानियों की ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि अलग है। इसका नतीजा यह है कि विरह दोनों रचनाओं में अलग रूप में उपस्थित है। हंगेरियन कहानी के दुखान्त और हिंदी कहानी के सुखान्त का कारण सांस्कृतिक एवं काव्यशास्त्रीय पृष्ठभूमि में तलाश किया जा सकता है। इनको छोड़कर कहानियों के प्रतीकों, अर्थ एवं पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन स्पष्टता से किया जा सकता है।

दोनों रचनाओं में शुरू की तस्वीर लगभग एक है : नायिका विरह में अपने प्रेमी की प्रतीक्षा किया करती है। मुख्य अन्तर पात्रों के चरित्रों में है। श्ज़ोफ़ी का पति अपने हर गुण के बावजूद खलनायक के रूप में पधारता है, क्योंकि उसने बेवफ़ाई करके गाँव में अपनी पत्नी को छोड़ा था। रेणु की रचना में तो हिरण्य पूरी कथा में नायक है : वह पैसे कमाने जाता है, बाहर बलबहादुर की देखभाल और सुरक्षा करता है, फिर सेना में शायद ज़बरदस्ती से या किसी महत्त्वपूर्ण अभिप्राय को लेकर दाखिल हो जाता है। दोनों नायिकाएँ विरह में केवल पुरुष का इन्तज़ार किया करती हैं, जो वास्तव में, उनके चरित्रों की अच्छाइयाँ दिखाता है। श्ज़ोफ़ी अपने दिल का दर्द अकेली और चुपचाप सहती है, किसी से शिकायत नहीं करती है, क्योंकि उसको यकीन है कि पीटर वापस आएगा। श्ज़ोफ़ी के दिल में प्यार की नदी बहती है, वह पति का ख्याल करती है और दूर रहकर भी उसकी सेवा करती है। पहले ही लिखा गया है कि श्ज़ोफ़ी का एक ही सहारा और आशा है – "पूरे गाँव में बेवफ़ाई की बात फैल गई है, इसलिए बेचारी नारी दूसरों पर भरोसा नहीं कर पाती। ऊपर से, पति के वापस आने की उम्मीद में वह शिकायत भी नहीं करती और रोती भी नहीं। आशा भी पति की मृत्यु देखकर समाप्त हो जाती है और बेवा बनकर श्ज़ोफ़ी ज़ोर से रोने लगती है।

पूनो भी श्ज़ोफ़ी की तरह आशा और विश्वास के साथ हिरण्य के इन्तज़ार में है। पूनो अतीत में ही नहीं, बल्कि वर्तमान में भी राह देखती है। सैनिक होकर हो सकता है कि हिरण्य की मौत हुई हो, परंतु उन्हें अभी तक प्रेमी की कोई विशेष सूचना नहीं मिली है – अर्थात् पूनो अपनी नई और खुश ज़िंदगी में भी हिरण्य की वापसी की आशा करती है। पूनो की यह स्थिति, यानी आशा और बलबहादुर के साथ यह नई ज़िंदगी पूरी कथा के अंत को एक तरह का सकारात्मक प्रभाव देती है। इसके संबंध में ध्यान रखना है कि हंगेरियन कृति नकारात्मक चित्रण से शुरू होती है और थोड़े-से विकास के बावजूद नकारात्मक ही रहती है।

मिकसात पीटर का परिचय खलनायक के रूप में देते हैं तथा पीटर को एक तरह से नायक बनने का अवसर केवल बाद में मिलता है। हिरण्य उनसे विपरीत है, क्योंकि गाँव छोड़ने का कारण पैसे कमाना और अच्छे से घर बसाना है। वह बाहर भी नेक आदमी की भूमिका निभाता है। उसके चरित्र में छोटा परिवर्तन आता है, जब पता चलता है कि वह सैनिक बन गया है। लेकिन यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता कि हिरण्य जान-बूझकर भाग गया, इसलिए वह पूरी कथा में नायक रहता है।

'रखवाला' का दूसरा नायक, बलबहादुर एवं हंगेरियन पीटर के स्वभाव में एक सृजनात्मक परिवर्तन उभर आता है। वे दोनों खलनायक से नायक बनते हैं। पीटर स्वयं मानता है कि श्ज़ोफ़ी से बेवफ़ाई करने से उसे अपने आपसे 'नफ़रत हो गई थी'। उसे अपनी पत्नी के सामने भी शर्म आती है, इसलिए श्ज़ोफ़ी को बुलाकर क्षमा माँगना चाहता है। इस दृष्टि में मिकसात पीटर की मृत्यु बहुत प्रतीकात्मक कराते हैं : चूँकि पीटर ने अपनी पत्नी की इज़्ज़त बर्बाद की थी, इसलिए उनका जीवन सुखद नहीं हो सकता। इससे विपरीत बलबहादुर के

चरित्र का विकास होता है। वे गाँव के नापसन्द, 'आवारे' और 'लफंगे' लड़के से पूनो का सहारा बन गए हैं। कड़ी मेहनत करके बलबहादुर और पूनो ऐसी ज़िंदगी जी सकते हैं, जिसे हिरण्य भी अपनी प्रेमिका के साथ जीना चाहते थे। रेणु की ओर से यही सन्देश है कि जीवन में अपना दुर्व्यवहार बदलना है, जिसका इनाम मिल ही जाएगा। बलबहादुर और पूनो के संबंध का विकास, वास्तव में, अद्‌भुत है। लेकिन बलबहादुर असली नायक के पद पर कभी नहीं पहुँचता - कहानी की आखिरी पंक्ति का अर्थ यह भी हो सकता है कि बलबहादुर सिर्फ़ हिरण्य का जीवन जीता है। बलबहादुर के विकास का मुख्य कारण सेना में हिरण्य का दाखिला है – वे तो हिरण्य के दुर्भाग्य से कामयाब बन गये हैं।

दोनों रचनाओं में कथावचक की भूमिका प्रकाशित होनी चाहिए। मर्गित कोवैश मिकसात की कहानी के संबंध में लिखती हैं कि श्ज़ोफ़ी के आत्मीय विचार कथावाचक के द्वारा बताए जाते हैं। जब श्ज़ोफ़ी बोलती है, वह 'अच्छा कारण लेकर, लेकिन कम' बोलती है। यही प्रवृत्ति रेणु की कहानी में भी झलकती है। कथावाचक अतीत और वर्तमान की घटनाएँ भी जानता है, पूरी कथा उससे सुनाई जाती है। इस कृति में भी पात्रों का वाद-विवाद बहुत नियमित, किन्तु भावपूर्ण है। उदाहरण के लिए सेना में दाखिल होने की खबर और आवारागर्दी छोड़ने की बात भी पात्र के द्वारा व्यक्त की जाती है।

आखिरकार दोनों कहानियों में लोकजीवन और ग्रामीण ज़िंदगी का चित्रण एक बहुत महत्त्वपूर्ण विशेषता है। बोलचाल की भाषा का प्रयोग मिकसात और रेणु द्वारा किया गया है। रेणु की कहानी में स्थानीय भाषा और लोकसांस्कृतिक तत्त्व भी मिलते हैं। पूनो एक बार पूरे भारत में प्रसिद्ध और प्रिय 'रामायण' के एक दृश्य की याद दिलाती है, फिर अन्तिम पंक्ति में स्थानीय भाषा में किसी गीत का एक छोटा-सा हिस्सा सुनाई देता है। रेणु की रचना में हिमालय के अंचल का वातावरण जीवन्त रूप में उपस्थित है। मिकसात के यहाँ भी यही पद्धति मिलती है – अगर हम मूल, हंगेरियन पाठ पढ़ें, तो कुछ पुराने, ग्रामीण शब्दों का प्रयोग दिखाई देता है। मिकसात ग्रामीण अंधविश्वासों का ज़िक्र भी करते हैं।

आजकल जहाँ मिकसात की कहानी हंगरी में पुरानी मानी जाती है, जिसमें उन्नीसवीं सदी की ग्रामीण दुनिया झलकती है, वहीं रेणु की रचना में आधुनिकता उपस्थित है। रेणु की कहानी में शहरी और ग्रामीण जीवन का अन्तर अच्छी तरह प्रकाशित है।

anita.shukla-hindi@msubaroda.ac.in

तीन पुस्तकें : तीन देश : तीन लेखिकाएँ

डॉ. विजया सती
नई दिल्ली, भारत

अपने देश से दूर रहकर, हिंदी जगत में लेखन से अपनी पहचान बनाने में सफल हुई तीन लेखिकाएँ तीन देशों में अनवरत सृजनशील बनी हुई हैं – डेनमार्क में अर्चना पैन्यूली, कनाडा में हंसादीप और इंग्लैंड में वन्दना मुकेश शर्मा। इन लेखिकाओं ने रोचक तथा सार्थक रचनात्मक लेखन किया है। उनके विपुल लेखन में से, प्रत्येक की केवल एक पुस्तक पर केन्द्रित यह पुस्तक समीक्षा उनकी सृजनात्मक संभावनाओं को रेखांकित करने का लघु प्रयास है।

अर्चना पैन्यूली लंबे समय से डेनमार्क में रहती हैं, विज्ञान विषय का अध्यापन करती हैं। भारत की पृष्ठभूमि पर उनका उपन्यास है - 'परिवर्तन'। डेनमार्क के जीवन और प्रश्नों को उन्होंने अपने दो उपन्यासों में गूंथा – 'वेअर डू आई बिलांग' और 'पॉल की तीर्थ यात्रा'। उनका चौथा उपन्यास 'कैराली मसाज पार्लर' डेनमार्क के अतिरिक्त अन्य महाद्वीपों के भौगोलिक-सांस्कृतिक बोध को कथा-सूत्र में पिरोता है।

अर्चना के दो कहानी-संग्रह हैं और अनुवाद भी। उनके

द्वारा किया गया डेनिश उपन्यास का अनुवाद आज की बात करें शीर्षक से, 2021 में प्रभात प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। उपन्यास समसामयिक डेनिश साहित्य की जानी-मानी लेखिका हेल्ले हेल्ले ने लिखा, जिनका जन्म दिसंबर 1965 में डेनमार्क में हुआ। 1993 में हेल्ले हेल्ले की पहली पुस्तक प्रकाशित हुई। 2005 में प्रकाशित कृति Rødby-Putt-garden से उन्हें प्रसिद्धि मिली। उनका लेखन लोकप्रिय, प्रशंसनीय होने के साथ-साथ आलोचना के केंद्र में भी रहा। उनके कहानी-संग्रह और उपन्यास विश्व की 22 भाषाओं में अनूदित हो चुके हैं।

2011 में प्रकाशित हेल्ले हेल्ले का उपन्यास *This Should Be Written in the Present Tense* –2014 में अंग्रेज़ी में भी प्रकाशित हुआ। मूल डेनिश से उपन्यास का हिंदी अनुवाद अर्चना पैन्यूली ने किया, जिसके लिए 'डेनिश आर्ट फ़ॉउंडेशन' से अनुदान प्राप्त हुआ।

आज की बात करें - अस्सी के दशक के साधारण जन के जीवन का ऐसा उपन्यास है, जिसमें कथासूत्र क्षीण है, छोटी-छोटी घटनाएँ घटती रहती हैं, लेकिन उनसे जीवन की जो तस्वीर उभरकर आती है, वह कुछ सोचने को बाध्य करती है। अनुवादिका ने संकेत किया है कि यह अपने समय और समाज का समग्र चित्र नहीं है। केवल यह दिखाया गया है कि ऐसा भी होता है।

उपन्यास की नायिका डार्टे का लेखिका से पर्याप्त साम्य है। जब उपन्यास लिखा जा रहा था, लेखिका उसी उम्र की थी, जिस उम्र की उनकी कथा नायिका - युवा, व्यस्त और सक्रिय। डार्टे ने लेखिका की ही तरह विश्वविद्यालय में साहित्य अध्ययन में दाखिला लिया, वह लेखन में रुचि रखती है, अधिक समय पुस्तकालय में बिताती है। लेखिका की ही तरह, उसके अपने शहर में भी करने को बहुत कुछ नहीं था। कुछ समय बाद वह ग्लुम्सो नाम के छोटे ग्रामीण क्षेत्र में रहने आ जाती है। वह कुछ अलग तरह के कामों में लगी रहती है – प्रेम, छिट-पुट लेखन, दूर-दूर तक पैदल चलना, सहसा सामान पैक कर घर छोड़ देना, साईकिल से खेत-खलिहानों में घूमना, कुछ पका-खा लेना, कपड़े धोना आदि। दोस्ती में बहकना भी उसके स्वभाव का अंग है और वह अपने स्वभाव से विवश है। ऐसी विवश कि एकाएक लगभग सुस्थिर प्यार को छोड़कर, नई मैत्री ठानती है। घर छोड़ दूसरी जगह जा बसती है। लेकिन इस बार वह अँधेरे में रह जाती है। प्रेमी नवयुवक उसे बिना बताए चला जाता है, कुछ बहाने बनाता है, किंतु डार्टे उसे मस्त और मगन भ्रमण करते देखती है। इस पर भी यह लड़की बहुत उत्तेजित नहीं होती। कुछ दुख, परेशानी और नींद न आने जैसी बातों के बाद जीवन फिर जीने लगती है। उसके जीवन में कोई निश्चितता नहीं है, ठहराव नहीं है, पर वह इसकी अभ्यस्त है। यह जीवन जीना उसके लिए कठिन नहीं है।

मित्रों के अलावा अपनी बुआ से उसका स्वाभाविक लगाव है और यह दोतरफ़ा है। वह बुआ के लिए कुछ भी कर सकती है, ज़मीन पर बैठकर पैडीक्योर भी। बुआ भी उसकी भूख और उसकी ज़रूरत का ख्याल कर इंतजाम भी करती है। दोनों एक-दूसरे के स्वाभाविक प्रेम में बंधी हैं और एक-दूसरे के साथ सर्वाधिक सहज होती हैं। डार्टे के लगभग सभी संबंध अस्थिर हैं, केवल बुआ को छोड़कर। उपन्यास में डार्टे के अतिरिक्त सर्वाधिक बुआ का ही जीवनवृत्त है। उनके अनुभवों के थपेड़े, घनघोर अकेलापन, हठी अनुशासन और उम्र के ढलान पर धूमिल पड़ गई उम्मीदें हैं।

माता-पिता से डार्टे का कोई खास लगाव नहीं, बल्कि वह उनसे बचती है। वह आज में जीती है - भविष्य का कोई सपना नहीं और अतीत का विचार नहीं। कभी उसने कुछ गीत लिखे और पैसा कमाया। वह अपने लिए बहुत कम चीज़ें चाहती है, जो नहीं होता, उसे छोड़ देती है। उसके लिए बिसूरती नहीं। इन सबके बावजूद इस लड़की के जीवन में नकारात्मकता कम, सकारात्मकता ही ज्यादा है। वही करती है, जो करना चाहती है। हर पल को भरपूर जीती है, जीवन को सजाने-संवारने की कोई चाह उसके मन में नहीं है। जीवन बिखर जाए पर वह जी लेगी।

उपन्यास एक डायरी की तरह लिखा गया है। कथानक में उदासीनता पसरी हुई है। उपन्यास के सभी पात्र साधारण हैं – डार्टे का पहला मित्र पेअर ड्राइविंग करता है। दूसरा मित्र

लार्स नर्सरी में काम करता है।

लेकिन जीवन की यह साधारणता भी जीवन के प्रति एक दृष्टि देती है। उपन्यास का शीर्षक भी इसी साधारणता में निहित अर्थवत्ता को संकेतित करता है। महत्त्वाकांक्षाओं से रहित सादगी में भी जीवन का रस है, दैनंदिन बैचैनियों से परे संतुष्टि है। केवल आज ही की बात क्यों न करें, सपनों के बोझ तले क्यों मरें?

डेनिश से हिंदी में अनूदित होने वाला यह अभी तक का पहला उपन्यास है। अनुवाद के लिए इसके चयन के प्रश्न पर अनुवादिका कहती हैं। 'वर्ष 2012 में इस उपन्यास के लिए जब लेखिका हेल्ले हेल्ले को प्रतिष्ठित साहित्यिक पुरस्कार 'द गोल्डन लॉरेल' से सम्मानित किया गया, तब मेरा ध्यान इस उपन्यास की तरफ़ खींचा।' चर्चित और पुरस्कृत उपन्यास, लेखिका का व्यक्तित्व और प्रभावी लेखन अनुवाद की प्रेरणा बने।

अर्चना कहती हैं : 'इन सभी बातों के अतिरिक्त मुझे इस उपन्यास ने विशेष तौर पर इसलिए आकर्षित किया कि इसमें लेखिका हेल्ले ने डेनमार्क की राजधानी कोपनहेगन के मुख्य शहर से दूर बसे अपरिचित छोटे-छोटे विशिष्ट ग्रामीण क्षेत्र - ग्लुम्सो, हैसलेव, नैस्ट्वेड, रिंग्सटेड, लुंडबी और नाकस्को आदि को अपने कथानक में शामिल किया है। मामूली, साधारण व्यक्तियों की ज़िंदगियाँ टटोली हैं। कॉलिज परिसर, *दिशाविहीन छात्रा, जिसके मन में कुछ लिखने की चाहत तो है, मगर एक निश्चित डगर व ठोस लक्ष्य नहीं है, यह बात उपन्यास में आहिस्ते से, रहस्यपूर्ण ढंग से निकलती है कि वह आवारा-सी दिखने वाली नवयुवती, अंततः एक लेखिका बनती है और अपनी आत्मकथा लिख रही है'।*

'भारत और डेनमार्क के बीच एक साहित्यिक पुल' के निर्माण की आकांक्षा से अनूदित यह कृति एक साहित्यिक ज़िम्मेदारी को संकेतित करती है। आज का युवा कथा नायिका से अपने आप को जोड़ पाएगा, अपने जीवन की निरुद्देश्य भटकन को, उपन्यास के बहाने समझ पाएगा, यही इस अनुवाद की सार्थकता है।

विदेशी धरती से देशी महक

हिंदी अध्यापिका डॉ. हंसा दीप लंबे समय से कनाडा में रहती हैं। उनके चार उपन्यास और छह कहानी- संग्रह प्रकाशित हैं। उनकी कहानियों के अनुवाद गुजराती, मराठी और पंजाबी भाषाओं में हुए हैं।

'प्रवास में आसपास' कहानी-संग्रह शिवना प्रकाशन से 2019 में प्रकाशित हुआ।

संग्रह की कहानियाँ लेखिका के आसपास के जीवन का रेखांकन करती हैं। देशी और विदेशी परिवेश में, सभी आयुवर्ग के जीवन संबंधों की ये कहानियाँ माँ और बेटी, पिता-पुत्री-पत्नी, भाई-बहन, दादा-दादी, ससुर-बहू और बॉस–कर्मचारी जैसे पात्र लेकर उपस्थित हैं। लेखिका इन्हें अपने 'प्रवास के साथी' कहती हैं, जो अलग-अलग उम्र की अलग-अलग परिस्थितियों और समस्याओं में लिपटे-उलझे कहानियों के पटल पर आते हैं।

देश-परिवेश की सांस्कृतिक भिन्नता से परे, नितांत मानवीय संवेदना से परिपूर्ण ये कहानियाँ समाज और व्यक्ति के अंतर्मन में झाँकती हैं। पुस्तक में विदेशी धरती से देशी महक कई स्तरों पर व्याप्त है।

संग्रह की पहली कहानी असहाय बुढ़ापे में निरर्थक होते जीवन में सहसा सार्थकता पा लेने वाले एक व्यस्त डॉक्टर की सशक्त कहानी है। बुढ़ापा दूसरा बचपन होता है – इस पुराने मुहावरे में नया अर्थ भरती कहानी में लेखिका एक गहन अंतर्संबंध में खुशियों का रंग खोज पाती हैं। कहानी का शीर्षक इसे बखूबी बयान करता है – पीले पत्ते का हरे पत्ते से जुड़ाव। नन्हें बच्चे के साथ का स्पर्श मिला, तो जैसे मुरझाए वृक्ष में कोंपल फूट आई। अशक्त, निराश, उदास, निरीह डॉक्टर मिलर सोचते थे कि शायद आज की रात जीवन की आखिरी रात हो, शायद यह जीवन की आखिरी सुबह हो। वह एक छोटे बच्चे के अबूझ संवादों के बीच जीवन की दस्तक को पहचान लेते हैं। बच्चे की आकस्मिक निकटता डॉ. मिलर के जीवन में ताकत, संतुलन, हँसी और खुशी ला देती है।

निजी जीवन में बाहरी दुनिया की दखलअन्दाज़ी का उदाहरण पेश करती है दूसरी कहानी – एक मर्द एक औरत।

यह केशव बाबू और उनकी पुत्रवधू सिया के निष्पाप आत्मीय संबंध की कहानी है - जितनी उनके संबंध की पवित्रता की कहानी, उतनी ही दुनिया के चारित्रिक कलुष की भी।

केशव बाबू ने एक संघर्षमय, त्यागपूर्ण जीवन जिया था, पत्नी की मृत्यु के बाद नन्हें बेटे को पालते-पोसते, लिखाते-पढ़ाते वे नौकरी की ज़िम्मेदारी बखूबी निभा रहे थे। कालान्तर में इस निस्पृह एकाकी जीवन में पुत्रवधू सिया का प्रवेश समझदारी की मिसाल बनकर हुआ –'ससुराल में सास कहो या ससुर, ननद कहो या देवर-जेठ, एक पापाजी ही तो थे। सारे रिश्ते उन्हीं से शुरू होते थे और उन्हीं पर खत्म'।

केशव बाबू और सिया एक-दूसरे की स्वाभाविक चिंता में जीते, उठते-बैठते, घूमते और घर का काम करते। उनके इस अपनेपन को दुनिया की दुर्भावनाओं ने गंदा कर दिया। एक हँसते-खिलखिलाते घर को मनहूस सोच से भर दिया। किंतु अंत में परिवार की आपसी समझदारी सबकुछ दरकिनार कर देती है। एक संघर्षशील पिता के अंत:करण को बेटे ने समझा, स्त्री गरिमा का उदाहरण बनकर सिया सम्मुख आई – 'दो रिश्तों की पवित्रता का निर्णय कोई तीसरा आदमी कैसे कर सकता है। 'मुझे अपने आप पर पूरा विश्वास है। आप मेरे पापा हैं और पापा ही रहेंगे।' दुख, क्षोभ, पश्चाताप के आँसुओं से धुलते कलुष की यह कहानी समाज के चरित्र की वास्तविकता को उजागर कर देती है।

'वह सुबह कुछ और थी' – कहानी नील के मस्त मौला जीवन का चित्र है। इंसानी फितरत छोटी-से-छोटी परेशानी को बड़ा बना देती है – नील इसी स्वभाव के चलते एक खराब मौसम वाले दिन खन्ना साहब की लिमोजीन के सहारे दफ़्तर पहुँचने और बॉस की कार से घर लौटने का सुख ले लेता है। खराब मौसम वाले दिन वह रास्ते की हर मुसीबत से लड़ने के लिए तैयार था, वह दिन खत्म होते-होते मेहरबान रहा, तो नील समझने की कोशिश करने लगा कि आज के दिन का श्रेय खुद को दे या उन लोगों को जो उसके आसपास हैं? सोचने लगा कि 'आज' 'रोज़' भी तो हो सकता है! लेकिन कल कल ही रहा, नील की अगली सुबह असली सुबह में बदल गई थी। वही अलार्म का बजना, वही हड़बड़ाना, वही भागमभाग, वही मुसीबतों का पहाड़। एक के बाद एक अपना चेहरा दिखाती परेशानियाँ!

'उसकी औकात' शीर्षक कहानी शिक्षा-जगत के उस कड़वे सच की कहानी है, जहाँ हैली जैसी लोकप्रिय युवा अध्यापिका के खिलाफ़ विभागाध्यक्ष मोर्चा खोल लेते हैं। हैली का आत्मविश्वास और ज्ञान सबको चुभा, तो उसके गुण, अवगुण की सूची में डाले गए। समूचा विभाग एक ओर, मिस हैली दूसरी ओर। कुर्सी अकेली नहीं होती, उसके चार पैर होते हैं। हैली कुर्सी की ताकत को पहचानती थी, लेकिन यह भी जानती थी कि हिम्मत की आवश्यकता है डर की नहीं। एक चींटी ने हाथी से टक्कर ली थी। जीत हैली की हुई, तो अपमानित विभागाध्यक्ष का तजुर्बा कहता था कि कहीं-न-कहीं तो इस हार का बदला लेंगे।

लेकिन फिर उन्हें मुँह की खानी पड़ी – उनकी मेज़ पर मिस हैली का त्याग-पत्र रखा था। कहानी उस कड़वे सच को सामने लाती है, जहाँ स्पर्धा, सहयोगी को नीचा दिखाने का मनोभाव मानवीय मूल्य को शून्य कर देते हैं।

बालमन की परतों को सहजता से खोलती कहानी 'रूतबा' बताती है कि बच्चों का अवचेतन मन जो सुनता है, वही बाहर आ जाता है। नहले पर दहला क्या होता है न जानने वाले बच्चे भी कभी-न-कभी अनजाने ही इसका प्रयोग कर बैठते हैं।

'मुझसे कह कर तो जाते' कहानी में शोध छात्र को कमरा किराए पर देकर परिवार की दिनचर्या ही बदल जाती है, किराएदार को लेकर उत्सुकता, प्रयास, चिंता जैसे तमाम निरे देशी भाव गृहिणी को ऐसे घेर लेते हैं कि छात्र की चुप्पी और तटस्थता खलती है, शिष्टता की नई परिभाषा रास नहीं आती। घर वाला अपनापन देने को फिक्रमंद माँ अंत में इस दिली ख्वाहिश को मन में लिए रह जाती है – 'मुझसे कहकर तो जाते' – जब शोधार्थी बिना बताए कमरा खाली करके चला जाता है, चाबी मेल बॉक्स में छोड़कर!

'अपने मोर्चे पर' संग्रह की सातवीं कहानी है, जिसमें महिला सशक्तिकरण का जो आन्दोलन देश-विदेश से होता हुआ घरों की देहरियों में कदम रख रहा था, उसके बहाने इस

सच्चाई को रेखांकित करने की कोशिश की गई है कि रिश्तों में समझ की ज़रूरत है, किसी आन्दोलन की नहीं।

डॉक्टर और मरीज़ के बीच कितनी नज़दीकियाँ हों और कितनी दूरियाँ – इसे विश्लेषित करती है **'भिडंत'** कहानी। कैंसरग्रस्त माँ के लिए कथा नायिका स्वाति सिर्फ़ एक बेटी ही नहीं, एक डॉक्टर भी है। उसकी ज़िम्मेदारी दोगुनी है। भावों और विचारों की जंग जीतने के लिए स्वाति खुद को तैयार करती है। मरीज़ों की मन:स्थिति से गुज़रती है, बीमारी में बीमार इंसान को और अधिक बीमार कर देने वाले लोगों के लिए डोज़ तैयार करती है। कमरे के बाहर बोर्ड लगवा देती है – मरीज़ से मिलना मना है! निर्णय लेती है - एक समय पर एक लड़ाई लड़ना ही बेहतर है। कैंसर से भिडंत, मरीज़ों से भिडंत, रिश्ते-नातों से भिडंत - सब एक साथ आखिर कैसे?

आशी अस्थाना ने ऊँचाइयों पर अपने आसपास ऐसा जाला बना लिया, जिसके मज़बूत रेशों के अन्दर वे खुद कैद हो गई। यह सार है – 'ऊँचाइयाँ' कहानी का। नेता और नारी - दो मोर्चों पर एक साथ डटी आशी अस्थाना, घर से बाहर झकझोर देने वाले भाषण ज़रूर देती हैं, किन्तु घर के भीतर कोई उनकी अस्मिता को ललकार गया। कोई और नहीं उनका ही बेटा ! लड़कियों से दूर रहने की कोशिश और दोस्तों में अपनी खुशी ढूँढने वाले बेटे ने कह दिया माँ से - शादी करूँगा, पर किसी लड़के से। यह बात दबंग माँ को निराश कर गई, वह न पति से बात कर पाती हैं न बेटे से... इतनी दूरियाँ थीं उन तीनों के बीच!

बेबीसिटर हेज़ल वह 'मधुमक्खी' है, जो छत्ते पर बैठकर ताउम्र शहद खाती है, पर अपना डंक मारने का स्वभाव नहीं छोड़ती। एक से प्यार पाने के लिए दूसरे की बुराई करना ज़रूरी नहीं – लेकिन 'मधुमक्खी' कहानी की हेज़ल ठीक ऐसा करती है। विदेशों में एकल परिवार बेबीसिटर पर कितना आश्रित होते हैं, यह कोई अजाना सत्य नहीं है। एक घर से निकल दूसरे घर जाने पर हेज़ल, अपने आचरण से पूर्व मालकिन सुमी को ऐसा दर्द देती है कि उनकी किसी पर विश्वास करने की भावना ही आहत हो जाती है।

'एक खेल अटकलों का' शीर्षक कहानी में बिल्डिंग के सिक्योरिटी डेस्क पर बैठा पश्तो फुरसती समय में लोगों के व्यक्तित्व को देखकर अटकलें लगाता है। उसका ध्यान समय की पाबन्द महिला मीशा की ओर गया, उत्सुकता हुई कि वह क्या काम करती होगी। एक छुट्टी के दिन जब कॉफ़ी शॉप में मीशा अचानक दिखी तो वह पूछ बैठा – आप इधर काम करती हैं क्या? मीशा ने हँसकर बताया कि वह तो रिटायर्ड है...सालों हो गए... सालों से जो दिनचर्या है, उसे कायम रखने के लिए घर से निकल जाती हैं। मन को समझाना पड़ता है, बस और कुछ नहीं।

पश्तो सोचने लगा – मीशा स्वयं को नहीं समझा पाई कि अब वह काम नहीं कर रही। एक भुलावे में जीने के लिए अपने मन को समझाया तो सच्चाई स्वीकार करने के लिए क्यों नहीं? कल तक वह अटकलों में गुम रहता था, आज हकीकत से वाकिफ़ हुआ।

'फालतू कोना' कहानी संदेहों के घेरे में हर रिश्ते के दम घुटने की कहानी है। ज़िम्मेदार पति और स्नेहिल पिता सुहास धीरे-धीरे परिवार का एक अदृश्य सदस्य हो गया, जिसे सब अनदेखा करते। किसी ओर से अपनापन नहीं मिला, तो उसने शराब में स्थायी साथी खोज लिया। चुपचाप मृत्यु के दरवाज़े खटखटाता सुहास खुद के लिए आखिर कब तक जी सकता था?

'अंततोगत्वा' कहानी धर्म और आध्यात्म के नाम पर पनपते ढोंग, पाखण्ड और परिताप की कहानी है। धार्मिक-स्थलों की शान्ति चंद क्षणों की शान्ति है, उन चंद पलों के अलावा सारा समय निंदा, खाने में और गप्पों में निकल जाता है। अनुशासन के आदेश देने वाले पंडित जी भी इस सोच में रहते – कोई-न-कोई व्यक्ति तो किसी-न-किसी परेशानी में घिर ही जाएगा और मंदिर आएगा ही, भगवान् से दरख्वास्त करने।

'रोपित होता पल' परीक्षा-हॉल में समय से पहुँचने के लिए दौड़ लगाती युवती की कहानी है। मेट्रो कार्ड के काम न करने पर अचानक अपना कार्ड स्वाइप करके मदद करने वाली लड़की भीड़ में खो जाती है – युवती को धन्यवाद भी न कर पाने की ग्लानि में छोड़कर! आत्मक्षोभ, बेरुखी

और पश्चाताप की इस कहानी की नायिका को अपने दिल का पत्थर होना सालने लगता है, कभी किसी की मदद न करने का अफ़सोस होने लगता है, उसने अभी तक किसी के भी दुख-दर्द-परेशानी को अनदेखा किया था। आज कोई अनजान उसकी आकस्मिक मदद कर गया, तो अपने द्वारा की गई मानवीय उपेक्षाओं का दर्द खुद को मथने लगा। यह उस पिघलते पाषाण हृदय की कहानी है, जिसने आखिरकार जीवन में एक नया पाठ पढ़ा !

संग्रह की अंतिम कहानी है – 'बड़ों की दुनिया में' जहाँ आठ साल की परी जल्दी बड़ा होना चाहती है। लेकिन अचानक परी के इस निर्णय के पीछे अब क्या कारण है कि उसे बड़ा नहीं होना है ? वह यह कि सभी तो अपनी-अपनी इच्छा आकांक्षा लादने लगे उसके मासूम जीवन पर! माँ नहीं चाहती कि वह प्राइमरी टीचर बने, उसे डॉक्टर बनना चाहिए। पापा को लगता है कि उनकी परी सैलून की न सोचे – मेरी राजकुमारी लोगों के बाल बनाएगी, आईब्रो बनाएगी, कभी नहीं! दादी खिलौना शॉप नहीं खोलने देगी, दादाजी कहते हैं – बड़े काम के बारे में सोचो। नानी गाइड नहीं बनने देना चाहती। उदास परी के लिए सब बड़े लोगों की बातें बहुत बड़ी हैं। अंतत: बड़ों की दुनिया में असमंजस से उबरने की कोशिश करके हारी परी ने बड़े होने का ख्याल ही दिमाग से निकाल दिया। वह बच्ची ही बनी रहना चाहती है।

संग्रह की कहानियाँ सोच को विस्तार देती हैं, घटनाओं में प्राय: नहीं उलझती। ये जीवन के स्वाभाविक उतार-चढ़ावों की सामयिक और प्रासंगिक कहानियाँ है। परी के सपनों और पसंद-नापसंद को अनदेखा करने वाले परिवार आज भी मिल जाएँगे। महत्त्वाकांक्षा के पीछे दौड़ते मन का संवेदनारहित होना, संबंधों के प्रति उपेक्षा-तिरस्कार का भाव रखना – जीवन की त्रासदी के रूप में आज भी दिख जाएगा। इसलिए डॉ. मिलर, केशव बाबू, सिया, नील, हैली, सुयश, डॉ. स्वाति, आशी अस्थाना, हेज़ल, सुमी, मीशा, पश्तो, सुहास और परी जैसे पात्र स्मृतियों में स्थान बना लेते हैं।

कहानियों की भाषा में एक सरल प्रवाह और सशक्त अभिव्यक्ति के तमाम उदाहरण हैं – रातें अड़ियल विचारों की तरह आती रहीं, सुबहे बिन बुलाए रोज़ खिड़की से भीतर झाँकती रही, सवाल-जवाब का गणित रिश्तों को जटिल बना रहा।

जीवन के अनजाने, मार्मिक तथा रोचक पहलुओं का समावेश इस संग्रह को, प्रवासी लेखिका की हिंदी जगत को विशिष्ट प्रासंगिक देन बना देता है।

वन्दना मुकेश : संकलित कहानियाँ

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से समसामयिक साहित्य श्रृंखला के अंतर्गत वन्दना मुकेश की बारह कहानियों का संकलन 2021 में प्रकाशित हुआ। ये कहानियाँ देश-विदेश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में स्थान पा चुकी हैं। वन्दना विगत कई वर्षों से इंग्लैंड में रहती हैं।

बचपन में उनके मन की अनगढ़ धरती पर पड़े लेखन के बीज यहाँ लहलहा उठे हैं। सत्य और कल्पना के संसार में विचरती लेखिका एक आदर्श, यथार्थ और कलात्मक कथा-संसार निर्मित करने में सफल हुई हैं। पाठक से सीधा संवाद करती इन कहानियों की दुनिया हमारी अपनी जानी-पहचानी दुनिया है, कथाकार ने उसे सुघड़, विश्वसनीय और प्रभावशाली रूप से शब्दबद्ध किया है।

ये कहानियाँ मुक्त-भाव से दूर देश से अपने देश तक आवाजाही करती हैं। इनमें भारतीय मन और विदेशी जीवन की ताक-झाँक चलती रहती है। ताऊ के थैले में लोटा-डोर है कि कुएँ से पानी खींचा जा सके, इंग्लिश समर भी है, स्लीप ओवर के लिए दोस्त के घर गई बेटी क्रिस्टी है और रेचल की स्प्रिंग क्लीनिंग की चर्चा भी। छोटे-छोटे शब्द प्रयोग देश और परदेश की जीवन-पद्धति को मूर्त करते हैं। 'बिग फैट इंडियन वेडिंग' भी है, अपने बायलोजिकल फ़ॉदर से मिलन की आस लिए परदेश का नील भी, 'गॉड ब्लेस योर फ़ैमिली' कहता दूर देश का हंफ्री डिक्सन भी। अपने निर्णय की बड़ी कीमत चुकाती परम्परागत भारतीय परिवार में बसी कामकाजी स्नेहिल चाची हैं, तो प्यार पाने को तरसती प्रवासी साजिदा नसरीन भी। इन सबके बीच 'फ्री लंच'' कहानी की सिमोना है। एक भारतीय डॉक्टर जिसे झेलना सबके बस की बात नहीं !

कहानियों में जीवन के स्त्री पक्ष को प्रमुखता मिली है –

पहली कहानी के केंद्र में, मशीन हो जाने के खिलाफ़ मूक प्रयास करती पत्नी है, जो हर दिन अपनी इस चाह को मरने नहीं देना चाहती कि अगली सुबह कुछ तो सुहाना लगे। अपने घर को चमचमाता देखने की इच्छा करने वाली माँ है, अपनी लड़ाई आप लड़ने वाली वर्किंग वूमेन चाची हैं, अस्वस्थता के बावजूद परदेश में भाषा सीखने की जद्दोजहद करती साजिदा नसरीन है, उसे अंग्रेज़ी पढ़ाने वाली मैडम हैं, बेटी के ब्याह के सही-सलामत निपट जाने के लिए फिरकी बनी घूमती रमा है, पति रिचर्ड की मूक भाषा समझती, बेटी की बेचैनी और बेटे के मन को पढ़ सकने वाली रेचल है, कभी-कभी हम्फ्री डिक्सन का अकेलापन बाँट लेने वाली सुमि मेहरा है, बिल्ली कहानी की खलनायिका सूजी का चरित्र भी कथाकार ने जीवंत रचा है। ये सभी वे स्त्रियाँ हैं, जो अपनी पहचान बनाती, अपने-अपने संघर्षों के बीच जीवन का अर्थ खोज रही हैं। स्त्री मन के सबल, संवेदनशील और मानवीय पक्ष को दिखाती कहानियाँ पठनीय हैं। जीवन के कटु अनुभव अपने भीतर समेटे, सिमटते आँगनों, बिखरते परिवारों, कागज़ी भावनाओं और पैसे की चमक से छिनती मनुष्यता के दुख कहती इन कहानियों में अपने-आप को पढ़वा ले जाने की क्षमता है।

ये स्त्रियाँ लेखिका के आत्मकथ्य का झरोखा भी हैं... सिमोना की बढ़ी-चढ़ी बातें सुनने वाली सहेली, रसोई की गन्दगी देख क्रोध और लाचारी के दबाव से वर्षा की झड़ी लगाती माँ, साजिदा नसरीन की इंग्लिश टीचर, गॉड ब्लैस यू की सुमि मेहरा, चाची का दुख सुनती इन्द... इन सब स्त्री पात्रों में कहीं कम कहीं ज्यादा, लेखिका शामिल है।

जीवन के उजले पक्षों के साथ कहानीकार ने समभाव से जीवन के कलुष को रेखांकित करती दुखों की कहानियाँ भी रची हैं। 'फ्री लंच' जैसी उल्लेखनीय कहानी में आत्मकेंद्रित सिमोना स्वार्थ की शातिर पुतली बनकर उभरती है, 'परदेस जाकर अपने देश की हर चीज़ से मोह बढ़ जाता है' इसलिए कथा नायिका घर आई हिन्दस्तानी डॉक्टर सिमोना को अपनी व्यस्तता के बावजूद एंटरटेन करती है। सिमोना मेहमान नवाजी का लुत्फ़ उठाते हुए सीख-पर-सीख दिए जाती है। you must learn to say no, there is no such thing like a free lunch! अपने-आप में खोई, आत्मकेंद्रित, सिमोना स्वार्थ के चरम को छू लेती है, जब मसाला चाय, बिस्किट, लंच सब कुछ फ्री खा-पीकर सहेली के एक छोटे से काम के लिए 'आई एम सॉरी लव' कहकर अपनी गाड़ी में जा बैठती है।

पति-पत्नी के बीच संवादहीनता ने रिश्तों की गर्माहट खत्म की है, जीवन के इस उदास कथानक को लिपिबद्ध करती मशीन कहानी पढ़ते हुए अनायास ही अज्ञेय की प्रसिद्ध कहानी रोज़ या गैंग्रीन याद आ जाती है। एक अन्य निराश करने वाली परिस्थिति में रमा और मोहन जी हतप्रभ रह जाते हैं, क्योंकि जिन्हें वे समझदार और अपना समझते थे, परिवार की शादी में वे ही परायों से भी बदतर व्यवहार कर जाते हैं। मुश्किल में साथ न देकर बिल्ली जैसी नमकहराम और दगाबाज़ निकलने वाली सूजी भी ज़िंदगी की बुरी तस्वीर पेश करती है।

2002 से इंग्लैंड में बसी वन्दना के पास हिंदी बोलने के अवसर कम होंगे, वर्क प्लेस, मार्किट-बाज़ार में भी हिंदी दूर-दूर तक न होगी। फिर भी उन्होंने हिंदी में लिखना तय किया। लिखना भी ऐसा जो मन को झंकृत कर जाए। जब वह लिखती है : 'तुम्हें न बोलने का ज़बरदस्त रियाज़ है' तो रियाज़ शब्द भर से कम शब्दों में पूरा सच उड़ेल देती हैं।

एक अन्य कहानी में – पति को रवाना करने और बच्चों को स्कूल भेजने के बाद पत्नी और माँ की भूमिका निभाती स्त्री.. अपनी 'सुकून वाली चाय बनाती' है। यह सुकून शब्द माँ और पत्नी के जीवन की चरम व्यस्तता को पूरी तरह उजागर कर देता है।

वन्दना के लेखन की सहज आत्मीयता कहानियों की संवेदना और शिल्प को स्पंदित करती है। लोकजीवन की छवियाँ उनके मन से लुप्त नहीं हुई और न ही लोक शब्दावली। 'अचानक बादल गड़गड़ा उठे। दूर दयाप्रसाद की बैलगाड़ी की घंटियाँ सुनाई दे रही थीं।' इन वाक्यों से लोकजीवन का एक सुन्दर भावचित्र निर्मित होता है।

प्रवास से तीन कथाकारों की यह सृजन-यात्रा अभिनंदनीय है।

vijayasatijuly1@gmail.com

अन सोशल नेटवर्क

डॉ. विनय कुमार शर्मा
उत्तर प्रदेश, भारत

सोशल मीडिया हमारे सामाजिक या सोशल होने की जो मूल प्रवृत्ति है, उसका ही विस्तार है। इसने समाज में संबंधों के निर्माण को बनाए रखने तथा समूहों को जोड़ने एवं उनमें पारस्परिक क्रिया करके क्षेत्र में क्रांति ला दी है। इस तरह सोशल मीडिया हमारे समाज का ही एक ऑनलाइन प्रतिबिम्ब है और यह ऑनलाइन सामाजिकता के लिए एक नया शब्द है। अधिक विस्तृत दृष्टिकोण के अन्तर्गत हम कह सकते हैं कि सोशल मीडिया हमारे समाज का ही एक विस्तार है। यह वास्तविक समाज का सिमुलेशन है, बिल्कुल असली समाज का एक मॉडल, जहाँ तकनीकी उपकरणों द्वारा सामाजिक कार्य सम्पन्न किए जा रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'अन सोशल नेटवर्क' सोशल मीडिया को भारतीय संदर्भ में समझने का एक प्रयास है। इस पुस्तक में कुल पन्द्रह अध्याय हैं एवं दो अध्याय परिशिष्ट में है। पहले अध्याय में लेखक ने सोशल मीडिया की विकास-यात्रा एवं उम्मीदों से लेकर आशंकाओं और खतरों के सफ़र को बहुत ही खूबसूरती से रेखांकित किया है। सोशल मीडिया का दायरा जैसे-जैसे बढ़ रहा है और यह समाज की अलग-अलग प्रक्रियाओं के साथ जैसे-जैसे टकरा रहा है, वैसे-वैसे इसके अलग-अलग पहलू सामने आ रहे हैं।

इन अन्तक्रिर्याओं के साथ ही सोशल मीडिया अपने असली तेवर में नज़र आ रहा है, जो न पूरी तरह सकारात्मक है और न ही पूरी तरह नकारात्मक। सोशल मीडिया को लेकर शुरुआती दौर में बना उत्साह थोड़े समय में गायब हो गया, क्योंकि समाज में जो शक्तिशाली और प्रभुत्वशाली शक्तियाँ और विचार थे, वे सोशल मीडिया पर भी हावी हो गए। दूसरे अध्याय में सोशल मीडिया अपने नाम से उलट अनसोशल नेटवर्क क्यों है, यह बताने का प्रयास किया गया है।

सोशल मीडिया दरअसल आपकी निजी ज़िंदगी का अक्स यानी मिरर इमेज है। फ़ेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, लिंक्डइन, गूगल प्लस और तमाम तरह के सोशल नेटवर्क आपके सामने दुनिया की कई खिड़कियाँ खोलते हैं। आप वहाँ नए-पुराने दोस्तों से मिलते हैं, डेटिंग पार्टनर ढूँढते हैं, कारोबारी दायरा बढ़ाते हैं और नई सूचनाएँ पाते हैं। सिद्धान्त रूप में यह सच है कि सोशल मीडिया पर आप करोड़ों लोगों से मिल सकते हैं और उन तक अपनी बात पहुँचा सकते हैं। इसमें न जाति धर्म की सीमा है और न ही भूगोल या नागरिकता का बंधन। तीसरे अध्याय में सोशल मीडिया किस प्रकार आपको लगातार उग्र और आक्रामक बना सकता है, इसपर विस्तार से चर्चा की गई है। सामाजिक मनोविज्ञान में ग्रुप पोलराइज़ेशन पर काफ़ी अध्ययन हुआ है और यह पाया गया है कि किसी समूह में आपसी चर्चा के बाद लोग अक्सर मध्यमार्गी होने की जगह ज्यादा कट्टर बन जाते हैं। किसी भी सोच-नज़रिए और विचार के सबसे उग्र और आक्रामक प्रतिनिधियों की पोस्ट और कमेंट को अक्सर सोशल मीडिया में सबसे ज्यादा लोकप्रियता मिलती है, जिसे लाइक और शेयर से नापा जा सकता है।

चौथे अध्याय में माब लिंचिंग और सोशल मीडिया पर फैलने वाली अफ़वाहों के संबंधों पर प्रकाश डाला गया है। माब लिंचिंग सोशल मीडिया के पहले भी थी और सोशल मीडिया के बाद भी है। अब नया यह हुआ है कि सोशल मीडिया के कारण अफ़वाहों के फैलने की रफ़्तार बहुत तेज़ हो गई है और चूँकि सोशल मीडिया पर ज्यादातर बातें हमारे आसपास या परिचित या समान विचार के लोगों की होती हैं, इसलिए अफ़वाहों को विश्वसनीयता भी मिल जाती है।

सोशल मीडिया ने पिछड़े देशों में उन आदिम भावनाओं को जगा दिया है, जिसमें किसी को दोषी करार देने से लेकर उसे दोष का दंड देने तक का काम भीड़ खुद ही कर रही है और इसके लिए फ़ेसबुक या व्हाट्सएप पर फैली अफ़वाह को ही प्रमाण मान लिया जा रहा है।

पाँचवे अध्याय के अन्तर्गत डाटा को लेकर विस्तार से चर्चा की गई है। डाटा सिक्योरिटी को लेकर भारत की स्थिति ज्यादा नाज़ुक इसलिए भी है, क्योंकि भारत में लगभग 98 प्रतिशत स्मार्टफ़ोन एंड्रायड आपरेटिंग सिस्टम (बाकी आईओएस) पर चलते हैं और एंड्राएड सिस्टम पर डाटा की सुरक्षा का अच्छा बंदोबस्त नहीं है। जब भी कोई यूज़र इस सिस्टम पर कोई ऐप डाउनलोड करता है, वह दरअसल अपना डाटा सार्वजनिक करने का रास्ता खोल देता है। छठा अध्याय सोशल मीडिया की एक और प्रमुख अवधारणा एको चेम्बर को भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखता है। इस अध्याय में बताया गया है कि सोशल मीडिया में जब हम अपने जैसे लोगों को ज्यादा सुनते-देखते हैं, तब दरअसल यह एक एको चेम्बकर या अपनी ही आवाज़ की गूँज सुनाने वाले कमरे की तरह हो जाता है। जहाँ प्रतिद्वंदी विचार के लिए कोई जगह नहीं होती या कम जगह होती है। ऐसा एल्गोरिदम भी सेट किया जा सकता है कि किसी यूज़र के फ्रेंड के मित्र की पोस्ट टाइमलाइन पर ज्यादा दिखाया जाए।

ऐसे ही सैकड़ों और पैरामीटर के आधार पर या हर पैरामीटर का अलग-अलग वेटेज निर्धारित कर हज़ारों और लाखों तरह के एल्गोरिदम बनाए जा सकते हैं। आखिरकार इन सबमें आदमी की भूमिका तो है ही और जहाँ आदमी की भूमिका है, वहाँ जेंडर भी हैं, रेस भी है, जाति भी हैं, धर्म भी हैं, पसंद और नापसंद भी हैं। विचार और विचारधारा भी हैं। तो यह उतना सीधा-सपाट मामला नहीं है, जितना सोशल मीडिया कम्पनियाँ बताती हैं कि एल्गोरिदम से अपने-आप तय होता है।

सातवें अध्याय के अन्तर्गत वायरल कंटेन्ट की तकनीक और समाज-शास्त्र पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। सोशल मीडिया पर कोई भी कंटेन्ट वायरल यानी तेज़ी से लोकप्रिय क्यों हो जाता हैं और इसके पीछे कौन-कौन-सी प्रक्रियाएँ काम करती हैं। दरअसल, हर कंटेन्ट का एक क्रिटिकल मास होता है, जहाँ के बाद उसे वायरल करने के लिए किसी को प्रयास नहीं करना पड़ता। हर तरह के कंटेन्ट के लिए वह संख्या अलग-अलग होती है। किसी लेख को अगर सोशल मीडिया में 10,000 लोगों ने देख लिया, तो कई लोग इस वजह से उसे और देख लेंगे कि 10,000 लोगों ने इसे देखा है। उसी तरह यूट्यूब पर किसी गाने के अगर 1 मिलियन व्यूज़ हैं, तो स्वाभाविक जिज्ञासा की वजह से कई सारे और लोग भी उसे देख लेंगे और इस क्रम में उसके टोटल व्यूज़ और बढ़ जाएँगे, जो और भी नए लोगों को क्लिक करने के लिए उकसाएगा। यानी एक लहर कई सारी और लहरों को पैदा कर सकती है और किसी भी कंटेन्ट को वायरल या पापुलर बना सकती है।

आठवें अध्याय में सोशल मीडिया युग में रिश्तों के बनने और बिगड़ने के बारे में बहुत ही खूबसूरती के साथ रेखांकित किया गया है। दरअसल, ऐसी हज़ारों या लाखों स्थितियों से मानवीय रिश्ते इन दिनों गुज़र रहे हैं, जहाँ सोशल मीडिया और वहाँ लोगों का व्यवहार रिश्तों को निर्धारित कर रहा है, उन्हें मज़बूत बना रहा है, या उन्हें तोड़ रहा है।

संबंधों की नई दुनिया में, जिसमें अब मोबाइलफ़ोन, सोशल नेटवर्क और व्हाट्सएप जैसे चैटिंग नेटवर्क का न सिर्फ़ प्रवेश हो चुका है, बल्कि उनमें संबंधों को बनाने और बिगाड़ने की ताकत आ गई है।

अब कसमें-वादे-प्यार-वफ़ा सब कुछ स्क्रूटनी यानी जाँच के दायरे में है। हमारे जीवन में मोबाइलफ़ोन और इंटरनेट अब हड्डियों के अन्दर तक समा गया है।

हमारी हर ताकत, यहाँ तक कि सोचने का तरीका तक अब अपने डिजिटल फुटप्रिंट छोड़े जा रहा है। हमारे सर्फ़िंग बिहेवियर से हमारे व्यक्तित्व के बारे में तमाम जानकारियाँ ली जा सकती है। वे जानकारियाँ भी, जिन्हें हम अन्यथा छिपा ले जाते हैं। मिसाल के तौर पर, यह मुमकिन है कि हम सार्वजनिक जीवन में एकनिष्ठ पति या पत्नी की भूमिका जी रहे हैं और एकांत में डेटिंग साइट पर सेक्स खोज रहे हो।

नौवाँ अध्याय सोशल मीडिया में थर्ड पर्सन इफ़ेक्ट के बारे में है। सोशल मीडिया अब हमारे जीवन में कई तरह से समा चुका है और हमारे जीवन को प्रभावित भी कर रहा है। भारत में डाटा की दरें सस्ती होने के कारण भी इसका इस्तेमाल खूब हो रहा है। लेकिन जो चीज़ हमारे जीवन में इतनी गहरे से प्रवेश कर चुकी है और करोड़ों लोग अपना ढेर सारा समय जहाँ बिता रहे हैं, तमाम तरह की सूचनाएँ, सच

और झूठ, वहाँ से जान रहे हैं, उसका हमारे सोचने के तरीकों और व्यवहार पर किस तरह का असर हो रहा है?

दसवें अध्याय के अन्तर्गत यह बताया गया है कि फ़र्जी न्यूज़ लोकतंत्र के लिए किस तरह एक बड़ा खतरा बन गई है। सोशल मीडिया ने संवाद को दोतरफ़ा या बहुआयामी बना दिया है। सोशल मीडिया के ज़रिए फैलाई जाने वाली मिस इनफ़ॉर्मेशन को लेकर जिस तरह की वैश्विक स्तर की चिन्ता नज़र आ रही है, उससे यह तो स्पष्ट है कि लोकतंत्र के लिए यह वास्तविक खतरा बन चुकी है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि इस वजह से लोकतंत्र संकट में है। ऐसे निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते कि किसी देश के चुनाव को फ़र्जी न्यूज़ के सहारे जीता जा सकता है। लेकिन चुनाव पर इसका असर पड़ता है, इसे लेकर कोई शक नहीं है।

ग्यारहवें अध्याय में सोशल मीडिया में जेंडर विमर्श पर विस्तार से चर्चा की गई है। सोशल मीडिया यूज़र्स के सर्फ़िंग व्यवहार में जेंडर के आधार पर किस तरह की प्रवृत्तियाँ हैं। यह शोध का विषय है और नया क्षेत्र होने के कारण उस क्षेत्र में किए गए शोध के निर्णायक और प्रमाणिक निष्कर्ष आने अभी बाकी हैं। लेकिन खासकर भारत में सोशल मीडिया में औरतों की उपस्थिति कई तरह से दर्ज हो रही है। जहाँ महिलाएँ सोशल मीडिया को प्रभावित कर रही हैं, वहीं वे सोशल मीडिया को बदल भी रही हैं।

बारहवें अध्याय में मीडिया के समाज-शास्त्र से जुड़ी एक महत्त्वपूर्ण बहस को उठाया गया है। मुख्य धारा के मीडिया में तो हमेशा स्वर्ण जातियों का वर्चस्व रहा है और वंचित समाज के स्वर वहाँ कम ही सुनाई देते हैं। सोशल मीडिया के आगमन से वंचित समूहों को अचानक स्वर मिल गया। वे सवाल जो मुख्य धारा के अखबारों और चैनलों में नहीं उठाए जा रहे थे, उन्हें सोशल मीडिया में उठाया जाने लगा। लेकिन क्या सोशल मीडिया अपनी उम्मीदों पर खरा उतर पाया? इस अध्याय के अन्तर्गत इसी सवाल का जवाब ढूँढने का प्रयास किया गया है।

तेरहवें अध्याय में यह बताया गया है कि सोशल मीडिया हायरार्की यानी ऊँच-नीच को पूरी तरह से बरतता है, बल्कि समाज में मौजूद भेदभाव को मज़बूत भी करता है। इसके लिए सोशल मीडिया का एक पूरा तंत्र है। ट्विटर और फ़ेसबुक आदि सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म पर खास लोगों को मिलने वाला एकाउंट वेरिफ़िकेशन या ब्लू टिक या इसी तरह का कोई और बैज संवाद के मामले में एक किस्म का नस्ल भेद है या आप इसे डिजिटल वर्षतयवस्था भी कह सकते हैं। यह लोकतंत्र के लिए हानिकारक है।

चौदहवें अध्याय में यह बताया गया है कि तकनीक के विस्तार ने यादों को स्थायी बनाने के नए-नए उपकरण विकसित कर दिए हैं। यादों का मानव-जीवन में काफ़ी महत्त्व माना जाता है। स्मृतियों ने मानव-सभ्यता के विकास में खासी भूमिका निभाई है। परिवार संस्था के निर्माण में भी यादों की अहमियत है। जब मनुष्य ने इन यादों के आधार पर परिवार बसाना शुरू किया, तब कौन-से संबंध बनाए जा सकते हैं और किन संबंधों को निषेध करना चाहिए, तब से ही परिवार संस्था का बनना शुरू हुआ। ये स्मृतियाँ हर जीवित प्राणी में नहीं होतीं। स्मरण-क्षमता को कई बार विद्वता का आधार भी माना जाता है। सोशल मीडिया के युग में वक्त ने अपना मरहम वाला गुण काफ़ी हद तक खो दिया है।

पन्द्रहवें अध्याय में यह बताने का प्रयास किया गया है कि सोशल मीडिया राजनीतिक संचार के क्षेत्र में किस तरह से काम कर रहा है। इसमें यह देखने की कोशिश की गई है कि भारत के नेता सोशल मीडिया की दुनिया में किस तरह के लोगों से घिरे है और किनके पोस्ट या ट्वीट पर उनकी नज़र ज्यादा होती है। इस अध्याय को लिखने के क्रम में देश के दो प्रमुख नेताओं श्री नरेन्द्र मोदी और श्री राहुल गांधी के ट्विटर प्रोफ़ाइल का अध्ययन किया गया है। परिशिष्ट के अन्तर्गत दो अध्याय हैं। पहले में यह बताने की कोशिश की गई है कि सोशल मीडिया में असरदार बनने के लिए क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। यह अध्याय एक यूज़र गाइड की तरह है। दूसरे में कुछ ज़रूरी किताबों की सूची दी गई है, जो सोशल मीडिया के बारे में अच्छी जानकारी प्रदान करती है। कुल मिलाकर सोशल मीडिया के अध्येताओं एवं सोशल मीडिया के यूज़र्स के लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है।

dr.vinaysharma123@gmail.com

भारतीय लोक संगीत एवं मीरा का काव्य

डॉ. अनुराग शर्मा
नालन्दा, बिहार भारत

भारतीय संगीत में आरम्भ से ही दो शैलियाँ प्रचलित थीं- एक का प्रयोग धार्मिक समारोहों पर धार्मिक विधि-विधान से किया जाता था, जिसमें वैदिक या साम संगीत का समावेश होता था। दूसरा संगीत वह था, जो लौकिक समारोहों पर आयोजित किया जाता था, जिसका उद्देश्य लोगों का मनोरंजन करना था, वह लौकिक संगीत कहलाता था। वैदिक काल में ये दो धाराएँ समानान्तर रूप से चलती रहीं और समय-समय पर एक-दूसरे को प्रभावित भी करती रहीं। संगीत की 'प्रथम शैली' अर्थात् साम संगीत को 'मार्ग संगीत' तथा दूसरी शैली 'लौकिक संगीत' को 'देसी संगीत' का नाम दिया गया। दोनों का स्रोत जनसंगीत या लोकसंगीत था। अन्तर केवल यह है कि 'मार्ग संगीत' को संस्कार और परिष्कार प्राप्त होने से उच्च श्रेणी या 'शास्त्रीय संगीत' का स्थान मिला और 'देसी संगीत' लोकरुचि के अनुकूल विकसित होने के कारण जनसामान्य में प्रचलित और लोकप्रिय हुआ। "मार्ग संगीत शास्त्रीय संगीत के नियमों में बद्ध रहा, दूसरा लोकसंगीत के परम्परागत नियमों से नियन्त्रित रहा। प्रथम में अनुशासन नियमों का था दूसरे में अनुशासन लोक-रुचि का था। मार्ग संगीत को यदि राजतन्त्र का प्रतिनिधि माना जाए, तो देसी संगीत को लोकतन्त्र का प्रतिनिधि मानना उचित होगा।"

संसार की सभी प्रक्रियाओं का सम्बन्ध मानव जीवन से है। मानव की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि 'भाषा' है। भाषा, लोकगीत एवं संस्कृति का अस्तित्त्व एक-दूसरे पर आधारित होता है। लोकगीतों में इनकी झलक मिलती है। मानव विकासोन्मुख प्राणी है। मानव-जाति समाज के अनुभवों को लोकगीतों के माध्यम से सुरक्षित करती आयी है। इनमें अन्तर्दृष्टि की सूक्ष्मता और बाह्य दृष्टि की स्थूलता विद्यमान होती है। लोकगीत व्यक्तिगत गीत नहीं है। उनमें मानव के समूहगत भावों की अभिव्यक्ति होती है। आदि मानव की आवेगपूर्ण लयात्मक ध्वनि की आवृत्ति से लोक संगीत उपजा। इसी तरह जन्मी लोकगाथाएँ जन-जीवन के अनुभवों का रोचक ढंग से श्रवण करके एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को विरासत में मिलती रहीं। लोकगीतों के आधार मुख्यतः ग्राम और प्रकृति रहे हैं। अनेक उपादान हैं, जिनमें उत्तेजित हो मानव गा उठता है और लोकगीत की सर्जना स्वतः हो जाती है।

"लोकसाहित्य वस्तुतः लोकमानस का ही समष्टि रूप-उद्गार है एवं लोकजीवन से सम्बद्ध उपकरण ही लोकतत्त्व हैं। साहित्य, जीवन की सृजनात्मक अभिव्यक्ति है, अतएव लोकजीवन के ये सभी तत्त्व भाव, विश्वास, रूढ़ि, विचार, पर्वोत्सव आदि लोकसाहित्य के भी उपजीव्य हैं। लोकसाहित्य में लोकजीवन के इन तत्त्वों ने अनेक रूपों में अभिव्यक्ति पायी है, जिसमें लोकगाथा, लोकवार्ता, लोकगीत, लोकनाट्य, लोकोक्ति आदि प्रमुख हैं।"

लोकगीत की वाणी में मस्तिष्क नहीं हृदय प्रधान होता है। मानव मन की स्वभाविक अभिव्यक्ति लोकगीतों में झलकती है। ये गीत अपने-आप उभरने वाले भावों की उमंग होते हैं। डॉ. प्रभात लोकगीत के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं- "लोकगीतों से तात्पर्य उन गेय रचनाओं से है, जो जनता की स्मृति के सहारे जीवित ही नहीं रही हैं, वरन् जिनमें अनेक अज्ञातनाम जनकवियों का आशु कवित्व भी मिल गया और जो लोक हृदय की सीधी अभिव्यक्ति है। लोकगीत एक दिन में नहीं बनते और सोलह आने निराधार भी नहीं होते। कभी-कभी तो उनके पीछे शताब्दियों की परम्परा रहती है। अतः लोकगीतों के साक्ष्य को हर दशा में पूर्णतः अप्रमाणिक अनुपयोगी कहकर उपेक्षित कर देना भी उचित नहीं है।"

जनजीवन की उल्लासमयी अभिव्यक्ति ही लोकसंगीत है। जनसाधारण द्वारा जो परम्परागत गीत गाये जाते हैं, उनकी गणना लोकगीतों के अन्तर्गत की जाती है। लोकसंगीतों को सहज संगीत भी कहा जा सकता है, क्योंकि यह केवल

अनुकरण मात्र से ही सीखा जा सकता है। इसमें किसी प्रकार का शास्त्रीय बन्धन न होने के कारण यह जनसाधारण के लिए सुलभ है। डॉ. लालमणि मिश्र के शब्दों में "प्राकृतिक संगीत ही लोकगीतों की परिभाषा है।"

दीनदयाल गुप्त का कहना है कि "लोकगीतों की कुछ विशेषताएँ भी मानी गई हैं। साहित्यिक साज-सज्जा से रहित जीवन के स्वाभाविक उद्गारों की सहज अभिव्यक्ति अनुश्रुति के रूप चलन, निर्माता के व्यक्तित्व का निरसन अथवा अज्ञात होना और सामूहिक रूप में निर्मित। पर ये विशेषताएँ पश्चिमी आलोचकों के उदाहरण स्वरूप मिले अपने यहाँ के लोकगीतों के आधार पर स्थिर की गयी हैं। वे सर्वकालीन और सार्वत्रिक नहीं मानी जा सकतीं। लोकगीतों के सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि काव्य रूढ़ियों का चलन परवर्ती है, इसके पूर्व भी जीवन की सहज अनुभूतियों को व्यक्त करने वाली कृतियाँ बनती रही हैं।"

हिंदी साहित्य कोश भाग-1 के अनुसार लोकगीत शब्द के ये अर्थ हो सकते हैं- 1. लोक में प्रचलित गीत, 2. लोकनिर्मित गीत, 3. लोकविषयक गीत। वस्तुतः लोकविषयक गीत शब्द का अर्थ इस प्रसंग में अभिप्रेत नहीं। लोकगीत लोक में प्रचलित गीत ही होता है, पर इस प्रचलन के दो अर्थ भी हो सकते हैं एक तो किसी समय विशेष मात्र में प्रचलित। ऐसा होता है कि कभी-कभी कोई गीत कुछ समय के लिए लोक में बहुत प्रचलित हो जाता है। यह प्रचलन अस्थायी होता है, कुछ समय उपरान्त वह समाप्त हो जाता है। ऐसे अत्यन्त अस्थायी गीत लोकगीत के अन्तर्गत नहीं आएँगे। दूसरे अर्थ में ऐसा प्रचलन आता है, जिसकी एक परम्परा बनती है, जो कुछ पीढ़ियों तक चलती जाती है, किन्तु ऐसे गीतों के भी दो प्रकार होते हैं। हमें आज भी तुलसी, सूर, कबीर के भजन परम्परा से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आते मिलते हैं। ये गीत भी यर्थाथतः लोकगीत की सीमा में नहीं आ सकते हैं। लोकगीत तो वह प्रकार है, जिसको ऐसे किसी व्यक्ति से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता, जिसकी मेधा लोकमानस की स्वाभाविक मेधा नहीं। जब ऐसा है तभी यह प्रश्न प्रस्तुत होता है कि तो क्या लोकगीत लोक द्वारा निर्मित होते हैं?

अभाववादी व्यक्ति यह मानेंगे कि लोक कोई ऐसी सत्ता नहीं जो गीत बना सके। लोक तो मनुष्यों का ही समूह है, उसमें से कोई एक व्यक्ति ही गीत बना सकता है। यह कथन सत्य अवश्य है, पर लोकगीत वस्तुतः वही हो सकता है, जिसमें रचयिता का निजी व्यक्तित्व नहीं होता। वह लोकमानस से तादात्म्य रखता है और ऐसी व्यक्तित्वहीन रचना करता है कि समस्त लोक का व्यक्तित्व ही उसमें उभरता है और लोक उसे अपनी चीज़ कहने लगता है। वह लोक का अपना गीत होता है, जो परम्परा में पड़ जाता है और परम्परा उसमें समय-समय पर अनुकूल परिवर्तन करती रहती है।

ऐसे लोकगीतों में एक ओर तो ऐसे गीत हो सकते हैं, जिनमें लोकवार्ता-तत्त्व समाविष्ट हो। ऐसे गीतों में भू-विज्ञान विद् के लिए बहुत सामग्री रहती है। दूसरी ओर ऐसे भी गीत लोकगीत होते हैं, जिनमें लोक अपने मनोरंजन के उपकरण जुटाता है। इन दोनों प्रकार के गीतों में लोकसंस्कृति के विविध चरण परिलक्षित होते हैं। एक ओर लोकगीत अपौरुषेय भी होते हैं, ऐसे गीत जिन्हें स्त्रियाँ भी गाती हैं। विविध अनुष्ठानों के अवसरों पर ये अपौरुषेय गीत गाए जाते हैं। दूसरी ओर केवल पुरुषों के गाने के भी गीत होते हैं। ये प्रायः लोकरंजक होते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर सामूहिक रूप में भी गाते हैं। बच्चों के गीतों में अद्‌भुत कल्पना का छटाक्षेप होता है अथवा शिक्षा होती है। बालिकाओं के गीत भी अलग मिलते हैं। ये गीत उनके खेलों से सम्बन्धित रहते हैं। जैसे प्रत्येक अनुष्ठान के साथ कोई-न-कोई गीत रहता ही है, वैसे ही ऋतुओं के अनुकूल भी गीत होते हैं। गीतों का सम्बन्ध मनुष्यों के कामों और गतियों से भी रहता है। चक्की पीसते समय, पैर चलाते समय कोई-न-कोई गीत गाया जाता है। गीत छोटे भी होते हैं और बड़े भी, इतने बड़े हो सकते हैं कि कई दिन उनके गाने में लगे। इन बड़े गीतों में प्रायः कोई लम्बी कथा दी रहती है। ऐसे गीतों के नाम उनके विषय के अनुरूप होते हैं और उनकी तर्ज़ भी बँध जाती है। 'ढाला' नामक गीत नल के पुत्र ढोला के नाम पर है और 'ढोला' गीत की एक तर्ज़ का भी नाम हो गया है, ऐसे ही 'आल्हा'। कुछ गीत किसी विशेष गायक वर्ग से सम्बन्धित होते हैं। यह वर्ग उन गीतों को गा-गाकर

अपनी आजीविका चलाते हैं। भोया 'भैरो' के गीत गा-गाकर भिक्षा एकत्र करते हैं। कुछ विशेष नाम वाले लोकगीत भी हैं, जैसे 'साके'। साकों में किसी वीर की गाथा रहती है। 'पँवारा' भी ऐसा ही होता है।

लोकगीत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लोकाभिव्यक्ति है। विदेशों में लोकगीतों का वैज्ञानिक अध्ययन बहुत आगे बढ़ गया है। भारत में तो अभी संग्रह का काम भी पुरावैज्ञानिक परिपाटी पर नहीं हो पाया है। उनकी लय, सुर, ताल चरण, टेक, प्रकृति और प्रत्येक के इतिहास या विज्ञान का अध्ययन तो आगे की बात है। लोकगीतों को भी अभी साहित्यिक अनुसंधान का विषय बनाया गया है। लोकवार्ता विज्ञान की दृष्टि से इनका अनुसंधान नहीं हो रहा है।

मीरा का युग भक्ति का युग था, उस समय के कवियों के काव्य में लोकतत्त्व का सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता है। मीरा के काव्य में लोकतत्त्व का समावेश होने के कारण वह जन-जीवन के अधिक निकट था। उन्होंने मानवीय अनुभूतियों को अपने पदों में व्यक्त किया है। मीरा का काव्य लोकप्रधान होने के कारण उसे भाषा, देश, काल और भाषा के नियमों के बंधन में बाँधना उचित नहीं है। लोकानुरूप काव्य की विकासशीलता का व्यापक प्रभाव अन्य कवियों की अपेक्षा मीरा के काव्य में अधिक पड़ा है। इसी सम्बन्ध में डॉ. नयनतारा तिवारी का मत है- "कवियों के लोकतात्त्विक अध्ययन की अन्तरिम कड़ी में मीरा का नाम भी कम उल्लेखनीय नहीं है। मध्ययुग में तत्कालीन समाज में नारी की जो दुर्दशा थी, उसका इतिहास साक्षी है। ऐसे ही, नारियों के साथ हुए अमानवीय पाश्विक वृत्तियों का विरोध मीरा ने किया है।"

मीरा ने मानवीय अनुभूतियों को समझा और अपने काव्य में व्यक्त किया है, इसीलिए उनका काव्यलोक जीवन और लोकगीतों में समा गया है। मीरा के पद भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न भाषाओं में गाए जाते हैं।

राजस्थानी

"जितना महान यह प्रान्त है और जितनी अधिक इसकी ख्याति है, उसी के अनुरूप अत्युन्नत और उच्चकोटि का इसका साहित्य भी है। वह साहित्य राजस्थानी भाषा में है, जो आर्य भाषा की एक प्रमुख शाखा है। इस समय यह लगभग सारे राजस्थान एवं मालवा प्रांत की भाषा है और मध्य प्रांत, सिन्ध तथा पंजाब के भी कुछ भागों में बोली जाती है। यह करीब दो करोड़ लोगों की भाषा है।"

"मीरा की भाषा, राजस्थान की तत्कालीन साहित्यिक भाषा न होकर जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त सीधी, सरल बोलचाल की भाषा का स्वरूप लिए हुए हैं। प्रसाद एवं माधुर्य गुणों से ओत-प्रोत होने के कारण तथा राग-रागनियों पर आधारित (गेय) होने के कारण ये राजस्थान की सीमा लाँघकर केवल राजस्थान की ही निधि न रहकर अन्य प्रान्तों की भी अमूल्य थाती बन गए।" मीरा के पदों की भाषा मूलतः राजस्थानी थी अतः उसमें राजस्थानी शब्दों का बाहुल्य सर्वथा स्वाभाविक है-

"म्हाँ सुण्याँ हरि अधम उधारण।
अधम उधारण भव तारण।
गज बूड़ताँ अरज सुण धाधाँ, भगताँ कष्ट निवारण।
द्रुपद सुता णो चीर बढ़ायाँ दुसासण मद मारणा।
प्रहलाद परतग्या राखेयाँ हरणाकुस णो उद्र विदारण।
थे रिखपतणी किरया पायाँ, विप्र सुदामॉ विपत विदारण।
मीरा ने प्रभु अरजी म्हारी अब अबेर कुण कारण।।"

इस पद में मीरा ने लोकमानस में उत्पन्न भक्ति-भावना का भी अपने भावों के माध्यम से वर्णन किया है। इसी प्रकार कृष्ण की माधुरी मूरत को मीरा ने मन में बसाया और उन पर सर्वस्व न्योछावर कर दिया। इस भाव को निम्न पद में राजस्थानी लोकभाषा का प्रयोग करते हुए व्यक्त किया-

"आली रे म्हारो णेणाँ बाण पड़ी।
चित्त चढ़ी म्हारे माधुरी मूरत, हिवड़ा अणी गड़ी।
कब री ठाढ़ी पंथ निहाराँ, अपने भवण खड़ी।
अटक्याँ प्राण साँवरो प्यारो, जीवण मूर जड़ी।
मीरा गिरधर हाथ बिकाणी, लोग कहयाँ बिगड़ी।।"

मीरा ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण को अलौकिक पति के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने कृष्ण का वरण अपने सपने में किया है। इसी भाव को उन्होंने अपने निम्न पद में

राजस्थानी लोकभाषा में व्यक्त किया है-

"माई म्हाणे सुपणाँ माँ परण्याँ दीनानाथ।
छप्पण कोटाँ जणाँ पधारयाँ दूल्हो सिरी ब्रजनाथ।
सुपणा माँ तोरण बाँध्या री सुपणा माँ गहयाँ हाथ।
मीराँ रे गिरधर मिल्या री, पुरब जणम रो भाग।।"

"मरु मंदाकिनी मीरा ने जो कुछ लिखा उसकी एक-एक पंक्ति में उनकी मनः स्थिति भक्ति-भावना का स्पन्दन है, जो अनायास ही भक्त का हृदय तरंगित कर देती है। मीरा में जो कुछ है- सहज है, स्वाभाविक है, प्रकृति-जन्य है, उसमें न बनावटीपन है, न कृत्रिमता। उनके हृदय की निर्मलता पुनीत भक्ति का स्पर्श पाकर विविध पदों में प्रकट हुई है।"

मीरा ने अपने पदों में वर्षा ऋतु का भी बहुत सुन्दर वर्णन किया है, जिनमें लोकमानस के भावों की भी अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है-

"नँद नँदन मण, भायाँ, बादलाँ णभ छायाँ।
इत घण गरजाँ उत घण लरजाँ चमकाँ बिज्जु डराया
उमड़ घुमड़ घण छायाँ पवन चल्याँ पुरवायाँ।
दादुर मोर पपीहा बोलाँ कोयतसबद सुणायाँ।
मीरा ने प्रभु गिरधर नागर चरण केवल चित्त लायाँ।।"

मीरा ने लोकगायन शैली होली का भी राजस्थानी भाषा में वर्णन किया है। होली गायन का प्रयोग मीरा ने अपने कई पदों में किया है, जिनमें सहज स्वाभाविक लोकभाषा का प्रयोग किया गया है-

"रंग भरी राग सूँ भरी री।
होली खेल्या स्याम संग रंग सू भरी री।
उड़त गुलाल लाल बदरा रो रंग लाल।
पिचकाँ उड़ावाँ रंग-रंग री झरी री।
चोवा चंदण अरगजा म्हा, केसर णो गागर भरी री।
मीराँ दासी गिरधर नागर, चेरी चरण धरी री।।"

गुजराती

मीरा ने राजस्थानी भाषा के समान ही गुजराती भाषा का भी प्रयोग किया है। अपनी तीर्थयात्रा के समय में उन्होंने कुछ समय द्वारिका में भी व्यतीत किया, जहाँ उनकी संगति साधु-संतों की रही तथा उन्हीं के साथ मिलकर मीरा ने कृष्ण-भक्ति के रस में डूबकर अनेक पद गाये और उन पदों में अपनी भावनाओं को व्यक्त कर जनमानस तक पहुँचाया। निम्नलिखित कृष्ण लीला सुन्दर पद में गुजराती लोकभाषा का प्रयोग देखने को मिलता है-

"नंद जी रे आजि बधावनो छै।
गहमद हुई रंग रावल मैं निराखे नैना सुख पावनो छै।
भाभी जी म्हे थासूँ पूछाँ आजिरो छोस सहावनो छै।
'मीरा' के प्रभु गिरधर जनमिया हुवो मनोरथ भावनो छै।।"

मीरा ने अपने पदों में कहीं-कहीं गुजरात और राजस्थान में प्रचलित तीज-त्योहारों का भी वर्णन किया है। बहुप्रचलित त्यौहार गणगौर का निम्न पद में मीरा ने वर्णन किया है-

"रे सावलिया म्हारे आज रंगीली गणगौर छै जी।
काली पीली बदली में चमके मेघ घटा घनघोर छै जी।
दादुर मोर पपीहा बोले कोयल कर रही सोर छै जी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरणॉ में म्हारो चोर छै जी।।"

गुजरात में रहकर कृष्ण की भक्ति में तल्लीन होकर मीरा ने अनेक पदों की रचना की, जिनमें वहाँ के लोकगीतों का प्रभाव भी हुआ-

"प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे मने लागी कढारी प्रेमनी रे।
जल जमुना माँ भखाँ गयाताँ हती गागर माथे हेमनी रे।
कोचे ने तातणे हरि जीए बाँधी, जेम खेंचे तेम तेमनी रे।
मीराँ ने प्रभु गिरधर नागर सामल सूरत शुभ एमनी रे।।"

गुजरात में प्रचलित गरबी गीतों का प्रयोग भी मीरा ने अपने पदों में किया है। मीरा की गरबी (मीरानी गरबी या गरबा गीत)- इस ग्रन्थ का उल्लेख श्रीकृष्ण लाल मोहनलाल झावेरी जी ने अपने इतिहास ग्रन्थ में किया है। इस ग्रन्थ को इन्होंने मीरा द्वारा रचित माना है। ये गरबा गीत गुजरात के लोकजीवन में बड़े प्रचलित हैं, जो लोकसाहित्य में विविध रूपों में उपलब्ध होते हैं। गुजराती लोकगीतों का एक प्रसिद्ध प्रकार, प्रथा, एक गुजराती लोकनृत्य की शैली एवं मिट्टी का वह पात्र जो देवी अम्बा की पूजा के लिए मंगल कलश के रूप में सजाकर प्रस्थापित किया जाता है और जिस पर चार ज्योतियाँ प्रज्वलित की जाती हैं। नवरात्रि में गरबापात्र स्थापित कर स्त्रियाँ उसके निकटस्थ परिक्रमा करती हुई गीत एवं नृत्य

का आयोजन करती हैं। इन्हीं नृत्य एवं गीतों को गर्वा की संज्ञा दी जाती है। इसका प्रारम्भ द्वारिका मंदिर से माना जाता है।

मीरा के समय में गरबी गीतों को 'राग गरबी' कहा जाता होगा, क्योंकि गरबी राग का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। मीरा की गरबी का उदाहरण इस प्रकार है-

"कहाँ गयो रे पेलो मोरली वाले, अपने रास रमाडी रे।
रास रमाड़वाने वनमाँ तेड्याँ, मोहनी मोरली सुणावी रे।
माता जसोदा शाख पुरावे, केषरी छाँट्याँ धोली रे।
हवणाँ वेण समारी सुती, पेहरी कसुंबल चोली रे।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चितचारी रे।"

इन गरबी गीतों के अतिरिक्त भी मीरा में गुजराती लोकशैली की झलक अन्य पदों में भी दृष्टिगोचर होती है-

"नहिं जाउँ रे जमुनाँ पाणीडाँ मारग माँ नंदलाल मले।
नंदजीनो रे वालो आण न माने काभणगोरा जोई चितहुँ चले।
अमे आहिरडाँ सथलाँ सुवालाँ कठण कामड़ो गल्यो।"

इस प्रकार मीरा के पदों में गुजराती भाषा और गुजरात में प्रचलित लोकगीतों का प्रभाव दिखाई देता है।

ब्रज

मीरा के काव्य में राजस्थानी गुजराती भाषा और लोकगीतों के प्रभाव के साथ-साथ ब्रज भाषा का भी प्रयोग किया गया है तथा पदों पर उस समय प्रचलित ब्रज के लोकसंगीत का भी प्रभाव पड़ा है। मीरा ने अपना सम्पूर्ण जीवन अपने आराध्य कृष्ण को समर्पित किया, उनके जीवन का उद्देश्य ही श्रीकृष्ण की उपासना करना हो गया है। उन्होंने विभिन्न तीर्थस्थलों की यात्रा भी की। उसी समय वृन्दावन में भी रहकर मीरा ने कृष्ण की आराधना की और भक्ति-भाव में डूबकर अनेक पदों की रचना की। भाव-विभोर होकर उनका गान किया तथा अपनी भावनाओं को जन-सामान्य तक पहुँचाया। ऐसे में उनके पदों में ब्रज भाषा का प्रयोग और वहाँ के लोकगीतों का प्रभाव स्वाभाविक रूप से हुआ। 'मीरा पदावली' में ब्रज भाषा के शब्दों में उससे प्रभावित शब्द रूपों का भी प्रयोग हुआ है, जो ब्रज की व्यापकता, उसके लालित्य एवं भक्ति के संदर्भ में उसकी सहज लोकप्रियता का ही द्योतक है। इसका एक कारण यह भी है कि मीरा प्रायः साधु-सन्तों के सम्पर्क में आती रहती थीं तथा उनका सत्संग-लाभ किया करती थीं। वे साधु-सन्तजन प्रायः देश के सभी भागों एवं विशेषतः कृष्ण के पावन लीला धाम ब्रजमण्डल से भी आते रहते थे। अतः उनके सान्निध्य में भजन-कीर्तन आदि करते रहने से उनकी शब्दावली का भी मीरा पर सहज प्रभाव पड़ा।

"भक्तिकाल में लोकसंगीत का प्रचलन ब्रज में बड़ी धूमधाम से हो चुका था। लोकसाहित्य या लोकसंगीत की रचना सामान्य रूप से जन-साधारण के लिए की जाती है। लोकगीतों के अन्तर्गत सावन के गीत, रसिया, होली, भजन, खेलकूद के गीत, परसोवला, पटका और ख्याल आदि गीत आते हैं।" इनके अतिरिक्त मथुरा वृंदावन में अन्य प्रकार के लोकगीत भी प्रचलित हैं- बारहमासी, सावन और होली गीतों का प्रचलन आज भी देखा जाता है। इस प्रकार के लोकगीतों का प्रभाव मीरा के पदों में भी देखने को मिलता है। निम्न पद में ब्रज की होली का वर्णन है, जिसमें कृष्ण गोपियों के साथ होली खेल रहे हैं-

"होरी खेलत है गिरधारी।
मुरली चंग बजत डफ न्यारी संग जुवति ब्रजनारी।
चन्दर केसर छिरकत मोहन अपने हाथ बिहारी।
भरि भरि मूठि गुलाल लाल चहुँ देत सबन पे डारी।
छैल छबीले नवल कान्ह संग स्यामा प्राण पियारी।
गवत चार धमार राग तँह, दै दै कर करतारी।
फागु जु खेलत रसिक साँवरो, बाढ्यो रस ब्रज भारी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर मोहनलाल बिहारी।"

मीरा के अधिकांश पदों का भाव भक्ति ही रहा है। इसी भाव को लेकर मीरा के निम्न पद में ब्रजभाषा का प्रयोग द्रष्टव्य है-

"यहि विधि भक्ति कैसे होय।
मय को मैल हियते न छूटी।
दिया तिलक सिर धोय।
तथा-
सखी री लाज बैरन भई।
श्रीलाल गोपाल के संग

काहे नाहीं गई।"

मीरा ने अपने काव्य में राजस्थानी, गुजराती और ब्रजभाषा के स्वतंत्र प्रयोग के साथ-साथ इनका मिश्रित प्रयोग भी किया है। निम्नलिखित पद में मीरा ने गुजराती भाषा और राजस्थानी भाषा का सुन्दर समन्वय किया है-

"नहि सुख भावैं थाँरो देसलड़ो, रँगरूड़ो।
थाँरे देसाँ में राणा साध नाहीं छै, लोग बसै सब कूड़ो।
गहणा गाँठी राणा हम सब त्याग्यों कर रो चूड़ो।
काजल टीको हम सब त्यागा, त्याग्यो छै बाँधन जूड़ो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बर पायो छै पूरो।"

मीरा के काव्य में राजस्थानी, गुजराती और ब्रजभाषा के अतिरिक्त कहीं-कहीं बिहारी और पंजाबी भाषा का भी प्रयोग किया गया है। मीरा की भावनाओं की तरह उनके काव्य की भाषा में भी कोई बन्धन नहीं रहा है। उन्होंने भावानुकूल शब्दों का प्रयोग कर अपने मनोभावों को व्यक्त किया है। उनके पद में बिहारी लोकभाषा का एक सुन्दर उदाहरण-

"माई मो कॉ मिलै मित गोपाल
नही जाऊँ सासुरे हो रामु, रहूं तेरे आसुरे हो रामु।
सासु हमारी सुखमना, ससुरा ते परम संतोष।
जेठ जुगत कर जानिए, मेरी पीव रहियो निरदोख।
नंद हमारी नाम है, देवर तु दीनदयाल।
कंत हमारी वही है जिन काटिआ जंजाल।
चूड़ियॉ पहिरो ने बारंबार।
बार-बार के पीहर ने मेरी करै लोक उपचार।
चार कुराट मेरे सासुरे बैकुंठ कियौ घरवास।
जोई सिमरै सोई उधरै जसु कहै 'मीरा' दासि।"

इस प्रकार मीरा के पदों में विभिन्न भाषाओं और लोकसंगीत का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस संबंध में नयनतारा तिवारी का विचार है- "लोकभाषा के प्रयोग से मीरा का काव्य सर्वसुलभ, सर्वग्राह्य और लोकप्रिय हो गया। भाषा प्रयोग का यह सामर्थ्य मीरा की काव्य-प्रतिभा में दिव्य वरदान को सिद्ध करता है। उन्होंने ब्रजभाषा की माधुरी को पूर्णतः सुरक्षित रखा है। जहाँ कहीं उन्होंने मारवाड़ी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है, वहाँ उन्होंने ब्रजभाषा की मूलभूत शब्द-सुषमा की सुरक्षा का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। इसी कारण वर्षोपरान्त भी मीरा का काव्य लोकमानस पर अपना आधिपत्य जमाये हुए है।"

nature.anurag@gmail.com
anuragsharma@nnm.ac.in

हिंदी भारत की राजभाषा से विश्वभाषा

डॉ. कुसुम कुमारी
मध्य प्रदेश, भारत

भारत विभिन्न संस्कृतियों का देश है। यहाँ की समन्वयकारी संस्कृति का अवदान यह है कि प्रारंभ से ही हिंदी पारस्परिक संपर्क, संवाद एवं संवेदनाओं के आदान-प्रदान की भाषा रही है। हिंदी भाषा की एक गौरवशाली परंपरा रही है, जो राष्ट्रीय विरासत एवं राष्ट्रीय ऐक्य को संरक्षित कर रही है। हिंदी भाषा की अपनी प्रकृति, स्वरूप एवं लिपि की वैज्ञानिकता के कारण ही इसके बोलने वालों का बहुसंख्यक अनुपात है। हिंदी भाषा अपने प्रकृतिगत माधुर्य व वैशिष्ट्य, सांस्कृतिक-संवेदनात्मक अभिव्यक्ति की सामर्थ्य, सौंदर्यबोध की अभिव्यंजना और राष्ट्रीय गरिमा के साथ ही ज्ञान-विज्ञान, तकनीकी-प्रौद्योगिकी, व्यवसाय-वाणिज्य एवं मीडिया के क्षेत्र में भी क्षमताओं से संपन्न हुई है। आज हिंदी अघोषित रूप से राष्ट्रभाषा बनकर विश्वभाषा की दहलीज़ पर आ गई है।

विश्वभाषा के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि यह वैश्विक स्तर पर हिंदी का वह रूप है, जिसे दूसरे भाषा-भाषियों द्वारा संपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त होता है एवं साहित्य-सृजनशीलता की सामर्थ्य रखता है और व्यवसाय-वाणिज्य के रूप में भी प्रतिस्थापित है। डॉ. शिव गोपाल मिश्र का मानना है -"विश्वभाषा का अर्थ है विश्व की अन्य भाषाओं के समकक्ष होना।" हिंदी की राजभाषा से विश्वभाषा तक की विकास-यात्रा की अपनी एक रोचक और संघर्षशील ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रही है। इसके विश्वपटल तक मंथर गति से पहुँचने एवं अधिसंख्यक लोगों द्वारा बोली जाने की रोचक एवं संघर्षशील गाथा को भक्तिकालीन संत कवियों के योगदान, स्वतंत्रता पूर्व हिंदी साहित्यकारों की भूमिका, स्वतंत्रता-आंदोलन में हिंदी की भूमिका, राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रचार, रामकथा एवं रामसंस्कृति के वैश्विक प्रभाव, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग, विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजन, विश्वस्तरीय सांस्कृतिक महोत्सवों और भारतीय उत्सवों के आयोजन आदि के आधार पर समझा और जाना जा सकता है।

मध्यकालीन उत्तर एवं दक्षिण भारत के संत कवियों द्वारा धर्म, भक्ति, अध्यात्म, दर्शन एवं सांस्कृतिक प्रचार-प्रसार का कार्य हिंदी भाषा में ही किया गया है। मध्यकाल में भक्तिधारा का प्रवाह आसाम व बंगाल से लेकर और गुजरात एवं दक्षिण से लेकर उत्तर तक प्रवाहित रही, जिसमें चैतन्य महाप्रभु, नरसी मेहता, शंकरदेव, संत ज्ञानेश्वर, नामदेव आदि ऐसे संत कवि थे, जो अपने भक्ति-रस को हिंदी भाषा के माध्यम से प्रवाहित कर रहे थे। वही उत्तर भारत में कबीर, तुलसी, सूरदास, मीराबाई, रहीम, रसखान के साथ ही जायसी, कुतुबन, मंझन जैसे सूफ़ी संत कवियों द्वारा अपने-अपने पंथ और मत को लेकर भक्ति भावनापूर्ण साहित्य समाज के सामने प्रस्तुत किया जा रहा था। सिख धर्म के प्रमुख संत गुरु नानक देव जी की भक्ति-रचनाओं को भी हिंदी भाषा में बढ़ाने की महती भूमिका थी। भाषाविद् राजमणि शर्मा का कथन याद आता है -" आदिकाल से ही संतों-महात्माओं, व्यापारियों, सैनिकों और तीर्थयात्रियों के द्वारा हिंदी समस्त भारत में व्याप्त होकर भारत की राष्ट्रीय आत्मा की अभिव्यक्ति में समर्थ हो चुकी थी।" इस कथन के आलोक में देखा जाए, तो संत कवियों की एक ऐसी सशक्त लंबी परंपरा थी, जो अपने धर्मग्रंथों के माध्यम से हिंदी को संपोषित कर रही थी। संत कवियों की इस परंपरा को उन्नीसवीं सदी के अंतिम दौर के समाज-सुधारकों एवं उनकी संस्थाओं ने आगे बढ़ाया है।

राजभाषा हिंदी को मार्ग पर प्रशस्त करने में स्वतंत्रता पूर्व के हिंदी साहित्यकारों की भी भूमिका अग्रगण्य और प्रभावी रही, इन्होंने बड़ी ही दूरदर्शिता से हिंदी भाषा के उन्नयन में सन्नध रह भाषा की अस्मिता को कायम रखा। भारत की आज़ादी के आंदोलन के दौर में राजनैतिक संकल्पनाओं को पूर्ण करने के साथ ही हिंदी भाषा के विकास के लिए भी

संस्थाएँ स्थापित हुईं, जो इस दिशा में सक्रियता से काम कर रही थीं, जिसमें नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, गुजरात विद्यापीठ, हिंदी प्रचार सभा, मद्रास आदि संस्थाएँ ईमानदारी के साथ अपनी भूमिका का निर्वाह कर रही थीं। 19वीं सदी के मध्यकाल तक आते-आते खड़ी बोली हिंदी साहित्य में प्रयोग होने लगा। इसी दौर में प्रेस के विकास एवं मुद्रण कला के आभिर्भाव ने भी हिंदी भाषा को राजभाषा बनने की दिशा में अग्रसर किया।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में हिंदी भाषा ने देश के आंदोलनकारियों, क्रांतिकारियों एवं अहिंदीभाषी क्षेत्र के राजनेताओं को एक सूत्र में बाँधा और प्रभावित किया। इस प्रभाव को हिंदी साहित्यकारों ने प्रखरता प्रदान की। हिंदी लेखकों ने अपनी कविताओं, कहानियों एवं अन्य कृतियों के माध्यम से जहाँ देशवासियों में हिंदी के प्रति प्रेम-भाव को प्रस्फुटित किया, वही जनता को जोड़ने और जागरूक करने का कार्य भी किया। उन्होंने हिंदी भाषा के माध्यम से देश की संस्कृति और गौरव का गुणगान कर बड़े पैमाने पर आम जनता को प्रेरित किया तथा जनता में स्वदेशी भाषा का भाव भरा। यहाँ भारतेंदु हरिश्चंद्र की इन पंक्तियों को उद्‌त करना उपयुक्त प्रतीत होता है-

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटे न हिय के शूल"।।

पुरुषोत्तम दास टंडन के विचार में "भाषा ही राष्ट्र का जीवन है।" स्वामी दयानंद का यह कथन है कि "हिंदी के द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।" इस प्रकार हिंदी भाषा को समूचे राष्ट्र के निर्माण की भाषा मानते हुए स्वतंत्रता संग्राम के दौर के लेखकों, समाज सुधारकों एवं जन-नायकों ने यह घोषित किया कि हिंदी ही राष्ट्रभाषा के रूप में राष्ट्रीय एकता को मज़बूत कर सकती है। इस दिशा में पहल करने वाले प्रमुख भाषाचिंतकों में राजर्षि टंडन, गांधी, विनोबा, सेठ गोविंद दास, संपूर्णानंद, डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद, राहुल सांकृत्यायन, माधवराव सप्रे, बाबू राव पाराणकर आदि का सार्थक प्रयास रहा। यही कारण है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में भाषा के प्रावधान के अंतर्गत हिंदी भाषा को राजभाषा का दर्जा मिला।

राजभाषा बनने के पश्चात् हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने और प्रचार-प्रसार के लिए विभिन्न समितियों का गठन करने के साथ ही शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्थाएँ और योजनाएँ लागू हुईं। राजभाषा हिंदी विभिन्न अवरोधों का सामना करते हुए मंथर गति से ही सही अपने विकास और फैलाव की ओर अग्रसर रही। नि:संदेह कहा जा सकता है कि राजभाषा हिंदी देश में संपर्क भाषा के साथ ही राष्ट्रभाषा का स्वरूप ग्रहण करने में सफल रही है।

हिंदी को वैश्विक धरातल पर पहुँचाने में रामकथा एवं रामसंस्कृति का योगदान भी रहा है। साहित्यकार शिवपूजन सहाय का यह कथन याद आता है कि "भारतेंदु और द्विवेदी ने हिंदी की जड़ें पाताल तक पहुँचा दी है कि उसे उखाड़ने का जो साहस करेगा, वह निश्चय ही भूकंप ध्वस्त होगा।" इस कथन के आलोक में देखा जाए, तो भारतीय साहित्यकारों ने हिंदी की जड़ों को मज़बूत करने का जो काम किया है, उसकी बुनियाद गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' पर टिकी हुई थी। पवित्र ग्रंथ रामचरितमानस ने आचार संहिता के रूप में राम संस्कृति, भारतीय संस्कार, मूल्यों एवं आदर्शों की संस्थापना के लिए अवधी भाषा के माध्यम से हिंदी को विश्वभाषा का अधिकार दिला दिया है। दक्षिण पूर्व एशिया के देशों और यूरोपीय एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के देशों में रामकथाओं एवं रामसंस्कृति के प्रचार-प्रसार के माध्यम से हिंदी भाषा पल्लवित एवं पुष्पित हुई है।

भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद ने भी हिंदी भाषा को वैश्विक जगत् में विश्वभाषा के रूप में प्रतिस्थापित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। हिंदी के विद्वान पुष्पपाल सिंह लिखते हैं कि "वस्तुत: भूमंडलीकरण मूलत: एक आर्थिक व्यवस्था के रूप में अस्तित्व में आया, किंतु इसके बाज़ारवादी पक्ष ने इसे सांस्कृतिक रूपांतरण की प्रक्रिया में डाल दिया।" स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि भूमंडलीकरण के दो पक्ष हैं - आर्थिक और सांस्कृतिक। विश्व जगत में उन्नीस सौ नब्बे के दशक में भूमंडलीकरण का नारा दिया गया। इसके विभिन्न

घटकों में बाज़ारवाद प्रमुख था। जैसे ही पूरे विश्व को एक गाँव के रूप में तब्दील करने का आर्थिक सिद्धांत स्थापित हुआ, वैसे ही विश्व बाज़ार में ज्ञान-विज्ञान, बौद्धिक संपदाओं और कला-संस्कृतियों के आदान-प्रदान में भी तेज़ी आई। एक प्रकार से संस्कृति का वैश्वीकरण हुआ। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए भारत का बड़ा बाज़ार अपने उत्पादों के खपत के लिए माकूल लगा। इन कंपनियों ने हिंदी भाषा के माध्यम से विज्ञापन एवं उत्पादों का प्रचार-प्रसार प्रारंभ किया। प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से हिंदी भाषा की उपयोगिता को विश्व बाज़ार में स्थापित किया गया। विश्वभाषा के रूप में हिंदी का यह मानक प्रतिफलित हुए दिखने लगा कि हिंदी भी व्यवसाय जगत् की एक सशक्त भाषा बन सकती है। फलत: राजभाषा हिंदी का विस्तार विश्वभाषा के रूप में तीव्र गति से होने लगा।

हिंदी का विश्वभाषा बनने का एक मानक यह भी है कि यह वैश्विक स्तर पर अधिक-से-अधिक लोगों के द्वारा बोली जाए, प्रयोग में लाई जाए एवं लोगों को जोड़े। विश्व में आज हिंदी बोलने वालों की भाषा के रूप में तीसरी बड़ी भाषा है। वर्तमान में विदेशों के लगभग 120 से अधिक विश्वविद्यालयों व संस्थाओं में हिंदी का पठन-पाठन इस बात का प्रमाण देता है कि हिंदी भावनात्मक भाषा के रूप में भी विश्व के देशों से जुड़ रही है, जिसमें रूस, अमेरिका, इंग्लैंड, इटली, चीन, जापान आदि देश प्रमुख हैं। दूसरी ओर इसके विकास की धारा विश्व के उन देशों में प्रवाहित हो रही है, जहाँ पर प्रवासी भारतीय एवं भारतवंशी व्यापक संख्या में निवास कर रहे हैं। उनके द्वारा भी हिंदी के रचना-संसार को विस्तार दिया जा रहा है। इन भारतवंशी देशों में मॉरीशस, फ़िजी, गयाना, सूरीनाम, थाईलैंड, नेपाल, श्रीलंका, मलेशिया आदि देश प्रमुख हैं।

किसी भी भाषा के विकास और विस्तार में सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थितियाँ एवं कारक जितने ही महत्त्वपूर्ण होते हैं, उतनी ही महत्ता तकनीकी और प्रौद्योगिकी की भी होती है। सूचना एवं प्रौद्योगिकी की नई प्रविधियाँ, नवाचारयुक्त कम्प्यूटर्स की नई तकनीक, विभिन्न प्रकार के नित नए सॉफ़्टवेयर का विकास, हिंदी सॉफ़्टवेयर की उपलब्धताएँ, इंटरनेट सेवाओं की अधुनातन प्रविधियाँ, विभिन्न सर्च-इंजनों के द्वारा प्राप्त सुगम पद्धतियाँ आदि ने राजभाषा हिंदी के प्रयोग को विस्तार देने के साथ ही शिक्षण-प्रशिक्षण की उपयोगिता को भी स्थापित किया है। दूसरी ओर वैश्विक परिदृश्य में विभिन्न मोर्चों पर हिंदी को विश्वभाषा के रूप में स्थापित होने के लिए प्रयोग की क्षमता, सामर्थ्य और उपयोगिता को भी बल दिया है। प्रौद्योगिकी विभाग के मौखिक साक्ष्य कार्यक्रम पर आधारित 31 अगस्त, 2006 की समीक्षा में यह स्पष्ट उल्लेख है कि "आज विदेशी कंपनियाँ भी भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर आधारित सॉफ़्टवेयर विकसित कर रही हैं, क्योंकि उन्हें यह समझ आ गया है कि भारतीयों की अपनी भाषा के द्वारा ही वे लोगों तक पहुँच बना सकती हैं। विश्व में आज इंटरनेट पर उपलब्ध गूगल एक बड़ा सर्च इंजन है। गूगल बखूबी यह समझता है कि भारत में वर्तमान की आवश्यकताओं को देखते हुए उनके लिए हिंदी को अपनाए बिना उनकी वाणिज्यिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती है।"

स्पष्टत: यह कहा जा सकता है कि इंटरनेट की अद्वितीय दुनिया में सॉफ़्टवेयर की बहुतायत एवं विविध सर्च-इंजनों की होड़ ने हिंदी को विश्वभाषा के रूप में पहचान दिलाई है। हिंदी में वेबसाइटों एवं सॉफ़्टवेयर्स के निर्माण की प्रक्रिया में चुनौतियों का सामना करते हुए भी हमारे विशेषज्ञ इस दिशा में सतत प्रयत्नशील रह कंप्यूटर के माध्यम से हिंदी के शिक्षण-प्रशिक्षण को बढ़ावा दे रहे हैं। मशीनी अनुवाद एवं यूनिकोड की व्यवस्था ने भी सभी लिपियों को समानता प्रदान की है, जो हिंदी भाषा के प्रयोग एवं व्यवहार को सक्षमता प्रदान कर रही है।

भारतवर्ष की लब्ध-प्रतिष्ठित भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थाओं के विशेषज्ञों द्वारा हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के लिए हिंदी में ऐसे सॉफ़्टवेयर को विकसित करने की पहल चल रही है, जिससे कि हिंदी विषय में तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी का अध्ययन-अध्यापन सरलता से हो सके। आई. आई. टी. द्वारा किए गए प्रयास शिक्षा के अन्य क्षेत्रों एवं संस्थाओं में अनुकरणीय एवं मान्य होंगे। परंपरागत उच्च शिक्षा संस्थाओं के दूरस्थ ग्राम्य क्षेत्रों के अत्यंत मेधावी छात्र कंप्यूटर तकनीकी

एवं अंग्रेज़ी ज्ञान न होने के कारण कुंठाग्रस्त हो जाते हैं। हिंदी भाषा में तकनीकी दृष्टि से विकासशील प्रक्रियाएँ निश्चय ही विश्व धरातल पर इसे ग्राह्यता प्रदान कर रही हैं और इनका भविष्य उज्ज्वल भी है।

पिछले 3 दशकों में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में विभिन्न प्रकार के नवाचारों का विकास हुआ है। यह विकास हिंदी भाषा को प्रभावित एवं विकसित कर वैश्विक पहचान दिला रहा है। नव इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की बात करें, तो सोशल मीडिया के विविध नए आयामों, मंचों एवं ऐप्स ने हिंदी भाषा के विकास को नए सोपान दिए हैं। वर्तमान में भारत के दूरस्थ ग्रामीण एवं कस्बाई क्षेत्रों में एंड्रॉयड के माध्यम से फ़ेसबुक, व्हाट्सऐप, इंस्टाग्राम, इंटरनेट ब्लॉग, यूट्यूब आदि का प्रयोग धड़ल्ले से हो रहा है। इतना ही नहीं लोग विश्व के देशों में रह रहे अपने प्रवासी साथियों से हिंदी भाषा में संवाद एवं विचार-विनिमय कर रहे हैं। सोशल मीडिया के अधिक प्रयोग ने हिंदी को विश्व पत्रकारिता के समकक्ष उतारने का प्रयास किया है। यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि प्रिंट मीडिया की बहुत-सी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाएँ भी वैश्विक जगत् में पाठकों की संख्या बढ़ा रही हैं।

कोरोना काल की महामारी के संकटकालीन दौर में जब प्रिंट मीडिया का प्रकाशन-वितरण ठप्प-सा था, तब ऐसे समय में सोशल मीडिया ने हताश वैश्विक मन को संवेदनात्मक लेप भी लगाया तथा भाषा के स्तर पर पूरे विश्व की मानवता को जोड़े रहा। यह तथ्य किसी से छुपा नहीं है कि कोविड काल में लोग वेब-मंचों के माध्यम से एक-दूसरे से जुड़े रहे एवं ऑनलाइन समस्त शैक्षिक गतिविधियों, संगोष्ठियों एवं वैचारिक विमर्श को गति प्रदान करते रहे। इस भयावह स्थिति में हिंदी ने अपनी भावनात्मक भूमिकाओं का निर्वाह वृहद् स्तर पर किया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि हिंदी भाषा ही नहीं संस्कार और विकास भी है।

वैश्विक स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों के बीच संस्कृतियों के आदान-प्रदान के लिए सांस्कृतिक उत्सवों, मेलों एवं फ़ेस्टिवल आदि का आयोजन किया जाता है। विश्वस्तरीय सांस्कृतिक आयोजनों में भारत के ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्र के कलाकारों द्वारा सहभागिता की जाती है। हमारे कलाकार विश्व के देशों में जाकर अपनी मूल भारतीय वेशभूषा, बोली-भाषा, शैली एवं संस्कारों से लोगों को प्रभावित करते हैं। राष्ट्रीय स्तर के ये आयोजन भी हिंदी को विश्वभाषा के रूप में पहचान दिला रहे हैं। पिछले दशकों में सोशल मीडिया ने भारत के परंपरागत तीज-त्योहारों और उत्सवों को समारोह के रूप में प्रस्तुत किया है। रक्षाबंधन, दशहरा, दीपावली, छठ पूजा आदि राष्ट्रीय पर्व के साथ ही अंतर्राष्ट्रीय पर्व की महत्ता पाते जा रहे हैं। परिणामत: इन त्योहारों की उत्सवधर्मिता से विदेशों में हमारी संस्कृति के प्रति आकर्षण बढ़ा है, इन आकर्षणों की अभिव्यक्ति का माध्यम राजभाषा हिंदी ही है।

विश्व-पटल पर राजभाषा हिंदी को पहचान दिलाने का सबसे बड़ा आयोजन विश्व हिंदी सम्मेलन है, जिसे भाषा का सर्वोत्कृष्ट सम्मेलन कहा जा सकता है। इसके प्रारंभ का उद्देश्य ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के प्रति जागरूकता और लोकप्रियता बढ़ाना था। हिंदी के विकास यात्रा का मूल्यांकन भी करना था। वास्तव में, इस सम्मेलन का प्रारंभ ही हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाए जाने का संकल्प था। 1975 में प्रारंभ हुए विश्व हिंदी सम्मेलनों की श्रृंखला बहुत लंबी व सुदीर्घ हो चुकी है, जिसने अपने साथ करोड़ों हिंदी भाषा-प्रेमियों, साहित्यकारों, विशेषज्ञों, प्रवासी भारतीयों एवं विदेशों के हिंदी प्रेमियों और हिंदी संस्थाओं को जोड़कर यह प्रमाणित किया है कि हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार एवं प्रयोग को वैश्विक पहचान मिल चुकी है। वह दिन दूर नहीं कि जब हिंदी भाषा विश्व में बोली जाने वालों की संख्या के आधार पर दूसरा स्थान प्राप्त कर लेगी।

10 जनवरी, 1975 को नागपुर से हिंदी को विश्वभाषा बनाने का जो शंखनाद हुआ, वह आज भी जारी है। हिंदी को विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास भारत सरकार द्वारा भी जारी है। मई, 2022 में संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को शामिल किए जाने के प्रस्ताव को स्वीकृति भी प्राप्त हो गई है। संयुक्त राष्ट्र महासभा में हिंदी को भी आधिकारिक भाषा के रूप में सम्मिलित किया जाना हिंदी के विश्वभाषा बनाने का प्रमाण है, पहचान है, अस्मिताबोध है और राष्ट्रीय गौरव है।

हमें भविष्य में भी राजभाषा हिंदी के गौरव एवं समृद्धि हेतु विभिन्न मोर्चों पर साथ मिलकर संकल्पित भाव से संघर्षरत रहना होगा, ताकि भारत की राष्ट्रीय एकता, अखंडता और संस्कृति अक्षुण्ण बनी रहे ।

drkusumsingh08@gmail.com

हिंदी और भारतीयता

डॉ. साकेत सहाय
पटना (बिहार), भारत

"हिंदी हैं हम वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा
यूनान ओ मिस्र ओ रूमा सब मिट गए जहाँ से
अब तक मगर है बाकी नाम-ओ-निशाँ हमारा
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौर-ए-ज़माँ हमारा।।"

कवि इकबाल की ये पंक्तियाँ बहुत कुछ कहती हैं। सही मायनों में भारत एवं भारतीयता की वजह से ही यह देश सदियों से विश्व पटल पर कायम है। वास्तव में, माटी और भाषा का अन्योन्याश्रित होने का संबंध है। भाषा या बोली किसी भी संस्कृति को पूर्णता प्रदान करती हैं। इस दृष्टि से यदि देखें, तो हिंदी बीते डेढ़ हज़ार सालों से भारतीय संस्कृति को पूर्णता प्रदान करती रही है। हिंदी ईसा पूर्व से ही पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रज, दक्खिनी, हिंदुस्तानी तथा आधुनिक हिंदी के रूप में भारत में परस्पर संचार, संवाद एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम रही है। कहा गया है, जो भाषा व्यापक रूप से प्रयोग में रहेगी, उसी का स्थान विश्व में सुनिश्चित होगा। इस दृष्टि से हिंदी की संभावनाएँ अनन्त हैं तथा हिंदी आने वाले कल की वैश्विक भाषा ज़रूर बनेगी। इसके पीछे संयोग भी है, परिस्थितियाँ भी हैं।

हिंदी की सरल प्रकृति और ग्राह्य-शक्ति यानि दूसरी भाषा के शब्दों को ग्रहण और स्वीकार करने की क्षमता ने इसे अन्य भाषाओं के मुकाबले विश्व में अधिक प्रचलित किया है। हिंदी का जन्म भारत में हुआ, लेकिन अब यह विश्व भाषा बनने की ओर अग्रसर है। राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार ने प्रसिद्ध हिंदी सेवी डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल के शोध प्रबंध को केन्द्रीय हिंदी संस्थान के परामर्श से मान्यता दी है। इस प्रकार भारत सरकार ने हिंदी को विश्व की सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषाओं में प्रथम स्थान पर मान लिया है। वास्तव में, यह सत्य है कि भारत की 90 प्रतिशत से अधिक की आबादी हिंदी से किसी-न-किसी रूप में अवश्य परिचित है और विश्व स्तर पर यह भारत तथा भारतीयता के बढ़ते प्रसार से दुनिया की शीर्ष भाषाओं में शामिल है।

आधुनिक युग में अर्थ, बाज़ार, कारोबार, संपर्क, कला, सिनेमा, साहित्य एवं मीडिया ने हिंदी की महत्ता को भली-भांति रेखांकित किया है। हिंदी ने अभी तक की यह यात्रा अपनी लोकप्रियता के बल पर हासिल की है। लोकसत्ता के बल पर हिंदी ने लोकमानस में राष्ट्रभाषा की स्वीकार्यता पाई है। देश के स्वाधीनता-संग्राम में हिंदी के अतुलनीय योगदान को भला कौन भूला सकता है।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि सत्ता व व्यापार की ताकत जिस भाषा के साथ रहती है, वहीं भाषा समृद्ध होती है। आज की हिंदी के ऊपर यह बात लागू होती है। कारण कि दिन-प्रतिदिन मज़बूत होती भारतीय अर्थव्यवस्था के साथ आज दुनिया के अधिकांश देश अपना संबंध बेहतर करना चाहते हैं और भारत को बेहतर तरीके से जानने–समझने के लिए भारत की राजभाषा, संपर्क भाषा, कला–संस्कृति, कारोबार एवं मनोरंजन की भाषा हिंदी को जानना-समझना अत्यावश्यक है। देश के आर्थिक विकास में हिंदी की उपयोगिता सराहनीय है। हिंदी में संवाद से कारोबार की तार्किक परिणति, जनता की भागीदारी, व्यवसाय एवं लाभार्जन की संभावनाएँ प्रकट होती है।

हिंदी देश के अधिकांश प्रांतों में बोली व समझी जाती है। दक्षिण व पूर्व के कुछेक प्रांतों में हिंदी के साथ क्षेत्रीय भाषा

का प्रयोग किया जाता है। चूँकि अधिकांश संगठन राष्ट्रीय परिदृश्य के अंतर्गत कार्य करते हैं, उनकी सोच, उत्पाद और रणनीति का भी एक राष्ट्रीय आधार होना ही चाहिए। इस राष्ट्रीयता की परिपुष्टि संगठन उस भाषा के प्रयोग द्वारा कर सकता है, जो बहुजन की भाषा हो। हिंदी भाषा के प्रयोग से व्यवसाय के नए-नए आयाम स्वत: प्रशस्त हो जाते हैं। भारतीय जन की अभिव्यक्ति यदि हिंदी में हो, तो यह देश के सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विस्तार को सकारात्मक स्वरूप प्रदान करेगी। हिंदी भाषा के प्रयोग द्वारा 135 करोड़ देशवासियों की आकांक्षाओं को पूरा किया जा सकता है।

कभी गौतम बुद्ध ने बेहतर जनसंचार के लिए संस्कृत को छोड़कर जनभाषा 'पाली' का प्रयोग किया, कभी जैनियों ने प्राकृत, अपभ्रंश चलाई। हिंदी आगे चलकर इन्हीं से बनी। बाद में भी तुर्क, मुगल एवं ब्रिटिशों के लंबे विदेशी शासन-काल में भले शासन की भाषा क्रमश: अरबी-फ़ारसी एवं अंग्रेज़ी रहीं, पर जनभाषा के रूप में हिंदी का ही प्रभुत्व रहा। हिंदी हमेशा से समन्वय की भाषा रही है। आधुनिक युग में भी हिंदी सिनेमा, साहित्य एवं मीडिया ने इसे भली-भांति रेखांकित किया है। यह स्पष्ट है कि जिस प्रकार से दो विभिन्न भाषाई प्रांतों के पड़ोसी परिवारों में मेल-जोल बढ़ने से एक-दूसरे की भाषा सीख लेते हैं, त्योहार और धर्म के बारे में जानने लगते हैं तथा खान-पान और पहनावे की पसंद-नापसंद को समझने लगते हैं। ठीक वैसे ही देशों के बीच नज़दीकियाँ और मेल-जोल बढ़ने की वजह से देशों की संस्कृतियों के बारे में जानने लगते हैं, जिसमें भाषा प्रमुख है। अन्य भाषाओं के मुकाबले हिंदी ने इस अवसर का भरपूर लाभ उठाया है। हिंदी ऐसी भाषा है, जो प्रत्येक भारतीय को वैश्विक स्तर पर सम्मान दिलाती है। आज हिंदी दुनिया में सबसे ज्यादा बोली एवं समझी जाने वाली भाषा के रूप में स्थापित है। हालाँकि कुछ आँकड़ों के मुताबिक इसे चीनी के बाद माना जाता है। यह हिंदी की लोकप्रियता का ही असर है कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी प्रथम समाचार सेवा वेबसाइट हिंदी में शुरू की, ताकि विश्व भर में फैले हुए भारतीयों तक पहुँचाया जा सके। गौरतलब है कि हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ की पहली गैर-अधिकृत एशियाई भाषा है, जिसे यह सम्मान मिला है।

हिंदी तमाम अतिरेकों के बीच विश्व भाषा बनने की ओर अग्रसर है। क्योंकि समाज, बाज़ार एवं संस्कृति की माँग के अनुसार भाषा विकसित होती रहती है। यह विरोध से नहीं, माँग से चलती है और कोई भी व्यवस्था इतने लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा के महत्त्व को अनदेखा नहीं कर सकता। चाहे व्यापारिक संदेश हो या राजनीतिक संवाद, सभी में हिंदी का प्रयोग ही अपरिहार्य है। यही कारण है कि हिंदी भारत की ताकत है। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन को संबोधित करते हुए मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम जी ने कहा था, "हिंदी भारत के लिए राष्ट्रभाषा है, लेकिन हमारे लिए यह अंतर्राष्ट्रीय भाषा है।" मॉरीशस के राष्ट्रपिता कहलाने वाले सर शिवसागर रामगुलाम जी की उपरोक्त उक्ति शब्दश: सही प्रतीत हो रही है।

गांधी जी ने कहा था कि अपने लोगों के दिलों तक हम वास्तव में अपनी ही भाषा के ज़रिए पहुँच सकते हैं। आज यह प्रत्येक भारतीय के लिए गर्व का विषय है कि दुनियाभर में अब हिंदी को जानने वालों की संख्या लगातार बढ़ रही है। हिंदी अखबारों की वेबसाइट्स ने करोड़ों नए हिंदी पाठकों को अपने साथ जोड़कर हिंदी को और समृद्ध बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अद्यतित आँकड़ों के मुताबिक भारत में हिंदी इंटरनेट पर अंग्रेज़ी से आगे है। बड़े पैमाने पर हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग ने देश में अंग्रेज़ी के प्रयोग को पछाड़ दिया है। आँकड़ों के मुताबिक हिंदी का उपयोग इंटरनेट पर 51 प्रतिशत लोगों द्वारा किया जा रहा है। भारत में 36 करोड़ इंटरनेट उपयोगकर्त्ता हैं। सर्च इंजन गूगल का मानना है कि हिंदी में इंटरनेट पर सामग्री पढ़ने वाले प्रतिवर्ष 94 फ़ीसदी बढ़ रही हैं, जबकि अंग्रेज़ी में यह दर हर साल 17 फ़ीसदी घट रही है। गूगल के अनुसार 2021 तक इंटरनेट पर 20.1 करोड़ लोग हिंदी का उपयोग करने लगेंगे। यह हिंदी के प्रचार-प्रसार और वैश्विक स्वीकार्यता का ही परिणाम है कि आज हिंदी अपनी तमाम प्रतिद्वंद्वियों को पीछे छोड़कर लोकप्रियता का आसमान छू रही है।

आज दुनिया के 200 विश्वविद्यालयों में हिंदी विषय के

रूप में पढ़ाई जाती है। अमेरिका के ही 30 से भी ज्यादा विश्वविद्यालयों में भाषायी पाठ्यक्रमों में हिंदी को महत्त्वपूर्ण दर्जा मिला हुआ है। दक्षिण प्रशान्त महासागर के देश फ़िजी में तो हिंदी को राजभाषा का आधिकारिक दर्जा मिला हुआ है। फ़िजी में इसे 'फ़िजियन हिंदी' अथवा 'फ़िजियन हिन्दस्तानी' भी कहा जाता है, जो अवधी, भोजपुरी और अन्य बोलियों का मिला-जुला रूप है।

विदेशों में हिंदी प्रसार की शुरुआत औपनिवेशिक काल में ही हो गई थी, जब ब्रिटिश हुकूमत द्वारा चीनी और चाय बागानों में काम करने के लिए बहुत से भारतीय कामगारों को अलग-अलग उपनिवेशों पर ले जाया गया। एक अनुमान के मुताबिक 1833 ई. से लेकर 1920 ई. तक तकरीबन 35 लाख भारतीय श्रमिक विभिन्न उपनिवेशों में कार्य करने के लिए ले जाए गए। उल्लेखनीय है कि इन देशों में रहने वाले भारतीय मूल के लोगों की न केवल भाषा हिंदी है, बल्कि रीति-रिवाज़ और संस्कृति भी भारतीय है, जो हिंदी की जड़ों को और भी गहराई प्रदान करते हैं। विश्व भर में हिंदी की बढ़ती स्वीकार्यता का ही असर है कि ऑक्सफ़ोर्ड शब्दकोश में प्रत्येक वर्ष हिंदी के चर्चित शब्दों को शामिल किया जाता है। यहाँ तक कि 'संविधान' एवं पंथ निरपेक्षता जैसे कठिन शब्द भी इसमें शामिल है। इसके पूर्व भी कई हिंदी के शब्दों का यथा 'चना' और 'चना-दाल', 'अइयो', 'भेलपूरी', 'चटनी', 'मसाला', 'ढाबा', 'चूड़ीदार', 'अच्छा', 'बड़ा दिन', 'बच्चा' और 'सूर्य-नमस्कार' आदि को सम्मिलित किया गया है। एशियाई देशों में अपनी व्यापारिक गतिविधियों को बढ़ाने के लिए अब बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भी हिंदी के प्रचार-प्रसार पर खास ध्यान देने लगी हैं। हमें समझना होगा कि भाषा का बहुत बड़ा बाज़ार होता है, जिसमें सिर्फ़ किताबें और उपन्यास ही नहीं, उद्योग, कला, विज्ञापन, अखबार, टीवी कार्यक्रम, फ़िल्में, पर्यटन, संस्कृति, धर्म, खान-पान, रहन-सहन, विचारधारा, आंदोलन और राजनीति भी शामिल हैं। भारतीय बाज़ार में अपना माल बेचने की मजबूरी ने दूसरे देशों को हिंदी सीखने पर मजबूर कर दिया है। सिर्फ़ उत्पाद ही नहीं भारत में सेवा क्षेत्र की विदेशी कंपनियाँ ग्राहक संतुष्टि के लिए हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से सेवाएँ प्रदान कर रही हैं। हिंदी फ़िल्में और हिंदी धारावाहिक अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में बड़े पैमाने पर देखे जा रहे हैं।

भारत दुनिया का सबसे बड़ी आबादी वाला देश है और इस लिहाज़ से दुनिया का सबसे बड़ा उपभोक्ता बाज़ार भी है, अतएव बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ इतने बड़े उपभोक्ता बाज़ार को नज़रंदाज़ नहीं कर सकती हैं। प्रभावी विपणन में विज्ञापन की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। विज्ञापन तभी प्रभावी होगा, जब वह उपभोक्ता की भाषा में हो। इसे हम विभिन्न विज्ञापनों के माध्यम से देख सकते हैं। ब्रिटेन के राजदूत भारत आने पर हिंदी में संदेश देते हैं। पोलैंड के राजदूत ने अपने भारत आगमन पर हिंदी में सन्देश जारी करते हैं। तमाम विदेशी प्रमुखों के अब ट्वीट भी हिंदी में जारी होते हैं। इस प्रकार विदेशियों के लिए हिंदी ही भारत की पहचान है।

जब कोई भाषा किसी देश, काल, स्थान विशेष की संस्कृति की समझ के साथ सीखी जाती है, तब उसकी छाप हमेशा गहरी होती है। हिंदी के साथ भी ऐसा है। लोग देश, काल, समाज आदि से रू-ब-रू होने के लिए भी विभिन्न देशों की भाषा सीखते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी और संचार-क्षेत्र में हुए विकास का प्रभाव हिंदी के विकास पर भी पड़ा है। एक प्रकार से संचार-क्रांति ने भी हिंदी को विदेशों में प्रसारित करने का कार्य किया है। विदेशों में बसे भारतीय जाने-अनजाने अपने आस-पास हिंदी के बीज बोते रहते हैं। हिंदी वैश्विक मंच पर प्रमुखता से उपस्थित है। इसके बहुत से कारण हैं, जैसे भारत की आर्थिक शक्ति, भारतवंशियों की मज़बूत आवाज़, सूचना प्रौद्योगिकी, हिंदी सिनेमा इत्यादि। हिंदी भाषा एवं इसकी लिपि का वैज्ञानिक होना भी महत्त्वपूर्ण कारण है। विश्व के लगभग एक सौ पचास से अधिक देशों में भारतवंशी निवास करते हैं। उनमें से अधिकांश ऐसे हैं, जो मातृभाषा या दूसरी भाषा के रूप में हिंदी जानते हैं। हालाँकि तीसरी पीढ़ी का हिंदी से उस हद तक प्रेम न करना हमें सचेत करता है।

हिंदी की प्रमुख विशेषता है कि वह अपने को समय के अनुरूप ढाल लेती है। सहजता, सरलता और वैज्ञानिकता से परिपूर्ण भाषा की यही विशेषता होती है। इन्हीं गुणों के

कारण विश्व बाज़ार में हिंदी का अपना बाज़ार मूल्य है। यही कारण है कि सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सूचना जगत् में हिंदी की विशिष्ट पहचान है। पिछले कुछ वर्षों में हिंदी शब्द-संपदा का जितना विस्तार हुआ है, उतना विश्व की शायद ही किसी भाषा का हुआ हो। आज हिंदी विश्व की सबसे समृद्ध भाषाओं में मानी जाती है। "अंग्रेज़ी जिसे महत्त्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय भाषा का गौरव प्राप्त है, उसके मूल में शब्द जहाँ मात्र दस हज़ार हैं, वहाँ हिंदी में बीस लाख से भी अधिक शब्द हैं। इसमें संस्कृत और हिंदी की विभिन्न बोलियों के शब्द हैं। हिंदी शब्द-ग्रहण करने के मामले में बेहद उदार है। हिंदी की सबसे बड़ी ताकत है इसका राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा, जनभाषा के रूप में विभिन्न जन-समूहों के बीच मज़बूत उपस्थिति। जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है, वे भी मूल हिंदी भाषियों की तरह ही प्रयोग में लाते हैं। हिंदी के माध्यम से भारतीयता का विस्तार हो रहा है। हिंदी बोलकर प्रत्येक नागरिक स्वयं को भारतीयता के करीब महसूस करता है।

हिंदी की ताकत इसलिए भी अधिक है, क्योंकि आज विश्व का प्रत्येक छठा व्यक्ति भारतीय है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को हिंदी के व्यावहारिक महत्त्व का बोध हो गया है। आज विकसित देशों में हिंदी को लेकर ललक बढ़ी है। इसका प्रमुख कारण है कि किसी भी बहुराष्ट्रीय कंपनी या देश को अपना उत्पाद बेचने के लिए आम आदमी तक पहुँचना होगा और इसके लिए जनभाषा हिंदी ही सबसे सशक्त माध्यम है। आज बाज़ार के छोटे-बड़े तमाम उत्पादों का विज्ञापन हिंदी में देख सकते हैं। संसार में हिंदी भाषी लोगों का एक बड़ा बाज़ार उपलब्ध है। हिंदी में विज्ञापन के बहाने विश्व में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार भी हो रहा है।

हिंदी विश्व में अपना परचम लहराए, इसके लिए ज़रूरी नहीं कि सारा ध्यान इसके प्रचार-प्रसार पर केंद्रित कर दिया जाए। प्रचार-प्रसार से कहीं ज्यादा आवश्यक है कि भारत को एक ऐसा सशक्त राष्ट्र बनाया जाए कि उसकी हर चीज़ की दुनिया में पूछ हो। चाहे वह भाषा ही क्यों न हो। क्योंकि दुनिया में उसी का सिक्का चलता है, जो हर तरह से ताकतवर होता है। चाहे आर्थिक हो या सामरिक, बौद्धिक हो या वैचारिक, वैज्ञानिक हो या सांस्कृतिक हर मोर्चे पर हमें अपने देश को नई बुलंदियों तक पहुँचाना होगा और जब ऐसा होगा, तब वह हमारी हिंदी के लिए स्वर्णकाल होगा। विपणन का प्रमुख नियम है, वस्तु और सेवा की माँग पैदा करना। वैश्वीकरण के इस युग में हिंदी का व्यापक प्रसार तभी संभव है, जब हम देश और विदेश में उसकी माँग पैदा कर सकें। माँग तभी पैदा होगी, जब हम दुनिया को उसकी उपयोगिता का अहसास करा सकें। भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा उपभोक्ता बाज़ार हैं, इसलिए लोग भारत की भाषा सीख रहे हैं। पर इससे बढ़कर ज्यादा अच्छा यह होगा कि भारत आधारभूत सुविधाओं का इतना विकास कर लें और वस्तुओं, सेवाओं, प्रौद्योगिकी आदि की गुणवत्ता तथा प्रतिस्पर्धी कीमत का ऐसा मुकाम हासिल कर लें कि उसकी वस्तुओं की चाहत और रोज़गार की तलाश में दुनिया उसके पास चलकर आए और उसकी भाषा सीखे।

हिंदी के महान् साहित्यकार डॉ. राही मासूम रजा द्वारा कलमबद्ध किया गया एक प्रसिद्ध गीत है-'हम तो है परदेश में, देश में निकला होगा चाँद', जिसे स्वर्गीय जगजीत सिंह ने स्वरबद्ध किया था। इस प्रसिद्ध गीत का भाव-बोध मिट्टी, भाषा और संस्कृति से प्रेम पर आधारित है। हिंदी भारतीयता के इसी भाव बोध को आवाज़ देती है। हम सभी अपनी भाषा-संस्कृति से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। बिना इसके मानव का अस्तित्व नहीं है। हिंदी केवल भाषा मात्र नहीं, बल्कि करोड़ों भारतीयों के लिए भारतीयता की पहचान है। हिंदी भारत भूमि के साथ ही विश्व पटल पर भारतीयता की सशक्त आवाज़ के रूप में स्थापित है। परंतु, इसे और अधिक सशक्त करने के लिए यह ज़रूरी है कि दुनिया के अन्य देशों की प्रमुख भाषा की भाँति हिंदी देश के साथ ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध समस्त ज्ञान-विज्ञान के साहित्य और साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों को अन्य लोगों तक पहुँचाने का सफल माध्यम बने।

हिंदी भाषा की जीवंतता को बनाए रखना बेहद ज़रूरी है। इसी जीवंतता के बल पर यह पूरी दुनिया में उपस्थित है। छठे विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर जारी अपने संदेश में

तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कहा था- ''हिंदी हमें स्वत्व से जोड़ती है, भारतीयता की ओर मोड़ती है और संकीर्णता को तोड़ती है। भारत का साहित्य, संगीत, सभ्यता और संस्कार अपनी भाषा में ही परिचित हुआ है। भारत की सभी भाषाएँ, भारतमाता के आँगन की फुलवारी के समान है और संविधान द्वारा घोषित राजभाषा होने के नाते हिंदी के पुरोधाओं पर यह दायित्व है कि वे इस फुलवारी को भी सींचें तथा हिंदी को भारत की सर्वमान्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में सहायक वातावरण बनाएँ।''

यह तर्कपूर्ण सत्य है कि हिंदी राष्ट्रभाषा थी, इसीलिए ब्रिटिश भारत से आधुनिक स्वतंत्र भारत बनने के क्रम में संवैधानिक रूप से राजभाषा के पद पर हिंदी आसीन हुई। राष्ट्रभाषा ही राजभाषा के पद पर आसीन होती है। अतः यह कुतर्क लगता है कि हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं है। भारत के संविधान निर्माताओं ने भारत की प्रमुख भाषा को राजभाषा का दर्जा दिया। हमारे संविधान निर्माताओं ने भी हिंदी को स्वयमेव राजभाषा, राष्ट्रभाषा के रूप में अंगीकार किया। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 351 एक सशक्त, समर्थ समावेशी हिंदी की बात करता है।

हिंदी केवल एक भाषा-मात्र नहीं है, वरन् यह सभी भारतीय भाषाओं, बोलियों का 'क्रियोलाइज़ेशन' है। इससे सभी भारतीय प्रेम करते हैं। यह राजनीति, संस्कृति, समाज और लोक की भाषा है। इसीलिए यह लोकभाषा, संस्कृति की भाषा, संपर्क की भाषा और राष्ट्रभाषा से होते हुए राजभाषा के पद पर आसीन हुई और अब संचार की भाषा से तकनीक की भाषा के रूप में परिवर्तित होकर विश्व भाषा के रूप में उपस्थित है। हिंदी के लिए यह सुखद भविष्य का संकेत है कि दिन-प्रतिदिन मज़बूत होती भारतीय अर्थव्यवस्था के साथ आज दुनिया के अधिकांश देश भारत के साथ संबंध बेहतर करना चाहते हैं और भारत को बेहतर तरीके से जानने–समझने के लिए भारत की राजभाषा, संपर्क भाषा, कला–संस्कृति, मनोरंजन की भाषा हिंदी को अपना रहे हैं। विश्व भर में हिंदी पर विशेष चर्चा हो रही है। हिंदी को लेकर बहुत सारी संभावनाएँ भी तलाशी जा रही हैं। दुनिया भर में भारतीयों की सशक्त उपस्थिति इसमें योगदान कर रही है। हिंदी को लेकर यह कहा जा सकता है कि हिंदी का सूर्य कभी अस्त नहीं होगा।

आने वाले समय में हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनेगी, पर हिंदी की सशक्त पहचान हेतु यह ज्यादा ज़रूरी है कि हम पहले इसे आंतरिक स्तर पर अपनी पहचान के रूप में स्थापित करें। हिंदी को हम सभी ज्ञान-विज्ञान की भाषा के रूप में अपनाएँ। भाषाएँ समाज की जीवंतता के लिए प्राणतत्त्व है। भारत के संदर्भ में यह प्राणतत्त्व हिंदी है। इसे हम सभी अपने दैनिक जीवन में महसूस कर सकते हैं, पर यह ज़रूरी है कि इसे वह स्थान दिलाएँ, जिसकी वह अधिकारिणी है। इसके लिए हम सभी को महान् स्वतंत्रता सेनानी, विचारक एवं हिंदी के महान् लेखक रामवृक्ष बेनीपुरी जी की इन पंक्तियों के मर्म को समझना होगा एवं विचार कर इसे अपनाना होगा।

"ज़बान अपनी
बोलता कोई और है
दिमाग अपना,
किंतु सोचता कोई और है।"

हिंदी की सशक्त पहचान के लिए यह ज़रूरी है कि महात्मा गांधी की इन पंक्तियों पर हम सब ज़रूर विचार करें 'क्या कोई व्यक्ति स्वप्न में भी यह सोच सकता है कि अंग्रेज़ी भविष्य में किसी दिन भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है? फिर राष्ट्र के पाँवों में यह बेड़ी किस लिए? (महात्मा गांधी, भाषण-बनारस हिन्द विश्वविद्यालय में 06 फ़रवरी, 1916)

यह हमारे साथ कितना बड़ा अन्याय है, हम कैसे ही चरित्रवान हों, कितने ही बुद्धिमान हो, कितने ही विचारशील हों, पर अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान न होने से उनका कुछ मूल्य नहीं। हमसे अधम और कौन होगा कि इस अन्याय को चुपचाप सहते हैं, नहीं बल्कि इस पर गर्व करते हैं। (प्रेमचंद, सेवासदन, परिच्छेद-46)

आइए आज़ादी के अमृत वर्ष पर हम सभी भारतवंशी कवि सुमित्रानंदन पंत की इन पंक्तियों पर विचार करें –

आकाश-बेल अंग्रेज़ी छाई, जन मन पादप पर

जीवन-विकास-क्रम जिससे कुंठित हो रहा निरंतर।
इस पीढ़ी के मस्तक से कब छूटेगा यह लाँछन !

इतिहास पुकार कर कहेगा जन-घातक नेतागण !

hindisewi@gmail.com

एंड्रॉयड फ़ोन पर हिंदी के लोकप्रिय ऐप्स

डॉ. राकेश शर्मा
गोवा, भारत

एंड्रॉयड की लोकप्रियता का अंदाज़ा आप इस बात से लगा सकते हैं कि आज स्मार्टफ़ोन के करीब 80 फ़ीसदी बाज़ार पर इसी का कब्ज़ा है, यानि हर पाँच में से चार स्मार्टफ़ोन, एंड्रॉयड ऑपरेटिंग सिस्टम पर चल रहा है। हर दिन 15 लाख से ज्यादा लोग नया एंड्रॉयड डिवाइस खरीद रहे हैं। इसी साल एंड्रॉयड, एक ऐसे आंकड़े को छू लेगा, जिसके आसपास पहुँचना किसी भी कंपनी के लिए एक सपना होता है। सन् 2014 में एंड्रॉयड का प्रयोग करने वालों की संख्या एक बिलियन पार कर गई है।

बाज़ार में आने वाला पहला एंड्रॉयड फ़ोन एचटीसी ड्रीम था, जिसे 22 अक्टूबर, 2008 को लॉन्च किया गया था। आज एंड्रॉयड सॉफ़्टवेयर का मालिक गूगल है, लेकिन इसकी खोज गूगल ने नहीं की थी। 'एंड्रॉयड इन्क' कंपनी की स्थापना एंडी रूबिन ने कुछ लोगों के साथ मिलकर 2003 में की थी, लेकिन बाद में कंपनी की हालत खराब हो गई। तभी गूगल की नज़र इस कंपनी पर पड़ी, जो स्मार्ट फ़ोन्स के लिए एक नए तरह का सॉफ़्टवेयर बनाने में जुटी थी। सन् 2005 में गूगल ने 'एंड्रॉयड इन्क' को खरीद लिया ।

मोबाइल ऐप (App) क्या है ?

मोबाइल ऐप (Mobile Application) एक सॉफ़्टवेयर होता है, जिसे मोबाइल डिवाइस – स्मार्टफ़ोन, टैबलेट, पीसी, आई.फ़ोन आदि के लिए विकसित किया जाता है। यह कंप्यूटर वर्शन का एक छोटा रूप होता है, जिसे खासतौर पर स्मार्टफ़ोन यूज़र्स के लिए डिज़ाईन एवं विकसित किया जाता है और इसका मुख्य उद्देश्य प्रयोगकर्त्ता की उत्पादकता बढ़ाना, विशेष सुविधाएँ प्रदान करना तथा आसान वितरण करना है, क्योंकि कंप्यूटर की तुलना में मोबाइल डिवाइस तक पहुँच ज्यादा सुलभ है।

मोबाइल ऐप के विभिन्न प्रकार –

मोबाइल ऐप को इनकी उपयोगिता क्षमता के अनुसार मुख्यत: तीन प्रकार में बाँट सकते हैं।

नेटिव एप्स (Native Apps)

हाइब्रिड Hybrid Apps

वेब-बेस्ड ऐप्स Web-Based Apps

नेटिव ऐप्स : इन ऐप्स को केवल किसी एक ऑपरेटिंग सिस्टम अथवा डिवाइस के लिए विकसित किया जाता है। जैसे, iPhone के लिए विकसित ऐप केवल आई फ़ोन में ही रन हो सकते हैं, इन्हें अन्य स्मार्टफ़ोन में नहीं चलाया जा सकता है, अर्थात् ये अन्य डिवाइसों के लिए नहीं होते हैं। ये एप्स काफ़ी तेज़ होते हैं और प्रयोगकर्त्ता को गुणवत्ता के साथ बेहतर यूज़र एक्सपिरियंस देते हैं।

हाइब्रिड : इसके नाम से ही स्पष्ट है कि ये ऐप्स एक से ज्यादा मोबाइल प्लेटफ़ॉर्म्स/डिवाइस के लिए विकसित किए जाते हैं। ये ऐप्स वेब-आधारित तकनीक का प्रयोग करके बनाए जाते हैं और एक ही कोड को मल्टी डिवाइस के लिए विकसित किया जाता है। यानि एक ऐप आईफ़ोन में भी चल सकता है और दूसरे डिवाइस में भी चल सकता है।

वेब-बेस्ड ऐप्स : इन ऐप्स को HTML, CSS तथा JavaScript तकनीक के इस्तेमाल से बनाया जाता है। इनका आकार बहुत हल्का होता है, मगर इनकी परफ़ोर्मेंस नेटिव ऐप्स की तुलना में कमतर होती है। मगर इन्हें आप वेब ब्राउज़र की सहायता से ही एक्सेस कर पाते हैं।

मोबाइल एप्स की विशेषताएँ

कंप्यूटर प्रोग्राम के द्वारा होने वाले कार्य आप मोबाइल

डिवाइस से कर पाते हैं, यहीं मोबाइल ऐप की सबसे बड़ी खूबी होती है और इसी प्रकार की अन्य विशेषताओं के कारण ही मोबाइल ऐप यूज़र के बीच लोकप्रिय हैं।

आसान उपयोग : मोबाइल ऐप्स को चलाना कंप्यूटर प्रोग्राम की तुलना में आसान होता है, क्योंकि इन्हें विकसित करने के लिए **ग्राफ़िकल यूज़र इंटरफ़ेस** (GUI) का उपयोग किया जाता है, जिसका टचस्क्रीन के साथ अच्छा तालमेल बैठता है। इसलिए एक सामान्य यूज़र भी इन्हें आसानी से चला लेता है।

खास फ़ीचर : कंप्यूटर प्रोग्राम की तुलना में मोबाइल एप्स में कुछ विशेष अतिरिक्त फ़ीचर भी उपलब्ध करवाए जाते हैं, जैसे- वॉइस कमांड।

छोटा आकार : मोबाइल ऐप्स का साईज़ बहुत छोटा है, इसलिए स्मार्टफ़ोन में कम मेमोरी होने के बावजूद भी इन्हें चलाने में कोई परेशानी नहीं आती है।

आसान उपलब्धता : कंप्यूटर प्रोग्राम की तुलना में मोबाइल ऐप ज्यादा आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं, क्योंकि इन्हें मोबाइल सेवा प्रदाता द्वारा ऐप स्टोर के माध्यम से उपलब्ध करवाया जाता है। जहाँ से सुरक्षित तरीके से इन ऐप्स को डाउनलोड करके इस्तेमाल किया जा सकता है।

ज्यादा सुरक्षित : इन्हें ऐप स्टोर के माध्यम से उपलब्ध करवाया है। इसलिए मोबाइल ऐप कंप्यूटर सॉफ़्टवेयर की तुलना में ज्यादा सुरक्षित एवं विश्वसनीय होते हैं, क्योंकि ऐप स्टोर निर्माता अपनी तरफ़ से पहले ही सभी आवश्यक सुरक्षा प्रावधानों के बाद ही ऐप्स को ऐप स्टोर में लिस्टिंग करवाता है।

ज्यादा तेज़ : मोबाइल ऐप की कार्य-क्षमता भी ज्यादा तेज़ होती है।

हिंदी में काम करने, भाषा-प्रशिक्षण, अनुवाद, टंकण आदि के लिए प्लेस्टोर पर उपलब्ध हिंदी के ऐप्स को निम्नलिखित प्रकारों के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है - *हिंदी में टंकण हेतु उपलब्ध ऐप, राजभाषा विभाग द्वारा विकसित ऐप, अनुवाद हेतु उपलब्ध ऐप, शब्दकोश हेतु ऐप, सूचना एवं समाचारों हेतु उपलब्ध ऐप, हिंदी में उपलब्ध सोशल मीडिया ऐप, हिंदी साहित्य हेतु उपलब्ध उत्कृष्ट ऐप, हिंदी की ऑडियो बुक्स कर रूप में उपलब्ध ऐप, राजभाषा हिंदी हेतु समर्पित अन्य ऐप।*

एंड्राइड फ़ोन पर उपलब्ध कुछ महत्त्वपूर्ण हिंदी भाषा से संबंधित ऐप पर यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

गूगल की-बोर्ड या जी-बोर्ड (GBoard)

गूगल की-बोर्ड या जी-बोर्ड (Android Keyboard (AOSP) गूगल द्वारा विकसित एक मोबाइल अनुप्रयोग (ऐप) है, जो एंड्रायड तथा आईओएस से चलने वाले मोबाइलों के लिए आभासी कुंजीपटल है। यह सबसे पहले मई 2016 में प्रस्तुत किया गया था। गूगल की-बोर्ड एक स्मार्ट की-बोर्ड है। यह आपको तेज़ी से लिखने में मदद करता है और इसका श्रेय जाता है-की-बोर्ड हाव-भाव को निजीकृत करने एवं रचना करने की क्षमता पर। इन फ़ीचर के साथ, आप शब्दों को लिख सकते हैं या दो सेकंड से भी कम समय में पूरा वाक्य बना सकते हैं।

इस मुख्य फ़ीचर को 'गतिशील फ्लोटिंक प्रिव्यू के साथ हाव-भाव टाइपिंग' कहते हैं, इसकी सहायता से आप कम गलतियाँ किए तेज़ी से लिख सकते हैं। गूगल की-बोर्ड गूगल द्वारा प्रदान किया गया एक रैपिड-टाइपिंग टूल है, और यह 26 अलग भाषाओं में और शब्दकोशों में मौजूद है। यह सभी एंड्रॉयड स्मार्टफ़ोन और टैब्लेट के अनुकूल है। इसमें सभी प्रमुख भाषाओं में वॉयस टायपिंग की सुविधा भी उपलब्ध है। यह की-बोर्ड आने के बाद, गूगल ने प्ले स्टोर से गूगल इंडिक की-बोर्ड को हटा दिया है।

हिंदी की-बोर्ड (Hindi Keyboard)

हिंदी की-बोर्ड को प्रयोग करना काफ़ी आसान है। डिफ़ॉल्ट की-बोर्ड ऐप का इस्तेमाल करने के लिए अपने ऐप को अनुमति प्रदान करें, फिर अपने हिंदी की-बोर्ड को डिफ़ॉल्ट की-बोर्ड में बदलें और फिर आप अपने नए की-बोर्ड का आनंद ले सकते हैं। हिंदी की-बोर्ड में मौजूद बटन आपको रोमन व हिंदी लिपि के बीच चयन करने का विकल्प देता है। इतना ही नहीं इस की-बोर्ड के साथ आप रोमन अक्षरों में टाइप कर सकते हैं और फिर ऐप स्वचालित रूप

से उसका अनुवाद हिंदी में कर देता है। यह ऐप रोमन की-बोर्ड पर मौजूद प्रत्येक कुंजी को हिंदी किरदार के साथ मेल कराता है, हालाँकि आप की-बोर्ड पर रोमन अक्षर में इनपुट देते हैं, लेकिन टाइप किए गए अक्षर देवनागरी में नज़र आते हैं।

इसके अलावा, इस की-बोर्ड फीचर में GIF, वर्तनी जांच, शब्द पूर्वानुमान, ध्वनि-से-पाठ, आठ सौ से अधिक इमोजी और बहुत कुछ शामिल है। इतना ही नहीं, हिंदी की-बोर्ड में भारतीय मीम के साथ व्हाट्सऐप और टेलीग्राम स्टिकर भी हैं, जो इस शानदार एप्प को और आकर्षक बनाते हैं।

हिंदी अनुवादक की-बोर्ड

इस तेज़ हिंदी अनुवादक की-बोर्ड के साथ आसानी से हिंदी से अंग्रेज़ी के पाठ का अनुवाद किया जा सकता है। केवल यह English Hindi Translate keyboard इनस्टॉल कर अपने हिंदी पाठ से अंग्रेज़ी में और अंग्रेज़ी पाठ का हिंदी में केवल एक टैप से अनुवाद किया जा सकता है। अपना वाक्य लिखें और इसका आसानी से अनुवाद करें, यदि आप हिंदी से अंग्रेज़ी या अंग्रेज़ी से हिंदी अनुवाद करना चाहते हैं, तो आपको कोई अन्य ऐप इंस्टॉल करने की आवश्यकता नहीं है। बस यह भाषा अनुवादक की-बोर्ड है और अंग्रेज़ी से हिंदी में आसान और तेज़ अनुवाद के लिए इसका दैनिक उपयोग किया जा सकता है। यह हिंदी की-बोर्ड केंद्र में चैट अनुवाद बटन के साथ सरल और तेज़ है, जो आपके पूरे वाक्य को हिंदी से अंग्रेज़ी या अंग्रेज़ी से हिंदी में अनुवाद करता है। आप अंग्रेज़ी से हिंदी अनुवादक की-बोर्ड का किसी भी सोशल नेटवर्क पर इस्तेमाल कर सकते हैं।

राजभाषा लीला ('लीला') ऐप

यह राजभाषा विभाग द्वारा विकसित एक लोकप्रिय एप्प है। सरकारी कार्यालयों में राजभाषा प्रचार-प्रसार हेतु राजभाषा विभाग ने 'लीला' नामक मोबाइल ऐप विकसित किया है। अब राजभाषा हिंदी आपकी मातृभाषा या अंग्रेज़ी के माध्यम से सीखी जा सकती है। केंद्र सरकार के कर्मचारियों के लिए हिंदी शिक्षण योजना के तहत प्रबोध, प्रवीण, प्राज्ञ, पारंगत, हिंदी टंक लेखन, हिंदी आशुलिपि सीखना अनिवार्य किया गया है। 'लीला' मोबाइल ऐप में यह कोर्स आप पढ़कर परीक्षा दे सकते हैं। 'लीला'-राजभाषा हिंदी सीखने के लिए एक बहु-मीडिया आधारित बुद्धिमान स्वयं शिक्षक उपकरण है। 'लीला' का उपयोग करके, अपने मोबाइल पर हिंदी भाषा सीखना, वास्तव में, आनंददायक और आसान है। हिंदी प्रबोध, प्रवीण और प्राज्ञ आदि कोर्स आप अंग्रेज़ी, असमिया, बांग्ला, बोडो, गुजराती, कन्नड़, तेलुगू, कश्मीरी, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, ओडिया, पंजाबी और तमिल के माध्यम से सीखने के लिए उपयोगी, अनुकूल और प्रभावी उपकरण है। हिंदी प्रबोध, हिंदी प्रवीण और प्राज्ञ पाठ्यक्रम पर प्रशिक्षण वर्ग में पढ़ाने और दूरस्थ प्रशिक्षण योजना पर आधारित है, जो पहले से ही केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान (सी.एच.टी.आई.), राजभाषा विभाग (डी.ओ.एल.), गृह मंत्रालय, सरकार द्वारा आयोजित किए जा रहे हैं। यह एक पूर्णकालिक 3-स्तरीय पाठ्यक्रम है, जिसे विशेष रूप से सरकार, कॉर्पोरेट, सार्वजनिक क्षेत्र और बैंक कर्मचारियों को राजभाषा हिंदी का ज्ञान प्रदान करने के लिए बनाया गया है। यह प्रशिक्षण अनेक भारतीय भाषाओं (मूल भाषा) में डिज़ाइन किया गया है। शुरुआती चरण से हिंदी सीखने की इच्छा रखने वाले सभी लोगों के लिए यह एप्प उपयोगी है।

कंठस्थ ऐप

'कंठस्थ' वस्तुतः ट्रांसलेशन मेमोरी पर आधारित इस मशीन अनुवाद सिस्टम को दिया गया एक नाम है। ट्रांसलेशन मेमोरी मशीन-साधित अनुवाद प्रणाली का एक भाग है, जिससे अनुवाद की प्रक्रिया में सहायता मिलती है। ट्रांसलेशन मेमोरी वस्तुतः एक डेटाबेस है, जिसमें स्रोत भाषा के वाक्यों एवं लक्षित भाषा में उन वाक्यों के अनुवादित रूप को एक-साथ रखा जाता है। ट्रांसलेशन मेमोरी पर आधारित इस सिस्टम की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें अनुवादक पूर्व में किए गए अनुवाद को किसी नई फ़ाइल के अनुवाद के लिए पुनःप्रयोग कर सकता है। यदि अनुवाद की नई फ़ाइल का वाक्य टी.एम. के डेटाबेस से पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से मिलता है, तो यह सिस्टम उस वाक्य के अनुवाद को टी.एम. से लाता है। इसका विकास राजभाषा विभाग द्वारा

AAIG, C-DAC के माध्यम से किया गया है। यह ऐप गूगल प्लेस्टोर से डाउनलोड किया जा सकता है।

ई-महाशब्दकोश

ई-महाशब्दकोश के नाम से सफल वेबसाइट के बाद राजभाषा विभाग ने इसका मोबाइल एप्प प्रस्तुत किया है, जो काफ़ी लोकप्रिय हो रहा है। राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार ने सी-डैक पुणे के तकनीकी सहयोग से ई-महाशब्दकोश का निर्माण किया है। इस ऐप के अंतर्गत शुरुआती दौर में प्रशासनिक शब्द-संग्रह को देवनागरी यूनिकोड में प्रस्तुत किया गया है। इसमें आप अंग्रेज़ी का हिंदी पर्याय तथा हिंदी शब्दों का वाक्य में अतिरिक्त प्रयोग देख सकते हैं। इसकी विशेषता यह भी है कि आप हिंदी और अंग्रेज़ी शब्दों का उच्चारण भी सुन सकते हैं। यह एक बहु उपयोगी शब्दकोश है।

गूगल ट्रांसलेट

गूगल प्ले स्टोर से गूगल ट्रांसलेट ऐप डाउनलोड कर अब आप विश्व की प्रमुख भाषाओं के बीच अनुवाद कर सकते हैं। आप गूगल ट्रांसलेट ऐप्लिकेशन से, टाइप की गई, हाथ से लिखी गई, फ़ोटो में मौजूद और बोली गई जानकारी का 100 से ज्यादा भाषाओं में अनुवाद कर सकते हैं। पहली बार गूगल ट्रांसलेट खोलने पर आपसे अपनी मुख्य भाषा चुनने के लिए कहा जाएगा। आपसे वह भाषा चुनने के लिए भी कहा जाएगा, जिसमें आप अक्सर अनुवाद करते हैं। उपलब्ध भाषाओं में से चुनने के लिए नीचे की ओर तीर के निशान पर टैप करें।

'ऑफ़लाइन अनुवाद करें' पर सही का निशान लगाकर आप दोनों भाषाएँ डाउनलोड कर सकते हैं। इससे आप ऑफ़लाइन होने पर भी अनुवाद कर पाएँगे। दोनों में से किसी भाषा के डाउनलोड के लिए उपलब्ध न होने पर आपको 'ऑफ़लाइन उपलब्ध नहीं है' सूचना दिखाई देगी।

गूगल अनुवाद के कुछ विशेष फ़ीचर्स

कभी भी, कहीं भी इस्तेमाल करने के लिए भाषाएँ डाउनलोड करना

आप अपने डिवाइस पर भाषाएँ डाउनलोड कर सकते हैं। इस तरह, आप इंटरनेट कनेक्शन के बिना भी अनुवाद कर सकते हैं। तेज़ी से डाउनलोड करने और डाउनलोड के दौरान डेटा खर्च के ज्यादा शुल्क से बचने के लिए, भाषाएँ डाउनलोड करें। ऐसा तब करें, जब आप वाई-फ़ाई से कनेक्ट हों।

कैमरे से दिखने वाले टेक्स्ट का अनुवाद करना

आप ट्रांसलेट ऐप्लिकेशन की मदद से, फ़ोन का कैमरा इस्तेमाल करके, अपने आस-पास मौजूद टेक्स्ट का अनुवाद कर सकते हैं। उदाहरण क लिए, आप साइन, मेन्यू या हाथ से लिखे गए नोट का अनुवाद कर सकते हैं।

बातचीत का अनुवाद करना

अगर कोई व्यक्ति किसी दूसरी भाषा में बात कर रहा है, तो आप ट्रांसलेट ऐप्लिकेशन से उसका रीयल-टाइम में अनुवाद कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, आप कक्षा में दिए गए लेक्चर या बोले गए शब्दों का अनुवाद कर सकते हैं।

पसंदीदा शब्द और वाक्यांश सेव करना

आप अपना गूगल ट्रांसलेट इतिहास, शब्दों और वाक्यों के अनुवाद के संग्रह में सेव कर सकते हैं, ताकि आप अपने अनुवाद किए गए शब्दों या वाक्यांशों का मतलब जान सकें।

अन्य एप्लिकेशन में अनुवाद करने के लिए टैप करें

आप गूगल ट्रांसलेट और इस्तेमाल किए जा रहे अपने किसी अन्य ऐप्लिकेशन के बीच बार-बार स्विच किए बिना टेक्स्ट का अनुवाद कर सकते हैं।

माइक्रोसॉफ़्ट ट्रांसलेटर

70 से अधिक भाषाओं के लिए टेक्स्ट, वॉइस, वार्तालाप, कैमरा फ़ोटो और स्क्रीनशॉट का अनुवाद करने के लिए माइक्रोसॉफ़्ट अनुवादक एक निःशुल्क, व्यक्तिगत अनुवाद ऐप है। जब आप यात्रा करते हैं, तब आप मुफ़्त में ऑफ़लाइन अनुवाद के लिए भाषाओं को डाउनलोड कर सकते हैं।

माइक्रोसॉफ़्ट ट्रांसलेटर के कुछ विशेष फ़ीचर्स

ऑनलाइन और ऑफ़लाइन उपयोग के लिए 70 से अधिक भाषाओं में पाठ अनुवाद

फ़ोटो और स्क्रीनशॉट के भीतर पाठ का अनुवाद करने के लिए कैमरा अनुवाद

वाणी अनुवाद करने के लिए वॉयस ट्रांसलेशन और द्विभाषी वार्तालाप वाले दो प्रतिभागियों के लिए एक स्प्लिट-स्क्रीन मोड

बहु-व्यक्ति वार्तालाप अनुवाद-अपने उपकरणों को कनेक्ट करें और कई भाषाओं में अधिकतम 100 लोगों से बातचीत करें

हाइ ट्रांसलेट

हाइ ट्रांसलेट आश्चर्यजनक रूप से अनुवाद हेतु एक सहायक ऐप है। यह न केवल एक नियमित अनुवादक के रूप में काम करता है, बल्कि यह वास्तविक समय में छवियों और यहाँ तक कि बातचीत का भी तुरंत अनुवाद करता है।

हालाँकि, जैसा इसके नाम से पता चलता है, इसकी मुख्य कार्यक्षमता आपके द्वारा दर्ज की गई किसी भी जानकारी का अनुवाद करना है, हाइ ट्रांसलेट आपको अन्य सुविधाएँ प्रदान करता है। निचले मेनू से, आपको स्क्रीन पर दिखाई देने वाले फ़्लोटिंग (तैरता हुआ) क्षेत्र का उपयोग करके ऐप पर अनुवाद खोजने का मौका मिलेगा। उस स्थिति में, आपको बस इसे संबंधित टेक्स्ट पर खींचना होगा और कुछ ही क्षण में, आपको वांछित भाषा में अनुवाद मिल जाएगा, टेक्स्ट का पूरा अनुवाद, साथ ही छवियों का, या तो पहले चुना गया या उस समय लिया गया, अठारह से अधिक भाषाओं में। यह बातचीत और आवाज़ अनुवाद का भी समर्थन करता है!

हाइ ट्रांसलेट - विभिन्न भाषा बोलने वाले लोगों के साथ संचार में सुधार करने में रुचि रखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए चैट अनुवादक के रूप में एक बेहतरीन ऐप है। भाषा की बाधाओं पर काबू पाने के लिए इसकी आवाज़ और पाठ अनुवाद सुविधाएँ फ़ायदेमंद हैं और इसकी कैमरा-टू-टेक्स्ट कार्य-क्षमता छवियों को समझने योग्य पाठ में जल्दी और आसानी से अनुवाद करना आसान बनाती है। हालाँकि, जब आप इस ऐप का उपयोग करते हैं, तब बार-बार आने वाले विज्ञापन इसकी प्रभावशीलता को कम कर सकते हैं।

शब्दकोश

आज मोबाइल के प्ले-स्टोर पर अनेक बहुभाषी शब्दकोश ऐप के रूप में उपलब्ध हैं। इनमें से SHABD-KOSH.COM दुनिया की सबसे लोकप्रिय अंग्रेज़ी से भारतीय भाषा शब्दकोश सेवा प्रदान करता है। उपयोग में आसान इंटरफ़ेस, व्यापक डेटाबेस और उपयोगी सुविधाओं जैसे कि कई उच्चारणों में आवाज़ उच्चारण के साथ, यह सुनिश्चित करने के लिए समर्पित है कि भारतीय भाषा-संसाधन दुनिया की किसी भी अन्य भाषाई टूल्स के समान अच्छे हैं। इस वेबसाइट को 2003 में शुरू किया गया था और आज इस साइट का उपयोग दुनिया भर के लाखों लोग करते हैं। यहीं पर दुनिया की पहली भारतीय भाषा का ऑनलाइन शब्दकोश प्रकाशित हुआ था, जिसमें कोई फ़ॉन्ट इंस्टॉल नहीं था और यहीं शब्दों के उच्चारण न केवल अंग्रेज़ी, बल्कि कई भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराए गए थे। वेबसाईट की सफलता के बाद मोबाइल ऐप बनाया गया, जो अभी भाषा प्रयोगकर्त्ताओं के बीच बहुत लोकप्रिय है। यह बहुभाषी शब्दकोश ऐप है, जिसका इंटरफ़ेस प्रयोगकर्ता की सुविधा के अनुसार डिज़ाइन किया गया है ।

srakesh@nio.org

हिंदी का आधुनिकीकरण : सही या गलत

दीपक कुमार निगम
उत्तर प्रदेश, भारत

'भाषा' शब्द संस्कृत के 'भाष' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'बोलना' या 'कहना' अर्थात् भाषा वह है, जिसे बोला जाए, समाज-निर्माण एवं संस्कृति-निर्माण कार्य में भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, क्योंकि व्यक्ति भाषा के बिना वैचारिक आदान-प्रदान नहीं कर सकता है। कौन-सी भाषा अच्छी है या कौन-सी बुरी, यह हम तय नहीं कर सकते

हैं। किन्हीं दो भाषाओं की तुलना ठीक उसी प्रकार होगी, यदि हम बाबु गुलाबरॉय के शब्दों में कहें, तो मेंढ़क और बैल को सिर्फ़ छोटा या बड़ा कहकर काम नहीं चलता। वैसे ही कोई भी भाषा बड़ी या छोटी नहीं हो सकती है। सभी भाषाओं के अलग-अलग मानक, व्याकरण के नियम, शब्द-रचना एवं वाक्य-रचना के नियम होते हैं। अत: किन्हीं दो भाषाओं की तुलना नहीं की जा सकती है। परन्तु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जो स्थान अंग्रेज़ी को मिला है, वह स्थान अभी हिंदी को प्राप्त न हो सका है। महात्मा गांधी के अनुसार -

" हृदय की कोई भाषा नहीं है , हृदय-हृदय से बातचीत करता है।"

भाषा का प्रभाव समाज पर वैसे ही पड़ता है, जिस प्रकार आचरण और नैतिकता व्यक्ति के व्यक्तित्व को परिवर्तित करती है। अर्थात् भाषा की प्रवृत्ति उस समाज की सोच को तय करेगी। यदि भाषा वैज्ञानिक अथवा तार्किक है, तो समाज भी तार्किक और वैज्ञानिक सोच के साथ आगे बढ़ेगा। यदि हम प्राचीन सभ्यता, सिन्धु घाटी की सभ्यता की भाषा का अध्ययन करेंगे, तो उससे यह प्रतीत होता है कि उस समय जिस वस्तु का प्रयोग करते थे, उसका प्रतीकात्मक स्वरूप भाषा के शब्द रूप में उपस्थित है।

हिंदी-भाषा प्राचीन आर्य भाषाएँ - वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत से क्रमश: विकसित होते हुए मध्यकालीन आर्य भाषाएँ - पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि से होते हुए पुरानी हिंदी, मध्यकालीन हिंदी (ब्रज, अवधी आदि) और अब इसका अंतिम स्वरूप आधुनिक हिंदी (खड़ी बोली) हम सभी के सामने है, अर्थात् हिंदी न केवल हिंदी से मूलभूत रूप से बनी है, वरन् इसमें कई प्राचीन भाषाओं और मध्यकालीन भाषाओं का समायोजन भी है, जिसमें उन सभी भाषाओं के गुण, व्याकरण, सिद्धान्त और शब्दावली की विशेषताएँ हैं। अन्य आधुनिक भाषाओं से विपरीत हिंदी आधुनिकता, वैज्ञानिकता और शब्द-ग्रहण क्षमता से सुसज्जित है, क्योंकि इसका प्रचलन भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में ही नहीं, अपितु कई देशों - मॉरीशस, फ़िजी, इंडोनेशिया इत्यादि में भी है और वहाँ के स्थानीय शब्दों को ग्रहण करके फलफूल रही है, जिससे कि वहाँ पर प्रयोग में कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं हो रही है।

किसी भाषा के आधुनिकीकरण से अभिप्राप्य यह है कि भाषा की सुगमता अर्थात् टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में मोबाइल, कंप्यूटर, इन्टरनेट व अन्य तकनीकी उपकरणों में प्रयोग तथा उनके सहायक सॉफ़्टवेयर में प्रयोग को सम्भव बनाने हेतु मूलभाषा में किये गए परिवर्तन से ही भाषा का विकास होता है। आधुनिकता के दौर में भाषा की उपयोगिता एवं प्रयोग यदि सीमित हो जाएगा, तो वह भाषा दिन-प्रतिदिन पीछे होती जाएगी।

जो हिंदी-भाषी क्षेत्र हैं, उन्हें अंग्रेज़ी इसलिए विशेष रूप से सीखनी पड़ रही है, क्योंकि उन्हें आज के वैज्ञानिक दौर में पीछे नहीं रहना है । यदि हिंदी-भाषा का आधुनिकीकरण इस प्रकार कर दिया जाए कि जो हम अन्य भाषा से कर सकते हैं और ई-संसार में जो स्थान अंग्रेज़ी को प्राप्त है, वह हिंदी को मिल जाए, तो परिणामस्वरूप हिंदी विश्व में अपना उचित स्थान बना पाएगी।

आजकल इन्टरनेट का प्रयोग बहुतायत में कर रहा है। कोरोना काल के बाद तो प्रौद्योगिकी पर निर्भरता और अधिक बढ़ गयी है। अत: जिस प्रकार की आवश्यकता बढ़ती जाएगी, आधुनिकीकरण की माँग भी क्रमशः उसी प्रकार बढ़ेगी। इसीलिए तो कहा जाता है - " आवश्यकता अविष्कार की जननी है।" पहले केवल भाषा कलम-दवात तक सीमित थी, परन्तु आज किसी की हथेली में कई पुस्तकालय समाहित हो सकते हैं। अत: हिंदी-भाषा को उसके वास्तविक स्थान पर लाने हेतु हम सभी को प्रयास करना पड़ेगा।

हिंदी-भाषा का विकास इस छोटे से लेख के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता है, परन्तु इसके विकास हेतु कुछ मुख्य कारकों को दर्शाना सम्भव है।

हिंदी-भाषा का वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास - भाषा का आधुनिकीकरण बिना विज्ञान, तकनीक अथवा शोध (रिसर्च) के सम्भव नहीं है, अर्थात् वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास ही वह महत्त्वपूर्ण कारक है, जो हिंदी-भाषा के आधुनिकीकरण में भूमिका निभाएगा। भाषा के

आधुनिकीकरण हेतु दो पहलू या सन्दर्भ हैं –

पहला - भाषा आधुनिक प्रयोजनों के अनुकूल विकसित हो।

दूसरा - भाषा से संबंधित यांत्रिक साधनों का विकास हो।

यह ज़रूरी है कि इन्टरनेट से लेकर मार्केट इकॉनमी तक जितनी भी स्थितियाँ सामने हैं, उन सबके लिए हमारी हिंदी-भाषा आम जन मानस तक पहुँच सके, इसके लिए आवश्यक है कि हमारी भाषा सरल और सहज शब्दों में हो। जो शब्द किसी अन्य भाषा से लिया जाता है अथवा अन्य भाषा के वैज्ञानिक शब्द / तकनीकी शब्द का जब हिंदी में रूपांतर किया जाता है, तब यदि वे शब्द कठिन बन जाते हैं, तो लोगों को लगता है कि उसका अंग्रेज़ी वर्शन ही याद करना आसान होता है। अत: इन कठिन रूपांतरित शब्दों को सरल बनाने से हिंदी का मनोबल बढ़ेगा। उदारणस्वरूप – ट्रांसफ़ॉर्मर (TRANSFORMER) का हिंदी अनुवाद 'परिणामित्र' है, परन्तु पुस्तकों में और विद्वान भी इसे 'ट्रांसफ़ॉर्मर ' ही कहते हैं, न कि उसके लिए 'परिणामित्र' का प्रयोग किया जाता है। इसका एकमात्र उपाय पारिभाषिक शब्दावली का विकास करना है। किसी भाषा के प्रयोग की सीमा तब तय हो सकती है, जब वह भाषा नए स्थान, वातावरण, क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले शब्द /शब्दावली को ग्रहण करने की क्षमता रखती हो। डॉ. रघुवीर, सुन्दरलाल, शांतिस्वरूप भटनागर जैसे कई विद्वानों ने इस क्षेत्र में विशेष कार्य किए हैं, अकेले डॉ. रघुवीर ने करीब चार लाख शब्दों का रूपांतर किया है। इस क्षेत्र में 'वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली आयोग', 'विधायी (शब्दावली) आयोग (विधि क्षेत्र में हिंदी के समतुल्य शब्द की रचना), राजभाषा विभाग, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो आदि विशेष संस्थान दिन-प्रतिदिन कार्य कर रहे हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसार हिंदी-भाषा की शब्दावली बढ़ाने हेतु प्रावधान किए गए हैं। वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली हिंदी भाषा में अभी और अधिक विकसित होने की आवश्यकता है, जिससे विज्ञान के क्षेत्र में हिंदी भाषा का प्रयोग अच्छी तरह से हो पाएगा।

हिंदी में अन्य आधुनिक विषय – चिकित्सा, प्रौद्योगिकी, अर्थशास्त्र, विज्ञान इत्यादि में शोध-ग्रन्थ और साहित्य सुगमता से उपलब्ध नहीं हैं, इससे भी पाठक के मन में भाषा की नकारात्मक छवि उभरती हैं, क्योंकि यदि किसी व्यक्ति को मेडिकल साइंस की पुस्तक का अध्ययन करना हो, तो वह हिंदी में उपलब्ध नहीं होगी, जिससे उस व्यक्ति की आवश्यकता दूसरी भाषा को सीखने में होगी और वह हिंदी में कम ध्यान देने लगेगा।

आजकल भारत के न्यायलय में तर्क-वितर्क अंग्रेज़ी में किए जाते हैं। आधिकारिक भाषा के रूप में हिंदी का जब बहुतायत में प्रयोग होगा, तभी लोगों में हिंदी सीखने की जागरूकता बढ़ेगी। हम हिंदी भाषी लोगों को सबसे अधिक इस क्षेत्र में कार्य करने की आवश्यकता है। हर विषय के प्रतिष्ठित लोगों को अपने-अपने विषयों पर हिंदी-भाषा में पुस्तक-लेखन हेतु प्रोत्साहन करना होगा।

मध्यप्रदेश पहला ऐसा राज्य है, जहाँ चिकित्सा विज्ञान (MBBS) में अध्ययन हिंदी-भाषा में किया जा सकता है और वहाँ शरीर रचना-विज्ञान (एनाटोमी) जैसे कठिन विषय की पुस्तक का हिंदी अनुवाद किया गया है। वर्तमान में बी. टेक व अन्य प्रोफ़ेशनल कोर्सेस को हिंदी-भाषा में उपलब्ध करने का सरकार द्वारा प्रयास किया जा रहा है, जिसके कारण हिंदी भाषी लोग इन विषयों पर अच्छा प्रदर्शन कर पाएँगे।

आधुनिकीकरण का दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू तकनीकी विकास है, क्योंकि सहायक यंत्र और साधन के बिना हिंदी का आधुनिकीकरण सम्भव नहीं है। यदि हम प्रारम्भिक रूप से इस विषय पर आएँ, तो इस क्षेत्र में टाइपराइटर से निकलकर वर्तमान में कंप्यूटर और इन्टरनेट जगत् में हिंदी-भाषा का क्रमश: विकास हुआ है।

टाईपराइटर- इसका निर्माण सन् 1874 के आस-पास यूरोप में हुआ। इसका प्रचलन और विकास उन क्षेत्रों में हुआ, जहाँ हिंदी-भाषा का प्रयोग न के बराबर था, जिसके फलस्वरूप टाइपराइटर के कीबोर्ड लेआउट में हिंदी का प्रयोग हुआ ही नहीं। परन्तु 1960 के दशक में टाइपराइटर के हिंदी लेआउट पर डॉ. वी.के., डॉ. खत्री, डॉ. रघुवीर, डॉ. राघवन, डॉ. बाबुराम सक्सेना आदि विद्वानों ने निजी कम्पनी की सहायता से हिंदी लेआउट अथवा कुंजीपटल का निर्माण किया।

2. टेलीप्रिंटर - दूरसंचार प्रौद्योगिकी में टेलीप्रिंटर का विशेष महत्त्व है। संचार-माध्यमों में आज़ादी के बाद भारत में इसकी माँग बढ़ी और 1960 के दशक में संचार मंत्रालय ने हिन्दस्तान टेलीप्रिंटर नामक उद्यम प्रारम्भ किया। गृह मंत्रालय और शिक्षा मंत्रालय की सहायता से हिन्दस्तान टेलीप्रिंटर लिमिटड के लिए देवनागरी लिपि का कुंजीपटल तैयार किया गया।

3. कंप्यूटर - कंप्यूटर का आविष्कार व विकास यूरोप और अमेरिका में होने के कारण इसमें अन्य भाषाओं की तुलना में अंग्रेज़ी को अधिक महत्त्व दिया गया, जिसमें हिंदी का प्रयोग करने हेतु बहुत समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। भारत व अन्य हिंदी भाषी देशों के कारण आई. बी. एम. और माइक्रोसॉफ़्ट ने उपभोक्ता की दृष्टि से अपने कंप्यूटर में हिंदी-भाषा की वैकल्पिक व्यवस्था की। आज कंप्यूटर में हिंदी का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

4. सॉफ़्टवेयर - हिंदी में टंकण, मुद्रण, बिल बनाना, लेखा-जोखा, पत्र-व्यवहार, रिपोर्ट बनाना, विवरणों को रखना, शोध करना आदि अनेक कार्य करने हेतु पूर्व में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। परन्तु सॉफ़्टवेयर के विकास के फलस्वरूप अब ये कार्य सरल हो गए हैं। अब माइक्रोसॉफ़्ट ऑफ़िस के हिंदी संस्करण व अन्य सॉफ़्टवेयर का अनुप्रयोग किया जा रहा है।

5. लिपि - प्रारम्भ में बाइनरी का रोमन लिपि में परिवर्तन होने के कारण अंग्रेज़ी का प्रयोग कंप्यूटर में होता था, हिंदी-भाषा के लिए कंप्यूटर हेतु कोई लिपि नहीं बनायी गयी थी। अब देवनागरी लिपि – 'कृतिदेव', 'चाणक्य', 'मंगल' आदि लिपियों के आ जाने से प्रयोग आसान हो गया और विकास होता रहा। वर्तमान में यूनिकोड लिपि हिंदी के लिए आदर्श लिपि है। इसका प्रयोग बहुतायत में हो रहा है, क्योंकि यह हर जगह एक जैसी प्रतीत होती है-

सबकी प्यारी अपनी भाषा, माँ हिंदी की मिली गोद है।
कंप्यूटर में जागी आशा, यूनिकोड का महामोद है ।।

6. इन्टरनेट - गूगल जैसे प्रतिष्ठित कम्पनी के कारण हिंदी का बहुमुखी विकास इस क्षेत्र में सम्भव हो सका। इनके सर्च इंजन, विकिपीडिया, गूगल हिंदी इनपुट जैसे फ़ीचर के कारण हिंदी का विकास सम्भव हो सका है, क्योंकि इन सभी का प्रयोग हिंदी-भाषा में किया जा सकता है। आजकल सोशल नेटवर्क (फ़ेसबुक, ट्विटर आदि) में हिंदी में कार्यों का संपादन करना अच्छी दृष्टि से देखा जाता है। इन्टरनेट पर हिंदी साहित्य को पढ़ना आसान है। आज छोटे-से गाँव के लेख देश-विदेश में पढ़ पाना सम्भव हो गया है।

7. अन्य – 'अनुवाद टूल्स', 'शब्दकोश', 'बहुभाषी शब्दकोश', 'स्पेल चेकर' आदि के सहारे भाषा सम्बन्धी अनेक कार्य हो रहे हैं। गूगल द्वारा वॉयस ट्रांसलेशन आधारित सॉफ़्टवेयर बनाया गया है, जिसमें हिंदी को अन्य भाषा में अथवा अन्य भाषा को हिंदी में बोलकर भी रूपांतरित किया जा सकता है। राजभाषा विभाग द्वारा लीला (LILA) नामक सॉफ़्टवेयर बनाया गया है, जोकि कृत्रिम बुद्धिमता पर आधारित है।

इन्टरनेट पर हिंदी का प्रयोग इसका सकारात्मक पहलू है, परन्तु आज मीडिया जगत् में हिंदी भाषा की वेब सीरीज़ में जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग हो रहा है, उसमें अभद्रता सभी सीमाएँ पार कर रही है। इससे हिंदी भाषा का तिरस्कार हो रहा है, जोकि उसका नकारात्मक पक्ष है। हिंदी के सकारात्मक और नकारात्मक पक्ष हम सभी के सामने हैं। यह तय करना है कि आधुनिकीकरण सही है या गलत। अत: हमारे प्रयासों से तय होगा कि हिंदी किस ओर जा रही है। हिंदी के सकारात्मक पक्ष पर कार्य करने की ज़रूरत है और नकारात्मक पक्ष को रोकने की आवश्यकता है

हिंदी का परचम उड़ा, उच्च गगन की ओर।
हिंदी की बिंदी सजी, आभा दिनकर भोर ।।
हिंदी सीमा तोड़कर, चली विश्व के द्वार।
वैज्ञानिक आधार पर, प्रसिद्धि मिली अपार ।।
सभी प्रान्त की बोलियाँ, दे हिंदी को मान।
राष्ट्र एकता का करें, मधुर सुरों में गान ।।
हिंदी के प्रति हीनता, मन से करे समाप्त।
विश्व मंच पर तब इसे होगा गौरव प्राप्त ।।

deepakscience008@gmail.com

विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस
की साहित्यिक पत्रिका
2023
विश्व हिंदी सचिवालय
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स ७३४२३, मॉरीशस
World Hindi Secretariat
Independence Street, Phoenix 73423,
Mauritius
फ़ोन / Phone : +230-6600800
ई-मेल / E-mail : info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
डेटाबेस / Database : www.vishwahindidb.com

मुद्रक : Star Publications PVT LTD,
Hindi Book Centre, New Delhi - 110002
info@starpublic.com & info@hindibook.com

कवर डिज़ाइनर : Dr Prakash Jhugaroo